સરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ શાહ

॥ णमो सिद्धाणं ॥

ज्ञान महोदधि आचार्य हेमचन्द्र प्रणीतम्

प्राकृत–व्याकरणम्

[प्रियोदय हिन्दी व्याख्या सहितम्]

प्रथम-भाग

हिन्दी–व्याख्याता

स्वर्गीय, जैन दिवाकर, प्रसिद्धवक्ता, जगत्-वल्लभ पं. रत्न श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के प्रधान-शिष्य बाल ब्रह्मचारी पं. रत्न श्रमण-संघीय

उपाध्याय श्री १००८ श्री प्यारचन्दजी महाराज

संयोजकः–

श्री उदयमुनिजी महाराज–सिद्धान्त शास्त्री

संपादकः–

पं. रतनलाल संघवी

न्यायतीर्थ-विशारद; छोटी सादड़ी, (राजस्थान)

प्रथम संस्करण १००० प्रतियां	अर्घ-मूल्य छह रुपया	वीराब्द २४९० विक्रमाब्द २०२०

સરસ્વતિબ્હેન મફીલાલ [illegible]
[illegible]

* श्री *

-: ग्रन्थानुक्रम :-

	विषय		पृष्ठ
१	व्याख्याता का वक्तव्य		३–४
२	संयोजक का प्राक्-कथन	....	५
३	प्रकाशक के दो शब्द	....	६
४	सहायता-दाता-सूची	....	७–८
५	संपादकीय-निवेदन	....	९
६	हिन्दी व्याख्याता श्री प्यारचन्दजी महा. सा.	....	१०–१२
७	आचार्य हेमचन्द्र	....	१३–१५
८	प्राकृत-व्याकरण-मूल-सूत्र	....	१६–२६
९	प्राकृत-व्याकरण-विषयानुक्रमणिका	....	२७–३२
१०	प्राकृत-व्याकरण-प्रियोदय हिन्दी व्याख्या	....	१ से ५३६
११	परिशिष्ट-भाग-अनुक्रमणिका	....	१
१२	संकेत-बोध	....	२
१३	व्याकरण-आगत-कोष-रूप-शब्द-सूची	....	३ से
१४	शुद्धि-पत्र	....	

॥ श्री ॥

व्याख्याता का वक्तव्य

यह परम प्रसन्नता की बात है कि आजकल दिन प्रतिदिन प्राकृत-भाषा के अध्ययन-अध्यापन की वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही है। किसी भी भाषा के अध्ययन में व्याकरण का पठन करना सर्व प्रथम आवश्यक होता है।

आचार्य हेमचन्द्र प्रणीत प्राकृत-व्याकरण प्राकृत भाषा के लिये सर्वाधिक प्रामाणिक और परिपूर्ण मानी जाती है। इसका पूरा नाम "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" है। यह आठ अध्यायों में विभक्त है; जिनमें से सात अध्यायों में तो संस्कृत-व्याकरण की संयोजना है और आठवें अध्याय में प्राकृत-व्याकरण की विवेचना है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत-व्याकरण को चार पादों में विभाजित किया है; जिनमें से प्रथम और द्वितीय पाद में तो वर्ण-विकार तथा स्वर-व्यञ्जन से सम्बंधित नियम प्रदान किये हैं तथा अव्ययों का भी वर्णन किया है। तृतीय पाद में व्याकरण सम्बंधी शेष सभी विषय संगुंफित कर दिये हैं। चतुर्थ-पाद में सर्व प्रथम धातुओं का बयान करके तत्पश्चात् निम्नोक्त भाषाओं का व्याकरण समझाया गया है:—(१) शौरसेनी (२) मागधी (३) पैशाची (४) चूलिका पैशाची और (५) अपभ्रंश।

ग्रन्थकर्त्ता ने पाठकों एवं अध्येताओं की सुगमता के लिये सर्व प्रथम संक्षिप्त रूप से सार गर्भित सूत्रों की रचना की है; एवं तत्पश्चात् इन्हीं सूत्रों पर "प्रकाशिका" नामक स्वोपज्ञ वृत्ति अर्थात् संस्कृत-टीका की रचना की है। आचार्य हेमचन्द्र कृत यह प्राकृत व्याकरण भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिये तथा आधुनिक अनेक भारतीय भाषाओं का मूल स्थान ढूंढने के लिये अत्यन्त उपयोगी है; इसीलिये आजकल भारत की अनेक युनीवरसीटीज याने सरकारी विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम में इस प्राकृत-व्याकरण को स्थान दिया गया है। ऐसी उत्तम और उपादेय कृति की विस्तृत किन्तु सरल हिन्दी व्याख्या की अति आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जाती रही है; मेरे समीप रहने वाले श्री मेघराजजी म०, श्री गणेशमुनिजी, श्री उदयमुनिजी आदि सन्तों ने जब इस प्राकृत-व्याकरण का अध्ययन करना प्रारम्भ किया था तब इन्होंने ने भी आग्रह किया था कि ऐसे उच्च कोटि के ग्रन्थ की सरल हिन्दी व्याख्या होना नितान्त आवश्यक है; जिससे कि अनेक व्यक्तियों को और भाषा प्रेमियों को प्राकृत-व्याकरण के अध्ययन का मार्ग सुलभ तथा सरल हो जाय।

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधान आचार्य श्री १००८ श्री आत्मारामजी महा० सा., शास्त्रज्ञ पं० रत्न श्री कस्तूरचन्दजी महाराज, पं. मुनि श्री प्रतापमलजी महा०, श्री मन्नालालजी महा० एवं श्री पन्नालालजी महा० आदि सन्त-मुनिराजों की भी प्रेरणा, सम्मति, उद्बोधन एवम् सहयोग प्राप्त हुआ कि प्राकृत व्याकरण सरीखे ग्रन्थ को राष्ट्रभाषा में समुपस्थित करना अत्यंत लाभदायक तथा हितावह प्रमाणित होगा। तदनुसार विक्रम संवत् २०१६ के रायचूर (कर्णाटक-प्रान्त) के चातुर्मास में इस हिन्दी व्याख्या ग्रन्थ को तैयार किया।

आशा है कि जनता के लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा। इसमें मैंने ऐसा क्रम रखा है कि सर्व प्रथम मूल-सूत्र, तत्पश्चात् मूल ग्रन्थकार की ही संस्कृत-वृत्ति प्रदान की है; तदनन्तर मूल-वृत्ति पर पूरा २ अर्थ बतलाने वाली विस्तृत हिन्दी व्याख्या लिखी है; इसके नीचे ही मूल वृत्ति में दिये गये सभी प्राकृत शब्दों का संस्कृत पर्यायवाची शब्द देकर तदनन्तर उस प्राकृत-शब्द की रचना में आने वाले सूत्रों का क्रम पाद-संख्या पूर्वक प्रदान करते हुए शब्द-साधनिका भी रचना की गई है। यों ग्रन्थ में आये हुए हजारों की संख्या वाले सभी प्राकृत शब्दों की अथवा पदों की प्रामाणिक रूप से सूत्रों का उल्लेख करते हुए विस्तृत एवं उपादेय साधनिका की संरचना की गई है। इससे प्राकृत-शब्दों की रचना-पद्धति एवम् इनकी विशेषता सरलता के साथ समझ में आ सकेगी। पुस्तक को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया है; इसीलिये अन्त में प्राकृत-रूपावलि तथा शब्द-कोष की भी संयोजना करदी गई है; इससे शब्द के अनुसंधान में अत्यन्त सरलता का अनुभव होगा।

श्री. पी. एल. वैद्य द्वारा सम्पादित और श्री भांडारकर ऑरिएन्टल रीसर्च इंस्टीट्यूट, पूना नं. ४ द्वारा प्रकाशित प्राकृत-व्याकरण के मूल संस्कृत-भाग के आधार से मैंने "प्रियोदय हिन्दी-व्याख्या" रूप कृति का इस प्रकार निर्माण किया है; एतदर्थ उक्त महानुभाव का तथा उक्त संस्था का मैं विशेष रूप से नामोल्लेख करता हूं।

आशा है कि सहृदय सज्जन इस कृति का सदुपयोग करेंगे। विज्ञेषु किम् बहुना?

दीप-मालिका
विक्रमाब्द २०१६
रायचूर (कर्णाटक)

प्रस्तुतकर्ता
उपाध्याय मुनि प्यारचन्द

आचार्य हेमचन्द्र

भारतीय साहित्य के प्रांगण में समुपस्थित श्रेष्ठतम विभूतियों में से आचार्य हेमचन्द्र भी एक पवित्र एवं दिव्य विभूति हैं। सन् १०८८ तदनुसार विक्रम संवत् ११४५ की कार्तिक पूर्णिमा बुधवार ही इन लोकोत्तर प्रतिभा संपन्न महापुरुष का पवित्र जन्म दिन है। इनकी अगाध बुद्धि, गंभीर ज्ञान और अलौकिक प्रतिभा का अनुमान करना हमारे जैसे के लिये अत्यंत कठिन है। आपकी प्रकर्ष प्रतिभा से उत्पन्न महान् मंगल-मय ग्रन्थ राशि गत साढ़े आठ सौ वर्षों से संसार के सहृदय विद्वानों को आनन्द-विभोर करती रही है; तथा असाधारण दीर्घ तपस्वी भगवान् महावीर स्वामी के गूढ़ और शान्तिप्रद आदर्श सिद्धान्तों का सुन्दर रीति से सम्यक् परिचय कराती रही है।

साहित्य का एक भी ऐसा अंग अछूता नहीं छूटा है; जिस पर कि आपकी अमर और अलौकिक लेखनी नहीं चली हो; न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, रस, अलंकार, नीति, योग, मन्त्र, कथा, चरित्र, आदि लौकिक, अध्यात्मिक, और दार्शनिक सभी विषयों पर आपकी ज्ञान-परिपूर्ण कृतियाँ उपलब्ध हैं। संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं में आप द्वारा लिखित महत्वपूर्ण एवं भावमय साहित्य अस्तित्व में है। कहा जाता है कि अपने बहुमूल्य जीवन में आपने साढ़े तीन करोड़ श्लोक प्रमाण जितने साहित्य की रचना की थी।

महान् प्रतापी राजा विक्रमादित्य की राज-सभा में जो स्थान महाकवि कालिदास का था; एवं गुणज्ञ राजा हर्ष के शासन-काल में जो स्थान गद्य-साहित्य के असाधारण लेखक पंडित-प्रवर बाण-भट्ट का था; वही स्थान और वैसी ही प्रतिष्ठा आचार्य हेमचन्द्र की चौलुक्य वंशी राजा सिद्धराज जयसिंह की राज्य-सभा में थी। अमारिपडह के प्रवर्तक परिमार्हत महाराज कुमारपाल के तो आचार्य हेमचन्द्र साक्षात् राजगुरु, धर्म-गुरु और साहित्य गुरु थे!

आपका जन्म स्थान गुजरात प्रदेश के अन्तर्गत अवस्थित 'धंधुका" नामक गाँव है। इनके माता पिता का नाम क्रमशः "श्री पाहिनी देवी" और 'श्री चाचदेव' था। ये जाति के मोढ़ महाजन थे। आपका जन्म-नाम "चंगदेव" था। आश्चर्य की बात है कि जिस समय में आपकी आयु केवल पाँच वर्ष की ही थी, तभी श्री देवचन्द्र सूरि ने इन्हें "जैन-साधु" की दीक्षा प्रदान करके अपना शिष्य बना लिया था। यह शुभ प्रसंग वि० संवत् ११५० के माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार के दिन संपन्न हुआ था। उस समय में आपका नाम "चंगदेव" के स्थान पर सोमचन्द्र निर्धारित किया गया था!

दीक्षा-ग्रहण करने के पश्चात् आपके जन्म-जात गुण तथा सहजात प्रतिभा और सर्वतोमुखी बुद्धि स्वयमेव दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होती गई। जिस संयम में आपकी आयु केवल इक्कीस वर्ष की ही थी, तभी आप एक परिपक्व प्रकांड पंडित के रूप में प्रख्यात हो गये थे। आपकी असाधारण विद्वत्ता एवं अनुपम प्रतिभा से आकर्षित होकर श्री देवचन्द्र सूरि ने वि० संवत् ११६६ के वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन मध्याह्नकाल में खंभात शहर में चतुर्विध श्री संघ के समाने आपको आचार्य पदवी प्रदान की और आपका शुभ नाम उस समय में "आचार्य हेमचन्द्र सूरि" ऐसा जाहिर किया।

गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह के आग्रह से आपने संस्कृत, प्राकृत भाषा का एक आदर्श और सरल किन्तु परिपूर्ण तथा सर्वाङ्ग संपन्न व्याकरण बनाया; जो कि "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" के नाम से विख्यात है। आप ने उक्त व्याकरण के नियमों की सोदाहरण-सिद्धि हेतु "संस्कृत द्व्याश्रय" और "प्राकृत-द्व्याश्रय" नामक दो महाकाव्यों की रचना की है। जो कि काव्य और व्याकरण दोनों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। ये काव्य वर्णन-विचित्रता और काव्य-चमत्कृति के सुन्दर उदाहरण हैं। बड़ी खूबी के साथ कथा-भाग का निर्वाह करते हुए व्याकरण-गत नियमों का क्रमशः समावेश इनमें कर दिया गया है। दोनों काव्यों का परिमाण क्रमशः २८२८ और १५०० श्लोक संख्या प्रमाण है। संस्कृत काव्य पर अभय तिलक गणि की टीका और प्राकृत काव्य पर पूर्ण कलश गणि की टीका उपलब्ध है। दोनों ही काव्य सटीक रूप से बम्बई संस्कृत सीरीज (सरकारी प्रकाशन) द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

"व्याकरण और काव्य" रूप ज्ञान-मन्दिर के स्वर्ण-कलश समान चार कोष ग्रन्थों का भी आचार्य हेमचन्द्र ने निर्माण किया है। जिनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं:-(१) अभिधान चिन्तामणि; (२) अनेकार्थ संग्रह; (३) देशी नाममाला और (४) शेष नाम माला। भाषा विज्ञान की दृष्टि से "देशी नाम माला" कोष का विशेष महत्व है। यह कोष पूना से प्रकाशित हो चुका है।

रस और अलंकार जैसे विषयों का विवेचन करने के लिये आपने काव्यानुशासन नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस पर दो टीका ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। जो कि क्रमशः "अलंकार चूड़ामणि" और "अलंकार-वृत्ति-विवेक" के नाम से विख्यात हैं। छन्द-शास्त्र में "छन्दानुशासन" नामक आपकी कृति पाई जाती है। इसमें संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के छन्दों का अनेक सुन्दर उदाहरणों के साथ विवेचन किया गया है।

आध्यात्मिक विषय में आपकी रचना 'योग-शास्त्र' अपर नाम 'अध्यात्मोपनिषद्' है। यह ग्रन्थ मूल रूप से १२०० श्लोक प्रमाण है। इस पर भी बारह हजार श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका उपलब्ध है। स्तोत्र ग्रन्थों में "वीतराग-स्तोत्र" और "महादेव-स्तोत्र" नामक दो स्तुति ग्रन्थ आप द्वारा रचित पाये जाते हैं। अति-विस्तृत और अति गंभीर "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" तथा परिशिष्ट पर्व ग्रन्थ आपकी कथात्मक कृतियाँ हैं। इन ग्रन्थों की कथा-वस्तु की दृष्टि से उपयोगिता है। इतिहास के तत्त्व भी इनमें ढूँढने से प्राप्त हो सकते हैं।

न्याय-विषय में "प्रमाण-मीमांसा" नामक अधूरा ग्रन्थ पाया जाता है। इनकी न्याय-विषयक बत्तीसियों में से एक "अन्ययोग व्यवच्छेद" है और दूसरी "अयोग व्यवच्छेद" है। दोनों में प्रसाद गुण संपन्न ३२-३२ श्लोक हैं। उदयनाचार्य ने कुसुमांजलि में जिस प्रकार ईश्वर की स्तुति के रूप में न्याय-शास्त्र का संग्रथन किया है; उसी तरह से इनमें भी भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति के रूप में षट्-दर्शनों की मान्यताओं का विश्लेषण किया गया है। श्लोकों की रचना महाकवि कालिदास और स्वामी शंकराचार्य की रचना-शैली का स्मरण कराती है। दार्शनिक श्लोकों में भी स्थान स्थान पर जो विनोद-मय अंश देखा जाता है; उससे पता चलता है कि आचार्य हेमचन्द्र हंसमुख और प्रसन्न प्रकृति वाले होंगे। "अन्य-योग-व्यवच्छेद" बत्तीसी पर मल्लिषेण सूरि कृत तीन हजार श्लोक प्रमाण "स्याद्वाद मञ्जरी" नामक प्रसाद गुण संपन्न भाषा में सरल, सरस और ज्ञान-वर्धक व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध है। इस व्याख्या ग्रन्थ से पता चलता है कि मूल कारिकाऐं कितनी गंभीर, विशद अर्थ वाली और उच्च कोटि की हैं।

इस प्रकार हमारे चरित्र-नायक की प्रत्येक शास्त्र में अव्याहत गति दूरदर्शिता, व्यवहारज्ञता, एवं साहित्य-रचना-शक्ति को देख करके विद्वान्तों ने इन्हें "कलिकाल-सर्वज्ञ" जैसी उपाधि से विभूषित किया है। पीटर्सन आदि पाश्चिमात्य विद्वानों ने तो आचार्य श्री को Ocean of Knowledge अर्थात् ज्ञान के महा सागर नामक जो यथा तथ्य रूप वाली उपाधि दी है; वह पूर्ण रूपेण सत्य है।

कहा जाता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्रशंसनीय जीवन-काल में लगभग डेढ़ लाख मनुष्यों को अर्थात् तैंतीस हजार कुटुम्बों को जैन-धर्मावलम्बी बनाये थे।

अन्त में चौरासी वर्ष की आयु में आजन्म अखंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए और साहित्य-ग्रन्थों की रचना करते हुए संवत् १२२६ में गुजरात प्रान्त के ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण भारत के असाधारण तपोधन रूप इन महापुरुष का स्वर्गवास हुआ। आपके अनेक शिष्य थे; जिनमें श्री रामचन्द्र आदि सात शिष्य विशेष रूप से प्रख्यात हैं। अन्त में विशेष भावनाओं के साथ में यही लिखना है कि आचार्य हेमचन्द्र की श्रेष्ठ कृतियाँ, प्रशस्त जीवन और जिन-शासन-सेवा यही प्रमाणित करते हैं कि आप असाधारण विद्वान्, महान जिन-शासन-प्रभावक और भारत की दिव्य विभूति थे।

अनन्त चतुर्दशी
विक्रमाब्द २०१६

रतनलाल संघवी
छोटी सादड़ी, (राजस्थान)

मूल-सूत्राणि

प्राकृत व्याकरणस्य प्रथमः पादः

अथ प्राकृतम् । १-१ ।बहुलम्। १-२ ।आर्षम्। १-३ ।दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ। १-४ ।पदयोः संधिर्वा। १-५ ।न युवर्णस्यास्वे। १-६ ।एदोतोःस्वरे। १-७ ।स्वरस्योद्वृत्ते। १-८ ।त्यादेः। १-९ ।लुक्। १-१० ।अन्त्यव्यञ्जनस्य। १-११ ।न श्रदुदोः। १-१२ ।निर्दुरोर्वा। १-१३ ।स्वरेन्तरश्च। १-१४ ।स्त्रियामादविद्युतः। १-१५ ।रो रा। १-१६ क्षुधो हा। १-१७ ।शरदादेरत्। १-१८ ।दिक्-प्रावृषोः सः। १-१९ ।आयुरप्सरसोर्वा। १-२० ।ककुभो हः। १-२१ ।धनुषो वा। १-२२ ।मोनुस्वारः। १-२३ ।वा स्वरे मश्च। १-२४ ।ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने। १-२५ ।वक्रादावन्तः। १-२६ ।क्त्वा-स्यादेर्णस्वोर्वा। १-२७ ।विंशत्यादेर्लुक्। १-२८ ।मांसादेर्वा। १-२९ ।वर्गेन्त्यो वा। १-३० ।प्रावृट्-शरत्तरणयः पुंसि। १-३१ ।स्नमदाम-शिरो-नभः। १-३२ ।वाक्ष्यर्थ-वचनाद्याः। १-३३ ।गुणाद्याः क्लीबे वा। १-३४ ।वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम्। १-३५ ।बाहोरात्। १-३६ ।अतो डो विसर्गस्य। १-३७ ।निष्प्रती ओत्परी माल्य-स्थोर्वा। १-३८ ।आदेः। १-३९ ।त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक्। १-४० ।पदादपेर्वा। १-४१ ।इतेः स्वरात् तश्च द्विः। १-४२ ।लुप्त-य-र-व-श-ष-सां-श-ष-सां दीर्घः। १-४३ ।अतः समृद्ध्यादौ वा। १-४४ ।दक्षिणे हे। १-४५ ।इःस्वप्नादौ। १-४६ ।पक्वाङ्गार-ललाटे वा। १-४७ ।मध्यम-कतमे द्वितीयस्य। १-४८ ।सप्तपर्णे वा। १-४९ ।मयट्यइर्वा। १-५० ।ईर्हरे वा। १-५१ ।ध्वनि-विष्वचोरुः। १-५२ ।वन्द्र-खण्डिते णा वा। १-५३ ।गवये वः। १-५४ ।प्रथमे प-थोर्वा। १-५५ ।ज्ञो णत्वेभिज्ञादौ। १-५६ ।एच्छय्यादौ। १-५७ ।वल्ल्युत्कर-पर्यन्ताश्चर्ये वा। १-५८ ।ब्रह्मचर्ये चः। १-५९ ।तोन्तरि। १-६० ।ओत्पद्मे। १-६१ ।नमस्कार-परस्परे द्वितीयस्य। १-६२ ।वार्पौ। १-६४ ।नात्पुनर्यादाई वा। १-६५ ।वालाब्वरण्ये लुक्। १-६६ ।वाव्ययोत्खातादावदातः। १-६७ ।घञ्वृद्धेर्वा। १-६८ ।महाराष्ट्रे। १-६९ । मांसादिष्वनुस्वारे। १-७० श्यामाके मः। १-७१ इः सदादौ वा। १-७२ ।आचार्ये चोच्च। १-७३ ।ईः स्त्यान-खल्वाटे। १-७४ ।उः सास्ना-स्तावके। १-७५ ।ऊद्वासारे। १-७६ ।आर्यायां र्यः श्वश्र्वाम्। १-७७ ।एद्ग्राह्ये। १-७८ ।द्वारे वा। १-७९ ।पारापते रो वा। १-८० ।मात्रटि वा। १-८१ उदोद्वार्द्रे। १-८२ ।ओदाल्यां पङ्क्तौ। १-८३ ।ह्रस्वः संयोगे। १-८४ इत एद्वा। १-८५ ।किंशुके वा। १-८६ ।मिरायाम्। १-८७ ।पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुन्मूषिक-हरिद्रा-बिभीतकेष्वत्। १-८८ ।शिथिलेङ्गुदे वा। १-८९ ।तित्तिरौ रः। १-९० ।इतौ तो वाक्यादौ। १-९१ ।ईर्जिह्वा-सिंह-त्रिंशद्विंशतौ त्या। १-९२ ।र्लुकि निरः। १-९३ ।द्विन्योरुत्। १-९४ ।प्रवासीक्षौ। १-९५ ।युधिष्ठिरे वा। १-९६ ।ओच्च द्विधाकृगः। १-९७ वा निर्झरे ना। १-९८ हरीतक्यामीतोत्। १-९९ ।आत्कश्मीरे। १-१०० ।पानीयादिष्वित्। १-१०१ ।उज्जीर्णे। १-१०२ ।ऊर्हीन-विहीने वा। १-१०३ ।तीर्थे हे। १-१०४ ।एत्पीयूषापीड-बिभीतक-कीदृशेदृशे। १-१०५ ।नीड-पीठे वा। १-१०६ ।उतो मुकुलादिष्वत्। १-१०७ ।वोपरौ। १-१०८ ।गुरौ के वा। १-१०९ ।इर्भ्रुकुटौ। १-११०

पुरुषे रोः। १-१११ ।ईः क्षुते। १-११२ ।ऊत्सुभग-मुसले वा। १-११३ ।अनुत्साहोत्सन्ने त्सच्छे। १-११४ ।लुकि दुरो वा। १-११५ ।ओत्संयोगे। १-११६ ।कुतूहले वा ह्रस्वश्च। १-११७ ।अदूतः सूक्ष्मे वा। १-११८ ।दुकूले वा लश्च द्विः। १-११९ ।ईर्वोद्व्यूढे। १-१२० ।उर्भ्रू-हनुमत्कण्डूयवातूले। १-१२१ ।मधूके वा। १-१२२ ।इदेतौ नूपुरे वा। १-१२३ ।ओत्कूष्माण्डी-तूणीर-कूर्पर-स्थूल-ताम्बूल गुडूची-मूल्ये। १-१२४ ।स्थूणा-तूणे वा। १-१२५ ।ऋतोत्। १-१२६ ।आत्कृशा-मृदुक-मृदुत्वे वा। १-१२७ ।इत्कृपादौ। १-१२८ ।पृष्ठे वानुत्तरपदे। १-१२९ ।मसृण-मृगाङ्क मृत्यु-शृङ्ग-धृष्टे वा। १-१३० ।उदृत्वादौ। १-१३१ ।निवृत्त-वृन्दारके वा। १-१३२ ।वृषभे वा। १-१३३ ।गौणान्त्यस्य। १-१३४ ।मातुरिद्वा। १-१३५ ।उदूदोन्मृषि। १-३६ ।इदुतौ वृष्ट-वृष्टि-पृथङ्-मृदङ्ग-नप्तृके। १-१३७ ।वा बृहस्पतौ। १-१३८ ।इदेदोद्वृन्ते। १-१३९ ।रिः केवलस्य। १-१४० ।ऋणर्ज्वृषभर्त्वृषौ वा। १-१४१ ।दृशः क्विप्-टक्सकः। १-१४२ ।आदृते ढिः। १-१४३ ।अरिर्दृप्ते। १-१४४ ।लृत इलिः क्लृप्तक्लृन्ने। १-१४५। एत इद्वा वेदना-चपेटा-देवर-केसरे। १-१४६ ।ऊः स्तेने वा। १-१४७ ।ऐत एत्। १-१४८ ।इत्सैन्धव-शनैश्चरे। १-१४९ ।सैन्ये वा। १-१५० ।अइर्दैत्यादौ च। १-१५१ ।वैरादौ वा। १-१५२ ।एच्च दैवे। १-१५३ ।उच्चैर्नीचैस्यअः। १-१५४ ।ईद्धैर्ये। १-१५५ ओतोद्वान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य शिरोवेदना-मनोहर-सरोरुहे क्तोश्च वः। १-१५६ ।ऊत्सोच्छ्वासे। १-१५७ ।गव्यउ-आअः। १-१५८ ।औत ओत् ।१-१५९ ।उत्सौन्दर्यादौ। १-१६० ।कौक्षेयके वा। १-१६१ ।अउः पौरादौ च। १-१६२ ।आच्च गौरवे। १-१६३ ।नाव्यावः। १-१६४ ।एत्त्रयोदशादौ स्वरस्य सस्वरव्यञ्जनेन। १-१६५ ।स्थविर-विचकिलायस्कारे ।१-१६६ ।वा कदले। १-१६७ ।वेतः कर्णिकारे। १-१६८ अयौ वैत्। १-१६९ ।ओत्पूतर-बदर-नवमालिका-नवफलिका-पूगफले । १-१७० ।न वा मयूख-लवण-चतुर्गुण चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखलोलूखले। १-१७१ ।अवापोते। १-१७२ ।ऊच्चोपे। १-१७३ ।उमो निषण्णे। १-१७४ ।प्रावरणे अङ्ग्वाऊ। १-१७५ ।स्वरादसंयुक्तस्यानादेः। १-१७६ ।क-ग-च-ज त-द-प-य-वां प्रायो लुक्। १-१७७ ।यमुना-चामुण्डा-कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकश्च। १-१७८ ।नावर्णात्पः। १-७९ ।अवर्णो यश्रुतिः। १-१८० ।कुब्ज-कर्पर-कीले कः खोपुष्पे। १-१८१ ।मरकत-मदकले गः कन्दुके त्वादेः। १-१८२ ।किराते चः। १-१८३ ।शीकरे भ-हौ वा। १-१८४ ।चन्द्रिकायां मः। १-१८५ ।निकष-स्फटिक-चिकुरे हः। १-१८६ । ख-घ-थ-ध-भाम् ।१-१८७। पृथकि धो वा ।१-१८८। शृङ्खले खः कः ।१-१८९। पुन्नाग-भागिन्योर्गो मः ।१-१९०। छागे लः ।१-१९१। ऊत्वे दुर्भग-सुभगे वः ।१-१९२। खचित-पिशाचयोश्चः स-ल्लौ वा ।१-१९३। जटिले जो झो वा ।१-१९४। टो डः ।१-१९५। सटा-शकट-कैटभे ढः ।१-१९६। स्फटिके लः ।१-१९७ चपेटा-पाटौ वा ।१-१९८। ठो ढः ।१-१९९। अङ्कोठे ल्लः ।१-२००। पिठरे हो वा रश्च डः ।१-२०१। डो लः ।१-२०२। वेणौ णो वा ।१-२०३। तुच्छे तश्च-छौ वा ।१-२०४। तगर-त्रसर-तूवरे टः ।१-२०५। प्रत्यादौ डः ।१-२०६। इत्वे वेतसे ।१-२०७। गर्भितातिमुक्तके णः ।१-२०८। रुदिते दिना ण्णः ।१-२०९। सप्ततौ रः ।१-२१०। अतसी-सातवाहने लः ।१-२११। पलिते वा ।१-२१२। पीते वो ले वा ।१-२१३। वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिङ्गे हः ।१-२१४। मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढः ।१-२१५। निशीथ-पृथिव्योर्वा ।१-२१६ दशन-दष्ट-दग्ध दोला-दण्ड-दर-दाह-दम्भ दर्भ-कदन दोहदे दो वा डः ।१-२१७। दंश-दहोः ।१-२१८। संख्या-गद्गदे रः ।१-२१९। कदल्यामद्रुमे ।१-२२०। प्रदीपि-दोहदे लः ।१-२२१। कदम्बे वा ।१-२२२। दीपौ धो वा ।१-२२३। कदर्थिते वः ।१-२२४। ककुदे हः ।१-२२५। निषधे धो ढः ।१-२२६। वौषधे ।१-२२७। नो णः ।१-२२८। वादौ ।१-२२९। निम्ब-नापिते-

ल-ण्हं वा ।१-२३०। पो वः ।१-२३१। पाटि-परुष-परिघ-परिखा-पनस-पारिभद्रे फः ।१-२३२। प्रभूते वः ।१-२३३। नीपापीडे मो वा ।१-२३४। पापर्द्धौ रः ।१-२३५। फो भ-हौ ।१-२३६। बो वः ।१-२३७। बिसिन्यां भः ।१-२३८। कबन्धे म-यौ ।१-२३९। कैटभे भो वः ।१-२४०। विषमे मो ढो वा ।१-२४१। मन्मथे वः ।१-२४२। वाभिमन्यौ ।१-२४३। भ्रमरे सो वा ।१-२४४। आदेर्यो जः ।१-२४५। युष्मद्यर्थपरे तः ।१-२४६। यष्ट्यां लः ।१-२४७। वोत्तरीयानीय-तीय-कृद्ये ज्जः ।१-२४८। छायायां हो कान्तौ वा ।१-२४९। डाह-वौ कतिपये ।१-२५०। किरि-भेरे रो डः ।१-२५१। पर्याणे डा वा ।१-२५२। करवीरे णः ।१-२५३। हरिद्रादौ लः ।१-२५४। स्थूले लो रः ।१-२५५। लाहल-लाङ्गल-लाङ्गूले वादेर्णः ।१-२५६। ललाटे च ।१-२५७। शबरे बो मः ।१-२५८। स्वप्न-नीव्योर्वा ।१-२५९। श-षोः सः ।१-२६०। स्नुषायां ण्हो न वा ।१-२६१। दश-पाषाणे हः ।१-२६२। दिवसे सः ।१-२६३। हो घोनुस्वारात् ।१-२६४। षट्-शमी-शाव-सुधा-सप्तपर्णेष्वादेश्छः ।१-२६५। शिरायां वा ।१-२६६। लुग् भाजन-दनुज-राजकुले जः सस्वरस्य न वा ।१-२६७। व्याकरण-प्राकारागते कगोः ।१-२६८। किसलय-कालायस-हृदये यः ।१-२६९। दुर्गादेव्युदुम्बर-पादपतन-पादपीठन्तर्दः ।१-२७०। यावत्तावज्जीवितावर्तमानावट-प्रावारक-देवकुलैवमेवे वः ।१-२७१।

प्राकृत व्याकरणस्य द्वितीयः पादः

संयुक्तस्य ।२-१। शक्त-मुक्त-दष्ट-रुग्ण-मृदुत्वे को वा ।२-२। क्षः खः क्वचित्तु छ-झौ ।२-३। ष्क-स्कयोर्नाम्नि ।२-४। शुष्क-स्कन्दे वा ।२-५। क्ष्वेटकादौ ।२-६। स्थाणावहरे ।२-७। स्तम्भे स्तो वा ।२-८। थ-ठावस्पन्दे ।२-९। रक्ते गो वा ।२-१०। शुल्के ङ्गो वा ।२-११। कृत्ति-चत्वरे चः ।२-१२। त्योऽचैत्ये ।२-१३। प्रत्यूषे षश्च हो वा ।२-१४। त्व-थ्व-द्व-ध्वां च-छ-ज-झाः क्वचित् ।२-१५। वृश्चिके श्चेञ्चुर्वा ।२-१६। छोऽक्ष्यादौ ।२-१७। क्षमायां कौ ।२-१८। ऋक्षे वा ।२-१९। क्षण उत्सवे ।२-२०। ह्रस्वात् थ्य-श्च-त्स-प्सामनिश्चले ।२-२१। सामर्थ्योत्सुकोत्सवे वा ।२-२२। स्पृहायाम् ।२-२३। द्य-य्य-र्यां जः ।२-२४। अभिमन्यौ ज-ञ्जौ वा ।२-२५। साध्वस-ध्य-ह्यां झः ।२-२६। ध्वजे वा ।२-२७। इन्धौ झा ।२-२८। वृत्त-प्रवृत्त-मृत्तिका-पत्तन-कदर्थिते टः ।२-२९। र्तस्याधूर्तादौ ।२-३०। वृन्ते ण्टः ।२-३१। ठोस्थि-विसंस्थुले ।२-३२। स्त्यान-चतुर्थार्थे वा ।२-३३। ष्टस्यानुष्ट्रेष्टा-संदष्टे ।२-३४। गर्ते डः ।२-३५। संमर्द-वितर्दि-विच्छर्द-च्छर्दि-कपर्द मर्दिते र्दस्य ।२-३६। गर्दभे वा ।२-३७। कन्दरिका-भिन्दिपाले ण्डः ।२-३८। स्तब्धे ठ-ढौ ।२-३९। दग्ध-विदग्ध-वृद्धि-वृद्धे ढः ।२-४०। श्रद्धर्द्धि-मूर्धार्धेन्ते वा ।२-४१। म्नज्ञोर्णः ।२-४२। पञ्चाशत्पञ्चदश-दत्ते ।२-४३। मन्यौ न्तो वा ।२-४४। स्तस्य थो समस्तस्तम्बे ।२-४५। स्तवे वा ।२-४६। पर्यस्ते थ-टौ ।२-४७। वोत्साहे थोहश्च रः ।२-४८। आश्लिष्टे ल-धौ ।२-४९। चिह्ने न्धो वा ।२-५०। भस्मात्मनोः पो वा ।२-५१। ड्म-क्मोः ।२-५२। ष्प-स्पयोः फः ।२-५३। भीष्मे ष्मः ।२-५४। श्लेष्मणि वा ।२-५५। ताम्राम्रे म्बः ।२-५६। ह्वो भो वा ।२-५७। वा विह्वले वौ वश्च ।२-५८। वोर्ध्वे ।२-५९। कश्मीरे म्भो वा ।२-६०। न्मो मः ।२-६१। ग्मो वा ।२-६२। ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य शौण्डीर्ये र्यो रः ।२-६३। धैर्ये वा ।२-६४। एतः पर्यन्ते ।२-६५। आश्चर्ये ।२-६६। अतो रिआर-रिज्ज-रीअं ।२-६७। पर्यस्त-पर्याण-सौकुमार्ये ल्लः ।२-६८। बृहस्पति-वनस्पत्योः सो वा ।२-६९। बाष्पे हो श्रुणि ।२-७०। कार्षापणे ।२-७१। दुःख-दक्षिण-तीर्थे वा ।२-७२। कूष्माण्ड्यां ष्मो लस्तु ण्डो वा ।२-७३। पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः ।२-७४। सूक्ष्म-

श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः ।२-७५। ह्लो ल्हः ।२-७६। क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-≍क-≍पामूर्ध्वं लुक् ।२-७७। अधो म-न-याम् ।२-७८। सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे ।२-७९। द्रे रो न वा ।२-८०। धात्र्याम् ।२-८१। तीक्ष्णे णः ।२-८२। ज्ञो ञः ।२-८३। मध्याह्ने हः ।२-८४। दशार्हे ।२-८५। आदेः श्मश्रु-श्मशाने ।२-८६। श्चो हरिश्चन्द्रे ।२-८७। रात्रौ वा ।२-८८। अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् ।२-८९। द्वितीय-तुर्ययोरुपरि पूर्वः ।२-९०। दीर्घे वा ।२-९१। न दीर्घानुस्वारात् ।२-९२। र-होः ।२-९३। धृष्टद्युम्ने णः ।२-९४। कर्णिकारे वा ।२-९५। दृप्ते ।२-९६। समासे वा ।२-९७। तैलादौ ।२-९८। सेवादौ वा ।२-९९। शार्ङ्गे ङात्पूर्वोत् ।२-१००। क्ष्मा-श्लाघा-रत्नेन्त्यव्यञ्जनात् ।२-१०१। स्नेहाग्न्योर्वा ।२-१०२। प्लक्षे लात् ।२-१०३। र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न-क्रिया-दिष्ट्यास्वित् ।२-१०४। र्श-र्ष-तप्त-वज्रे वा ।२-१०५। लात् ।२-१०६। स्याद्-भव्य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात् ।२-१०७। स्वप्नेनात् ।२-१०८। स्निग्धे वादितौ ।२-१०९। कृष्णे वर्णे वा ।२-११०। उच्चार्हति ।२-१११। पद्म-छद्म-मूर्ख-द्वारे वा ।२-११२। तन्वीतुल्येषु ।२-११३। एकस्वरे श्वः-स्वे ।२-११४। ज्यायामीत् ।२-११५। करेणू-वाराणस्यो र-णोर्व्यत्ययः ।२-११६। आलाने लनोः ।२-११७। अचलपुरे च-लोः ।२-११८। महाराष्ट्रे ह-रोः ।२-११९। ह्रदे ह-दोः ।२-१२०। हरिताले र-लोर्न वा ।२-१२१। लघुके ल-होः ।२-१२२। ललाटे ल-डोः ।२-१२३। ह्ये ह्योः ।२-१२४। स्तोकस्य थोक्क-थोव-थेवाः ।२-१२५। दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-बहिण्यौ ।२-१२६। वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ ।२-१२७। वनिताया विलया ।२-१२८। गौणस्येषत कूरः ।२-१२९। स्त्रिया इत्थी ।२-१३०। धृतेर्दिहिः ।२-१३१। मार्जारस्य मञ्जर-वञ्जरौ ।२-१३२। वैडूर्यस्य वेरुलिअं ।२-१३३। एण्हिं एत्ताहे इदानीमः ।२-१३४। पूर्वस्य पुरिमः ।२-१३५। त्रस्तस्य हित्थ-तट्ठौ ।२-१३६। बृहस्पतौ बहो भयः ।२-१३७। मलिनोभय-शक्ति-छुमारब्ध-पदातेर्म-इलावह-सिप्पि-छिक्काढत्त-पाइक्कं ।२-१३८। दंष्ट्राया दाढा ।२-१३९। बहिसो बाहिं-बाहिरौ ।२-१४०। अधसो हेट्ठं ।२-१४१। मातृ-पितुः स्वसुः सिआ-छौ ।२-१४२। तिर्यचस्तिरिच्छिः ।२-१४३। गृहस्य घरोपतौ ।२-१४४। शीलाद्यर्थस्येरः ।२-१४५। क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः ।२-१४६। इदमर्थस्य केरः ।२-१४७। पर-राजभ्यां क्क-डिक्कौ च ।२-१४८। युष्मदस्मदोञ एच्चयः ।२-१४९। वतेर्व्वः ।२-१५०। सर्वाङ्गादीनस्येकः ।२-१५१। पथो णस्येकट् ।२-१५२। ईयस्यात्मनो णयः ।२-१५३। त्वस्य डिमा-त्तणौ वा ।२-१५४। अनङ्कोठात्तैलस्य डेल्लः ।२-१५५। यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक् च ।२-१५६। इदंकिमश्च डेत्तिअ-डेत्तिल-डेद्दहाः ।२-१५७। कृत्वसो हुत्तं ।२-१५८। आल्विल्लोल्लाल-वन्त-मन्तेत्तेर-मणा मतोः ।२-१५९। त्तो दो तसो वा ।२-१६०। त्रपो हि-ह-त्थाः ।२-१६१। वैकाद्दः सि सिअं इआ ।२-१६२। डिल्ल-डुल्लौ भवे ।२-१६३। स्वार्थे कश्च वा ।२-१६४। ल्लो नवैकाद्वा ।२-१६५। उपरेः संव्याने ।२-१६६। भ्रुवो मया डमया ।२-१६७। शनैसो डिअम् ।२-१६८। मनाको न वा डयं च ।२-१६९। मिश्राड्डालिअः ।२-१७०। रो दीर्घात् ।२-१७१। त्वादेः सः ।२-१७२। विद्युत्पत्र-पीतान्धाल्लः ।२-१७३। गोणादयः ।२-१७४। अव्ययम् ।२-१७५। तं वाक्योपन्यासे ।२-१७६। आम अभ्युपगमे ।२-१७७। णवि वैपरीत्ये ।२-१७८। पुणरुत्तं कृतकरणे ।२-१७९। हन्दि विषाद-विकल्प-पश्चात्ताप-निश्चय-सत्ये ।२-१८०। हन्द च गृहाणार्थे ।२-१८१। मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा ।२-१८२। जेण तेण लक्षणे ।२-१८३। णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे ।२-१८४। बले निर्धारण-निश्चययोः ।२-१८५। किरेर हिर किलार्थे वा ।२-१८६। णवर केवले ।२-१८७। आनन्तर्ये णवरि ।२-१८८। अलाहि निवारणे ।२-१८९। अण णाइं नञर्थे ।२-१९०। माइं मार्थे ।२-१९१। हद्धी निर्वेदे ।२-१९२। वेव्वे भय-वारण-विषादे ।२-१९३। वेव्व च आमन्त्रणे

।२-१९४। मामि हला हले सख्या वा ।२-१९५। दे संमुखीकरणे च ।२-१९६। हुं दान-पृच्छा-निवारणे ।२-१९७। हु खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये ।२-१९८। ऊ गर्हाक्षेप-विस्मय-सूचने ।२-१९९। थू कुत्सायाम् ।२-२००। रे अरे संभाषण-रतिकलहे ।२-२०१। हरे क्षेपे च ।२-२०२। ओ सूचना-पश्चात्तापे ।२-२०३। अव्वो सूचना-दुःख-संभाषणापराध-विस्मयानन्दादर-भय-खेद-विषाद-पश्चात्तापे ।२-२०४। अइ संभावने ।२-२०५। वणे निश्चय-विकल्पानुकम्प्ये च ।२-२०६। मणे विमर्शे ।२-२०७। अम्मो आश्चर्ये ।२-२०८। स्वयमोर्थे अप्पणो न वा ।२-२०९। प्रत्येकमः पाडिक्कं पाडिएक्कं ।२-२१०। उअ पश्य ।२-२११। इहरा इतरथा ।२-२१२। एक्कसरिअं झगिति संप्रति २-२१३। मोरउल्ला मुधा ।२-२१४। दराधाल्पे ।२-२१५। किणो प्रश्ने ।२-२१६। इ-जे-राः पादपूरणे ।२-२१७। प्यादयः ।२-२१८।

प्राकृत व्याकरणस्य तृतीयः पादः

वीप्स्यात्स्यादेर्वीप्स्ये स्वरे मो वा ।३-१। अतः सेर्डोः ।३-२। वैतत्तदः ।३-३। जस्-शसोर्लुक् ।३-४। अमोस्य ।३-५। टा-आमोर्णः ।३-६। भिसो हि हिँ हिं ।३-७। ङसेस् त्तो-दो-दु-हि-हिन्तो-लुकः ।३-८। भ्यसस् त्तो दो दु हि हिन्तो सुन्तो ।३-९। ङसः स्सः ।३-१०। डे म्मि ङेः ।३-११। जस्-शस्-ङसि-त्तो-दो-द्वामि दीर्घः ।३-१२। भ्यसि वा ।३-१३। टाण-शस्येत् ।३-१४। भिस्भ्यस्सुपि ।३-१५। इदुतो दीर्घः ।३-१६। चतुरो वा ।३-१७। लुप्ते शसि ।३-१८। अक्लीबे सौ ।३-१९। पुंसि-जसो डउ डओ वा ।३-२०। वोतो डवो ।३-२१। जस् शसोर्णो वा ।३-२२। ङसि-ङसोः पुं-क्लीबे वा ।३-२३। टो णा ।३-२४। क्लीबे स्वरान्म् सेः ।३-२५। जस्-शस् इँ-इं-णयः सप्राग्दीर्घाः ।३-२६। स्त्रियामुदोतौ वा ।३-२७। ईतः सेश्चा वा ।३-२८। टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः ।३-२९। नात आत् ।३-३०। प्रत्यये ङीर्न वा ।३-३१ अजातेः पुंसः ।३-३२। किं यत्तदोस्यमामि ।३-३३। छाया-हरिद्रयोः ।३-३४। स्वस्रादेर्डा ।३-३५। ह्रस्वोमि ।३-३६। नामन्त्र्यात्सौ मः ।३-३७। डो दीर्घो वा ।३-३८। ऋतोद्वा ।३-३९। नाम्न्यरं वा ।३-४०। वाप ए ।३-४१। ईदूतोर्ह्रस्वः ।३-४२। क्विपः ।३-४३। ऋतामुदस्यमौसु वा ।३-४४। आरः स्यादौ ।३-४५। आ अरा मातुः ।३-४६। नाम्न्यरः ।३-४७। आ सौ न वा ।३-४८। राज्ञः ।३-४९। जस्-शस्-ङसि-ङसां णो ।३-५०। टो णा ।३-५१। इर्जस्य णो-णा-ङौ ।३-५२। इणममामा ।३-५३। ईद्भिस्भ्यसाम्सुपि ।३-५४। आजस्यटा-ङसि-ङस्सु सणाणोष्वण् ।३-५५। पुंस्यन आणो राजवच्च ।३-५६। आत्मनष्टो णिआ णइआ ।३-५७। अतः सर्वादेर्डेर्जसः ।३-५८। ङेः स्सि म्मि-त्थाः ।३-५९। न वानिदमेतदो हिं ।३-६०। आमो डेसिं ।३-६१। किंतद्भ्यां डासः ।३-६२। किंयत्तद्भ्यो ङसः ।३-६३। ईद्भ्यः स्सा से ।३-६४। ङेर्डाहे डाला इआ काले ।३-६५। ङसेर्म्हा ।३-६६। तदो डोः ।३-६७। किमो डिणो-डीसौ ।३-६८। इदमेतत्कि-यत्तद्भ्यष्टो डिणा ।३-६९। तदो णः स्यादौ क्वचित् ।३-७०। किमः कस्त्रतसोश्च ।३-७१। इदम इमः ।३-७२। पुं-स्त्रियोर्न वायमिमिआ सौ ।३-७३। स्सिस्सयोरत् ।३-७४। ङेर्मेन हः ।३-७५। न त्थः ।३-७६। णोम्-शस्टा-भिसि ।३-७७। अमेणम् ।३-७८। क्लीबे स्यमेदमिणमो च ।३-७९। किमः किं ।३-८०। वेदं तदेतदो ङसाम्भ्यां से-सिमौ ।३-८१। वैतदो ङसेस्तो त्ताहे ।३-८२। त्थे च तस्य लुक् ।३-८३। एरदीतौ म्मौ वा ।३-८४। वैसेणमिणमो सिना ।३-८५। तदश्च तः सोक्लीबे ।३-८६। वादसो दस्य होनोदाम ।३-८७। मुः स्यादौ ।३-८८। म्मावयेऔ वा ।३-८९। युष्मदस्तं तुं

तुवं तुह तुमं सिना ।३-९०। भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह तुय्हे उय्हे-जसा ।३-९१। तं तुं तुमं तुवं तुह तुमे तुए अमा ।३-९२। वो तुज्झ तुब्भे तुय्हे उय्हे भे शसा ।३-९३। भे दि दे ते तइ तए तुमं तुमइ तुमए तुमे तुमाइ टा ।३-९४। भे तुब्भेहिं उज्झेहिं उम्हेहिं तुय्हेहिं उय्हेहिं भिसा ।३-९५। तइ-तुव-तुम-तुह-तुब्भा ङसौ ।३-९६। तुय्ह तुब्भ तहिन्तो ङसिना ।३-९७। तुब्भ-तुय्होय्होम्हा भ्यसि ।३-९८। तइ-तु-ते-तुम्हं-तुह-तुहं-तुव-तुम-तुमे-तुमो-तुमाइ-दि-दे-इ-ए-तुब्भोब्भोय्हा ङसा ।३-९९। तु वो भे तुब्भ तुब्भं तुब्भाण तुवाण तुमाण तुहाण उम्हाण आमा ।३-१००। तुमे तुमए तुमाइ तइ तए ङिना ।३-१०१। तु-तुव-तुम-तुह-तुब्भा ङौ ।३-१०२। सुपि ।३-१०३। ब्भो म्ह-ज्झौ वा ।३-१०४ अस्मदो म्मि अम्मि अम्हि हं अहं अहयं सिना ।३-१०५। अम्ह अम्हे अम्हो मो वयं भे जसा ।३-१०६। णे णं मि अम्मि अम्ह मम्ह मं ममं मिमं अहं अमा ।३-१०७। अम्हे अम्हो अम्ह णे शसा ।३-१०८। मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे टा ।३-१०९। अम्हेहि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे भिसा ।३-११०। मइ-मम-मह-मज्झा ङसौ ।३-१११। ममाम्हौ भ्यसि ।३-११२। मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं ङसा ।३-११३। णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे-अम्हो अम्हाण ममाण महाण मज्झाण आमा ।३-११४। मि मइ ममाइ मए मे ङिना ।३-११५। अम्ह-मम-मह-मज्झा ङौ ।३-११६। सुपि ।३-११७। त्रेस्ती तृतीयादौ ।३-११८। द्वेर्दो वे ।३-११९। दुवे दोण्णि वेण्णि च जस्-शसा ।३-१२०। त्रेस्तिण्णिः ।३-१२१। चतुरश्चत्तारो चउरो चत्तारि ।३-१२२। संख्याया आमो ण्ह ण्हं ।३-१२३। शेषेऽदन्तवत् ।३-१२४। न दीर्घो णो ।३-१२५। ङसेर्लुक् ।३-१२६। भ्यसश्च हिः ।३-१२७। ङेर्डे: ।३-१२८। एत् ।३-१२९। द्विवचनस्य बहुवचनम् ।३-१३०। चतुर्थ्याः षष्ठी ।३-१३१। तादर्थ्यङेर्वा ।३-१३२। वधाड्डाइश्च वा ।३-१३३। क्वचिद् द्वितीयादेः ।३-१३४। द्वितीया-तृतीययोः सप्तमी ।३-१३५। पञ्चम्यास्तृतीया च ।३-१३६। सप्तम्या द्वितीया ।३-१३७। क्यङोर्यलुक् ।३-१३८। त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ ।३-१३९। द्वितीयस्य सि से ।३-१४०। तृतीयस्य मिः ।३-१४१। बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे ।३-१४२। मध्यमस्येत्था-हचौ ।३-१४३। तृतीयस्य मो-मु-माः ।३-१४४। अत एवैच् से ।३-१४५। सिनास्तेः सिः ।३-१४६। मि-मो-मैर्म्हि-म्हो-म्हा वा ।३-१४७। अत्थिस्त्यादिना ।३-१४८। णेरदेदावावे ।३-१४९। गुर्वादेरविर्वा ।३-१५०। भ्रमेराडो वा ।३-१५१। लुगावी क्त-भाव-कर्मसु ।३-१५२। अदेल्लुक्यादेरत आः ।३-१५३। मौ वा ।३-१५४। इच्च मो-मु-मे वा ।३-१५५। क्ते ।३-१५६। एच्च क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु ।३-१५७। वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु वा ।३-१५८। ज्जा-ज्जे ।३-१५९। ईअ-इज्जौ क्यस्य ।३-१६०। दृशि-वचेर्डीस-डुच्चं ।३-१६१। सी ही हीअ भूतार्थस्य ३-१६२। व्यञ्जनादीअः ।३-१६३। तेनास्तेरास्यहेसी ।३-१६४। ज्जात्सप्तम्या इर्वा ।३-१६५। भविष्यति हिरादिः ।३-१६६। मि-मो-मु-मे स्सा हा न वा ।३-१६७। मो-मु-मानां हिस्सा हित्था ।३-१६८। मेः स्सं ।३-१६९। कृदो हं ।३-१७०। श्रु-गमि-रुदि-विदि-दृशि-मुचि-वचि-छिदि-भिदि-भुजां सोच्छं गच्छं रोच्छं वेच्छं दच्छं मोच्छं वोच्छं छेच्छं भेच्छं भोच्छं ।३-१७१। सोच्छादय इजादिषु हिलुक् च वा ।३-१७२। दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिंस्त्रयाणाम् ।३-१७३। सोर्हिर्वा ।३-१७४। अत इज्जस्विज्जहीज्जे-लुको वा ।३-१७५। बहुषु न्तु ह मो ।३-१७६। वर्तमाना-भविष्यन्त्योश्च ज्ज ज्जा वा ।३-१७७। मध्ये च स्वरान्ताद्वा ।३-१७८। क्रियातिपत्तेः ।३-१७९। न्त माणौ ।३-१८०। शत्रानशः ।३-१८१। ई च स्त्रियाम् ।३-१८२।

प्राकृत व्याकरणस्य चतुर्थः पादः

इदितो वा ।४-१। कथेर्वज्जर-पज्जरोप्पाल-पिसुण-संघ-बोल्ल-चव-जम्प-सीस-साहाः ।४-२। दुःखे णिव्वरः ।४-३। जुगुप्सेर्झुण-दुगुच्छ-दुगुञ्छाः ।४-४। बुभुक्षि-वीज्योर्णीरव-वोज्जौ ।४-५। ध्या-गोर्झा-गौ ।४-६। ज्ञो जाण-मुणौ ।४-७। उदो ध्मो धुमा ।४-८। श्रदो धो दहः ।४-९। पिबेः पिज्ज-डल्ल-पट्ट-घोट्टाः ।४-१०। उद्वातेरोरुम्मा वसुआ ।४-११। निद्रातेरोहीरोङ्घौ ।४-१२। आघ्रेराइग्घः ।४-१३। स्नातेरब्भुत्तः ।४-१४। समः स्त्यः खाः ।४-१५। स्थष्ठा-थक्क-चिट्ठ-निरप्पाः ।४-१६। उदष्ठ-कुक्कुरौ ।४-१७। म्लेर्वा-पव्वायौ ।४-१८। निर्मो निम्माण-निम्मवौ ।४-१९। क्षेर्णिज्झरो वा ।४-२०। छदेर्णेर्णुम-नूम-सन्नुम-ढक्कौम्वाल-पव्वालाः ।४-२१। निविपत्योर्णिहोडः ।४-२२। दूङो दूमः ।४-२३। धवलेर्दुमः ।४-२४। तुलेरोहामः ।४-२५। विरिचेरोलुण्डोल्लुण्ड-पल्हत्थाः ।४-२६। तडेराहोड-विहोडौ ।४-२७। मिश्रेर्वीसाल-मेलवौ ।४-२८। उद्धूलेर्गुण्ठः ।४-२९। भ्रमेस्तालिअण्ट-तमाडौ ।४-३०। नशेर्विउड-नासव-हारव-विप्पगाल-पलावाः ।४-३१। दृशेर्दाव-दंस-दक्खवाः ।४-३२। उद्घटेरुग्गः ।४-३३। स्पृहः सिहः ।४-३४। संभावेरासंघः ।४-३५। उन्नमेरुत्थंघोल्लाल-गुलुगुञ्छोप्पेलाः ।४-३६। प्रस्थापेः पट्ठव-पेण्डवौ ।४-३७। विज्ञपेर्वोक्कावुक्कौ ।४-३८। अर्पेरल्लिव-चच्चुप्प-पणामाः ।४-३९। यापेर्जवः ।४-४०। प्लावेरोम्वाल-पव्वालौ ।४-४१। विकोशेः पक्खोडः ।४-४२। रोमन्थेरोग्गाल-वग्गोलौ ।४-४३। कमेर्णिहुवः ।४-४४। प्रकाशेर्णुव्वः ।४-४५। कम्पेर्विच्छोलः ।४-४६। आरोपेर्वलः ।४-४७। दोले रङ्खोलः ।४-४८। रञ्जे रावः ।४-४९। घटेः परिवाडः ।४-५०। वेष्टेः परिआलः ।४-५१। क्रियः किणो वेस्तु क्के च ।४-५२। भियो भा-बीहौ ।४-५३। आलीङोल्ली ।४-५४। निलीङेर्णिलीअ-णिलुक्क-णिरिग्घ-लुक्क-लिक्क-ल्हिक्काः ।४-५५। विलीङेर्विरा ।४-५७। रुतेरुञ्जरुण्टौ ।४-५८। धूगेर्धुवः ।४-५९। भुवेर्हो-हुव-हवाः ।४-६०। अविति हुः ।४-६१। पृथक्-स्पष्टे णिव्वडः ।४-६२। प्रभौ हुप्पो वा ।४-६३। क्ते हूः ।४-६४। कृगेः कुणः ।४-६५। काणेक्षिते णिआरः ।४-६६। निष्टम्भावष्टम्भे णिट्ठुह-संदाणं ।४-६७। श्रमे वावम्फः ।४-६८। मन्युनौष्ठमालिन्ये णिव्वोलः ।४-६९। शैथिल्य-लम्बने पयल्लः ।४-७०। निष्पाताच्छोटे णीलुञ्छः ।४-७१। क्षुरे कम्मः ।४-७२। चाटौ गुललः ।४-७३। स्मरेर्झर-झूर-भर-भल-लढ-विम्हर-सुमर-पयर-पम्हुहाः ।४-७४। विस्मुः पम्हुस-विम्हर-वीसराः ।४-७५। व्याहृगेः कोक्क-पोक्कौ ।४-७६। प्रसरेः पयल्लोवेल्लौ ।४-७७। महमहो गन्धे ।४-७८। निस्सरेर्णीहर-नील-धाड-वरहाडाः ।४-७९। जाग्रेर्जग्गः ।४-८०। व्याप्रेराअड्डः ।४-८१। संवृगेः साहर-साहट्टौ ।४-८२। आदृङेः सन्नामः ।४-८३। प्रहगेः सारः ।४-८४। अवतरेरोह-ओरसौ ।४-८५। शकेश्चय-तर-तीर-पाराः ।४-८६। फक्कस्थक्कः ।४-८७। श्लाघः सलहः ।४-८८। खचेर्वेअडः ।४-८९। पचेः सोल्ल-पउलौ ।४-९०। मुचेश्छड्डावहेड-मेल्लोस्सिक्क-रेअव-णिल्लुञ्छ-धंसाडाः ।४-९१। दुःखे णिव्वलः ।४-९२। वञ्चेर्वेहव-वेलव-जूरवोमच्छाः ।४-९३। रचेरुग्गहावह-विडविड्डाः ।४-९४। समारचेरुवहत्थ-सारव-समार-केलायाः ।४-९५। सिचेः सिञ्च-सिम्पौ ।४-९६। प्रच्छः पुच्छः ।४-९७। गर्जेर्बुक्कः ।४-९८। वृषे ढिक्कः ।४-९९। राजेरग्घ-छज्ज-सह-रीर-रेहाः ।४-१००। मस्जेराउड्ड-णिउड्ड-बुड्ड-खुप्पाः ।४-१०१। पुञ्जेरारोल-वमालौ ।४-१०२। लस्जेर्जीहः ।४-१०३। तिजेरोसुक्कः ।४-१०४। मृजेरुग्घुस-लुञ्छ-पुञ्छ-पुंस-फुस-पुस-लुह-हुल-रोसाणाः ।४-१०५। भञ्जेर्वेमय-मुसुमूर-मूर-सूर-सूड-विर-पविरञ्ज-करञ्ज-नीरञ्जाः ।४-१०६। अनुव्रजेः पडिअग्गः ।४-१०७। अर्जेर्विढवः ।४-१०८। युजो

जुगुप्सेर्झुण-दुगुच्छ-दुगुञ्छाः ।४-४। जुरो झुरव-जुप्पा: ।४-१०९। भुजो भुञ्ज-जिम-जेम-कम्माण्ह-चमढ-समाण-चड्डाः ।४-११०। वोपेन कम्मवः ।४-१११। घटेर्गढः ।४-११२। समो गलः ।४-११३। हासेन स्फुटेर्मुरः ।४-११४। मण्डेश्चिञ्च-चिञ्चअ-चिञ्चिल्ल-रीड टिविडिक्काः ।४-११५। तुडेस्तोड-तुट्ट-खुट्ट-खुडोक्खुडो-ल्लुक्क-णिलुक्क-लुक्कोल्लूराः ।४-११६। घूर्णो घुल-घोल-घुम्म-पहल्लाः ।४-११७। विवृतेर्ढंसः ।४-११८। क्वथेरट्टः ।४-११९। ग्रन्थेर्गण्ठः ।४-१२०। मन्थेर्घुसल-विरोलौ ।४-१२१। ह्लादेरवअच्छः ।४-१२२। नेः सदो मज्जः ।४-१२३। छिदेर्दुहाव-णिच्छल्ल-णिज्झोड-णिव्वर-णिल्लूर-लूराः ।४-१२४। आङा ओअन्दोद्दालौ ।४-१२५। मृदो मल-मढ-परिहट्ट-खड्ड-चड्ड-मड्ड-पन्नाडाः ।४-१२६। स्पन्देश्चुलुचुलः ।४-१२७। निरः पदेर्वलः ।४-१२८। विसंवदेर्विअट्ट-विलोट्ट-फंसाः ।४-१२९। शदो झड-पक्खोडौ ।४-१३०। आक्रन्देर्णीहरः ।४-१३१। खिदेर्जूर-विसूरौ ।४-१३२। रुधेरुत्थङ्घः ।४-१३३। निषेधेर्हक्कः ।४-१३४। क्रुधेर्जूरः ।४-१३५। जनो जा जम्मौ ।४-१३६। तनेस्तड-तड्ड-तड्डव-विरल्लाः ।४-१३७। तृपस्थिप्पः ।४-१३८। उपसर्पेरल्लिअः ।४-१३९। संतपेर्झङ्खः ।४-१४०। व्यापेरोअग्गः ।४-१४१। समापेः समाणः ।४-१४२। क्षिपेर्गलत्थाड्डक्ख-सोल्ल-पेल्ल-णोल्ल-छुह-हुल-परी घत्ताः ।४-१४३। उत्क्षिपेर्गुलगुञ्छोत्थंघाल्लत्थोब्भुत्तोस्सिक्क-हक्खुवाः ।४-१४४। आक्षिपेर्णीरवः ।४-१४५। स्वपेः कमवस-लिस-लोट्टाः ।४-१४६। वेपेरायम्बायज्झौ ।४-१४७। विलपेर्झङ्ख-वडवडौ ।४-१४८। लिपो लिम्पः ४-१४९। गुप्येर्विर-णडौ ।४-१५०। क्रपो वहो णिः ।४-१५१। प्रदीपेस्तेअव-सन्दुम-सन्धुक्काब्भुत्ताः ।४-१५२। लुभेः संभावः ।४-१५३। क्षुभेः खउर-पड्डुहौ ।४-१५४। आङो रभे रम्भ-ढवौ ।४-१५५। उपालम्भेर्झङ्ख-पच्चार-वेलवाः ।४-१५६। अवेर्जृम्भो जम्भा ।४-१५७। भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढः ।४-१५८। विश्रमेर्णिव्वा ।४-१५९। आक्रमेरोहावोत्थारच्छुन्दाः ।४-१६०। भ्रमेष्टिरिटिल्ल-ढुण्ढुल्ल-ढण्ढल्ल-चक्कम्म-भम्मड-भमड-भमाड-तलअण्ट-झण्ट-झम्प-भुम-गुम-फुम-फुस-ढुम-ढुस-परी-पराः ।४-१६१। गमेरई-अइच्छाणुवज्जावज्जसोक्कुसाक्कुस-पच्चड्ड-पच्छन्द-णिम्मह-णी-णीण-णीलुक्क-पदअ-रम्भ-परिअल्ल-वोल-परिअल-णिरिणास-णिवहावसेहावहराः ।४-१६२। आङा अहिपच्चुअः ।४-१६३। समा अब्भिडः ।४-१६४। अभ्याङोम्मत्थः ।४-१६५। प्रत्याङा पलोट्टः ।४-१६६। शमेः पडिसा-परिसामौ ।४-१६७। रमेः संखुड्ड-खेड्डोब्भाव-किलिकिञ्च-कोट्टुम-मोट्टाय-णीसर-वेल्लाः ।४-१६८। पूरेरग्घाडाग्घवोद्धुमाङ्गुमाहिरेमाः ४-१६९। त्वरस्तुवर-जअडौ ।४-१७०। त्यादिशत्रोस्तूरः ।४-१७१। तुरोत्यादौ ।४-१७२। क्षरः खिर-झर-पज्झर-पच्चड-णिच्चल-णिट्टुआः ।४-१७३। उच्छल उत्थल्लः ।४-१७४। विगलेस्थिप्प-णिट्टुहौ ।४-१७५। दलि-वल्योर्विसट्ट-वम्फौ ।४-१७६। भ्रंशेः फिड-फिट्ट-फुड-फुट्ट-चुक्क-भुल्लाः ।४-१७७। नशेर्णिरणास-णिवहावसेह-पडिसा-सेहावहराः ।४-१७८। अवात्काशो वासः ।४-१७९। संदिशेरप्पाहः ।४-१८०। दृशो निअच्छ-पेच्छा-वयच्छावयज्झ — वज्ज — सव्वव — देक्खो — अक्खावक्खावअक्ख — पुलोअ — पुलअ — निआवआस-पासाः ।४-१८१। स्पृशः फास—फंस—फरिस—छिव—छिहालुङ्खालिहाः ।४-१८२। प्रविशे रिअः ।४-१८३। प्रान्मृश-मुषोर्म्हुसः ।४-१८४। पिषेर्णिवह-णिरिणास-णिरिणज्ज-रोञ्च-चड्डाः ।४-१८५। भषेर्भुक्कः ।४-१८६। कृषेः कड्ढ-साअड्ढाञ्चाणच्छायञ्छाइञ्छाः ।४-१८७। असावक्खोडः ४-१८८। गवेषेर्ढुण्ढुल्ल-ढण्ढोल-गमेस-घत्ताः ।४-१८९। श्लिषेः सामग्गावयास-परिअन्ताः ।४-१९०। म्रक्षेश्चोप्पडः ।४-१९१। काङ्क्षे राहाहिलङ्घाहिलङ्ख-वच्च-वम्फ-मह-सिह-विलुम्पाः ।४-१९२। प्रतीक्षेः सामय-विहीर-विरमालाः ।४-१९३। तक्षेस्तच्छ-चच्छ-रम्प-रम्फाः ४-१९४। विकसेः कोआस-वोसट्टौ ।४-१९५। हसेर्गुञ्जः

।४-१९६। स्रंसेल्हस-डिम्भौ ।४-१९७। त्रसेर्डर-बोज्ज-वज्जाः ।४-१९८। न्यसो णिम-णुमौ ।४-१९९। पर्यसः पलोट्ट-पल्लट्ट-पल्हत्थाः ।४-२००। निःश्वसेर्झङ्खः ।४-२०१। उल्लसेरूसलोसुम्भ-णिल्लस-पुलआअ-गुञ्जोल्लारोआः ।४-२०२। भासेर्भिसः ।४-२०३। ग्रसेर्घिसः ।४-२०४। अवाद्गाहेर्वाहः ।४-२०५। आरुहेश्चड-वलग्गौ ।४-२०६। मुहेर्गुम्म-गुम्मडौ ।४-२०७। दहेरहिऊलालुङ्खौ ।४-२०८। ग्रहो वल-गेण्ह-हर-पङ्ग-निरुवाराहिपच्चुआः ।४-२०९। क्त्वा-तुम्-तव्येषु घेत् ।४-२१०। वचो वोत् ।४-२११। रुद-भुज-मुचां तोन्त्यस्य ।४-२१२। दृशस्तेन ट्ठः ।४-२१३। आः कृगो भूत-भविष्यतोश्च ।४-२१४। गमिष्यमासां छः ।४-२१५। छिदि-भिदो न्दः ।४-२१६। युध-बुध-गृध-क्रुध-सिध-मुहां ज्झः ।४-२१७। रुधो न्ध-म्भौ च ।४-२१८। सद-पतोर्डः ।४-२१९। क्वथ-वर्धां ढः ।४-२२०। वेष्टः ।४-२२१। समो ल्लः ।४-२२२। वोदः ।४-२२३। स्विदां ज्जः ।४-२२४। व्रज-नृत-मदां च्चः ।४-२२५। रुद-नमोर्वः ।४-२२६। उद्विजः ।४-२२७। खाद-धावोर्लुक् ।४-२२८। सृजो रः ।४-२२९। शकादीनां द्वित्वम् ।४-२३०। स्फुटि-चलेः ।४-२३१। प्रादेर्मीलेः ।४-२३२। उवर्णस्यावः ।४-२३३। ऋवर्णस्यारः ।४-२३४। वृषादीनामरिः ।४-२३५। रुषादीनां दीर्घः ।४-२३६। युवर्णस्य गुणः ।४-२३७। स्वराणां स्वराः ।४-२३८। व्यञ्जनाददन्ते ।४-२३९। स्वरादनतो वा ।४-२४०। चि-जि-श्रु-हु-स्तु-लू-पू-धूगां णो ह्रस्वश्च ।४-२४१। नवा कर्म-भावे व्वः क्यस्य च लुक् ।४-२४२। म्मश्चेः ।४-२४३। हन्खनोन्त्यस्य ।४-२४४। ब्भो दुह-लिह-वह-रुधामुच्चातः ।४-२४५। दहो ज्झः ।४-२४६। बन्धो न्धः ।४-२४७। समनूपाद्रुधेः ।४-२४८। गमादीनां द्वित्वम् ।४-२४९। ह्र-कृ-तॄ-ज्रामीरः ।४-२५०। अर्जेर्विढप्पः ।४-२५१। ज्ञो णव्व-णज्जौ ।४-२५२। व्याहृगेर्वाहिप्पः ।४-२५३। आरभेराढप्पः ।४-२५४। स्निह-सिचोः सिप्पः ।४-२५५। ग्रहेर्घेप्पः ।४-२५६। स्पृशेश्छिप्पः ।४-२५७। क्तेनाप्फुण्णादयः ।४-२५८। धातवोर्थान्तरेपि ।४-२५९। तो दोनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य ।४-२६०। अधः क्वचित् ।४-२६१। वादेस्तावति ।४-२६२। आ आमन्त्र्ये सौ वेनो नः ।४-२६३। मो वा ।४-२६४। भवद्भगवतोः ।४-२६५। न वा र्यो य्यः ।४-२६६। थो धः ।४-२६७। इह-हचोर्हस्य ।४-२६८। भुवो भः ।४-२६९। पूर्वस्य पुरवः ।४-२७०। क्त्व इय-दूणौ ।४-२७१। कृ-गमो डडुअः ।४-२७२। दिरिचेचोः ।४-२७३। अतो देश्च ।४-२७४। भविष्यति स्सिः ।४-२७५। अतो ङसेर्डादो-डादू ।४-२७६। इदानीमो दाणिं ।४-२७७। तस्मात्ताः ।४-२७८। मोन्त्याण्णो वेदेतोः ।४-२७९। एवार्थे य्येव ।४-२८०। हञ्जे चेट्याह्वाने ।४-२८१। हीमाणहे विस्मय निर्वेदे ।४-२८२। णं नन्वर्थे ।४-२८३। अम्महे हर्षे ।४-२८४। हीही विदूषकस्य ।४-२८५। शेषं प्राकृतवत् ।४-२८६। अत एत्सौ पुंसि मागध्याम् ।४-२८७। र-सोर्ल-शौ ।४-२८८। स-षोः संयोगे सोग्रीष्मे ।४-२८९। ट्ट-ष्ठयोस्टः ।४-२९०। स्थ-र्थयोस्तः ।४-२९१। ज-द्य-यां यः ।४-२९२। न्य-ण्य-ज्ञ-ञ्जां ञ्ञः ।४-२९३। व्रजो जः ।४-२९४। छस्य श्चोनादौ ।४-२९५। क्षस्य ᳵकः ।४-२९६। स्कः प्रेक्षा-चक्षोः ।४-२९७। तिष्ठश्चिष्ठः ।४-२९८। अवर्णाद्वा ङसो डाहः ।४-२९९। आमो डाहँ वा ।४-३००। अहं वयमोर्हगे ।४-३०१। शेषं शौरसेनीवत् ।४-३०२। ज्ञो ञ्ञः पैशाच्याम् ।४-३०३। राज्ञो वा चिञ् ।४-३०४। न्य-ण्योर्ञ्ञः ।४-३०५। णो नः ।४-३०६। तदोस्तः ।४-३०७। लो ळः ।४-३०८। श-षोः सः ।४-३०९। हृदये यस्य पः ।४-३१०। टोस्तुर्वा ।४-३११। क्त्वस्तूनः ।४-३१२। द्धून-त्थूनौ ष्ट्वः ।४-३१३। र्य-स्न-ष्टां रिय-सिन-सटाः क्वचित् ।४-३१४। क्यस्येय्यः ।४-३१५। कृगो डीरः ।४-३१६। यादृशादेर्दुस्तिः ।४-३१७। इचेचः ।४-३१८। आत्तेश्च ।४-३१९। भविष्यत्येय्य एव ।४-३२०। अतो ङसेर्डातो-डातू ।४-३२१। तदिदमोष्टा नेन स्त्रियां तु नाए ।४-३२२। शेषं शौरसेनीवत् ।४-३२३। न क-ग-च-जादि-षट्शम्यन्त-सूत्रोक्तम् ।४-३२४। चूलिका-पैशाचिके तृतीय-तुर्ययोराद्य-

द्वितीयौ ।४-३२५। रस्य लो वा ।४-३२६। नादि-युज्योरन्येषाम् ।४-३२७। शेषं प्राग्वत् ।४-३२८। स्वराणां स्वराः प्रायोपभ्रंशे ।४-३२९। स्यादौ दीर्घ-ह्रस्वौ ।४-३३०। स्यमोरस्योत् ।४-३३१। सौ पुंस्योद्वा ।४-३३२। एट्टि ।४-३३३। ङिनेच्च ।४-३३४। भिस्येद्वा ।४-३३५। ङसेर्हे-हू ।४-३३६। भ्यसो हुं ।४-३३७। ङसः सु-हो-स्सवः ।४-३३८। आमो हं ।४-३३९। हुं चेदुद्भ्याम् ।४-३४०। ङसि-भ्यस्ङीनां हे-हुं-हयः ।४-३४१। आट्टो णानुस्वारौ ।४-३४२। एं चेदुतः ।४-३४३। स्यम्-जस्-शसां लुक् ।४-३४४। षष्ठ्याः ।४-३४५। आमन्त्र्ये जसो होः ।४-३४६। भिस्सुपोर्हिं ।४-३४७। स्त्रियां जस्-शसोरुदोत् ।४-३४८। ट ए ।४-३४९। ङस्-ङस्योर्हे ।४-३५०। भ्यसामोर्हुः ।४-३५१। ङेर्हि ।४-३५२। क्लीबे जस्-शसोरिं ।४-३५३। कान्तस्यात उं स्यमोः ।४-३५४। सर्वादेर्ङसेर्हां ।४-३५५। किमो डिहे वा ।४-३५६। ङेर्हिं ।४-३५७। यत्तत्किंभ्यो ङसो डासुर्न वा ।४-३५८। स्त्रियां डहे ।४-३५९। यत्तदः स्यमोर्ध्रं त्रं ।४-३६०। इदम इमुः क्लीबे ।४-३६१। एतदः स्त्री-पुं-क्लीबे एह एहो एहु ।४-३६२। एइर्जस्-शसोः ।४-३६३। अदस ओइ ।४-३६४। इदम आयः ।४-३६५। सर्वस्य साहो वा ।४-३६६। किमः काइं-कवणौ वा ।४-३६७। युष्मदः सौ तुहुं ।४-३६८। जस्-शसोस्तुम्हे तुम्हइं ।४-३६९। टा-ङ्यमा पइं तइं ।४-३७०। भिसा तुम्हेहिं ।४-३७१। ङसि-ङस्भ्यां तउ तुज्झ तुध्र ।४-३७२। भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं ।४-३७३। तुम्हासु सुपा ।४-३७४। सावस्मदो हउं ।४-३७५। जस्-शसोरम्हे अम्हइं ।४-३७६। टा-ङ्यमा मइं ।४-३७७। अम्हेहिं भिसा ।४-३७८। महु मज्झु ङसि-ङस्भ्याम् ।४-३७९। अम्हहं भ्यसाम्भ्याम् ।४-३८०। सुपा अम्हासु ।४-३८१। त्यादेराद्य-त्रयस्य संबन्धिनो हिं न वा ।४-३८२। मध्य-त्रयस्याद्यस्य हिः ।४-३८३। बहुत्वे हुः ।४-३८४। अन्त्य-त्रयस्याद्यस्य उं ।४-३८५। बहुत्वे हुं ।४-३८६। हि-स्वयोरिदुदेत् ।४-३८७। वर्त्स्यति-स्यस्य सः ।४-३८८। क्रियेः कीसु ।४-३८९। भुवः पर्याप्तौ हुच्चः ।४-३९०। ब्रूगो ब्रुवो वा ।४-३९१। व्रजेर्वुञः ।४-३९२। दृशेः प्रस्सः ।४-३९३। ग्रहेर्गृण्हः ।४-३९४। तक्ष्यादीनां छोल्लादयः ।४-३९५। अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां-ग-घ-द-ध-ब-भाः ।४-३९६। मोनुनासिको वो वा ।४-३९७। वाधो रो लुक् ।४-३९८। अभूतोपि क्वचित् ।४-३९९। आपद्विपत्संपदां द इः ।४-४००। कथं-यथा-तथां-थादेरेमेमेहेधा डितः ।४-४०१। यादृक्तादृक्कीदृगीदृशां दादेर्डेहः ।४-४०२। अतां डइसः ।४-४०३। यत्र-तत्र-योस्त्रस्य डिदेत्थवत्तु ।४-४०४। एत्थुकुत्रात्रे ।४-४०५। यावत्तावतोर्वादेर्मं उं महिं ।४-४०६। वा यत्तदोतोर्डेवडः ।४-४०७। वेदं-किमोर्यादेः ।४-४०८। परस्परस्यादिरः ।४-४०९। कादि-स्थैदोतो-रुच्चार-लाघवम् ।४-४१०। पदान्ते उं-हुं-हिं-हंकाराणाम् ।४-४११। म्हो म्भो वा ।४-४१२। अन्यादृशो-न्नाइसावराइसौ ।४-४१३। प्रायसः प्राउ-प्राइव-प्राइम्व-पग्गिम्वाः ।४-४१४। वान्यथोनुः ।४-४१५। कुतसः कउ कहन्तिहु ।४-४१६। ततस्तदोस्तोः ।४-४१७। एवं-परं-समं-ध्रुवं-मा-मनाक-एम्व पर समाणु ध्रुवु मं मणाउं ।४-४१८। किलाथवा-दिवा-सह-नेहः किराहवइ दिवे सहुं नाहिं ।४-४१९। पश्चादेवमेवैवेदानीं-प्रत्युतेतसः पच्छइ एम्वइ जि एम्वहिं पच्चलिउ एत्तहे ।४-४२०। विषण्णोक्त-वर्त्मनो वुन्न-वुत्त-विच्चं ।४-४२१। शीघ्रादीनां वहिल्लादयः ।४-४२२। हुहुरु-घुग्घादयः शब्द-चेष्टानुकरणयोः ।४-४२३। घइमादयोनर्थकाः ।४-४२४। तादर्थ्ये केहिं-तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणाः ।४-४२५। पुनर्विनः स्वार्थे डुः ।४-४२६। अवश्यमो डें-डौ ।४-४२७। एकशसो डिः ।४-४२८। अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक-क-लुक् च ।४-४२९। योगजाश्चैषाम् ।४-४३०। स्त्रियां तदन्ताड्डीः ।४-४३१। आन्तान्ताड्डाः ।४-४३२। अस्येदे ।४-४३३। युष्मदादेरीयस्य डारः ।४-४३४। अतोर्डेत्तुलः ।४-४३५। त्रस्य

ङेसहे ।४-४३६। त्व तलोः प्पणः ।४-४३७। तव्यस्य इएव्वउं एव्वउं एवा ।४-४३८। क्त्व इ-इउ-इवि-अवयः ।४-४३९। एप्प्येप्पिण्वेव्येविणवः ।४-४४०। तुम एव मणाणहमणहिं च ।४-४४१। गमेरेप्पिण्वेप्प्योरेर्लुग् वा ।४-४४२। तृनोऽणअः ।४-४४३। इवार्थे नं-नउ-नाइ-नावइ-जणि-जणवः ।४-४४४। लिङ्गमतन्त्रम् ।४-४४५। शौरसेनीवत् ।४-४४६। व्यत्ययश्च ।४-४४७। शेषं संस्कृतवत्सिद्धम् ४-४४८।

प्राकृत-व्याकरण
की
सूत्रानुसार--विषयानुक्रमणिका

प्रथम पादः

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
१	प्राकृत-शब्द-आधार और स्वर व्यञ्जनादि	१	१
२	विकल्प-सिद्ध सर्व शब्द संग्रह	२	३
३	आर्ष-रूप-संग्रह	३	५
४	स्वरों की दीर्घ-ह्रस्व-व्यवस्था	४	३
५	स्वर-संधि	५ से ९	६
६	स्वर अथवा व्यञ्जन की लोप-विधि	१० से १४	२२
७	शब्दान्त्य-व्यञ्जन के स्थान पर आदेश-विधि	१५ से २२	२८
८	अनुस्वार-विधि	२३ से २७	३२
९	अनुस्वार-लोप-विधि	२८ से ३०	४४
१०	शब्द-लिंग-विधान	३१ से ३६	५२
११	विसर्ग-स्थानीय "ओ" विधान	३७	६५
१२	"निर् और प्रति" उपसर्गों के लिये उपविधान	३८	६६
१३	अव्ययों में लोप विधि	४० से ४२	६७
१४	ह्रस्व-स्वर से दीर्घ स्वर का विधान	४३ से ४५	७०
१५	"अ" स्वर के स्थान पर क्रम से "इ-अइ-ई-उ-ए-ओ-उ-आ-आइ-" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	४६ से ५५	७८
१६	"अ" स्वर का वैकल्पिक रूप से लोप-विधान	५६	९०
१७	"आ" स्वर के स्थान पर क्रम से "अ-इ-ई-उ-ऊ-ए-"उ और ओ"-ओ" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	५७ से ८३	९१
१८	दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर की प्राप्ति का विधान	८४	१०४
१९	"इ" स्वर के स्थान पर क्रम से "ए-अ-ई-इ-उ-"उ और ओ"-" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	८५ से ९७	१०७

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
२०	"न" सहित "इ" के स्थान पर "ओ" प्राप्ति का विधान	६८	११७
२१	"ई" स्वर के स्थान पर क्रम से "अ-आ-इ-उ-ऊ-उ-ए" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	६९ से १०६	११७
२२	"उ" स्वर के स्थान पर क्रम से "अ-इ-ई-ऊ-ओ" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	१०७ से ११८	१०४
२३	"ऊ" स्वर के स्थान पर क्रम से "अ-ई इ-उ-तथा "इ और ए" की तथा "ओ" की प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	११९ से १२५	१३३
२४	"ऋ" स्वर के स्थान पर क्रम से "अ-आ-इ-उ-"इ एवं उ" तथा उ-ऊ-ओ, इ-उ, इ-ए-ओ, रि, और "ढि" की प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	१२६ से १४४	१३६
२५	"लृ" के स्थान पर "इलि" आदेश प्राप्ति का विधान	१४५	१६०
२६	"ए" स्वर के स्थान पर क्रम से "इ-ऊ" प्राप्ति का विधान	१४६ से १४७	१६०
२७	"ऐ" स्वर के स्थान पर क्रम से "ए-इ-अइ, "ए और अइ", अ अ तथा ई" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	१४८ से १५५	१६२
२८	"ओ" स्वर के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "अ" की तथा "ऊ और अउ" एवं आअ की प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	१५६ से १५८	१७२
२९	"औ" स्वर के स्थान पर क्रम से "ओ उ-अउ; "आ और अउ" तथा आवा" प्राप्ति का विविध रूप से संविधान	१५९ से १६४	१७२
३०	व्यञ्जन-लोप पूर्वक विभिन्न स्वरों के स्थान पर विभिन्न स्वरों की प्राप्ति का विधान	१६५ से १७५	१७८
३१	व्यञ्जन-विकार के प्रति सामान्य-निर्देश	१७६	१९३
३२	"क-ग-च-ज-त-द-प-य-व" व्यञ्जनों के लोप होने का विधान	१७७	१९३
३३	"म" व्यञ्जन की लोप-प्राप्ति और अनुनासिक प्राप्ति का विधान	१७८	२०६
३४	"प" व्यञ्जन के लोप होने की निषेध विधि	१७९	२०६
३५	लुप्त व्यञ्जन के पश्चात शेष रहे हुए "अ" के स्थान पर "य" श्रुति की प्राप्ति का विधान	१८०	२०७
३६	"क" के स्थान पर "ख-ग-च-भ-म-ह" की प्राप्ति का विधान	१८१ से १८६	२०९
३७	"ख-घ-थ-ध-भ" के स्थान पर "ह" की प्राप्ति का विधान	१८७	२१३
३८	"थ" के स्थान पर "ध" की प्राप्ति का विधान	१८८	२२०

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
३६	"क्ष" के स्थान पर "क" की प्राप्ति का विधान	१८६	२२१
४०	"ग" के स्थान पर "म-ल-व" की प्राप्ति का विधान	१६० से १६२	२२१
४१	"च" के स्थान पर "स" और "ल्ल" की प्राप्ति का विधान	१६३	२२२
४२	"ज" के स्थान पर "झ" की प्राप्ति का विधान	१६४	२२३
४३	"ट" के स्थान पर "ड-ढ-ल" की प्राप्ति का विधान	१९५ से १९८	२२५
४४	"ठ" के स्थान पर "ढ-ल्ल-ह-ल" की प्राप्ति का विधान	१६६ से २०१	२२६
४५	"ड" के स्थान पर "ल" की प्राप्ति का विधान	२०२	२२६
४६	"ण" के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "ल" की प्राप्ति का विधान	२०३	२३२
४७	"त" के स्थान पर "च-छ-ट-ड-ण-एण-र-ल-व-ह" की विभिन्न रीति से प्राप्ति का विधान	२०४ से २१४	२३२
४८	"थ" के स्थान पर "ढ" की प्राप्ति का विधान	२१५ से २१६	२४५
४६	"द" के स्थान पर "ड-र-ल-घ-व-ह" की विभिन्न रीति से प्राप्ति का विधान	२१७ से २२५	२४६
५०	"ध" के स्थान पर "ढ" की प्राप्ति का विधान	२२६ से २२७	२५२
५१	"न" के स्थान पर "ण" की प्राप्ति का विधान	२२८ से २२६	२५३
५२	"न" के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "ल" और "ण्ह" की प्राप्ति का विधान	२३०	२५५
५३	"प" के स्थान पर "व-फ-म-र" की प्राप्ति का विधान	२३१ से २३५	२५५
५४	"फ" के स्थान पर "भ" और "ह" की प्राप्ति का विधान	२३६	२६०
५५	"ब" के स्थान पर "व-भ-म-य" की प्राप्ति का विधान	२३७ से २३६	२६१
५६	"भ" के स्थान पर "व" की प्राप्ति का विधान	२४०	२६४
५७	"म" के स्थान पर "ढ-व-स" की विभिन्न रीति से प्राप्ति का विधान	२४१ से २४४	२६४
५८	"य" के स्थान पर "ज-त-ल-ज्ज-ह-"डाह-आह"–" की विभिन्न रीति से प्राप्ति का विधान	२४५ से २५०	२६६
५६	"र" के स्थान पर "ड-डा-ण-ल" की विभिन्न रीति से प्राप्ति का विधान	२५१ से २५४	२७२
६०	"ल" के स्थान पर "र-ण" की प्राप्ति का विधान	२५५ से २५७	२७७
६१	"ब" और 'व' के स्थान पर "म" की प्राप्ति का विधान	२५८ से २५६	२७६
६२	"श" और "ष" के स्थान पर "स" की प्राप्ति का विधान	२६०	२७६
६३	"ष" के स्थान पर "ण्ह" की प्राप्ति का विधान	२६१	२८१
६४	"श" और "ष" तथा "स" के स्थान पर (वैकल्पिक रूप से)		

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
	"ह" की प्राप्ति का विधान	२६२ से २६३	२८१
६५	"ह" के स्थान पर "घ" की प्राप्ति का विधान	२६४	२८२
६६	"ष", "श" और "स" के स्थान पर "छ" की प्राप्ति का विधान	२६५ से २६६	२८३
६७	स्वर सहित "ज-क-ग-य-द-व" व्यञ्जनों का विभिन्न रूप से एवं विभिन्न शब्दों में लोप-विधि का प्रदर्शन	२६७ से २७१	२८५

द्वितीय पादः

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
६८	संयुक्त-व्यञ्जनों लिए अधिकार-सूत्र	१	२९३
६९	"क्त-ष्ट-ग्ण-स्व" के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "क" आदेश प्राप्ति	२	२९३
७०	"क्ष" के स्थान पर "ख-छ-झ" की आदेश प्राप्ति	३	२९४
७१	"ष्क-स्क-ष्व-स्थ-स्त" के स्थान पर विभिन्न रूप से और विभिन्न शब्दों में "ख" आदेश प्राप्ति का विधान	४ से ८	२९५
७२	"स्त" के स्थान क्रम से "थ" और "ठ" की प्राप्ति	९	२९९
७३	"क" के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "ग" की प्राप्ति	१०	३००
७४	"ङ्क" के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "ङ्ग" की प्राप्ति	११	३००
७५	अमुक संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर विविध रीति से और विविध रूपों में "च" की प्राप्ति	१२ से १४	३००
७६	"त्य-थ्य-द्य-ध्य" के स्थान पर क्रम से "च-छ-ज-झ" की प्राप्ति	१५	३०२
७७	"श्च" के स्थान पर "ञ्चु" की वैकल्पिक प्राप्ति	१६	३०५
७८	कुछ संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर विविध रीति से और विविध शब्दों में "छ" व्यञ्जन की प्राप्ति	१७ से २३	३०५
७९	विशेष संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर विविध आधार से "ज" और "ञ्ज" व्यञ्जन की प्राप्ति	२४ से २५	३१६
८०	संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर "झ" व्यञ्जन की प्राप्ति	२६ से २७	३१९
८१	संयुक्त "न्ध" के स्थान पर "झ" की प्राप्ति	२८	३२१
८२	"त्त" और "र्त" के स्थान पर "ट" की प्राप्ति	२९ से ३०	३२२
८३	"न्त" के स्थान पर "ण्ट" की प्राप्ति	३१	३२८
८४	संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "ठ" की प्राप्ति	३२ से ३४	३२९
८५	संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "ड" की प्राप्ति	३५ से ३७	३३१
८६	संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "ण्ड" की प्राप्ति	३८	३३३
८७	"स्तब्ध" में संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर क्रम से "ठ" और "ढ" की प्राप्ति	३९	३३३
८८	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "ढ" की प्राप्ति	४० से ४१	३३४

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
८९	"ज्ञ" और 'ञ्ञ' के स्थान पर "ण" की प्राप्ति	४२	३३६
९०	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "ण" की प्राप्ति	४३	३३७
९१	"मन्यु" शब्द में संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "न्त" की वैकल्पिक प्राप्ति	४४	३३७
९२	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "थ की प्राप्ति	४५-४६-४८	३३८
९३	"पर्यस्त" में संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर क्रम से "थ" और "ट" की प्राप्ति	४७	३४०
९४	"आश्लिष्ट" में संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर क्रम से "ल" और "ध" की प्राप्ति	४९	३४१
९५	"चिह्न" में संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "न्ध" की प्राप्ति	५०	३४१
९६	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "प" की प्राप्ति	५१ से ५२	३४२
९७	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "फ' की प्राप्ति	५३ से ५५	३४४
९८	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "म्ब" की प्राप्ति	५६	३४६
९९	अमुक संयुक्त व्यंजन के स्थान पर "भ" की प्राप्ति	५७ से ५९	३४७
१००	"कश्मीर" में संयुक्त व्यंजन के स्थान पर "म्भ" की वैकल्पिक रूप से प्राप्ति	६०	३४८
१०१	अमुक संयुक्त व्यंजन के स्थान पर "म" की प्राप्ति	६१ से ६२	३४९
१०२	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "र" की प्राप्ति	६३ से ६६	३५०
१०३	"र्य" के स्थान पर 'रिअ-अर-रिज्ज-रीअ" और "ल्ल" की प्राप्ति का विधान	६७ से ६८	३५२
१०४	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "स" की प्राप्ति	६९	३५४
१०५	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "ह" की प्राप्ति	७० से ७३	३५४
१०६	अमुक संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर "म्ह, ण्ह और ल्ह" की प्राप्ति का विधान	७४ से ७६	३५५
१०७	"क्-ग्-ट्-ड्-त्-द्-प्-श्-ष्-स्-ᳵक-ᳵप" के लोप होने का विधान	७७	३६४
१०८	"म-न-य" और 'ल-व-र" के लोप होने की विधि	७८ से ७९	३६५
१०९	"र्" का वैकल्पिक-लोप	८० से ८१	३७३
११०	"द्", "न्", "ह" का वैकल्पिक लोप	८२ से ८५	३७६
१११	आदि "श्", "श्" और "त्र" की लोप-विधि	८६ से ८८	३८०
११२	शेष अथवा आदेश प्राप्त व्यञ्जन को "द्वित्व-प्राप्ति का विधान	८९	३८१
११३	"द्वित्व-प्राप्त" व्यञ्जनों में से प्राप्त पूर्व व्यञ्जन के स्थान पर		

क्रमांक	विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
	प्रथम अथवा तृतीय व्यञ्जन की प्राप्ति का विधान	९०	३८३
११४	"दीर्घ" शब्द में "र्" के लोप होने के पश्चात "घ" के पूर्व में आगम रूप "ग्" प्राप्ति का वैकल्पिक विधान	९१	३८६
११५	अनेक शब्दों में लोपावस्था में अथवा अन्य विधि में आदेश रूप से प्राप्तव्य "द्विर्भाव" की प्राप्ति की निषेध विधि	९२ से ९६	३८७
११६	अनेक शब्दों में आदेश प्राप्त व्यञ्जन में वैकल्पिक रूप से द्वित्व प्राप्ति का विधान	९७ से ९९	३९२
११७	अमुक शब्दों में आगम रूप से "अ" और "इ" स्वर की प्राप्ति का विधान	१०० से १०८	४०१
११८	अमुक शब्दों में आगम रूप से क्रम से "अ" और "इ" दोनों ही स्वर की प्राप्ति का विधान	१०९ से ११०	४१५
११९	"अर्हत्" शब्द में आगम रूप से क्रम से "उ", "अ" और "इ" तीनों ही स्वर की प्राप्ति का विधान	१११	४१६
१२०	अमुक शब्दों में आगम रूप से "उ" स्वर की प्राप्ति का विधान	११२ से ११४	४१६
१२१	"ज्या" शब्द में आगम रूप से "ई" स्वर की प्राप्ति	११५	४२०
१२२	अमुक शब्दों में स्थित व्यञ्जनों को परस्पर में व्यत्यय भाव की प्राप्ति का विधान	११६ से १२४	४२०
१२३	अमुक संस्कृत शब्दों के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में सम्पूर्ण रूप से किन्तु वैकल्पिक रूप से नूतन शब्दादेश-प्राप्ति का विधान	१२५ से १३८	४२४
१२४	अमुक संस्कृत शब्दों के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में सम्पूर्ण रूप से और नित्यमेव नूतन शब्दादेश-प्राप्ति का विधान	१३९ से १४४	४३४
१२५	"शील-धर्म-साधु-" अर्थ में प्राकृत-शब्दों में जोड़ने योग्य "इर" प्रत्यय का विधान	१४५	४३७
१२६	"क्त्वा" प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में "तुम्-अत्-तूण-तुआण" प्रत्ययों की आदेश प्राप्ति का विधान	१४६	४३९
१२७	"तद्धित" से संबंधित विभिन्न प्रत्ययों की विभिन्न अर्थ में प्राप्ति का विधान	१४७ से १७३	४४१
१२८	कुछ रूढ और देश्य शब्दों के सम्बन्ध में विवेचना	१७४	४७०
१२९	अव्यय शब्दों की भावार्थ-प्रदर्शन-पूर्वक विवेचना	१७५ से २१८	४८३

॥ ॐ श्री अर्हत्-सिद्धेभ्यो नमः ॥

आचार्य हेमचन्द्र रचितम्

(प्रियोदय हिन्दी-व्याख्यया समलंकृतम्)

प्राकृत-व्याकरणम्

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं ।
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ॥
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ।
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

अथ प्राकृतम् ॥ १-१ ॥

अथ शब्द आनन्तर्यार्थोऽधिकारार्थश्च ॥ प्रकृतिः संस्कृतम् । तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् । संस्कृतानन्तरं प्राकृतमधिक्रियते ॥ संस्कृतानन्तरं च प्राकृतस्यानुशासनं सिद्धसाध्यमानभेदसंस्कृतयोनेरेव तस्य लक्षणं न देश्यस्य इति ज्ञापनार्थम् । संस्कृतसमं तु संस्कृत लक्षणेनैव गतार्थम् । प्राकृते च प्रकृति-प्रत्यय-लिंग-कारक-समाससंज्ञादयः संस्कृत वद् वेदितव्याः । लोकाद् इति च वर्तते । तेन ऋ-ॠ-ऌ-ॡ ऐ-औ-ङ-ञ-श-ष-विसर्जनीयप्लुत-वर्जो वर्ण-समाम्नायो लोकाद् अवगन्तव्यः । ङ-ञौ स्व-वर्ग्ये संयुक्तौ भवत एव । ऐदौतौ च केषांचित् । कैतवम् । कैअवं ॥ सौन्दर्यम् । सौअरिअं ॥ कौरवाः ॥ कौरवा ॥ तथा अस्वरं व्यञ्जनं द्विवचनं चतुर्थी--बहु वचनं च न भवति ॥

अर्थः—"अथ" शब्द के दो अर्थ होते हैं:-(१) पश्चात् वाचक और (२) "अधिकार" या "आरंभ" अथवा "मंगलाचरण" वाचक । यहाँ पर "प्रकृति" शब्द का तात्पर्य "संस्कृत" है; ऐसा मूल ग्रंथकार का मन्तव्य है । तदनुसार संस्कृत से आया हुआ अथवा संस्कृत से उत्पन्न होने वाला शब्द प्राकृत-शब्द होता है; ऐसा आचार्य हेमचन्द्र का दृष्टि-

कोण है। परन्तु भाषा–विज्ञान की दृष्टि से ऐसा अर्थ ठीक नहीं है। किसी भी कोष में अथवा व्युत्पत्ति–शास्त्र में "प्रकृति" शब्द का अर्थ "संस्कृत" नहीं लिखा गया है। यहाँ "प्रकृति" शब्द के मुख्य अर्थ "स्वभाव" अथवा "जन–साधारण" लेने में किसी तरह का विरोध नहीं है। "*प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं इति प्राकृतम्*" अथवा "*प्रकृतीनां–साधारण जनानामिदं प्राकृतम्*" यही व्युत्पत्ति वास्तविक और प्रमाणयुक्त मानी जा सकती है। तदनुसार यहाँ पर सुविधानुसार प्राकृत–शब्दों की साधनिका संस्कृत शब्दों के समानान्तर रूप का आधार लेकर की जायगी। क्योंकि बिना समानान्तर रूप के साधनिका की रचना नहीं की जा सकती है। जिस भाषा–प्रवाह का परिवर्तित रूप 'प्राकृत" में उपलब्ध है; वह भाषा–प्रवाह लुप्त हो गया है; अतः समानान्तर आधार के लिये हमें संस्कृत–भाषा की ओर अभिमुख होना पड़ रहा है; ऐसे तात्पर्य को अभिव्यक्ति "प्रकृतिः संस्कृतम्" शब्दों द्वारा जानना। प्रथम संस्कृत–व्याकरण का निर्माण सात अध्यायों में करके इस आठवें अध्याय में प्राकृत–व्याकरण की रचना की जा रही है। संस्कृत व्याकरण के पश्चात् प्राकृत–व्याकरण का विधान करने का तात्पर्य यह है कि प्राकृत-भाषा के शब्द कुछ तो संस्कृत के समानान्तर ही होते हैं और कुछ की साधनिका करनी पड़ती है। अतः प्राकृत शब्द 'देशज-शब्द' नहीं है; यह बतलाने के लिये उपरोक्त सूत्र की रचना की गई है। प्राकृत-भाषा में संस्कृत-भाषा के जैसे ही जिन जिन समानान्तर शब्दों की उपलब्धि पाई जाती है; उन शब्दों की साधना संस्कृत-व्याकरण के अनुसार ही जानना। जो कि सात अध्यायों में पहले ही संगुंफित कर दिये गये हैं।

संस्कृत रूपों से भिन्न रूपों में पाये जाने वाले शब्दों की सिद्धि-अर्थ इस व्याकरण की रचना की जा रही है। प्राकृत-भाषा में भी प्रकृति, प्रत्यय, लिंग, कारक, समास और संज्ञा इत्यादि सभी आवश्यकीय वैयाकरणीय व्यवस्थाएँ भी संस्कृत-व्याकरण के समान ही जानना। इन का सामान्य परिचय इस प्रकार है:–नाम, धातु, अव्यय, उपसर्ग आदि "प्रकृति" के अन्तर्गत समझे जाते हैं। संज्ञाओं में जोड़े जाने वाले "सि" आदि एवं धातुओं में जोड़े जाने वाले 'ति' आदि प्रत्यय कहलाते हैं। पुल्लिंग, स्त्री लिंग तथा नपुंसक लिंग ये तीन लिंग होते है। कर्त्ता, कर्म, करण संप्रदान अपादान संबंध अधिकरण और संबोधन कारक होते हैं।

समास छह प्रकार के होते हैं–अव्ययी भाव, तत्पुरुष, द्वंद्व, कर्मधारय, द्विगु और बहुव्रीहि। यह अनुवृत्ति हेमचन्द्राचार्य रचित सिद्ध हेम व्याकरण के अनुसार जानना। स्वर और व्यञ्जनों की परंपराएँ पूर्व काल से चली आ रही है, इनमें से 'ॠ, ॠ, लृ, लॄ, ऐ, औ, ङ, ञ, श, ष, विसर्जनीय-विसर्ग और प्लुत को छोड़ करके शेष वर्ण–व्यवस्था लौकिक वर्ण-व्यवस्थानुसार समझ लेना चाहिये। 'ङ' और 'ञ' ये अपने अपने वर्ग के अक्षरों के साथ संयुक्त रूप से याने हलन्त रूप से पाये जाते हैं। 'ऐ' और 'औ' भी कहीं कहीं पर देखे जाते हैं। जैसे–कैतवम्=कैअवं। सौन्दर्यम्=सौंअरिअं और कौरवाः=कौरवा। इन उदाहरणों में 'ऐ' और 'औ' की उपलब्धि है। प्राकृत-भाषा में स्वर रहित व्यञ्जन नहीं होता है। द्विवचन और चतुर्थी का बहुवचन भी नहीं होता है। द्विवचन की अभिव्यक्ति बहु वचन के रूप में होती है, एवं चतुर्थी-बहुवचन का उल्लेख षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय संयोजित करके किया जाता है।

कैतवम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कैअवं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कैअवं* रूप सिद्ध हो जाता है। *सौन्दर्यम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सौंअरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति १–१७७ से 'द' का लोप और २–७८ से 'य' का लोप २–१०७ से शेष हलन्त 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सौंअरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। *कौरवाः* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप

कौरवा होता है। इसमें सूत्र संख्या ३–४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३–१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर कौरवा रूप सिद्ध हो जाता है। १-१॥

बहुलम् ॥१-२॥

बहुलम् इत्यधिकृतं वेदितव्यम् आशास्त्रपरिसमाप्तेः॥ ततश्च। क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद् विभाषा क्वचिद् अन्यदेव भवति। तच्च यथास्थानं दर्शयिष्यामः॥

अर्थः—प्राकृत-भाषा में अनेक ऐसे शब्द होते हैं; जिनके एकाधिक रूप पाये जाते हैं; इनका विधान इस सूत्र से किया गया है। तदनुसार इस व्याकरण के चारों पाद पूर्ण होवें, वहां तक इस सूत्र का अधिकार क्षेत्र जानना इस सूत्र की कहीं पर प्रवृत्ति होगी; कहीं पर अप्रवृत्ति होगी; कहीं पर वैकल्पिक प्रवृति होगी और कहीं पर कुछ नवीनता होगी। यह सब हम यथास्थान पर बतलावेंगे॥१–२॥

आर्षम् ॥१-३॥

ऋषीणाम् इदम् आर्षम्। आर्षं प्राकृतं बहुलं भवति। तदपि यथास्थानं दर्शयिष्यामः। आर्षे हि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते॥

अर्थः—जो शब्द ऋषि-भाषा से संबंधित होता है; वह शब्द 'आर्ष' कहलाता है। ऐसे आर्ष शब्द प्राकृत भाषा में बहुतायत रूप से होते हैं। उन सभी का दिग्दर्शन हम यथा स्थान पर आगे ग्रंथ में बतलावेंगे। आर्ष-शब्दों में सूत्रों द्वारा साधनिका का विधान वैकल्पिक रूप से होता है। तदनुसार कभी कभी तो आर्ष-शब्दों की साधनिका सूत्रों द्वारा हो सकती हैं और कभी नहीं भी हुआ करती है। अतः इस सम्बन्ध में वैकल्पिक-विधान जानना॥१–३॥

दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ ॥१–४॥

वृत्तौ समासे स्वराणां दीर्घ ह्रस्वौ बहुलं भवतः। मिथः परस्परम्॥ तत्र ह्रस्वस्य दीर्घः॥ अन्तर्वेदिः। अन्तावेई॥ सप्तविंशतिः। सत्तावीसा॥ क्वचिन्न भवति। जुवइ-अणो॥ क्वचिद् विकल्पः। वारी-मई वारि-मई॥ भुज-यन्त्रम्। भुआ-यन्तं भुअ-यन्तं॥ पतिगृहम्। पई-हरं पइ-हरं॥ वेलू-वणं वेलु-वणं॥ दीर्घस्य ह्रस्वः। निअम्ब सिल-खलिअ-वीइ-मालस्स॥ क्वचिद् विकल्पः। जउँण-यडं जउँणा-यडं। नइ-सोत्तं नई-सोत्तं। गोरि-हरं गोरी-हरं। वहु-मुहं वहू-मुहं॥

अर्थ—समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व अक्सर हो जाया करते हैं। ह्रस्व स्वर के दीर्घ स्वर में परिणत होने के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

अन्तर्वेदिः = अन्तावेई । सप्तविंशतिः = सत्तावीसा ।। किसी किसी शब्द में ह्रस्व स्वर से दीर्घ-स्वर में परिणति नहीं भी होती है । जैसे--युवति-जनः = जुवइ-अणो ।। किसी किसी शब्द में ह्रस्व स्वर से दीर्घ-स्वर में परिणति वैकल्पिक रूप से भी होती है । जैसे-वारि-मतिः = वारी-मई वारिमई भुज-यन्त्रम् = भुआ-यन्तं अथवा भुअ-यन्तं ।। पति-गृहम् = पई-हरं अथवा पइ-हरं ।। वेणु-वनम् = वेलू-वणं अथवा वेलु-वणं ।। दीर्घ स्वर से ह्रस्व स्वर में परिणत होने का उदाहरण इस प्रकार हैः-नितम्ब-शिला-स्खलित-वीचि-मालस्य=निअम्ब-सिल-खलिअ-वीइ-मालस्स । इस उदाहरण में 'शिला' के स्थान पर 'सिल' की प्राप्ति हुई है । किसी किसी शब्द में दीर्घ स्वर से ह्रस्व स्वर में परिणति वैकल्पिक रूप से भी होती है । उदाहरण इस प्रकार हैः-

यमुना-तटम् = जउँण-यडं अथवा जउँणा-यडं ।। नदी-स्रोतम् = नइ-सोत्तं अथवा नई-सोत्तं ।। गौरी गृहम् = गोरि-हरं अथवा गोरी-हरं । वधू-मुखम् = वहु-मुहं अथवा वहू-मुहं ।। इन उपरोक्त सभी उदाहरणों में दीर्घ स्वरों की और ह्रस्व स्वरों की परस्पर में व्यत्यय-स्थिति समझ लेनी चाहिये ।

अन्तर्वेदिः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप अन्तावेई होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-४ से 'त' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र' का लोप; १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर अन्तावेई रूप सिद्ध हो जाता है ।

सप्तविंशतिः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप सत्तावीसा होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'प्' का लोप; १-४ से 'त' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ता' के पूर्व में 'प्' का लोप होने से द्वित्व 'त्ता' की प्राप्ति; १-२८ से 'विं' पर स्थित अनुस्वार का लोप; १-९२ से शेष 'वि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर 'ति' का लोप करते हुए दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य 'स' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सत्तावीसा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

युवति-जनः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप जुवइ-अणो होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का और (द्वितीय) 'ज्' का लोप; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जुवइ-अणो* रूप सिद्ध हो जाता है । *वारि-मतिः* संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप वारीमई, और वारि-मई होते हैं । इनमें सूत्र-संख्या १-४ से 'रि' में स्थित 'इ' को वैकल्पिक रूप से दीर्घ 'ई' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप वारी-मई और वारि मई सिद्ध हो जाते हैं । *भुज-यन्त्रम्* संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप भुआ-यन्तं और भुअ-यन्तं होते हैं । इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-४ से शेष 'अ' को वैकल्पिक रूप से 'आ' की

प्राप्ति; २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *भुआ-यन्तं भुअ-यन्तं* सिद्ध हो जाते हैं।

पतिगृहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पई-हरं और पइ-हरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त' का लोप; १-४ से शेष 'इ' को वैकल्पिक रूप से 'ई' की प्राप्ति; २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश; १-१८७ से आदेश प्राप्त 'घर' में स्थित 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *पई-हरं* और *पइ-हरं* सिद्ध हो जाते हैं। *वेणु-वनम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेलू-वणं और वेलु-वणं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२०३ से 'ण' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १-४ से 'उ' को वैकल्पिक रूप से 'ऊ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *वेलू-वणं* और *वेलु-वणं* सिद्ध हो जाते हैं।

नितम्ब-शिला-स्खलित-वीचि-मालस्य संस्कृत वाक्यांश रूप है। इसका प्राकृत रूप निअम्ब-सिल-खलिअ-वीइ-मालस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से दोनों 'त्' वर्णों का लोप; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-४ से 'ला' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन प्रथम 'स्' का लोप १-१७७ से 'च' का लोप; और ३-१० से षष्ठी-विभक्ति के एक वचन में 'ङस्' के स्थानीय प्रत्यय 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्राकृत रूप *निअम्ब-सिल-खलिअ-वीइ-मालस्स* सिद्ध हो जाता है।

यमुनातटम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जउँण-यडं और जउँणा-यडं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; १-१७८ से प्रथम 'म्' का लोप होकर शेष स्वर 'उ' पर अनुनासिक की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-४ से प्राप्त 'णा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *जउँण-यडं* और *जउँणा-यडं* सिद्ध हो जाते हैं।

नदी-स्रोतस् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नइ-सोत्तं और नई-सोत्तं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-४ से शेष दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-९८ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार

होकर क्रम से दोनों रूप नइ-सोत्तं और नई-सोत्तं सिद्ध हो जाते हैं। गौरीगृहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गोरि-हरं और गोरी-हरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; १-४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश; १-१८७ से आदेश प्राप्त 'घर' में स्थित 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दोनों रूप *गोरि हरं* और *गोरी हरं* सिद्ध हो जाते हैं।

वधू-मुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वहु-मुहं और वहू-मुहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ध' और 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-४ से प्राप्त 'हु' में स्थित ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप वहु-मुहं और वहू-मुहं सिद्ध हो जाते हैं १-४॥

पदयोः संधिर्वा ॥१-५॥

संस्कृतोक्तः संधिः सर्वः प्राकृते पदयोर्व्यवस्थित-विभाषया भवति ॥ वासेसी वास-इसी। विसमायवो विसम-आयवो। दहि-ईसरो दहीसरो। साऊअयं साउ-उअयं॥ पदयोरिति किम्। पाओ। पई। वच्छाओ। मुद्धाइ। मुद्धाए। महइ। महए। बहुलाधिकारात् क्वचिद् एक-पदेपि। काहिइ काही। बिइओ बीओ॥

अर्थ-संस्कृत-भाषा में जिस प्रकार से दो पदों की संधि परस्पर होती है; वही सम्पूर्ण संधि प्राकृत-भाषा में भी दो पदों में व्यवस्थित रीति से किन्तु वैकल्पिक रूप से होती है। जैसे:-व्यास-ऋषिः=वासेसी अथवा वास-इसी। विषम+आतपः=विषमातपः=विसमायवो अथवा विसम-आयवो। दधि+ईश्वरः=दधीश्वरः= दहि-ईसरो अथवा दहीसरो। स्वादु-उदकम्=स्वादूदकम् साऊअयं अथवा साउ-उअयं॥

प्रश्नः-'संधि दो पदों की होती है' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः-क्योंकि एक ही पद में संधि-योग्य स्थिति में रहे हुए स्वरों की परस्पर में संधि नहीं हुआ करती है; अतः दो पदों का विधान किया गया है। जैसे:-पादः=पाओ। पतिः=पई। वृक्षात्=वच्छाओ। मुग्धया= मुद्धाई अथवा मुद्धाए। कांक्षति=महइ अथवा महए। इन (उदाहरणों में) प्राकृत-रूपों में संधि-योग्य स्थिति में दो दो स्वर पास में आये हुए हैं; किन्तु ये संधि-योग्य स्वर एक ही पद में रहे हुए हैं; अतः इनकी परस्पर में संधि नहीं हुई है।

'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से किसी किसी एक ही पद में भी दो स्वरों की संधि होती हुई देखी जाती है। जैसे:-करिष्यति = काहिइ अथवा काही। द्वितीयः = बिइओ अथवा बीओ। इन उदाहरणों में एक ही पद में दो की परस्पर में व्यवस्थित रूप से किन्तु वैकल्पिक रूप से संधि हुई है। यह 'बहुलम्' सूत्र का ही प्रताप है।

व्यास–ऋषिः-संस्कृत रूप वासेसी अथवा वास-इसी होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या–२–७८ से 'य्' का लोप; १–१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति और १-५ से 'वास' में स्थित 'स' में रहे हुए 'अ' के साथ 'इसी' के 'इ' की वैकल्पिक रूप से संधि होकर दोनों रूप क्रम से *वास इसी* और *वासेसी* सिद्ध हो जाते हैं।

विषम + आतपः = *विषमातपः* संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विसमायवो अथवा विसम-आयवो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या–१-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १–५ से 'विसम' में स्थित 'म' में रहे हुए 'अ' के साथ 'आयव' के 'आ' की वैकल्पिक रूप से संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *विसमायवो* और *विसम–आयवो* सिद्ध हो जाते हैं;

दधि + ईश्वरः = *दधीश्वरः* संस्कृत रूप है; इसके प्राकृत रूप दहि + ईसरो और दहीसरो होते हैं; इनमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; २-७९ से 'व' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स'; १-५ से 'दहि' में स्थित 'इ' के साथ 'ईसर' के 'ई' की वैकल्पिक रूप से संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *दहि-ईसरो* और *दहीसरो* सिद्ध हो जाते हैं।

स्वादु + उदकम् = *स्वादूदकम्* संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप साऊअयं और साउ-उअयं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'व' का लोप; १-१७७ से दोनों 'द्' का तथा 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-५ से 'साउ' में स्थित 'उ' के साथ 'उअय' के 'उ' की वैकल्पिक रूप से संधि होने से दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति और ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *साऊअयं* और *साउ–उअयं* सिद्ध हो जाते हैं।

पादः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर पई रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षात् संस्कृत पञ्चम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ् छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; ३-८ संस्कृत पंचमी प्रत्यय 'ङसि' के स्थानीय रूप 'त्' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१२ से प्राकृत में प्राप्त प्रत्यय 'ओ' के पूर्व में 'वच्छ' के अन्त्य 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *वच्छाओ* रूप सिद्ध होता है।

मुग्धया संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसके प्राकृत रूप मुद्धाए और मुद्धाइ होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ग्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध् ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति; ३-२९ से संस्कृत तृतीया-विभक्ति के एक वचन के प्रत्यय 'टा' के स्थानीय रूप 'या' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'ए' और 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-२९ से ही प्राप्त प्रत्यय 'ए' और 'इ' के पूर्व में अन्त्य स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *मुद्धाए* एवं *मुद्धाइ* सिद्ध हो जाते हैं।

कांक्षति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत रूप महइ और महए होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ४-१९२ से 'कांक्ष' धातु के स्थान पर 'मह्' का आदेश; ४-२३९ से प्राप्त 'मह्' में हलन्त 'ह्' को 'अ' की प्राप्ति; ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'इ' और 'ए' की प्राप्ति होकर दोनों रूप क्रम से *महइ* और *महए* सिद्ध हो जाते हैं।

करिष्यति:-क्रिया पद का संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप काहिइ और काही होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ४-२१४ से मूल धातु 'कृ' के स्थान पर 'का' का आदेश, ३-१६६ से संस्कृत भविष्यत्-कालीन संस्कृत प्रत्ययांश 'ष्य' के स्थान पर 'हि' की प्राप्ति; एवं ३-१३९से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'इ' की प्राप्ति और १-५ से 'हि' में स्थित 'इ' के साथ आगे रही हुई 'इ' की संधि वैकल्पिक रूप से होकर दोनों रूप क्रम से *काहिइ* और *काही* सिद्ध हो जाते हैं।

द्वितीयः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप बिइओ और बीओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का और 'य्' का लोप; १-४ से द्वितीय दीर्घ 'ई' के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; १-५ से प्रथम 'इ' के साथ द्वितीय 'इ' की वैकल्पिक रूप से संधि होकर दीर्घ 'ई' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *बिइओ* और *बीओ* सिद्ध हो जाते हैं। १-५॥

न युवर्णस्यास्वे ॥ १-६ ॥

इवर्णस्य उवर्णस्य च अस्वे वर्णे परे संधि र्न भवति। न वेरि-वग्गे वि अवयासो। वन्दामि अज्ज-वइरं ॥

સરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ

दणु इन्द रुहिर-लित्तो सहइ उइन्दो नह-प्पहावलि-अरुणो।
संझा-वहु-अवऊढो णव-वारिहरोव्व विज्जुला-पडिभिन्नो ॥ इवर्णस्येति किम्।
गूढोअर-तामरसाणुसारिणी भमर-पन्तिव्व । अस्व इति किम्। पुहवीसो ॥

अर्थः—प्राकृत में 'इवर्ण' अथवा 'उवर्ग' के आगे विजातीय स्वर रहे हुए हों तो उनको परस्पर में संधि नहीं हुआ करती है। जैसे:—न वैरिवर्गेऽपि अवकाशः = न वेरि-वग्गे वि अवयासो। इस उदाहरण में 'वि' में स्थित 'इ' के आगे 'अ' रहा हुआ है; किन्तु संस्कृत के समान होने योग्य संधि का भी यहां निषेध कर दिया गया है; अर्थात् संधि का विधान नहीं किया गया है। यह 'इ' और 'अ' विषयक संधि-निषेध का उदाहरण हुआ। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—वन्दामि आर्य-वैरं = वन्दामि अज्ज-वइरं। इस उदाहरण में 'वन्दामि' में स्थित अन्त्य 'इ' के आगे 'अ' आया हुआ है; परन्तु इनमें संधि नहीं की गई है। इस प्रकार प्राकृत में 'इ' वर्ण के आगे विजातीय-स्वर की प्राप्ति होने पर संधि नहीं हुआ करती है। यह तात्पर्य है। उपरोक्त गाथा की संस्कृत छाया निम्न है।

दनुजेन्द्ररुधिरलिप्तः राजते उपेन्द्रो नखप्रभावल्यरुणः ।
सन्ध्या-वधूपगूढो नव वारिधर इव विद्युत्प्रतिभिन्नः ॥

इस गाथा में संधि-विषयक स्थिति को समझने के लिये निम्न शब्दों पर ध्यान दिया जाना चाहिये:—'दणु + इन्द;' 'उ + इन्दो;' 'प्पहावलि + अरुणो;' 'वहु + अवऊढो;' इन शब्दों में क्रम से 'उ' के पश्चात् 'इ;' 'इ' के पश्चात् 'अ;' एवं 'उ' के पश्चात् 'अ' आये हुए हैं; ये स्वर विजातीय स्वर हैं; अतः प्राकृत में इस सूत्र (१-६) में विधान किया गया है कि 'इ' वर्ण और 'उ' वर्ण के आगे विजातीय स्वर आने पर परस्पर में संधि नहीं होती है। जबकि संस्कृत भाषा में संधि हो जाती है। जैसा कि इन्हीं शब्दों के संबंध में उपरोक्त श्लोक में देखा जा सकता है।

प्रश्नः—'इवर्ण' और 'उवर्ण' का ही उल्लेख क्यों किया गया है? अन्य स्वरों का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है?

उत्तरः—अन्य स्वर 'अ' अथवा 'आ' के आगे विजातीय स्वर आ जाय तो इनकी संधि हो जाया करती है; अतः 'अ' 'आ' की पृथक् संधि-व्यवस्था होने से केवल 'इ' वर्ण और 'उ' वर्ण का ही मूल-सूत्र में उल्लेख किया गया है। उदाहरण इस प्रकार है:—(संस्कृत-छाया)—गूढोदर-तामरसानुसारिणी-भ्रमरपङ्क्तिरिव = गूढोअर-तामरसाणुसारिणी भमर-पन्तिव्व; इस वाक्यांश में 'गूढ + उअर' और 'रस + अणुसारिणी' शब्द संधि-योग्य-दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं। इनमें 'अ + उ' की संधि करके 'ओ' लिखा गया है; इसी प्रकार से 'अ + अ' की संधि करके 'आ' लिखा गया है। यों सिद्ध होता है कि 'अ' के पश्चात् विजातीय स्वर 'उ' के आ जाने पर भी संधि होकर 'ओ' की प्राप्ति हो गई। अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि 'इ' अथवा 'उ' के आगे रहे हुए विजातीय स्वर के साथ इनकी संधि नहीं होती है; जबकि 'अ' अथवा 'आ' के आगे विजातीय स्वर रहा हुआ हो तो इनकी संधि हो जाया करती है।

प्रश्नः-'विजातीय' अथवा 'अस्व' स्वर का उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तरः-'इ' वर्ण अथवा 'उ' 'वर्ण' के आगे विजातीय स्वर नहीं होकर यदि 'स्व-जातीय' स्वर रहे हुए हों तो इनकी परस्पर में संधि हो जाया करती है। इस भेद को समझाने के लिये 'अस्व' अर्थात् 'विजातीय' ऐसा लिखना पड़ा है। उदाहरण इस प्रकार है:-पृथिवीशः = पुहवीसो। इस उदाहरण में 'पुहवी + ईसो' शब्द है; इनमें 'वी' में रही हुई दीर्घ 'इ' के साथ आगे रही हुई दीर्घ 'ई' की संधि की जाकर एक ही वर्ण 'वी' का निर्माण किया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि स्व-जातीय स्वरों की परस्पर में संधि हो सकती है। अतः मूल-सूत्र में 'अस्व' लिख कर यह स्पष्टीकरण कर दिया गया है कि स्व-जातीय स्वरों की संधि के लिये प्राकृत-भाषा में कोई रुकावट नहीं है।

न वैरि-वर्गेऽपि अवकाशः संस्कृत-वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप न वैरि-वग्गे वि अवयासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; १-४१ से 'अपि' अव्यय के 'अ' का लोप; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*न वेरि-वग्गे वि अवयासो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्दामि आर्य-वैरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप 'वन्दामि अज्ज-वइरं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आर्य' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत-प्रत्यय 'अम्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*वन्दामि अज्ज-वइरं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

दनुजेन्द्र-रुधिर-लिप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दणु इन्द-रुहिर-लित्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-८४ से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'ए' स्वर के स्थान पर 'इ' स्वर की प्राप्ति; २-७९ से प्रथम 'र' का लोप; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दणु-इन्द-रुहिर-लित्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

राजते संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सहइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१०० से 'राज्' धातु के स्थान पर 'सह्' का आदेश; ४-२३९ से हलन्त धातु 'सह्' के अन्त्यवर्ण 'ह्' में 'अ' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सहइ रूप सिद्ध हो जाता है।

उपेन्द्रः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप उ इन्दो होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; १-८४ शेष 'ए' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उइन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

नख-प्रभावलि-अरुणः संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप नह-प्पहावलि-अरुणो होता है । होता है । इसमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नह-प्पहा-वलि-अरुणो* रूप हो जाता है ।

सन्ध्या-वधू + उपगूढो संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप संझा-वहू-अवऊढो होता है । इसमें सूत्र-संख्या-१-२५ से हलन्त 'न्' को अनुस्वार की प्राप्ति; २-२६ से ध्य के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१०७ से 'उप' के 'उ' को 'अ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के में स्थान 'व' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संझा-वहु-अवऊढो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

नव वारिधरः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप णव-वारिहरो होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णव-वारिहरो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

इव संस्कृत अव्यय है । इसका प्राकृत-रूप व्व होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर 'व्व' आदेश की प्राप्ति होकर व्व रूप सिद्ध हो जाता है ।

विद्युत-प्रतिभिन्नः संस्कृत विशेषण है । इसका प्राकृत रूप विज्जुला-पडिभिन्नो होता है । इसमें सूत्र-सख्या २-२४ से 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; २-१७३ से प्राप्त रूप 'विज्जु' में 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३१ की वृत्ति में वर्णित (हे० २-४) के उल्लेख से स्त्रीलिंग रूप म आ' की प्राप्ति से 'विज्जुला' की प्राप्ति; १-११ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'ति' के 'त्' को 'ड्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विज्जुला-पडिभिन्नो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

गूढोदर तामरसानुसारिणी संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप गूढोअर-तामरसाणुसारिणी होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर गूढोअर ताम-रसाणुसारिणी रूप सिद्ध हो जाता है ।

भ्रमर-पंक्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भमर-पन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र' का लोप; १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे 'त्' होने से 'न' की प्राप्ति; २-७७ से 'क्' का लोप और १-११ से अन्त्य विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप होकर *भमर-पन्ति* सिद्ध हो जाता है।

छेअ अव्यय रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर करदी गई है। पृथिवी + ईशः = (पृथ्वीशः) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुहवीसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-८८ से प्रथम 'ई' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-५ से द्वितीय 'ई' की सजातीय स्वर होने से संधि; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन म अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुहवीसो* रूप सिद्ध हो जाता है। १-६॥

एदोतोः स्वरे ॥ १-७ ॥

एकार-ओकारयोः स्वरे परे संधिर्न भवति ॥

वहुआइ नहुल्लिहणे आबन्धन्तीए कञ्चुअं अङ्गे।
मयरद्धय-सर-धोरणि-धारा-छेअ व्व दीसन्ति ॥ १ ॥
उवमासु अपज्जत्तेभ-कलभ-दन्तावहासमूरुजुअं।
तं चेव मलिअ-बिस-दण्ड-विरस मालक्खिमो एण्हिं ॥२॥

अहो अच्छरिअं। एदोतोरिति किम् ॥

अत्थालोअण-तरला इअर-कईणं भमन्ति बुद्धीओ।
अत्थच्चेअ निरारम्भमेन्ति हिअयं कइन्दाणं ॥३॥

अर्थः—प्राकृत-शब्दों में अन्त्य 'ए' अथवा 'ओ' के पश्चात् कोई स्वर आ जाय तो परस्पर में इस 'ए' अथवा 'ओ' के साथ आगे आये हुए स्वर की संधि नहीं होती है। जैसा कि उपरोक्त गाथाओं में कहा गया है:—

'नहुल्लिहणे आबन्धन्तीए' में 'ए' के पश्चात् 'आ' आया हुआ है; तथा 'आलक्खिमो एण्हिं' में 'ओ' के पश्चात् 'ए' आया हुआ है। परन्तु इनकी संधि नहीं की गई है। यों अन्यत्र भी जान लेना चाहिये। उपरोक्त गाथाओं की संस्कृत-छाया इस प्रकार है।

वध्वाः (वधू कायाः) नखोल्लेखने आबध्नत्या कञ्चुकमङ्गे।
मकरध्वज-शर-धोरणि-धारा छेदा इव दृश्यन्ते ॥ १ ॥
उपमासु अपर्याप्ते भदन्तावभासमूरुयुगम्।
तदेव मृदित बिस दण्ड विरसमालक्षयामहे इदानीम् ॥ २ ॥

સરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ શાહ
[illegible]

'ओ' के पश्चात् 'अ' आने पर भी इनकी परस्पर में संधि नहीं हुआ करती है। जैसे:-अहो आश्चर्यम् = अहो अच्छरिअं।

प्रश्न:-'ए' अथवा 'ओ' के पश्चात् आने वाले स्वरों की परस्पर में संधि नहीं होती है'-ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:-अन्य सजातीय स्वरों की संधि हो जाती है एवं 'अ' अथवा 'आ' के पश्चात् आने वाले 'इ' अथवा 'उ' की संधि भी हो जाया करती है। जैसे-गाथा द्वितीय में आया है कि-'अपज्जत + इम' = अपज्जतेम; वल्ल + अवहास = वल्लावहास। गाथा तृतीय में आया है कि-अत्थ + आलोअण = अत्थालोअण; इत्यादि। यों अन्य स्वरों की संधि-स्थिति एवं 'ए' अथवा 'ओ' की संधि-स्थिति का अभाव बतलाने के लिये 'ए' अथवा 'ओ' का मूल-सूत्र में उल्लेख किया गया है।

तृतीय गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार है:-

अर्थालोचन-तरला इतरकवीनां भ्रमन्ति बुद्धयः ।
अर्थाएव निरारम्भं यन्ति हृदयं कवीन्द्राणाम् ॥ २ ॥

वधूकाया:-संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वहुआइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-४३ दीर्घ 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व 'उ' ३-२९ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में उकारान्त स्त्रीलिंग में 'या:' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर वहुआई रूप सिद्ध हो जाता है।

नखोल्लेखने संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप णहुल्लिहणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से दोनों 'ख' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-८४ से 'ओ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; १-१४६ से प्रथम 'ए' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'इ' के स्थान पर प्राकृत में भी 'ए' की प्राप्ति होकर *णहुल्लिहणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवध्नत्याः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आवन्धन्तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'ध' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के आगे 'ध' व्यञ्जन होने से अनुस्वार; के स्थान पर 'न्' की प्राप्ति; ३-१८१ से संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी वर्तमान कृदन्त के अर्थ में 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१८२ से प्राप्त 'न्त' प्रत्यय में स्त्रीलिंग होने से 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति; तदनुसार 'न्ती' की प्राप्ति; और षष्ठी विभक्ति के एक वचन में ईकारान्त स्त्रीलिंग में ३-२९ से संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आवन्धन्तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

कञ्चुकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कञ्चुअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१७७ से द्वितीय 'क' का लोप; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कञ्चुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अंगे संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'अंगे' ही होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग अथवा नपुंसक लिंग में 'ङि' के स्थानीय रूप 'इ' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' की की प्राप्ति होकर *अंगे* रूप सिद्ध हो जाता है।

मकर-ध्वज-शर-धोरणि-धारा-छेदा-संस्कृत वाक्यांश रूप है। इसका प्राकृत रूप मयर-द्धय-सर-धोरणि-धारा-छेअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या–१–१७७ से 'क्' का लोप; १–१८० से शेष रहे 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; २–७९ से 'व्' का लोप; २–८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'धध' की प्राप्ति; २–९० से प्राप्त पूर्व 'ध' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति; १–१७७ से 'ज्' का लोप; १–१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १–२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १–१७७ से 'द्' का लोप और १–४ से अन्त्य दीर्घ स्वर आ के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर *मयर-द्धय-सर-धोरणि-धारा-छेअ* रूप सिद्ध हो जाता है। *छ* की सिद्धि सूत्र-संख्या १–६ में की गई है।

दृश्यन्ते–संस्कृत किया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप दीसन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या–३–१६१ से 'दृश्य' के स्थान पर 'दीस्' आदेश ४–२३९ से हलन्त प्राप्त 'दीस्' धातु में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३–१४२ से वर्तमान काल के बहु वचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दीसन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

उपमासु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उवमासु होता है इसमें सूत्र-संख्या १–२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति, और ४-४४८ से सप्तमी विभक्ति के बहु वचन में आकारान्त स्त्री लिंग में 'सुप्' प्रत्यय की प्राप्ति; एवं १–११ से अन्त्य व्यञ्जन प्रत्ययस्थ 'प्' का लोप होकर *उवमासु* रूप सिद्ध हो जाता है।

अपर्याप्तेभ (कलभ) दन्तावभासम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अपज्जत्तेभ–कलभ दन्तावहासं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २–८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १–८४ से प्राप्त 'ज्जा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २–७७ से 'प्' का लोप २–८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति १–१८७ से तृतीय 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर *अपज्जत्तेभ–कलभ–दन्तावहासं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऊरुयुगम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ऊरुजुअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ग्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक

लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर ऊरुजुअं रूप सिद्ध हो जाता है।

तदेव संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तं एव होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से (संस्कृत मूल रूप तत् में स्थित) अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार और 'एव' की स्थिति संस्कृत वत् ही होकर तं एव रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदित बिस दण्ड विरसम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मलिअ-बिस-दण्ड-विरसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१२६ से 'मृद्' धातु के स्थान पर 'मल्' आदेश; ३-१५६ से प्राप्त रूप 'मल' में विकरण प्रत्यय रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मलिअ-बिस-दण्ड-विरसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आलक्षयामहे सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप आलक्खिमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; ४-२३९ से हलन्त 'धातु' आलक्ख में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५५ से 'ख' में प्राप्त 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; और ३-१४४ से उत्तम पुरुष याने तृतीय पुरुष के बहु-वचन में वर्तमान काल में 'महे' के स्थान पर 'मो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आलक्खिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इदानीम् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप एण्हिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३४ से संपूर्ण 'अव्यय रूप' 'इदानीम्' के स्थान पर प्राकृत में 'एण्हिं' आदेश की प्राप्ति होकर '*एण्हिं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अहो! संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'अहो' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२१७ की वृत्ति से 'अहो' रूप की यथा-स्थिति संस्कृत वत् ही होकर '*अहो*' अव्यय सिद्ध हो जाता है।

आश्चर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अच्छरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२१ से 'श्च' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; २-६७ से 'र्य' के स्थान पर 'रिअ' आदेश और १-२३ से हलन्त अन्त्य 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्राकृत रूप '*अच्छरिअं*' सिद्ध हो जाता है।

अर्थालोचन-तरला संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अत्थालोअण-तरला होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से रेफ रूप हलन्त 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति; १-५ से प्राप्त 'अत्थ' के अन्त्य 'अ' को आगे रहे हुए 'आलोचन = आलोअण' के आदि 'आ' के साथ संधि होकर 'अत्था' रूप की प्राप्ति; १-१७७ से

'थ्' का लोप; १–२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३–३१ से स्त्रीलिंग–अर्थ में मूल प्राकृत विशेषण रूप 'तरल' में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृतीय प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस्' का प्राकृत में लोप होकर *'अत्थालोअण–तरला'* रूप सिद्ध हो जाता है।

इतर–कवीनाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *इअर–कईणं* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–१७७ से 'त्' और 'व' का लोप; ३–१२ से मूल रूप 'कवि' में स्थित अन्त्य ह्रस्व 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति; ३–६ से संस्कृतीय षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'आम्' के स्थानीय रूप 'नाम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की आदेश–प्राप्ति और १–२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर 'इअर–कईणं' रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमन्ति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप भमन्ति होता है। इसमें सूत्र–संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; ४–२३९ से हलन्त धातु 'भम्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; और ३–१४२ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के बहुवचन में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भमन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुद्धयः संस्कृत प्रथमान्त बहुवचन रूप है। इसका प्राकृत रूप बुद्धीओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या–३–२७ से मूल रूप 'बुद्धि' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति एवं ३–२७ से ही संस्कृतीय प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस्'=अस्' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बुद्धीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्थाः संस्कृत प्रथमान्त बहुवचन रूप है। इसका प्राकृत रूप (यहां पर) अत्थ है। इसमें सूत्र-संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; २–८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २–८९ से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति; ३–१२ से प्राप्त रूप 'अत्थ' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृतीय प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस' का प्राकृत में लोप; और १-४ प्राकृत में प्राप्त बहुवचनान्त रूप 'अत्था' में स्थित अन्त्य दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर *'अत्थ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एव' संस्कृत निश्चय वाचक अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'च्चेअ' होता है। इसमें सूत्र–संख्या-२–१८४ से 'एव' के स्थान पर 'चेअ' आदेश और २-९९ से प्राप्त 'चेअ' में स्थित 'च्' का द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति होकर 'च्चेअ' रूप सिद्ध हो जाता है।

निरारम्भम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन रूप है। इसका प्राकृत रूप भी निरारम्भम् ही होता है। इसमें एकरूपता होने के कारण से साधनिका की आवश्यकता न होकर अथवा ३-५ से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्राकृत में भी द्वितीया-विभक्ति के एक वचन में *निरारम्भम्* रूप ही सिद्ध करते हैं क्योंकि

इसका यान्ति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप एन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या-(हेम०) ३-३-६ से मूल धातु 'इण्' की प्राप्ति; संस्कृतीय विधानानुसार मूल धातु 'इण्' में स्थित अन्त्य हलन्त 'ण्' की इत्संज्ञा होकर लोप; ४-२३७ से प्राप्त धातु 'इ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; और ३-१४२ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के बहु वचन में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एन्ति रूप सिद्ध हो जाता है।

हृदयम संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिअयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर हिअयं रूप सिद्ध हो जाता है।

कवीन्द्राणाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कइन्दाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; ३-१२ से प्राप्त प्राकृत रूप 'कइन्द' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; ३-६ से संस्कृतीय षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में 'आम्' प्रत्यय के स्थानीय रूप 'णाम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर कइन्दाणं रूप सिद्ध हो जाता है। १-७ ॥

स्वरस्योद्वृत्ते ॥ १-८ ॥

व्यञ्जन-संपृक्तः स्वरो व्यञ्जने लुप्ते योवशिष्यते स उद्वृत्त इहोच्यते।
स्वरस्य उद्वृत्ते स्वरे परे संधिर्न भवति ॥
विगसिज्जन्त-महा-पसु-दंसण-संभम-परोप्परारूढा।
गयणे च्चिअ गन्ध-उडिं कुणन्ति तुह कउल-णारीओ ॥
निसा-अरो। निसि-अरो। रयणी-अरो। मणुअत्तं ॥
बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः। कुम्भ-आरो कुम्भारो। सु-उरिसो सूरिसो ॥
क्वचित् संधिरेव सालाहणो चक्काओ ॥
अतएव प्रतिषेधात् समासे पि स्वरस्य संधौ भिन्नपदत्वम् ॥

अर्थ—व्यञ्जन में मिला हुआ स्वर उस समय में 'उद्वृत्त-स्वर' कहलाता है; जबकि वह व्यञ्जन लुप्त हो जाता है और केवल 'स्वर' ही शेष रह जाता है। इस प्रकार अवशिष्ट 'स्वर' की संज्ञा 'उद्वृत्त स्वर' होती है। ऐसे उद्वृत्त स्वरों के साथ में पूर्वस्थ स्वरों की संधि नहीं हुआ करती है। इसका तात्पर्य यह है कि उद्वृत्त स्वर अपनी स्थिति को ज्यों की त्यों बनाये रखते हैं और पूर्वस्थ रहे हुए स्वर के साथ संधि-योग नहीं करते हैं। जैसे कि मूल गाथा में ऊपर 'गन्ध-पुटीम्' के प्राकृत रूपान्तर में 'गन्ध-उडिं' होने पर 'ध' में स्थित 'अ' की 'पुटीम्' में स्थित 'प्' का

लोप होने पर उद्वृत्त स्वर रूप 'ब' के साथ संधि का अभाव प्रदर्शित किया गया है। यों 'उद्वृत्त-स्वर' की स्थिति को जानना चाहिये।

ऊपर सूत्र की वृत्ति में उद्धृत प्राकृत-गाथा का संस्कृत-रूपान्तर इस प्रकार है:-

विशस्यमान-महा पशु-दर्शन-संभ्रम-परस्परारूढाः ॥
गगने एव गन्ध-पुटीम् कुर्वन्ति तव कौल-नार्यः ॥

अर्थ-कोई एक दर्शक अपने निकट के व्यक्ति को कह रहा है कि-'तुम्हारी ये उच्च-संस्कारों वाली स्त्रियाँ इन बड़े बड़े पशुओं को मारे जाते हुए देख कर घबराई हुई एक दूसरे की ओट में पाने परस्पर में छिपने के लिये प्रयत्न करती हुई (और अपने चित्त को इस घृणास्पद ओकरस्थान से हटाने के लिये) आकाश में ही (अर्थात् निराकार रूप से ही मानों) गन्ध-पात्र (की रचना करने जैसा प्रयत्न) करती हैं (अथवा कर रही हैं) काल्पनिक-चित्रों की रचना कर रही हैं।

उद्वृत्त-स्वरों की संधि-अभाव-प्रदर्शक कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-निशाचरः = निसा-अरो; निशाचरः = निसि-अरो; रजनी-चरः = रयणी-अरो; मनुजत्वम् = मणुअत्तं। इन उदाहरणों में 'च' और 'ज' का लोप होकर 'अ' स्वर को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त हुई है और इसी कारण से प्राप्त उद्वृत्त स्वर 'अ' की संधि पूर्वस्थ स्वर के साथ नहीं होकर उद्वृत्त-स्वर अपने स्वरूप में ही अवस्थित रहा है; यों सर्वत्र उद्वृत्त स्वर की स्थिति को समझ लेना चाहिये। 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से कभी कभी किसी किसी शब्द में उद्वृत्त स्वर की पूर्वस्थ स्वर के साथ वैकल्पिक रूप से संधि होती हुई देखी जाती है। जैसे-कुम्भकारः = कुम्भ-आरो = अथवा कुम्भारो। सु-पुरुषः = सु-उरिसो = अथवा सूरिसो। इन उदाहरणों में उद्वृत्त स्वर की वैकल्पिक रूप से संधि प्रदर्शित की गई है। किन्हीं किन्हीं शब्दों में उद्वृत्त स्वर की संधि निश्चित रूप से भी पाई जाती है। जैसे-शातवाहनः = साल + आहणो = सालाहणो और चक्रवाकः = चक्क + आओ = चक्काओ। इन उदाहरणों में उद्वृत्त स्वर की संधि हो गई है। परन्तु सर्व-सामान्य सिद्धान्त यह निश्चित किया गया है कि उद्वृत्त स्वर की संधि नहीं होती है; तदनुसार यदि अपवाद रूप से कहीं कहीं पर उस उद्वृत्त स्वर की संधि हो जाय तो ऐसी अवस्था में भी उस उद्वृत्त स्वर का पृथक्-अस्तित्व अवश्य समझा जाना चाहिये और इस अपेक्षा से उस उद्वृत्त स्वर को 'भिन्नत्व' पद वाला ही समझा जाना चाहिये।

विशस्यमान संस्कृत विशेषण-रूप है। इसका प्राकृत रूप विससिज्जन्त होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-१६० से संस्कृत की भाव-कर्म-विधि में प्राप्तव्य प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१८१ से संस्कृत में प्राप्तव्य वर्तमान-कृदन्त-विधि के प्रत्यय 'मान' के स्थान पर प्राकृत में 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विससिज्जन्त* रूप सिद्ध हो जाता है।

महा-पशु-दर्शन संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृतरूप महा-पसु-दंसण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से प्रथम "श" के स्थान पर "स" की प्राप्ति १-२६ से "द" पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से

रेफ रूप 'र्' का लोप; १-२६० से द्वितीय 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *'महा-पसु-दंसण'* रूप सिद्ध हो जाता है।

संभ्रम-परम्परारूढा संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संभम-परोप्परारूढा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-६२ से द्वितीय 'र' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'म्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'म्' के पश्चात् रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-१२ से अन्त्य शब्द 'रूढ' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृत में प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस् = अस्' का प्राकृत में लोप होकर-*संभम-परोप्परा रूढा* रूप सिद्ध हो जाता है।

गगने संस्कृत सप्तम्यन्त एक वचन रूप है। इसका प्राकृत रूप गयणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से द्वितीय 'ग्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-११ से संस्कृतीय सप्तमी विभक्ति के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'ङि = इ' के स्थान पर प्राकृत में 'डे' प्रत्यय की प्राप्ति; तदनुसार प्राप्त प्रत्यय 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ पद 'गयण' में स्थित अन्त्य 'ण' के 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप एवं तत्पश्चात् शेष हलन्त 'ण्' में पूर्वोक्त 'ए' प्रत्यय की संयोजना होकर *'गयणे'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एव' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'च्चिअ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'चिअ' आदेश और २-९९ से प्राप्त 'चिअ' में स्थित 'च्' को द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति होकर *च्चिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गन्ध-पुटीम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप-'गंध-उडिं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; १-८ से पूर्वोक्त 'प्' का लोप होने से शेष 'उ' को उद्वृत्त स्वर के रूप में प्राप्ति और संधि का अभाव; १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-३६ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *गन्ध-उडिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुर्वन्ति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप कुणन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या-४-६५ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' के स्थानापन्न रूप 'कुर्व' के स्थान पर प्राकृत में 'कुण' आदेश; और ३-१४२ से वर्तमान-काल के प्रथम पुरुष के बहु वचन में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुणन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

तव संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तुह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से संस्कृतीय सर्वनाम 'युष्मत्' के षष्ठी विभक्ति के एक वचन में प्राप्त रूप 'तव' के स्थान पर प्राकृत में *तुह* आदेश-प्राप्ति होकर 'तुह' रूप सिद्ध हो जाता है।

कौल-नार्यः संस्कृत प्रथमान्त बहु वचन रूप है। इसका प्राकृत रूप कउल-णारीओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति और ३-२७ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में संस्कृत में प्राप्तव्य प्रत्यय 'जस्=अस् के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की आदेश प्राप्ति होकर *कउल-णारीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निशा-चरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप निसा-अरो और निसि-अरो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से "श्" के स्थान पर "स्" की प्राप्ति; १-७२ से द्वितीय रूप में "आ" के स्थान पर वैकल्पिक रूप से "इ" की प्राप्ति; १-१७७ से "च्" का लोप; १-८ से लोप हुए "च्" के पश्चात् शेष रहे हुए "अ" को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने से पूर्वस्थ स्वर के साथ संधि का अभाव; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में संस्कृत में प्राप्तव्य "सि=स्" के स्थान पर प्राकृत में "डो=ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *निसा-अरो* और *निसि-अरो* सिद्ध हो जाते हैं।

रजनी-चरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रयणी-अरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से "ज्" और "च्" का लोप; १-१८० से लोप हुए "ज्" के पश्चात् शेष रहे हुए "अ" के स्थान पर "य" की प्राप्ति; १-२२८ से "न्" के स्थान पर "ण्" की प्राप्ति; १-८ से लोप हुए "च्" के पश्चात् शेष रहे हुए "अ" को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने से पूर्वस्थ स्वर के साथ संधि का अभाव और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रयणी अरो* रूप सिद्ध हो जाता है। *मनुजत्वम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणुअत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२२८ से "न्" के स्थान पर "ण्" की प्राप्ति; १-१७७ से "ज्" का लोप; २-७९ से "व्" का लोप; २-८९ से लोप हुए 'व्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *मणुअत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुम्भकारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कुम्भ-आरो और कुम्भारो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; १-८ की वृत्ति से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने से पूर्वस्थ स्वर के साथ वैकल्पिक रूप से संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कुम्भ-आरो* और *कुम्भारो* सिद्ध हो जाते हैं।

सु-पुरुषः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सु-उरिसो और सूरिसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; १-८ की वृत्ति से लोप हुए 'प्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने से पूर्वस्थ स्वर 'उ' के साथ वैकल्पिक रूप से संधि; तदनुसार १-५ से द्वितीय रूप में दोनों 'उ' कारों के स्थान पर दीर्घ 'ऊ' कार की प्राप्ति; १-१११ से 'र' में स्थित 'उ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग

में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप–*कु–उरिसो* और *सुरिसो* सिद्ध हो जाते हैं।

शात–वाहनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप–(साल + आहणो =) सालाहणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या–१–२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १–२११ से 'त' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १–१७७ से 'व्' का लोप; १–८ की वृत्ति से लोप हुए 'व्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने पर भी पूर्वस्थ 'ल' में स्थित 'अ' के साथ संधि; १–२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सालाहणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चक्रवाकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चक्काओ होता है। इसमें सूत्र–संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-१७७ से 'व्' और द्वितीय-(अन्त्य)-'क्' का लोप; १-८ की वृत्ति से लोप हुए 'व्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'आ' को उद्वृत्त स्वर की संज्ञा प्राप्त होने पर भी १-५ से पूर्वस्थ 'क्क' में स्थित 'अ' के साथ उक्त 'आ' की सन्धि और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर चक्काओ रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १–८ ॥

त्यादेः ॥ १–९ ॥

तिवादीनां स्वरस्य स्वरे परे संधि र्न भवति ॥ भवति इह । होइ इह ॥

अर्थः–धातुओं में अर्थात् क्रियाओं में संयोजित किये जाने वाले काल बोधक प्रत्यय 'तिव्' 'तः' और 'अन्ति' आदि के प्राकृतीय रूप 'इ', 'ए' 'न्ति', 'न्ते' और 'इरे' आदि में स्थित अन्त्य 'स्वर' का आगे रहे हुए सजातीय स्वरों के साथ भी संधि नहीं होती है। जैसेः—भवति इह। होइ इह। इस उदाहरण में प्रथम 'इ' तिवादि प्रत्यय सूचक है और आगे भी सजातीय स्वर 'इ' की प्राप्ति हुई; परन्तु फिर भी दोनों 'इकारों' की परस्पर में संधि नहीं हो सकती है। यों संधि–गत विशेषता को ध्यान में रखना चाहिये।

भवति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप होइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४–६० से संस्कृत धातु 'भू' के स्थानीय रूप विकरण–प्रत्यय सहित 'भव' के स्थान पर प्राकृत में 'हो' आदेश और ३–१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *होइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

इह संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी इह ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-४४८ से साधनिका की आवश्यकता नहीं होकर 'इह' रूप ही रहता है। १-९॥

लुक् ॥ १–१० ॥

स्वरस्य स्वरे परे बहुलं लुग् भवति ॥ त्रिदशेशः । तिअसीसो ॥ निःश्वासोच्छ्वासौ । नीसासूसासा ॥

अर्थः–प्राकृत-भाषा में (संधि-योग्य) स्वर के आगे स्वर रहा हुआ हो तो पूर्व के स्वर का अक्सर करके लोप हो जाया करता है। जैसेः–त्रिदश + ईशः = त्रिदशेशः = तिअस + ईसो = तिअसीसो और निःश्वासः + उच्छ्वासः निश्वासोच्छ्वासौ=नीसासो + ऊसासो = नीसासूसासा । इन उदाहरणों में से प्रथम उदाहरण में 'अ + ई' में से 'अ' का लोप हुआ है और द्वितीय उदाहरण में 'ओ + ऊ' में से ओ का लोप हुआ है। यों 'स्वर के बाद स्वर आने पर पूर्व स्वर के लोप' की व्यवस्था समझ लेनी चाहिये।

त्रिदश + ईशः–संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिअसीसो होता है इसमें सूत्र-संख्या–२–७९ से 'त्रि' में स्थित 'र्' का लोप; १–१७७ से 'द्' का लोप; १-२६० से दोनों 'श' कारों के स्थान पर क्रम से दो 'स' कारों की प्राप्ति; १–१० से प्राप्त प्रथम 'स' में स्थित अन्त्य 'अ' स्वर के आगे 'ई' स्वर की प्राप्ति होने से लोप; तत्पश्चात् शेष हलन्त 'स्' में आगे रही हुई 'ई' स्वर को संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तिअसीसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निःश्वासः + उत् + श्वासः=*निश्वासोच्छ्वासौ* संस्कृत द्विवचनांत रूप है। इसका प्राकृत रूप (द्विवचन का अभाव होने से) बहुवचनांत रूप–नीसासो + ऊसासो = नीसासूसासा होता है। इसमें सूत्र-संख्या–१–१३ से 'निः' में स्थित विसर्ग के स्थानीय रूप 'र्' का लोप; १–९३ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष 'नि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ प्राप्ति; १–२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २–७९ से 'व' का लोप; और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होने से प्रथम पद 'नीसासो' की प्राप्ति; द्वितीय पद में १–११ की वृत्ति से 'उत्' में स्थित हलन्त 'त्' का लोप; १–४ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति; १–२६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २–७९ से 'व्' का लोप; ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होने से द्वितीय पद 'ऊसासो' की प्राप्ति; १–१० से प्रथम पद 'नीसासो' के अन्त्य व्यञ्जन 'सो' में स्थित 'ओ' स्वर के आगे 'ऊसासो' का 'ऊ' स्वर रहने से लोप; तत्पश्चात् शेष हलन्त व्यञ्जन 'स्' में 'ऊ' स्वर की संधि संयोजना; ३-१३० से द्विवचन के स्थान पर बहु वचन की प्राप्ति; तदनुसार ३–४ से प्राप्त रूप 'नीसासूसास' में प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत-प्रत्यय 'जस्' का प्राकृत में लोप और ३–१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर समासात्मक नीसासूसासा रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १–१० ॥

अन्त्यव्यञ्जनस्य ॥ १-११ ॥

शब्दानां यद् अन्त्यव्यञ्जनं तस्य लुग् भवति ॥ जाव । ताव । जसो । तमो । जम्मो ॥ समासे तु वाक्य-विभक्त्यपेक्षायाम् अन्त्यत्वम् अनन्त्यत्वं च । तेनोभयमपि भवति । सद्भिक्षुः । सभिक्खू ॥ सज्जनः । सज्जणो ॥ एतद् गुणाः । एअ-गुणा ॥ तद् गुणाः । तग्गुणा ॥

अर्थः—संस्कृत-शब्दों में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे–यावत् = जाव; तावत् = ताव; यशस् = यशः = जसो; तमस् = तमः = तमो; और जन्मन् = जन्म = जम्मो; इत्यादि। समास-गत शब्दों में मध्यस्थ शब्दों के विभक्ति-बोधक प्रत्ययों का लोप हो जाता है; एवं मध्यस्थ शब्द गौण हो जाते हैं तथा अन्त्य शब्द मुख्य हो जाता है; तब मुख्य शब्द में ही विभक्ति-बोधक प्रत्यय संयोजित किये जाते हैं; तदनुसार मध्यस्थ शब्दों में स्थित अन्तिम हलन्त व्यञ्जन को कभी कभी तो 'अन्त्य व्यञ्जन' की संज्ञा प्राप्त होती है और कभी कभी 'अन्त्य व्यञ्जन' की संज्ञा नहीं भी प्राप्त होती है; ऐसी व्यवस्था के कारण से समास गत मध्यस्थ शब्दों के अन्तिम हलन्त व्यञ्जन 'अन्त्य' और 'अनन्त्य' दोनों प्रकार से कहे जा सकते हैं। तदनुसार सूत्र-संख्या १-११ के अनुसार जब समास-गत मध्यस्थ शब्दों में स्थित अन्तिम हलन्त व्यञ्जन को 'अन्त्य-व्यञ्जन' की संज्ञा प्राप्त हो तो उस 'अन्त्य-व्यञ्जन' का लोप हो जाता है और यदि उस व्यञ्जन को 'अन्त्य व्यञ्जन' नहीं मानकर 'अनन्त्य व्यञ्जन' माना जायगा तो उस हलन्त व्यञ्जन का लोप नहीं होगा। जैसे–सद्-भिक्षुः = सभिक्खू इस उदाहरण में 'सद्' शब्द में स्थित 'द्' को 'अन्त्य हलन्त-व्यञ्जन' मानकर के इसका लोप कर दिया गया है। सत् + जनः = सज्जनः = सज्जणो; इसमें 'सत्' के 'त्' को 'अनन्त्य' मान करके 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' के रूप में परिणत किया है। अन्य उदाहरण इस प्रकार है–एतद्गुणाः=एअ-गुणा और तद्-गुणाः = तग्गुणा; इन उदाहरणों में क्रम से अन्त्यत्व और अनन्त्यत्व माना गया है; तदनुसार क्रम से लोप-विधान और द्वित्व-विधान किया गया है। यों समास-गत मध्यस्थ शब्दों के अन्तिम हलन्त व्यञ्जन की 'अन्त्य-स्थिति' तथा 'अनन्त्य-स्थिति' समझ लेनी चाहिये।

यावत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जाव होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर '*जाव*' रूप सिद्ध हो जाता है।

तावत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप ताव होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर '*ताव*' रूप सिद्ध हो जाता है।

यशस् (= यशः) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप १-३२ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'जस' को पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त (में प्राप्त) पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तमस् (= तमः) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तमो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य हलन्त व्यंजन 'स्' का लोप; १-३२ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'तम' को पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त (में प्राप्त) पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जन्मन् = (जन्म) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से प्रथम हलन्त 'न्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'न्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप; १-३२ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'जम्म' को पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त (में प्राप्त) पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्मो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्भिक्षुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सभिक्खू होता है। इसमे सूत्र-संख्या १-११ से 'द्' का लोप; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *सभिक्खू* रूप सिद्ध हो जाता है।

सज्जनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्जणो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-११ की वृत्ति से प्रथम हलन्त 'ज्' को अनन्त्यत्व की संज्ञा प्राप्त होने से इस प्रथम हलन्त 'ज्' को लोपाभाव की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सज्जणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

एतद्गुणाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एअ-गुणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'त्' का लोप; १-११ से हलन्त 'द्' को अन्त्य-व्यञ्जन की संज्ञा प्राप्त होने से 'द्' का लोप; ३-४ से प्राकृत में प्राप्त रूप 'एअ-गुण' में प्रथमा-विभक्ति के बहुवचन में संस्कृतीय-प्रत्यय 'जस्' की प्राप्ति होकर लोप और ३-१२ से प्राप्त तथा लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *एअ-गुणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

तद्गुणाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत-रूप तग्गुणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से नहीं किन्तु २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ग्' को द्वित्व 'ग्ग्' की प्राप्ति; शेष साधनिका उपरोक्त 'एअ-गुणा' के समान ही ३-४ तथा ३-१२ से होकर *तग्गुणाः* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१-११॥

न श्रदुदोः ॥ १-१२ ॥

श्रद् उद् इत्येतयोरन्त्य व्यञ्जनस्य लुग् न भवति ॥ सद्दहिअं । सद्धा । उग्गयं । उन्नयं ॥

अर्थः—'श्रद्' और 'उद्' में रहे हुए अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'द्' का लोप नहीं होता है। जैसेः—श्रद् + धितम् = सद्दहिअं; श्रद् + धा = श्रद्धा = सद्धा; उद् + गतम् = उग्गयं और उद् + नतम् = उन्नयं। प्रथम दो उदाहरणों में 'श्रद्' में स्थित 'द्' यथावत् अवस्थित है; और अन्त के दो उदाहरणों में 'उद्' में स्थित 'द्' अक्षरान्तर होता हुआ अपनी स्थिति को प्रदर्शित कर रहा है; यों लोपाभाव की स्थिति 'श्रद्' और उद् में व्यक्त की गई है।

श्रद्धितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दहिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'श्रा' 'श्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से श् के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-१२ से प्रथम 'द्' का लोपाभाव; १-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सद्दहिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। *श्रद्धा* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्धा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'श्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और १-१२ से 'द्' का लोपाभाव होकर *सद्धा* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद् + *गतम्* सर्वसंस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उग्गयं होता है इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का (प्रच्छन्न रूप से) लोप; २-८९ से (प्रच्छन्न रूप से) लुप्त 'द्' के पश्चात् आगे रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उग्गयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद् + नतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उन्नयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का (प्रच्छन्न रूप से) लोप; २-८९ से (प्रच्छन्न रूप से) लुप्त 'द्' के स्थान पर आगे रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उन्नयं* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१२॥

निर्दुरोर्वा ॥ १-१३ ॥

निर् दुर् इत्येतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य वा लुग् भवति ॥ निस्सहं नीसहं। दुस्सहो दूसहो। दुक्खिओ दुहिओ ॥

अर्थः—'निर्' और 'दुर्' इन दोनों उपसर्गों में स्थित अन्त्य हलन्त-व्यञ्जन 'र्' का वैकल्पिक रूप से लोप होता है। जैसेः—निर् + सहं (निःसहं) के प्राकृत रूपान्तर निस्सहं और नीसहं होते हैं। दुर् + सहः (=दुस्सहः) के प्राकृत रूपान्तर दुस्सहो और दूसहो होते हैं। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि 'निस्सहं' और 'दुस्सहो' में 'र्'

का (प्रच्छन्न रूप से) सद्भाव है; जबकि 'नीसहं' और 'दूसहो' में 'र्' का लोप हो गया है। दुःखितः = दुक्खिओ और दुहिओ। इन उदाहरणों में से प्रथम में 'विसर्ग' के पूर्व रूप 'र्' का प्रच्छन्न रूप से 'क्' रूप में सद्भाव है और द्वितीय उदाहरण में उक्त 'र्' का लोप हो गया है। यों वैकल्पिक रूप से 'दुर्' और 'निर्' में स्थित 'र्' का लोप हुआ करता है।

निःसहं (= निर् + सहं) संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप निस्सहं और नीसहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १–१३ से 'र्' के स्थान पर लोपाभाव होने से 'विसर्ग' की प्राप्ति; ४-४४८ से प्राप्त 'विसर्ग' के स्थान पर आगे 'स' होने से 'स्' की प्राप्ति; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *निस्सहं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप–(निर् + सहं =) नीसहं में सूत्र-संख्या १–१३ से 'र्' का लोप; १–९३ से 'नि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *नीसहं* भी सिद्ध हो जाता है।

दुःसहः (= दुर् सहः) संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप दुस्सहो और दूसहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १–१३ से 'र्' का लोपाभाव; ४–४४८ से अलुप्त 'र्' के स्थानीय रूप 'विसर्ग' के स्थान पर आगे 'स्' वर्ण होने से 'स्' की प्राप्ति; और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत-प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दुस्सहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप–(दुर् + सहः =) दूसहो में सूत्र-संख्या १-१३ से 'र्' का लोप; १–११५ से ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय-रूप *दूसहो* भी सिद्ध हो जाता है।

दुःखितः (= दुर् + खितः) संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दुक्खिओ और दुहिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १–१३ से 'र्' के स्थानीय रूप विसर्ग का लोपा भाव; ४–४४८ से प्राप्त 'विसर्ग' के स्थान पर जिह्वामूलीय रूप हलन्त 'क्' की प्राप्ति; १–१७७ से 'त्' का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दुक्खिओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप–(दुःखितः =) दुहिओ में सूत्र-संख्या १–१३ से 'र्' के स्थानीय रूप विसर्ग' का लोप; १–१८७ से 'ख्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १–१७७ से 'त्' का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *दुहिओ* सिद्ध हो जाता है॥ १–१३॥

स्वरेन्तरश्च ॥ १-१४ ॥

अन्तरो निर्दुरोश्चान्त्य व्यञ्जनस्य स्वरे परे लुग् न भवति ॥ अन्तरप्पा । निरन्तरं । निरवसेसं ॥ दुरुत्तरं । दुरवगाहं ॥ क्वचिद् भवत्यपि । अन्तोवरि ॥

अर्थ-'अन्तर्', 'निर्' और 'दुर्' उपसर्गो में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'र्' का उस अवस्था में लोप नहीं होता है जब कि इस अन्त्य 'र्' के आगे 'स्वर' रहा हुआ हो। जैसे-अन्तर् + आत्मा = अन्तरप्पा । निर् + अन्तरं निरन्तरं । निर् + अवशेषम् = निरवसेसं । 'दुर्' के उदाहरण:-दुर् + उत्तरं = दुरुत्तरं और दुर् + अवगाहं = दुरवगाहं कभी कभी उक्त उपसर्गों में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'र्' के आगे स्वर रहने पर भी लोप हो जाया करता है। जैसे-अन्तर + उपरि = अन्तरोपरि = अन्तोवरि । अन्तर् + आत्मा अन्तरात्मा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अन्तरप्पा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' का लोपाभाव; १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-५ से हलन्त 'र्' के साथ प्राप्त 'अ' की संधि; २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-११ से मूल संस्कृत शब्द-आत्मन् के अन्त्य 'न्' का लोप, ३-४९ तथा ३-५६ की वृत्ति से मूल संस्कृत शब्द 'आत्मन्' में 'न्' के लोप हो जाने के पश्चात् शेष अकारान्त रूप में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर *अन्तरप्पा* रूप सिद्ध हो जाता है।

निरन्तरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निरन्तरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ से 'निर' में स्थित अन्त्य 'र्' का लोपाभाव; १-५ से हलन्त 'र्' के साथ आगे रहे हुए 'अ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निरन्तरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर् + अवशेषम् = *निरवशेषम्* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निरवसेसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' का लोपाभाव; १-५ से हलन्त 'र्' के साथ आगे रहे हुए 'अ' की संधि १-२६० से 'श' और 'ष' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निरवसेसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुर् + उत्तरं = *दुरुत्तरम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दुरुत्तरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ से 'र्' का लोपा भाव; १-५ से हलन्त 'र्' के साथ 'उ' की संधि और शेष साधनिका ३-२५ और १-२३ से 'निरवसेसं' के समान ही होकर *दुरुत्तरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुर् + अवगाहम् = *दुरवगाहम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भी दुरवगाहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ से 'र्' का लोपा भाव; १-५ से हलन्त 'र्' के साथ 'अ' की संधि और शेष साधनिका ३-२५ तथा १-२३ से निरवसेसं के समान ही होकर *दुरवगाहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अन्तरोपरि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अन्तोवरि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४ की वृत्ति से प्रथम 'र्' का लोप; १-१० से 'त' में स्थित 'अ' के आगे 'ओ' आ जाने से लोप; १-५ से हलन्त 'त्' के साथ आगे रहे हुए 'ओ' की संधि; और १-२३१ से 'प्' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति होकर *अन्तोवरि* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१४ ॥

स्त्रियामादविद्युतः ॥ १-१५ ॥

स्त्रियां वर्तमानस्य शब्दस्यान्त्यव्यञ्जनस्य आत्वं भवति विद्युच्छब्दं वर्जयित्वा । लुगपवादः ॥ सरित् । सरिआ ॥ प्रतिपद् । पाडिवआ ॥ संपद् । संपआ ॥ बहुलाधिकाराद् ईषत्स्पृष्टतर य श्रुतिरपि । सरिया । पाडिवया । संपया ॥ अविद्युत इति किम् ॥ विज्जू ॥

अर्थः—विद्युत् शब्द को छोड़ करके शेष 'अन्त्य हलन्त-व्यञ्जन वाले' संस्कृत स्त्री लिंग (वाचक) शब्दों के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर 'आत्व = आ' की प्राप्ति होती है। यों व्यञ्जनान्त स्त्री लिंग वाले संस्कृत शब्द प्राकृत में आकारान्त हो जाते हैं। यह सूत्र पूर्वोक्त (१-११ वाले) सूत्र का अपवाद रूप सूत्र है। उदाहरण इस प्रकार हैः—सरित् = सरिआ; प्रतिपद् = पाडिवआ; संपद् = संपआ इत्यादि। 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'आ' स्वर के स्थान पर 'सामान्य स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने वाले' ऐसे 'या' की प्राप्ति भी होती हुई पाई जाती है। जैसेः—सरित् = सरिआ अथवा सरिया; प्रतिपद् = पाडिवआ अथवा पाडिवया और संपद् = संपआ अथवा संपया इत्यादि।

प्रश्नः—'विद्युत्' शब्द का परित्याग क्यों किया गया है?

उत्तरः—चूंकि प्राकृत-साहित्य में 'विद्युत्' का रूपान्तर 'विज्जू' पाया जाता है; अतः परम्परा का उल्लंघन कैसे किया जा सकता है? साहित्य की मर्यादा का पालन करना सभी वैयाकरणों के लिये अनिवार्य है; तदनुसार 'विद्युत् = विज्जू' को इस सूत्र-विधान से पृथक् ही रक्खा गया है इसकी साधनिका अन्य सूत्रों से की जायगी।

सरित् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप सरिआ और सरिया होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५ से प्रथम रूप में हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति होकर क्रम से *सरिआ* और *सरिया* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिपद् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप पाडिवआ और पाडिवया होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से प्रथम 'प' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' आदेश; १-२३१ से द्वितीय 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और १-१५ से हलन्त अन्त्य व्यञ्जन 'द्' के स्थान पर क्रम से दोनों रूपों में 'आ' और 'या' की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप-*पाडिवआ* तथा *पाडिवया* सिद्ध हो जाते हैं।

संपद् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसके प्राकृत रूप संपआ और संपया होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५ से हलन्त अन्त्य व्यञ्जन 'द्' के स्थान पर क्रम से दोनों रूप *संपआ* और *संपया* सिद्ध हो जाते हैं।

विद्युत् संस्कृत स्त्रीलिंग रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्जू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *विज्जू* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१५ ॥

रो रा ॥ १-१६ ॥

स्त्रियां वर्तमानस्यान्त्यस्य रेफस्य रा इत्यादेशो भवति ॥ आत्वापवादः ॥ गिरा। धुरा। पुरा ॥

अर्थः-संस्कृत-भाषा में स्त्रीलिंग रूप से वर्तमान जिन शब्दों के अन्त में हलन्त रेफ 'र्' रहा हुआ है; उन शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में उक्त हलन्त रेफ रूप 'र्' के स्थान पर 'रा' आदेश-प्राप्ति होती है। जैसे:-गिर्=गिरा; धुर्=धुरा और पुर्=पुरा। इस सूत्र को सूत्र-संख्या १-१५ का अपवाद रूप विधान समझना चाहिये। क्योंकि सूत्र-संख्या १-१५ में अन्त्य व्यञ्जन के स्थान पर 'आ' अथवा 'या' की प्राप्ति का विधान है; जबकि इसमें अन्त्य व्यञ्जन सुरक्षित रहता है और इस सुरक्षित रेफ रूप 'र' में 'आ' की संयोजना होती है; अतः यह सूत्र १-१५ के लिये अपवाद रूप है।

गिर् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गिरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६ से अन्त्य रेफ रूप 'र' के स्थान पर 'रा' आदेश होकर *गिरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

धुर् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धुरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६ से अन्त्य रेफ रूप 'र्' के स्थान पर 'रा' की आदेश-प्राप्ति होकर *धुरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुर् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६ से अन्त्य रेफ रूप 'र्' के स्थान पर 'रा' आदेश होकर *पुरा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१६ ॥

क्षुधो हा ॥ १-१७ ॥

क्षुध् शब्दस्यान्त्य व्यञ्जनस्य हादेशो भवति ॥ छुहा ॥

अर्थ-संस्कृत भाषा के 'क्षुध्' शब्द के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ध्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'हा' आदेश-प्राप्ति होती है। जैसे:-क्षुध्=छुहा ॥

क्षुध् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप छुहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति और १-१७ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ध्' के स्थान पर 'हा' आदेश होकर छुहा रूप सिद्ध हो जाता है। १-१७॥

शरदादेरत ॥ १-१८ ॥

शरदादेरन्त्य व्यञ्जनस्य अत् भवति ॥ शरद् । सरओ ॥ भिसक् । भिसओ ॥

अर्थ-संस्कृत भाषा के 'शरद्' 'भिसक्' आदि शब्दों के अन्त्यस्थ हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होती है जैसे-शरद् = सरओ और भिसक् = भिसओ इत्यादि ॥

शरद् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१८ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'द्' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' की प्राप्ति; 'ओ' के पूर्वस्थ 'अ' की इत्संज्ञा होकर लोप होकर सरओ रूप सिद्ध हो जाता है।

भिषक् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिसओ होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१८ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर उपरोक्त 'सरओ' के समान ही 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर भिसओ रूप सिद्ध हो जाता है। १-१८॥

दिक्-प्रावृषोः सः ॥ १-१९ ॥

एतयोरन्त्यव्यञ्जनस्य सो भवति ॥ दिसा । पाउसो ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द 'दिक्' और 'प्रावृट्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर 'स' का आदेश होता है जैसे-दिक् = दिसा और प्रावट् = पाउसो।

दिक् संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप दिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर प्राकृत में 'स' आदेश-प्राप्ति; और ३-३१ की वृत्ति से स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दिसा रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रावृट् (= प्रावृष्) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाउसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१३१ से लोप हुए 'व्' के पश्चात शेष रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-१९ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ट्' (अथवा 'ष्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-३१ से प्राप्त

सरस्वतिबहेन मणिलाल शाह

रूप 'पाउस' को प्राकृत में पुल्लिंगत्व की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पाउसो रूप सिद्ध हो जाता है। १-१९॥

आयुरप्सरसोर्वा ॥ १-२० ॥

एतयोरन्त्य व्यंजनस्य सो वा भवति ॥ दीहाउसो दीहाऊ। अच्छरसा अच्छरा ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द 'आयुष्' और 'अप्सरस्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' और 'स्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'स' की प्राप्ति होती है। जैसेः-दीर्घायुष् = दीहाउसो अथवा दीहाऊ और अप्सरस् = अच्छरसा और अच्छरा।

दीर्घायुष् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दीहाउसो और दीहाऊ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; १-२० से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग रूप 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दीहाउसो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप-(दीर्घायुष्) दीहाऊ में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'ष्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप-*दीहाऊ* भी सिद्ध हो जाता है।

अप्सरस् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अच्छरसा और अच्छरा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-२१ से संयुक्त व्यञ्जन 'प्स' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ् छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; १-२० से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-३१ की वृत्ति से प्राप्त रूप 'अच्छरस' में स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अच्छरसा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय-रूप-(अप्सरस् =) अच्छरा में 'अच्छरस्' तक की साधनिका उपरोक्त रूप के समान; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप और ३-३१ की वृत्ति से प्राप्त रूप 'अच्छर' में स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अच्छरा* सिद्ध हो जाता है। १-२० ॥

ककुभो हः ॥ १-२१ ॥

ककुभ् शब्दस्यान्त्य व्यञ्जनस्य हो भवति ॥ कउहा ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द 'ककुभ्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'भ्' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे-ककुभ् = कउहा।

ककुभ् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; १-२१ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और ३-३१ की वृत्ति से प्राप्त रूप 'कउह' में स्त्रीलिंग-अर्थक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कउहा रूप सिद्ध हो जाता है। १-२१ ॥

धनुषो वा ॥ १-२२ ॥

धनुः शब्दस्यान्त्य व्यञ्जनस्य हो वा भवति ॥ धणुहं । धणू ॥

अर्थ-संस्कृत शब्द 'धनुष्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'ह्' की प्राप्ति होती है। जैसे-धनुः = (धनुष =) धणुहं = और धणू ॥

धनुष् =(धनुः =) संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप धणुहं और धणू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-२२ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप धणुहं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(धनुष् =) धणू में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'ष्' का लोप; १-३२ से प्राप्त रूप 'धणु' को पुल्लिंगत्व की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप धणू भी सिद्ध हो जाता है। १-२२ ॥

मोनुस्वारः ॥ १-२३ ॥

अन्त्य मकारस्यानुस्वारो भवति । जलं फलं वच्छं गिरिं पेच्छ ॥ क्वचिद् अनन्त्यस्यापि । वणम्मि । वणंमि ॥

अर्थः-पद के अन्त में रहे हुए हलन्त 'म्' का अनुस्वार हो जाता है। जैसेः-जलम् = जलं; फलम् = फलं; वृक्षम्=वच्छं और गिरिम् पश्य = गिरिं पेच्छ । किसी किसी पद में कभी कभी अनन्त्य-याने पद के अन्तर्भाग में रहे हुए हलन्त 'म्' का भी अनुस्वार हो जाता है। जैसेः-वने=वणम्मि अथवा वणंमि । इस उदाहरण में अन्तर्भाग में रहे हुए हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है। यों अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

जलम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप जलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर जलं रूप सिद्ध हो जाता है।

फलम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप फलं होता है। इसमें उपरोक्त 'जलं' के समान ही सूत्र-संख्या ३-५ और १-२३ से साधनिका की प्राप्ति होकर फलं रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *वच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गिरिम् संस्कृत द्वितीयान्त एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप गिरिं होता है। इसमें उपरोक्त 'वच्छं' के समान ही सूत्र-संख्या ३-५ और १-२३ से साधनिका की प्राप्ति होकर *गिरिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पश्य संस्कृत आज्ञार्थक लकार के द्वितीय पुरुष के एक वचन का रूप है। इसका प्राकृत रूप पेच्छ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८१ से मूल संस्कृत धातु 'दृश्' के स्थानीय रूप 'पश्य्' के स्थान पर प्राकृत में 'पेच्छ्' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'पेच्छ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार के द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'प्रत्यय-लोप' की प्राप्ति होकर *पेच्छ* क्रियापद-रूप सिद्ध हो जाता है।

वने संस्कृत सप्तम्यन्त एक वचन का रूप है। इसके प्राकृत रूप वणम्मि और वणंमि होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ङि = इ' प्रत्यय के स्थान पर संयुक्त 'म्मि' और १-२३ से 'म्मि' में स्थित हलन्त 'म्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *'वणम्मि'* और *'वणंमि'* सिद्ध हो जाते हैं। १-२३ ॥

वास्वरे मश्च ॥ १-२४ ॥

अन्त्य मकारस्य स्वरे परेऽनुस्वारो वा भवति। पक्षे लुगपवादो मस्य मकारश्च भवति ॥ वन्दे उसभं अजिअं। उसभमजिअं च वन्दे ॥ बहुलाधिकारात् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः ॥ साक्षात्। सक्खं ॥ यत्। जं ॥ तत्। तं ॥ विष्वक्। वीसुं ॥ पृथक्। पिहं ॥ सम्यक्। सम्मं ॥ इह। इहयं। आलेट्ठुअं। इत्यादि ॥

अर्थ—यदि किसी पद के अन्त में रहे हुए हलन्त 'म्' के पश्चात् कोई स्वर रहा हुआ हो तो उस पदान्त हलन्त 'म्' का वैकल्पिक रूप से अनुस्वार होता है। वैकल्पिक पक्ष होने से यदि उस हलन्त 'म्' का अनुस्वार नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में सूत्र-संख्या १-११ से 'म्' के लिये प्राप्तव्य लोप-अवस्था का भी अभाव ही रहेगा; इसमें कारण यह है कि आगे 'स्वर' रहा हुआ है; तदनुसार उक्त हलन्त 'म्' की स्थिति 'म्' रूप में ही कायम रहकर उस हलन्त 'म्' में आगे रहे हुए 'स्वर' की संधि हो जाती है। यों पदान्त हलन्त 'म्' के लिये प्राप्तव्य 'लोप-प्रक्रिया' के प्रति यह अपवाद-रूप स्थिति जानना। जैसे:—वन्दे ऋषभम् अजितम् = वन्दे उसभं

अजिअं अथवा उसभमजिअं च वन्दे । इस उदाहरण में यह व्यक्त किया गया है कि प्रथम अवस्था में 'उसभं' में पदान्त 'म्' का अनुस्वार कर दिया गया है और द्वितीय अवस्था में 'उसभमजिअं' में पदान्त 'म्' की स्थिति यथावत् कायम रखकर उसमें आगे रहे हुए 'अ' स्वर की संधि-संयोजना कर दी गई है; एवं सूत्र-संख्या १-११ से 'म्' के लिये प्राप्तव्य लोप-स्थिति का अभाव भी प्रदर्शित कर दिया गया है; यों पदान्त 'म्' की सम्पूर्ण स्थिति को ध्यान में रखना चाहिये।

'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से कभी कभी पदान्त में स्थित 'म्' के अतिरिक्त अन्य हलन्त व्यञ्जन के स्थान पर भी अनुस्वार की प्राप्ति हो जाया करती है। जैसे:-साक्षात्=सक्खं; यत्=जं; तत्=तं; इन उदाहरणों में हलन्त 'त्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है। अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं— विष्वक्=वीसुं; पृथक्=पिहं; सम्यक्=सम्मं; ऋधक्=इहं। इन उदाहरणों में हलन्त 'क्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है।

संस्कृत शब्द 'इहक' के प्राकृत रूपान्तर 'इहयं' में किसी भी व्यञ्जन के स्थान पर 'अनुस्वार' की प्राप्ति नहीं हुई है; किन्तु सूत्र-संख्या १-२६ से अन्त्य तृतीय स्वर 'अ' में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति हुई है। इसी प्रकार से संस्कृत रूप 'आश्लेष्टुम्' के प्राकृत रूपान्तर 'आलेट्ठुअं' में सूत्र-संख्या २-१६४ से पदान्त 'म्' के पूर्व स्वार्थिक-प्रत्यय-'क' की प्राप्ति होकर 'आलेट्ठुअं' रूप का निर्माण हुआ है; तदनुसार इस हलन्त अन्त्य 'म्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति हुई है; यों 'पदान्त 'म्' और इससे संबंधित 'अनुस्वार' संबंधी विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिये। ऐसा तात्पर्य वृत्ति में उल्लिखित 'इत्यादि' शब्द से समझना चाहिये।

वन्दे संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप भी वन्दे ही है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त धातु 'वन्द्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ४-४४८ से वर्तमान काल के तृतीय पुरुष के एक वचन में संस्कृत की आत्मने पद-क्रियाओं में प्राप्तव्य प्रत्यय 'इ' की प्राकृत में भी 'इ' की प्राप्ति; और १-५ से पूर्वस्थ विकरण प्रत्यय 'अ' के साथ प्राप्त काल-बोधक प्रत्यय 'इ' की संधि होकर वन्दे रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋषभम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उसभं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३१ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर उसभं रूप सिद्ध हो जाता है।

अजितम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अजिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर अजिअं रूप सिद्ध हो जाता है।

उसभमजिअं रूप में सूत्र-संख्या १-५ से हलन्त-'म्' में आगे रहे हुए 'अ' की संधि-संयोजना होकर संधि-आत्मक पद 'उसभमजिअं' सिद्ध हो जाता है।

साक्षात् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप सक्खं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'सा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; १-४ से अथवा १-८४ से पदस्थ द्वितीय 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और १-२४ की वृत्ति से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर सक्खं रूप सिद्ध हो जाता है ।

यत् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप जं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर जं रूप सिद्ध हो जाता है ।

तत् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप तं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर तं रूप सिद्ध हो जाता है ।

विष्वक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप वीसुं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-४३ से ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; २-७९ से द्वितीय 'व्' का लोप; १-२६० से लोप हुए 'व्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ष' को 'स' की प्राप्ति; १-५२ से प्राप्त व्यञ्जन 'स' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर वीसुं रूप सिद्ध हो जाता है ।

पृथक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप पिहं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१२७ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर पिहं रूप सिद्ध हो जाता है ।

सम्यक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप सम्मं होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-२४ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' के स्थान पर हलन्त 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर सम्मं रूप सिद्ध हो जाता है ।

पृथक् संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप पुहं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-२४ से अन्त्य 'क्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से म् के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर पुहं रूप सिद्ध हो जाता है ।

इहकं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इहयं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'क्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त प्रत्यय 'क्' का लोप और १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य स्वर 'अ' पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *इहयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आश्लेष्टुकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आलेट्ठुअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप; २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त प्रत्यय 'क्' का लोप और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *आलेट्ठुअं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-२४॥

ङ-ञ-ण-नो व्यञ्जने ॥ १-२५ ॥

ङ् ञ् ण् न् इत्येतेषां स्थाने व्यञ्जने परे अनुस्वारो भवति॥ ङ। पङ्क्तिः। पंती॥ पराङ्मुखः। परंमुहो॥ ञ। कञ्चुकः। कंचुओ॥ लाञ्छनम्। लंछणं॥ ण। षण्मुखः। छंमुहो॥ उत्कण्ठा। उक्कंठा॥ न। सन्ध्या। संझा॥ विन्ध्यः। विंझो॥

अर्थ—संस्कृत शब्दों में यदि 'ङ्', 'ञ्', 'ण्', और 'न्' के पश्चात् व्यञ्जन रहा हुआ हो तो इन शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में इन 'ङ्', 'ञ्' 'ण्' और 'न्' के स्थान पर (पूर्व व्यञ्जन पर) अनुस्वार की प्राप्ति हो जाती है। जैसे—'ङ्' के उदाहरणः—पङ्क्तिः = पंती और पराङ्मुखः = परंमुहो। 'ञ्' के उदाहरणः कञ्चुकः = कंचुओ और लाञ्छनम् = लंछणं। 'ण्' के उदाहरणः—षण्मुखः = छंमुहो और उत्कण्ठा = उक्कंठा। 'न्' के उदाहरणः—सन्ध्या = संझा और विन्ध्यः = विंझो; इत्यादि।

पङ्क्तिः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पंती होता है। इसमें सूत्र-संख्या—१-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ङ्' के स्थान पर (पूर्व-व्यञ्जन पर) अनुस्वार की प्राप्ति; २-७७ से 'क्त' में स्थित हलन्त 'क्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर *पंती* रूप सिद्ध हो जाता है।

पराङ्मुख—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप परंमुहो होता है इसमें सूत्र-संख्या—१-८४ से 'रा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ङ्' के स्थान पर (पूर्व व्यञ्जन पर) अनुस्वार की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *परंमुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कञ्चुकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंचुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यंजन 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक

वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कंचुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लाञ्छनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लंछणं होता। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'ला' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *लंछणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

षण्मुखः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छंमुहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से 'ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छंमुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्कण्ठा संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप उक्कंठा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *उक्कंठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सन्ध्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संझा होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और २-२६ से 'ध्य्' के स्थान पर 'झ्' की प्राप्ति होकर *संझा* रूप सिद्ध हो जाता है।

विन्ध्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विंझो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; २-२६ से 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विंझो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-२५ ॥

वक्रादावन्तः ॥ १-२६ ॥

वक्रादिषु यथा दर्शनं प्रथमादेः स्वरस्य अन्त आगम रूपोऽनुस्वारो भवति ॥ वंकं । तंसं । अंसु । मंसू । पुंछं । गुंछं । मुंढा । पंसू । बुंधं । कंकोडो । कुंपलं । दंसणं । विंछिओ । गिंठी । मंजारो । एष्वाद्यस्य ॥ वयंसो । मणंसी । मणंसिणी । मणंसिला । पडंसुआ एषु द्वितीयस्य ॥ अवरिं । अणिउंतयं । अइमुंतयं । अनयोस्तृतीयस्य ॥ वक्र । त्र्यस्र । अश्रु । श्मश्रु । पुच्छ । गुच्छ । मूर्द्धन् । पशु । बुध्न । कर्कोट । कुड्मल । दर्शन ।

वृश्चिक । गृष्टि । मार्जार । वयस्य । मनस्विन् । मनस्विनी । मनःशीला । प्रतिश्रुत् । उपरि । अतिमुक्तक । इत्यादि ॥ क्वचिच्छन्दः पूरणेपि । देवं-नाग-सुवण्ण ॥ क्वचिन्न भवति । गिट्ठी । मज्जारो । मणसिला । मणासिला ॥ आर्षे ॥ मणोसिला । अइमुत्तयं ॥

अर्थः—संस्कृत भाषा के वक्र आदि कुछ शब्द ऐसे हैं; जिनका प्राकृत-रूपान्तर करने पर उनमें रहे हुए आदि-स्वर पर याने आदि-स्वर के अन्त में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होती है। जैसेः-वक्रम् = वंकं, त्र्यस्रम् = तंसं, अश्रु = अंसुं; श्मश्रुः = मंसू; पुच्छम् = पुंछं, गुच्छम् = गुंछं, मूर्धा = मुंढा, पर्शुः = पंसू; बुध्नम् = बुंधं; कर्कोटः = कंकोडो; कुड्मलम् = कुंपलं; दर्शनम् = दंसणं; वृश्चिकः=विंछिओ; गृष्टिः = गिंठी और मार्जारः = मंजारो; इन प्राकृत-शब्दों के सर्व-प्रथम अर्थात् आदि स्वर के अन्त में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है। इसी प्रकार से संस्कृत-भाषा के कुछ शब्द ऐसे हैं; जिनका प्राकृत-रूपान्तर करने पर उनमें रहे हुए द्वितीय स्वर पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होती है। जैसेः-वयस्यः=वयंसो; मनस्वी=मणंसी; मनस्विनी = मणंसिणी; मनःशिला = मणंसिला और प्रतिश्रुत् = पडंसुआ; इन प्राकृत-शब्दों के द्वितीय स्वर के अन्त में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है। इसी प्रकार से संस्कृत-भाषा के कुछ शब्द ऐसे भी हैं; जिनका प्राकृत रूपान्तर करने पर उनमें रहे हुए तृतीय स्वर पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होती है जैसेः-उपरि = अवरिं; और अतिमुक्तकम् = अणिउंतयं अथवा अइमुंतयं; इन प्राकृत-शब्दों के तृतीय-स्वर के अन्त में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति प्रदर्शित की गई है। इस प्रकार से विदित होता है कि प्राकृत-भाषा के किसी-किसी शब्द के प्रथम स्वर पर, किसी-किसी शब्द के द्वितीय स्वर पर और किसी किसी शब्द के तृतीय स्वर पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होती हुई पाई जाती है; ऐसा विधान इस सूत्रानुसार जानना चाहिये।

जब कभी प्राकृत-भाषा के गाथा रूप छन्द में गणनानुसार वर्ण का अभाव प्रतीत होता हो तो वर्ण-पूर्ति के लिये भी आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति देखी जाती है। जैसेः—'देव-नाग-सुवण्ण' गाथा का एक चरण है; किन्तु इसमें लय टूटती है; अतः 'देव' पद पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति की जाकर यों लय-पूर्ति की जाती है कि:— 'देवं-नाग-सुवण्ण' इत्यादि। यों छन्द-पूर्ति के लिये भी 'आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति' का प्रयोग किया जाता है।

किन्हीं किन्हीं शब्दों में प्राप्तव्य आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति वैकल्पिक रूप से होती हुई भी देखी जाती है। जैसे-गृष्टिः=गिंठी अथवा गिट्ठी; मार्जारः = मंजारो अथवा मज्जारो; मनःशिला = मणंसिला अथवा मणसिला अथवा मणासिला; एवं आर्ष-प्राकृत में इसका रूपान्तर मणोसिला भी पाया जाता है। इसी प्रकार से अति-मुक्तकम् के उपरोक्त दो प्राकृत रूपान्तरों- (अणिउंतयं और अइमुंतयं) के अतिरिक्त आर्ष-प्राकृत में तृतीय रूप 'अइ-मुत्तयं' भी पाया जाता है।

वक्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वंकं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६ से 'व' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त-नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर वंकं रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रस्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तंसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र' और 'स्र' में स्थित दोनों 'र्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६ से 'त' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *तंसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्रु-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अंसुं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'अ' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'श्रु' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'शु' के 'श्' को 'स्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *अंसुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्मश्रु-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मंसू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-८६ से प्रथम हलन्त 'श्' का लोप; १-२६ से 'म' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से श्रु में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'शु' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *मंसू* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुच्छम्-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुंछं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'पु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-१७७ की वृत्ति से हलन्त 'च्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर पुंछं रूप सिद्ध हो जाता है।

गुच्छम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गुंछं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'गु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-१७७ की वृत्ति से हलन्त 'च' का लोप और शेष साधनिका उपरोक्त 'पुंछं' के समान ३-२५ तथा १-२३ से होकर *गुंछं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्द्धा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुंढा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'मु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप २-४१ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति; १-११ से मूल संस्कृत रूप 'मूर्द्धन्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-४९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'नकारान्त-शब्द' में अन्त्य 'न्' लोप होने के पश्चात् शेष अन्त्य 'अ' को 'आ' की प्राप्ति होकर मुंढा रूप सिद्ध हो जाता है।

पर्शुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पंसू होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'प' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *पंसू* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुध्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बुंधं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'बु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७८ से 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *बुंधं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्कोटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंकोडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से प्रथम 'क' पर आगम रूप, अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप; १-१९५ से 'ट्' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कंकोडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुड्मलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुंपलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'कु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-५२ से 'ड्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कुंपलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दर्शनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दंसणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'द' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति और ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *दंसणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विंछिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'वि' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-२१ से 'श्च्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विंछिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृष्टिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गिंठी और गिट्ठी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'गि' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *गिंठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(गृष्टिः =) गिट्ठी में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *गिट्ठी* भी सिद्ध हो जाता है।

मार्जार—संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मंजारो और मज्जारो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १–८४ से "मा" में स्थित "आ" के स्थान पर "अ" की प्राप्ति; १–२६ से "म" पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २–७९ से रेफ रूप हलन्त "र्" का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मंजारो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मार्जारः =) मज्जारो में सूत्र-संख्या १–८४ से "मा" में स्थित "आ" के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २–७९ से रेफ रूप हलन्त "र्" का लोप; २–८९ से लोप हुए "र्" के पश्चात् शेष रहे हुए "ज्" को द्वित्व "ज्ज" की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *मज्जारो* भी सिद्ध हो जाता है।

वयस्यः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वयंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६ से प्रथम "य" पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २–७८ से द्वितीय 'य्' का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वयंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनस्वी—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणंसी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १–२६ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २–७९ से 'व्' का लोप; १–११ से मूल संस्कृत शब्द 'मनस्विन्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३–१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *मणंसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनस्विनी—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणंसिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १–२६ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २–७९ से 'व्' का लोप और १-२२८ से द्वितीय 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर *मणंसिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनः शिला संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मणंसिला, मणसिला, मणासिला और (आर्ष-प्राकृत में) मणोसिला होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १–२६ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-११ से 'मनस् = मनः' शब्द के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप और १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मणंसिला* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२६ के अतिरिक्त शेष सूत्रों की 'प्रथम-रूप के समान ही' प्राप्ति होकर द्वितीय रूप '*मण-सिला*' सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या १-४३ से प्राप्त द्वितीय रूप 'मण-सिला' में स्थित 'ण' के 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *मणा-सिला* सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थ रूप-में सूत्र-संख्या १-३ से प्राप्त द्वितीय रूप 'मण-सिला' में स्थित 'ण' के 'अ' को वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति होकर चतुर्थ आर्ष रूप '*मणो-सिला*' भी सिद्ध हो जाता है।

प्रतिश्रुत् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडंसुआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९-से 'प्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-२०६ से 'ति' में स्थित 'त्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति; १-८८ से प्राप्त 'डि' में स्थित 'इ' के के स्थान पर 'अ'की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'ड' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'श्रु' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से प्राप्त 'शु' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति और १-१५ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' के स्थान पर स्त्री-लिंग-अर्थक 'आ' की प्राप्ति होकर *पडंसुआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उपरि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवरिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०८ से 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और १-२६ से अन्त्य 'रि' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *अवरिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अतिमुक्तकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अणिउँतयं, अइमुंतयं और अइमुत्तयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२०८ से 'ति' में स्थित 'त्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; १-१७८ से 'म्' का लोप होकर शेष रहे हुए स्वर 'उ' पर अनुनासिक की प्राप्ति; २-७७ से 'क्त' में स्थित हलन्त 'क्' का लोप; १-१७७ से अंतिम 'क्' का लोप; १-१८० से अंतिम 'क्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप '*अणिउँतयं*' सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(अतिमुक्तकम् =) अइमुंतयं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ति' में स्थित 'त्' का लोप; १-२६ से 'मु' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७७ से 'क्त' में स्थित 'क्' का लोप; १-१७७ से अंतिम 'क्' का लोप १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका की प्राप्ति प्रथम रूप के समान ही ३-५ और १-२३ से होकर द्वितीय रूप '*अइमुंतयं*' सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(अतिमुक्तकम् =) अइमुत्तयं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ति' में स्थित 'त्' का लोप; २-७७ से 'क्त' में स्थित 'क्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से अंतिम 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका की प्राप्ति प्रथम रूप के समान ही ३-५ और १-२३ से होकर तृतीय रूप *अइमुत्तयं* सिद्ध हो जाता है।

देव-नाग-सुवर्ण संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप देव-नाग-सुवण्ण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६ से 'देव' में स्थित 'व' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से अंतिम संयुक्त व्यञ्जन 'र्ण' में स्थित रेफ रूप हलन्त 'र्' का लोप और २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति होकर प्राकृत-गाथा-अंश '*देंव-नाग-सुवण्ण*' सिद्ध हो जाता है। १-२६ ॥

क्त्वा-स्यादेर्ण-स्वोर्वा ॥ १-२७ ॥

क्त्वायाः स्यादीनां च यौ णसुतयोरनुस्वारोन्तो वा भवति ॥ क्त्वा ॥ काऊणं काउण काउआणं काउआण ॥ स्यादि । वच्छेणं वच्छेण । वच्छेसुं वच्छेसु ॥ णस्वोरितिकिम् । करिअ । अग्गिणो ॥

अर्थः—संस्कृत-भाषा में संबंध भूत कृदन्त के अर्थ मे क्रियाओं में 'क्त्वा' प्रत्यय की संयोजना होती है; इसी 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-भाषा में सूत्र-संख्या–२-१४६ से 'तूण' और 'तुआण' अथवा 'ऊण' और 'ऊआण' प्रत्ययों की प्राप्ति का विधान है; तदनुसार इन प्राप्तव्य प्रत्ययों में स्थित अंतिम 'ण' व्यञ्जन पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-कृत्वा=काऊणं अथवा काऊण, और काउआणं; अथवा काउआण इसी प्रकार से प्राकृत-भाषा में संज्ञाओं में तृतीया विभक्ति के एक वचन में, षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में तथा सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में क्रम से 'ण' और 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति का विधान है; तदनुसार इन प्राप्तव्य प्रत्ययों पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होती है। जैसे-वृक्षेण = वच्छेणं अथवा वच्छेण; वृक्षाणाम् = वच्छाणं अथवा वच्छाण और वृक्षेषु=वच्छेसुं अथवा वच्छेसु; इत्यादि।

प्रश्न—प्राप्तव्य प्रत्यय 'ण' और 'सु' पर ही वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होती है; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—प्राप्तव्य प्रत्यय 'ण' और 'सु' के अतिरिक्त यदि अन्य प्रत्यय रहे हुए हों उन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का कोई विधान नहीं है; तदनुसार अन्य प्रत्ययों के सम्बन्ध में आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का अभाव ही समझना चाहिये। जैसे – कृत्वा = करिअ; यह उदाहरण सम्बन्ध भूत कृदन्त का होता हुआ भी इसमें 'ण' संयुक्त प्रत्यय का अभाव है; अतएव इसमें आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का भी अभाव ही प्रदर्शित किया गया है। विभक्ति बोधक प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है-अग्नयः = अथवा अग्नीन् अग्गिणो; इस उदाहरण में प्रथमा अथवा द्वितीया के बहुवचन का प्रदर्शक प्रत्यय संयोजित है; परन्तु इस प्रत्यय में 'ण' अथवा 'सु' का अभाव है; तदनुसार इसमें आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति का भी अभाव ही प्रदर्शित किया गया है; यों 'ण' अथवा 'सु' के सद्भाव से ही इन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति वैकल्पिक रूप से हुआ करती है; यह तात्पर्य ही इस सूत्र का है।

कृत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है, इसके प्राकृत रूप काऊणं काऊण, काउआणं, काउआण और करिअ होते हैं। इन में से प्रथम चार रूपों में सूत्र संख्या-४-२१४ से मूल संस्कृत धातु "कृ" के स्थान पर प्राकृत में 'का' की प्राप्ति; २-१४६ से कृदन्त अर्थ में संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'तूण' और 'तुआण' के क्रमिक स्थानीय रूप 'ऊण' और 'ऊआण' प्रत्ययों की प्राप्ति; १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ऊण' और 'ऊआण' में स्थित अन्त्य व्यञ्जन 'ण' पर वैकल्पिक रूप से आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से चारों रूप-*काऊणं*, *काऊण*, *काऊआणं*, और *काऊआण* सिद्ध हो जाते हैं।

पांचवें रूप- (कृत्वा =) करिअ में सूत्र-संख्या-४-२३४ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'अर' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'कर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५७से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१४६ से संबंध भूत कृदन्त सूचक प्रत्यय 'क्त्वा' के स्थान पर प्राकृत में 'अत्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-११ से प्राप्त प्रत्यय 'अत्' के अन्त में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *करिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षेण संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वच्छेणं और वच्छेण होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या- १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अका-रान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'टा = आ' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्वस्थ 'वच्छ' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप वच्छेणं और वच्छेण सिद्ध हो जाते हैं।

वृक्षेषु संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप वच्छेसुं और वच्छेसु होते हैं इनमें 'वच्छ' रूप मूल अंग की प्राप्ति उपरोक्त रीति अनुसार; तत्पश्चात् सूत्र संख्या ४-४४८ से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१५ से प्राप्त प्रत्यय 'सु' के पूर्वस्थ 'वच्छ' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'सु' पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *वच्छेसुं* और *वच्छेसु* सिद्ध हो जाते हैं।

अग्नयः और अग्नीन् संस्कृत के प्रथमान्त द्वितीयान्त बहुवचन क्रमिक रूप हैं। इनका प्राकृत रूप अग्गिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'न्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ग्' को द्वित्व 'ग्ग्' की प्राप्ति; और ३-२२ से प्रथमा विभक्ति तथा द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में इकारान्त पुल्लिग में 'अस् = अत्' और 'शस्' प्रत्यय के स्थान पर 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अग्गिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। १-२७॥

विंशत्यादे लुक् ॥ १-२८ ॥

विंशत्यादीनाम् अनुस्वारस्य लुग् भवति। विंशतिः। वीसा॥ त्रिंशत्। तीसा। संस्कृतम्। सक्कयं॥ संस्कारः। सक्कारो इत्यादि॥

अर्थ-विंशति आदि संस्कृत शब्दों का प्राकृत-रूपान्तर करने पर इन शब्दों में आदि अक्षर पर स्थित अनुस्वार का लोप हो जाता है। जैसे—विंशतिः = वीसा; त्रिंशत् = तीसा; संस्कृतम् = सक्कयं और संस्कार = सक्कारो; इत्यादि।

विंशतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वीसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२८ से अनुस्वार का

लोप; १-९२ से 'वि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति तथा १-९२ से ही स्वर सहित 'सि' व्यञ्जन का लोप अथवा अभाव; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप और ३-३१ से स्त्रीलिंग-अर्थक प्रत्यय 'आ' की प्राप्त रूप 'तीस' में प्राप्ति होकर *तीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रिंशत् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तीसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२८ से अनुस्वार का लोप; २-७९ से 'त्रि' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' का लोप; १-९२ से ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप और ३-३१ से स्त्रीलिंग-अर्थक प्रत्यय 'आ' की प्राप्त रूप 'तीस' में प्राप्ति होकर *तीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्कृतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्कयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२८ से अनुस्वार का लोप; २-७७ से द्वितीय 'स्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-८९ से पूर्वोक्त लोप हुए 'स्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सक्कयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्कारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्कारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२८ से अनुस्वार का लोप; २-७७ से द्वितीय हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'स्' के पश्चात शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सक्कारो* रूप सिद्ध हो जाता है। १-२८ ॥

मांसादेर्वा ॥ १-२९ ॥

मांसादीनामनुस्वारस्य लुग् वा भवति। मासं मंसं। मासलं मंसलं। कासं कंसं। पासू पंसू। कह कहं। एव एवं। नूण नूणं। इआणि इआणिं। दाणि दाणिं। किं करेमि किं करेमि। समुहं संमुहं। केसुअं किंसुअं। सीहो सिंघो॥ मांस। मांसल। कांस्य। पांसु। कथम्। एवम्। नूनम्। इदानीम्। किम्। संमुख। किंशुक। सिंह। इत्यादि॥

अर्थ—मांस आदि अनेक संस्कृत शब्दों का प्राकृत-रूपान्तर करने पर उनमें स्थित अनुस्वार का विकल्प से लोप हो जाया करता है। जैसे-मांसम् = मासं अथवा मंसं; मांसलम् = मासलं अथवा मंसलं; कांस्यम् = कासं अथवा कंसं; पांसुः = पासू अथवा पंसू; कथम् = कह अथवा कहं; एवम् = एव अथवा एवं; नूनम् = नूण अथवा नूणं; इदानीम् = इआणि अथवा इआणिं; इदानीम् = (शौरसेनी में–) दाणि अथवा दाणिं; किम् करोमि = कि

करेमि अथवा किं करेमि; सम्मुखम् = समुहं अथवा संमुहं; किंशुकम् = केसुअं अथवा किंसुअं; और सिंहः = सीहो अथवा सिंघो; इत्यादि।

मांसम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मासं और मंसं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'मां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मासं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मांसम् =) मंसं में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'मां' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *मंसं* भी सिद्ध हो जाता है।

मांसलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मासलं और मंसलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'मां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मासलं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मांसलम् =) मंसलं में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'मां' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर *मंसलं* भी सिद्ध हो जाता है।

कांस्यम संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कासं और कंसं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'कां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कासं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(कांस्यम् =) कंसं में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'कां' में स्थित दीर्घ-स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *कंसं* भी सिद्ध हो जाता है।

पांसुः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पासू और पंसू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२९ से 'पां' पर स्थित अनुस्वार का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पासू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(पांसुः =) पंसू में सूत्र-संख्या १-७० से अनुस्वार का लोप नहीं होने की स्थिति में 'पां' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पंसू* भी सिद्ध हो जाता है।

कथम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कह और कहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और १-२९ से अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप कह और कहं सिद्ध हो जाते हैं।

एवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप एव और एवं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप एव और एवं सिद्ध हो जाते हैं।

ननम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप नूण और नूणं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिकरूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *नूण* और *नूणं* सिद्ध हो जाते हैं।

इदानीम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप इआणि और इआणिं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घस्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *इआणि* और *इआणिं* सिद्ध हो जाते हैं।

इदानीम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके शौर-सेनी भाषा में दाणि और दाणिं रूप होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-४-२७७ से 'इदानीम्' के स्थान पर 'दाणि' आदेश और १-२९ से अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *दाणि* और *दाणिं* सिद्ध हो जाते हैं।

किम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कि और किं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-२९ से उक्त अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप होकर क्रम से दोनों रूप *कि* और *किं* सिद्ध हो जाते हैं।

करोमि संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप करेमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३४ से मूल संस्कृत धातु 'कृ' में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'अर्' आदेश ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'कर्' में विकरण प्रत्यय 'ए' की संधि और ३-१४१ से वर्तमान काल के तृतीय पुरुष के एक वचन में 'मि' प्रत्यय की संयोजना होकर *करेमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

संमुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप समुहं और संमुहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२९ से 'सं' पर स्थित अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप; १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *समुहं* और *संमुहं* सिद्ध हो जाते हैं।

किंशुकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप केसुअं और किंसुअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८६ से 'इ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ए' की प्राप्ति; १-२९ से 'किं' पर स्थित अनुस्वार का वैकल्पिक रूप से लोप;

१-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *केसुअं* और *किंसुअं* सिद्ध हो जाते हैं।

सिंहः संस्कृत रूप हैं। इसके प्राकृत रूप सीहो और सिंघो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-९२ से ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; १-२९ से अनुस्वार का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सीहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(सिंहः =) सिंघो में सूत्र-संख्या १-२६४ से अनुस्वार के पश्चात् रहे हुए 'ह' के स्थान पर 'घ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *सिंघो* भी सिद्ध हो जाता है ॥ १-२९ ॥

वर्गेऽन्त्यो वा ॥ १-३० ॥

अनुस्वारस्य वर्गे परे प्रत्यासत्ते स्तस्यैव वर्गस्यान्त्यो वा भवति ॥ पङ्को पंको । सङ्खो संखो । अङ्गणं अंगणं । लङ्घणं लंघणं । कञ्चुओ कंचुओ । लञ्छणं लंछणं । अञ्जिअं अंजिअं । सञ्झा संझा । कण्टओ कंटओ । उक्कण्ठा उक्कंठा । कण्डं कंडं । सण्ढो संढो । अन्तरं अंतरं । पन्थो पंथो । चन्दो चंदो बन्धवो बंधवो । कम्पइ कंपइ । वम्फइ वंफइ । कलम्बो कलंबो । आरम्भो आरंभो ॥ वर्ग इति किम् । संसओ । संहरइ ॥ नित्यमिच्छन्त्यन्ये ॥

अर्थ—प्राकृत-भाषा के किसी शब्द में यदि अनुस्वार रहा हुआ हो और उस अनुस्वार के आगे यदि कोई वर्गीय-(कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग और पवर्ग का) अक्षर आया हुआ हो तो जिस वर्ग का अक्षर आया हुआ हो; उसी वर्ग का पञ्चम-अक्षर उस अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हो जाया करता है। जैसे-क वर्ग के उदाहरण:-पङ्क = पङ्को अथवा पंको; शङ्खः = सङ्खो अथवा संखो; अङ्गणम् = अङ्गणं अथवा अंगणं; लङ्घनम् = लङ्घणं अथवा लंघणं। चवर्ग के उदाहरण:-कञ्चुकः = कञ्चुओ अथवा कंचुओ; लाञ्छनम् = लञ्छणं अथवा लंछणं; अञ्जितम् = अञ्जिअं अथवा अंजिअं। सन्ध्या = सञ्झा अथवा संझा। टवर्ग के उदाहरण-कण्टकः = कण्टओ अथवा कंटओ; उत्कण्ठा = उक्कण्ठा अथवा उक्कंठा; काण्डम् = कण्डं अथवा कंडं; षण्ढः = सण्ढो अथवा संढो। तवर्ग के उदाहरण अन्तरम् = अन्तरं अथवा अंतरं; पंथः = पन्थो अथवा पंथो; चन्द्रः = चन्दो अथवा चंदो; बान्धवः = बन्धवो अथवा बंधवो। कम्पते = कम्पइ अथवा कंपइ; कांक्षति = वम्फइ अथवा वंफइ, कलंबः = कलम्बो अथवा कलंबो और आरंभः = आरम्भो अथवा आरंभो इत्यादि।

प्रश्न:-अनुस्वार के आगे वर्गीय अक्षर आने पर ही अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से उसी अक्षर के वर्ग का पंचम अक्षर हो जाता है; ऐसा उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तर:—यदि अनुस्वार के आगे वर्गीय अक्षर नहीं होकर कोई स्वर अथवा अवर्गीय-व्यञ्जन आया हुआ होगा तो उस अनुस्वार के स्थान पर किसी भी वर्ग का—('म्' के अतिरिक्त) पंचम अक्षर नहीं होगा; इसलिये 'वर्ग' शब्द का भार-पूर्वक उल्लेख किया गया है। उदाहरण इस प्रकार है—संशय=संसओ और संहरति=संहरइ; इत्यादि। किन्हीं किन्हीं-व्याकरणाचार्यों का मत है कि प्राकृत-भाषा के शब्दों में रहे हुए अनुस्वार की स्थिति नित्य 'अनुस्वार रूप ही रहती है एवं उसके स्थान पर वर्गीय पंचम-अक्षर की प्राप्ति जैसी अवस्था नहीं प्राप्त हुआ करती है।

पंक: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पङ्को और पंको होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ङ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर 'ङ्' वैकल्पिक रूप से और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों पद पङ्को तथा पंको सिद्ध हो जाते हैं।

शंख: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सङ्खो और संखो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'पंको-पंको' के अनुसार ही १-२५; १-३० और ३-२ से प्राप्त होकर क्रम से दोनों रूप संङ्खो और संखो सिद्ध हो जाते हैं।

अङ्गणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अङ्गणं और अंगण होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ङ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से, हलन्त 'ङ्' व्यंजन की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप अङ्गणं और अंगणं सिद्ध हो जाते हैं।

लङ्घनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लङ्घणं और लंघणं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त अङ्गणं-अंगणं के अनुसार ही १-२५, १-३०, ३-२५ और १-२३ से प्राप्त होकर क्रमशः दोनों रूप लङ्घणं और लंघणं सिद्ध हो जाते हैं।

कञ्चुकः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप कञ्चुओ और कंचुओ होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति, १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ञ' व्यञ्जन की प्राप्ति, १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप कञ्चुओ और कंचुओ सिद्ध हो जाते हैं।

लाञ्छनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लञ्छणं और लंछणं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'ला' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ञ्' व्यञ्जन की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की

प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *लञ्छणं* और *लंछणं* सिद्ध हो जाते हैं।

अञ्जितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अञ्चिअं और अंजिअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त 'ञ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ञ्' व्यञ्जन की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' व्यञ्जन का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *अञ्जिअं* और *अंजिअं* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

सन्ध्या संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सञ्झा और संझा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्या' के स्थान पर 'झा' की प्राप्ति और १-३० से पूर्व में प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ञ्' व्यञ्जन की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *सञ्झा* और *संझा* सिद्ध हो जाते हैं।

कण्टकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कण्टओ और कंटओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क्' व्यञ्जन का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप-*कण्टओ* और *कंटओ* सिद्ध हो जाते हैं।

उत्कण्ठा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उक्कण्ठा और उक्कंठा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क्' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *उक्कण्ठा* और *उक्कंठा* सिद्ध हो जाते हैं।

काण्डम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कण्डं और कंडं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कण्डं* और *कंडं* सिद्ध हो जाते हैं।

षण्ढः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सण्ढो और संढो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'ण्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त

अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'ण्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *सण्ढो* और *संढो* सिद्ध हो जाते हैं।

अन्तरम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्तरं और अंतरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *अन्तरं* और *अंतरं* सिद्ध हो जाते हैं।

पन्थः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पन्थो और पंथो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *पन्थो* और *पंथो* सिद्ध हो जाते हैं।

चन्द्रः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चन्दो और चंदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति; २-८० से हलन्त 'र्' व्यञ्जन का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *चन्दो* और *चंदो* सिद्ध हो जाते हैं।

बान्धवः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बन्धवो और बंधवो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'बा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२५ से हलन्त व्यञ्जन 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'न्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *बन्धवो* और *बंधवो* सिद्ध हो जाते हैं।

कम्पते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसके प्राकृत-रूप कम्पइ और कंपइ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ की वृत्ति से हलन्त "म्" व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त "म्" व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कम्पइ* और *कंपइ* सिद्ध हो जाते हैं।

कांक्षति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत (आदेश-प्राप्त) रूप वम्फइ और वंफइ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ४-१९२ से संस्कृत धातु 'कांक्ष्' के स्थान पर प्राकृत में 'वम्फ्' की आदेश प्राप्ति; १-२३ की वृत्ति से हलन्त 'म्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक

रूप से हलन्त 'म्' व्यञ्जन की प्राप्ति; ४-२३९ से प्राप्त धातु-रूप 'चम्फ्' और 'चंफ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप चम्फइ और चंफइ सिद्ध हो जाते हैं।

कलम्बः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कलम्बो और कलंबो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ की वृत्ति से हलन्त 'म्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'म्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *कलम्बो* और *कलंबो* सिद्ध हो जाते हैं।

आरम्भः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आरम्भो और आरंभो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३ की वृत्ति से हलन्त 'म्' व्यञ्जन के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर वैकल्पिक रूप से हलन्त 'म्' व्यञ्जन की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *आरम्भो* और *आरंभो* सिद्ध हो जाते हैं।

संशयः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संसओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संसओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संहराति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप संहरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से मूल प्राकृत धातु 'संहर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संहरइ* रूप सिद्ध हो जाता है। १–३० ॥

प्रावृट्-शरत्तरणयः पुंसि ॥ १-३१ ॥

प्रावृष् शरद् तरणि इत्येते शब्दाः पुंसि पुल्लिङ्गे प्रयोक्तव्याः ॥ पाउसो। सरओ। एस तरणी ॥ तरणि शब्दस्य पुंस्त्रीलिङ्गत्वेन नियमार्थमुपादानम् ॥

अर्थः—संस्कृत भाषा में प्रावृष् (अर्थात् वर्षा ऋतु) शरद् (अर्थात् ठंड ऋतु) और तरणि (अर्थात् नौका नाव विशेष) शब्द स्त्रीलिंग रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं; परन्तु प्राकृत-भाषा में इन शब्दों का लिंग-परिवर्तन हो जाता है और ये पुल्लिग रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं। जैसेः—प्रावृष् = पाउसो; शरद् = सरओ और एषा तरणिः = एस तरणी। संस्कृत-भाषा में 'तरणि' शब्द के दो अर्थ होते हैं; १ सूर्य और २ नौका; तदनुसार 'सूर्य-अर्थ' में तरणि शब्द पुल्लिग होता है और 'नौका-अर्थ' में यही तरणि शब्द स्त्रीलिंग वाला हो जाता है; किन्तु प्राकृत-भाषा में 'तरणि' शब्द नित्य पुल्लिग ही होता है; इसी तात्पर्य-विशेष को प्रकट करने के लिये यहां पर 'तरणि' शब्द का मुख्यतः उल्लेख किया गया है।

'पाउसो' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१९ में की गई है।
'सरओ' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१८ में की गई है।

'एषा' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप-(पुल्लिग में) एस होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में मूल-संस्कृत सर्वनाम रूप 'एतत्' के स्थान पर 'सि' प्रत्यय का योग होने पर 'एस' आदेश होकर 'एस' रूप सिद्ध हो जाता है।

तरणिः संस्कृत स्त्रीलिंग वाला रूप है। इसका प्राकृत (पुल्लिग में) रूप तरणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-३१ से 'तरणि' शब्द को स्त्रीलिंगत्व से पुल्लिगत्व की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *तरणी* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३१॥

स्नमदाम-शिरो-नभः ॥ १-३२ ॥

दामन् शिरस् नभस् वर्जितं सकारान्तं नकारान्तं च शब्दरूपं पुंसि प्रयोक्तव्यम् ॥ सान्तम् । जसो । पओ । तमो । तेओ । उरो ॥ नान्तम् । जम्मो । नम्मो । मम्मो ॥ अदाम शिरो नभ इति किम् । दामं । सिरं । नहं ॥ यच्च सेयं वयं सुमणं सम्मं चम्ममिति दृश्यते तद् बहुलाधिकारात् ॥

अर्थः—दामन्, शिरस् और नभस् इन संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त जिन संस्कृत शब्दों के अन्त में हलन्त 'स' अथवा हलन्त 'न्' हैं; ऐसे सकारान्त अथवा नकारान्त संस्कृत शब्दों का प्राकृत रूपान्तर करने पर इनके लिंग में परिवर्तन हो जाता है; तदनुसार ये नपुंसक लिंग से पुल्लिंग बन जाते हैं। जैसे-सकारान्त शब्दों के उदाहरण यशस् = जसो; पयस्=पओ; तमस्=तमो; तेजस् = तेओ; उरस् = उरो; इत्यादि। नकारान्त शब्दों के उदाहरण-जन्मन् = जम्मो; नर्मन् = नम्मो और मर्मन् = मम्मो; इत्यादि।

प्रश्न—दामन्, शिरस् और नभस् शब्दों का लिंग परिवर्तन क्यों नहीं होता है ?

उत्तर—ये शब्द प्राकृत-भाषा में भी नपुंसक लिंग वाले ही रहते हैं; अतएव इनको उक्त 'लिंग-परिवर्तन वाले विधान से पृथक् ही रखना पड़ा है। जैसे.—दामन् = दामं; शिरस् = सिरं और नभस् = नहं। अन्य शब्द भी ऐसे पाये जाते हैं; जिनके लिंग में परिवर्तन नहीं होता है; इसका कारण 'बहुलं' सूत्रानुसार ही समझ लेना चाहिये। जैसे-श्रेयस् = सेयं; वचस् = वयं; सुमनस् = सुमणं; शर्मन् = सम्मं और चर्मन् = चम्मं; इत्यादि। ये शब्द सकारान्त अथवा नकारान्त हैं और संस्कृत-भाषा में इनका लिंग नपुंसक लिंग है; तदनुसार प्राकृत-रूपान्तर में भी इनका लिंग नपुंसक लिंग ही रहा है; इनमें लिंग का परिवर्तन नहीं हुआ है; इसका कारण 'बहुलम्' सूत्र ही जानना चाहिये। भाषा के प्रचलित और बहुमान्य प्रवाह को व्याकरणकर्त्ता पलट नहीं सकते हैं। जसो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

पयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'पओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप; १-११ से 'स्' का लोप; १-३२ से नपुंसक लिंगत्व से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'पओ' रूप सिद्ध होता है।

तमो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

तेजस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'तेओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'तेओ' रूप सिद्ध होता है।

उरस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'उरो' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'उरो' रूप सिद्ध होता है।

जम्मो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

नर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नम्मो होता है इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से अन्त्य 'न्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'नम्मो' रूप सिद्ध होता है।

मर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मम्मो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-११ से 'न्' का लोप; १-३२ से पुल्लिंगत्व का निर्धारण; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'मम्मो' रूप सिद्ध होता है।

दामन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दामं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर दामं रूप सिद्ध होता है।

शिरस् संस्कृत शब्द है इसका प्राकृत रूप सिरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर सिरं रूप सिद्ध होता है।

नभस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर 'नहं' रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रेयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सेयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' का 'स्'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर 'सेयं' रूप सिद्ध हो जाता है।

वयस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर 'वयं' रूप सिद्ध हो जाता है।

सुमनस् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुमणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-११ से अन्त्य 'स्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *सुमणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सम्मं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से अन्त्य 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर '*सम्मं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

चर्मन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चम्मं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-११ से 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक होने से 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त प्रत्यय 'म्' का अनुस्वार होकर *चम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ३२ ॥

वाक्ष्यर्थ-वचनाद्याः ॥ १-३३ ॥

अक्षिपर्याया वचनादयश्च शब्दाः पुंसि वा प्रयोक्तव्याः ॥ अक्ष्यर्थाः। अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी। नच्चाविआइँ तेणम्ह अच्छीइं ॥ अञ्जल्यादिपाठादक्षिशब्दः स्त्रीलिङ्गेपि। एसा अच्छी। चक्खू चक्खूइं। नयणा नयणाइं। लोअणा लोअणाइं ॥ वचनादि। वयणा वयणाइं। विज्जुणा विज्जूए। कुलो कुलं। छन्दो छन्दं। माहप्पो माहप्पं। दुक्खा दुक्खाइं ॥ भायणा भायणाइं। इत्यादि ॥ इति वचनादयः ॥ नेत्ता नेत्ताइं। कमला कमलाइं इत्यादि तु संस्कृतवदेव सिद्धम् ॥

अर्थ–आंख के पर्यायवाचक शब्द और वचन आदि शब्द प्राकृत भाषा में विकल्प से पुल्लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे कि आंख अर्थक शब्द:–अज्ज वि सा सवइ ते अच्छी अर्थात् वह (स्त्री) आज भी तुम्हारी (दोनों) आंखों को शाप देती है; अथवा सौगंध देती है। यहां पर 'अच्छी' को पुल्लिंग मानकर द्वितीया बहुवचन का प्रत्यय जोड़ा गया है। नच्चाविआइँ तेणम्ह अच्छीइं अर्थात् उसके द्वारा मेरी आँखें नचाई गई। यहां पर 'अच्छीइं' लिखकर 'अच्छी' शब्द को नपुंसक में प्रयुक्त किया गया है। अंजली आदि के पाठ से 'अक्षि' शब्द स्त्री-लिंग में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। जैसे–एसा अच्छी अर्थात् यह आंख। यहां पर अच्छी शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया गया है।

चक्खू चक्खूइं = आंखें। प्रथम रूप प्रथमा बहुवचन के पुल्लिंग का है; जबकि दूसरा रूप प्रथमा बहुवचन के नपुंसक लिंग का है। इसी प्रकार नयणा और नयणाइं; लोअणा और लोअणाइं; ये शब्द भी आंख वाचक हैं। इनमें प्रथम रूप तो प्रथमा बहुवचन में पुल्लिंग का है; और द्वितीय रूप प्रथमा बहुवचन में नपुंसक लिंग का है।

वचन आदि के उदाहरण इस प्रकार हैं:--वयणा और वयणाइं; अर्थात् वचन। प्रथम रूप पुल्लिंग में प्रथमा बहुवचन का है और द्वितीय रूप नपुंसक लिंग में प्रथमा बहुवचन का है। विज्जुणा, विज्जूए अर्थात् विद्युत से। प्रथम रूप पुल्लिंग में तृतीया एक वचन का है; और द्वितीय रूप स्त्रीलिंग में तृतीया एक वचन का है। कुलो कुलं अर्थात् कुटुम्ब। प्रथम रूप पुल्लिंग में प्रथमा एक वचन का है और द्वितीय रूप नपुंसक लिंग में प्रथमा एक वचन का है। छन्दो-छन्दं अर्थात् छन्द। यह भी क्रम से पुल्लिंग और नपुंसकलिंग हैं; तथा प्रथमा एक वचन के रूप हैं।

माहप्पो माहप्पं अर्थात् माहात्म्य। यहां पर भी क्रम से पुल्लिंग और नपुंसक लिंग है; तथा प्रथमा एक वचन के रूप हैं। दुक्खा दुक्खाइं अर्थात् विविध दुःख। ये भी क्रम से पुल्लिंग और नपुंसक लिंग में लिखे गये हैं; तथा प्रथमा बहुवचन के रूप हैं। भायणा भायणाइं = भाजन बर्तन। प्रथम रूप पुल्लिंग में और द्वितीय रूप नपुंसक लिंग में है। दोनों की विभक्ति प्रथमा बहुवचन है। यों उपरोक्त वचन आदि शब्द विकल्प से पुल्लिंग भी होते हैं और नपुंसक लिंग भी। किन्तु नेत्ता और नेत्ताइं अर्थात् आंख तथा कमला और कमलाइं अर्थात् कमल इत्यादि शब्दों के लिंग संस्कृत के समान ही होते हैं; अतः यहां पर वचन आदि के साथ इनकी गणना नहीं की गई है।

अद्य संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप *अज्ज* होता है; इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से 'द्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर '*अज्ज*' रूप सिद्ध हो जाता है।

'*पि*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

सा संस्कृत सर्वनाम स्त्रीलिंग शब्द है; इसका प्राकृत रूप 'सा' ही होता है। 'सा' सर्वनाम का मूल शब्द 'तद्' है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८६ से 'तद्' को 'स' आदेश हुआ। ३-८७ की वृत्ति में उल्लिखित हेम व्याकरण २-४-१८ से 'आत्' सूत्र से स्त्रीलिंग में 'स' का 'सा' होता है। तत्पश्चात् ३-३३ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के योग से '*सा*' रूप सिद्ध होता है।

शपति संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप सवइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-१३९ से 'ति' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति होकर प्रथम पुरुष के एक वचन में वर्तमान काल का रूप '*सवइ*' सिद्ध हो जाता है।

तव संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप ते होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से 'तव' के स्थान पर 'ते' आदेश होकर *ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

अक्षिणी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अच्छी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' का 'छ्' २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; १-३३ से

से 'अच्छि' शब्द को पुल्लिंग पद की प्राप्ति; ३-४ से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में शस् प्रत्यय की प्राप्ति होकर लोप; और ३-१४ से अंतिम स्वर को दीर्घता की प्राप्ति होकर *अच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

नर्त्तिते संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नच्चाविआइं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ'; ४-२२५ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर 'च्च'; यहां पर प्रेरक अर्थ होने से 'इत' के स्थान पर सूत्र संख्या ३-१५२ से 'आवि' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से 'च्च' में स्थित 'अ' का लोप; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप; ३-१३० से द्विवचन के स्थान पर बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२६ से 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'इं' का आदेश; तथा पूर्व के स्वर 'अ' को दीर्घता प्राप्त होकर नच्चाविआइं रूप सिद्ध हो जाता है।

तेन संस्कृत सर्वनाम है; इसका प्राकृत रूप तेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से मूल शब्द 'तद्' के 'द्' का लोप; ३-६ से तृतीया एक वचन में 'ण' की प्राप्ति, ३-१४ से 'त' में स्थित 'अ' का 'ए' होकर *तेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्माकम् संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप अम्ह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-११४ से मूल शब्द अस्मद् को षष्ठी बहुवचन के 'आम्' प्रत्यय के साथ अम्ह आदेश होता है। यों 'अम्ह' रूप सिद्ध हो जाता है। वाक्य में स्थित 'तेण अम्ह' में 'ण' में स्थित 'अ' के आगे 'अ' आने से सूत्र संख्या १-१० से 'ण' के 'अ' का लोप होकर संधि हो जाने पर तेणम्ह सिद्ध हो जाता है।

अक्षीणि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अच्छीइं होता है, इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ', २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ', २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्', ३-२६ से द्वितीया बहुवचन में 'शस्' प्रत्यय के स्थान पर 'णि' प्रत्यय की प्राप्ति और इसी सूत्र से अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *अच्छीइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

एषा संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप एसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल शब्द एतद् के अंतिम 'द्' का लोप; ३-८६ से 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होने पर प्रथमा एक वचन में 'एत' का एस रूप होता है। २-४-१८ से लौकिक सूत्र से स्त्रीलिंग का 'आ' प्रत्यय जोड़कर संधि करने से '*एसा*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अक्षि: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अच्छी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; १-३५ से इसका स्त्रीलिंग निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'इ' को 'दीर्घ ई' प्राप्त होकर *अच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

चक्षुष् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चक्खू चक्खूइं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' को 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व ख्' का 'क्'; १-११ से 'ष्' का लोप; १-३३ से 'चक्खु' शब्द को विकल्प से पुल्लिंगता प्राप्त होने पर ३-१८ से 'सि' प्रथमा एक वचन के प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व उ' को दीर्घ 'ऊ' होकर *चक्खू* रूप सिद्ध होता है। एवं पुल्लिंग नहीं होने पर याने नपुंसक लिंग होने पर

३-२६ से प्रथमा बहुवचन के 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति के साथ पूर्व ह्रस्व स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *फक्कसाइं* रूप सिद्ध होता है।

नयनानि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप नयणा और नयणाइं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिगता की प्राप्ति; ३-४० से 'जस्-शस्' यानि प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की प्राप्ति होकर इनका लोप; ३-१२ से अंतिम 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *नयणा* रूप सिद्ध होता है। एवं जब पुल्लिग नहीं होकर नपुंसक लिंग हो तो ३-२६ से प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन के 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नयणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोचनानि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप लोअणा और लोअणाइं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिगता की प्राप्ति; ३-४ से 'जस्-शस्' याने प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की प्राप्ति होकर इनका लोप; ३-१२ से अंतिम 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *लोअणा* रूप सिद्ध होता है। एवं जब पुल्लिग नहीं होकर नपुंसक लिंग हो तो ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोअणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वचनानि संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप वयणा और वयणाइं होते हैं इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिगता की प्राप्ति; ३-४ से 'जस्-शस्' याने प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन की प्राप्ति होकर इनका लोप; ३-१२ से अंतिम 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *वयणा* रूप सिद्ध होता है। एवं जब पुल्लिग नहीं होकर नपुंसक लिंग हो तो ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय होकर *वयणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्युत मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप विज्जुणा और विज्जूए होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-२४ से 'द्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; १-११ से अन्त्य 'त्' का लोप; १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिगता की प्राप्ति; ३-२४ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'णा' की प्राप्ति होकर *विज्जुणा* शब्द की सिद्धि हो जाती है। एवं स्त्रीलिंग होने की दशा में ३-२९ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' आदेश; एवं 'ज्जु' के ह्रस्व 'उ' को दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति होकर *विज्जूए* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुल मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कुलो और कुलं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *कुलो* रूप सिद्ध हो जाता है। और १-३३ से नपुंसक होने पर ३-२५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *कुलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

छन्दस् मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप छन्दो और छन्दं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'स्' का लोप; १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिगता की प्राप्ति; ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर छन्दो रूप सिद्ध हो जाता है। और नपुंसक होने पर ३-२५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *'छन्दं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

माहात्म्य मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप माहप्पो और माहप्पं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'हा' के 'आ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-५१ से 'त्म' का आदेश 'प'; २-८९ से प्राप्त 'प' का द्वित्व 'प्प'; १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगता का निर्धारण; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *माहप्पो* रूप सिद्ध हो जाता है। और जब १-३३ से नपुंसक विकल्प रूप से होने पर ३-२५ से 'सि' के स्थान पर 'म्' प्रत्यय; एवं १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *माहप्पं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुःख मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दुक्खा और दुक्खाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१३ से दुः के ':' का अर्थात् विसर्ग का लोप; २-८९ से 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; १-३३ से वैकल्पिक रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्-शस्' का लोप; ३-१२ से दीर्घता प्राप्त होकर *दुक्खा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकता के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुक्खाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भाजन मूल संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भायणा और भायणाइं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से 'अ' का 'य'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्' 'शस्' का लोप; ३-१२ से अंतिम स्वर की दीर्घता प्राप्त होकर *भायणा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकत्व के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भायणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नेत्र मूल संस्कृत शब्द है; इसके प्राकृत रूप नेत्ता और नेत्ताइं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्' 'शस्' का लोप; ३-१२ से अंतिम स्वर की दीर्घता प्राप्त होकर *नेत्ता* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकत्व के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नेत्ताइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमल मूल संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कमला और कमलाइं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-३३ से विकल्प रूप से पुल्लिंगत्व की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्' और 'शस्' का लोप; ३-१२ से अंतिम स्वर की दीर्घता प्राप्त होकर *कमला* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३३ से नपुंसकत्व के विकल्प में ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कमलाइं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ३३ ॥

गुणाद्याः क्लीबे वा ॥ १-३४ ॥

गुणादयः क्लीबे वा प्रयोक्तव्याः ॥ गुणाइं गुणा ॥ विहवेहिं गुणाइं मग्गन्ति । देवाणि देवा । बिन्दूइं । बिन्दुणो । खग्गं खग्गो । मण्डलग्गं मण्डलग्गो । कररुहं कररुहो । रुक्खाइं रुक्खा । इत्यादि ॥ इति गुणादयः ॥

अर्थ—गुण इत्यादि शब्द विकल्प से नपुंसक लिंग में और पुल्लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये। जैसे गुणाइं और गुणा से रुक्खाइं और रुक्खा तक जानना। इनमें पूर्व पद नपुंसक लिंग में है और उत्तर पद पुल्लिंग में प्रयुक्त किया गया है। 'गुणा' पद की १-११ में सिद्धि की गई है। और १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसक लिंगत्व होने पर ३-२६ से अंतिम स्वर की दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुणाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विभवैः संस्कृत पद है। इसका प्राकृत रूप विहवेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; ३-७ से तृतीया बहुवचन के प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर 'हिं' होता है। ३-१५ अन्त्य 'व' के 'अ' का 'ए' होकर *विहवेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुणाइं शब्द की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है। विशेषता यह है कि 'इं' के स्थान पर यहां पर 'इं' प्रत्यय है। जो कि सूत्र संख्या ३-२६ से समान स्थिति वाला ही है।

मृग्यन्ते संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप मग्गन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग्' का द्वित्व 'ग्ग'; ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन के प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय का आदेश होकर *मग्गन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवाः संस्कृत शब्द है इसके प्राकृत रूप देवाणि और देवा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में 'णि' प्रत्यय की प्राप्ति; होकर *देवाणि* रूप सिद्ध होता है। जब देव शब्द पुल्लिंग में होता है; तब ३-४ से 'जस्-शस्' का लोप होकर एवं ३-१२ से अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर *देवा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिन्दवः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बिन्दूइं और बिन्दुणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२६ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन में अन्त्यस्वर को दीर्घता के साथ 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिन्दूइं* रूप सिद्ध होता है। जब बिन्दु शब्द पुल्लिंग में होता है; तब ३-२२ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के 'जस् शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'णो' आदेश होकर *बिन्दुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

खड्गः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खग्गं और खग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ड्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-३४ से नपुंसकत्व की प्राप्ति करके ३-२५ से प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग में 'म्' की प्राप्ति; १-२३ [प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खग्गं* रूप सिद्ध हो जाता है। जब पुल्लिंग में होता है; तब ३-२ से प्रथमा एक वचन के 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *खग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मंडलाग्रः संस्कृत शब्द है; इसके प्राकृत रूप मण्डलग्गं और मण्डलग्गो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ला' के 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति होने से ३-२५ से प्रथमा एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त

'म्' का अनुस्वार होकर *मण्डलग्गं* रूप सिद्ध होता है । जब पुल्लिगत्व होता है तब ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *मण्डग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

कररुहः संस्कृत शब्द है । इसके प्राकृत रूप कररुहं और कररुहो होते हैं । इनमें सूत्र संख्या १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति होने से ३-२५ प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कररुहं* रूप सिद्ध हो जाता है । जब पुल्लिगत्व होता है; तब ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर *कररुहो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

वृक्षाः संस्कृत शब्द है । इसके प्राकृत रूप रुक्खाइं और रुक्खा होते हैं । इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से वृक्ष का आदेश 'रुक्ख' हो जाता है; १-३४ से विकल्प रूप से नपुंसकत्व की प्राप्ति; ३-२६ से प्रथमा-द्वितीया के बहुवचन में 'जस्-शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' का आदेश सहित अन्त्य स्वर को दीर्घता प्राप्त होकर वाले 'ख' का 'खा' होकर *रुक्खाइं* रूप सिद्ध हो जाता है । जब पुल्लिगत्व होता है; तब ३-४ से प्रथमा द्वितीया के बहुवचन के प्रत्यय 'जस्-शस्' की प्राप्ति और इनका लोप; ३-१२ से अन्त्य स्वर की दीर्घता होकर *रुक्खा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम् ॥ ३४ ॥

इमान्ताः अञ्जल्यादयश्च शब्दाः स्त्रियां वा प्रयोक्तव्याः ॥ एसा गरिमा एस गरिमा एसा महिमा एस महिमा । एसा निल्लज्जिमा एस निल्लज्जिमा । एसा धुत्तिमा एस धुत्तिमा ॥ अञ्जल्यादि । एसा अञ्जली एस अञ्जली । पिट्ठी पिट्ठं । पृष्ठमित्वे कृते स्त्रियामेवेत्यन्ये ॥ अच्छी अच्छिं । पण्हा पण्हो । चोरिआ चोरिअं । एवं कुच्छी । बली । निही । विही । रस्सी गण्ठी । इत्यञ्जल्यादयः ॥ गड्डा गड्डो इति तु संस्कृतवदेव सिद्धम् । इमेति तन्त्रेण त्वादेशस्य डिमाइत्यस्य पृथ्वादीम्नश्च संग्रहः । त्वादेशस्य स्त्रीत्वमेवेच्छन्त्येके ॥

अर्थः—जिन शब्दों के अंत में "इमा" है; वे शब्द और अञ्जली आदि शब्द प्राकृत में विकल्प रूप से स्त्री लिंग में प्रयुक्त किये जाने चाहिये । जैसे—एसा गरिमा एस गरिमा से लगा कर एसा धुत्तिमा-एस धुत्तिमा तक जानना । अंजली आदि शब्द भी विकल्प से स्त्री लिंग में होते हैं । जैसे-एसा अञ्जली एस अञ्जली । पिट्ठी पिट्ठं । लेकिन कोई कोई 'पृष्ठम्' के रूप पिट्ठं में 'इत्व' करने पर इस शब्द को स्त्रीलिंग में ही मानते हैं । इसी प्रकार अच्छी से गण्ठी तक "अंजल्यादयः" के कथनानुसार विकल्प से इन शब्दों को स्त्रीलिंग में जानना । गड्डा और गड्डो शब्दों की लिंग सिद्धि संस्कृत के समान ही जान लेना । "इमा" शब्द से युक्त इमान्त शब्द और "त्व" प्रत्यय के आदेश से प्राप्त "इमा" अन्त वाले शब्द; यों दोनों ही प्रकार के "इमान्त" शब्द यहां पर विकल्प रूप से स्त्रीलिंग में माने गये हैं । जैसे—पृथु + इमा = प्रथिमा आदि शब्दों को यहां पर इस सूत्र की विधि अनुसार जानना । अर्थात् इन्हें भी विकल्प से स्त्रीलिंग में जानना । किन्हीं किन्हीं का मत ऐसा है कि "त्व" प्रत्यय के स्थान पर आदेश रूप से प्राप्त होने वाले "डिमा" के "इमान्त" वाले शब्द नित्य स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त किये जाय ॥

एसा शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या-१-३३ में की गई है।

गरिमा:–संस्कृत रूप है; इसका मूल शब्द गरिमन् है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१५ से "न्" का लोप होकर "आ" होता है। यों *गरिमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

एस:–शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या–१-३१ में की गई है।

महिमा:–संस्कृत रूप है। इसका मूल शब्द महिमन् है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५ से 'न्' का लोप होकर "आ" होता है यों *महिमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्लज्जत्वम्:–संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्जिमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या–२-७९ से "र्" का लोप; २-८९ से "ल" का द्वित्व "ल्ल"; २-१५४ से त्वम के स्थान पर "डिमा" अर्थात् "इमा" का आदेश १-१० से 'ज' में स्थित "अ" का लोप होकर "ज" में "इमा" मिल कर *निल्लज्जिमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

धूर्तत्वम्:–संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप धुत्तिमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या–२-७९ से "र्" का लोप; २-८९ से "त" का द्वित्व 'त्त'; १-८४ से "धू" के "दीर्घ ऊ" का "ह्रस्व उ"; २-१५४ से "त्वम्" के स्थान पर "डिमा" अर्थात् "इमा" का आदेश; १-१० से "त" में स्थित "अ" का लोप होकर 'त्' में "इमा" मिलकर धुत्तिमा रूप सिद्ध हो जाता है।

अञ्जलिः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप (एसा) अञ्जली और (एस) अञ्जली होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-३५ से अञ्जली विकल्प से स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों लिंगों में प्रयुक्त किये जाने का विधान है। अतः ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में और स्त्रीलिंग में दोनों लिंगों में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर हो जाता है; यों (एसा) *अञ्जली* और (एस) *अञ्जली* सिद्ध हो जाते हैं।

पृष्ठम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पिट्ठी और पिट्ठं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-१२९ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ठ' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' १-४६ से 'टु' में स्थित 'अ' की 'इ'; १-३५ से स्त्रीलिंग में होने पर और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' के स्थान पर अन्त्य स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *पिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है। १-३५ से विकल्प से नपुंसक होने की दशा में ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *पिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है–

अच्छी-शब्द सूत्र संख्या १-३३ में सिद्ध किया जा चुका है।

अक्षिम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अच्छिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ'; २-८९ से द्वित्व 'छ् छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; १-३५ से विकल्प से स्त्रीलिंग नहीं होकर नपुंसक लिंग होने पर; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*अच्छिं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रश्नः-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पण्हा और पण्हो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७५ से 'श्न' का 'ण्ह' आदेश; १-३५ से स्त्रीलिंग विकल्प से होने पर प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ के सूत्रानुसार 'आ' प्रत्यय प्राप्त होकर *पण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है। एवं लिंग में वैकल्पिक विधान होने से पुल्लिग में ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पण्हो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चौर्यम्:-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चोरिआ और चोरिअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१५९ से "औ" का ओ'; २-१०७ से 'इ' का आगम होकर 'र्' में मिलने पर 'रि' हुआ। १-१७७ से 'य्' का लोप; सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से स्त्रीलिंग वाचक 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति १-११ से अन्त्य 'म्' का लोप; होकर *चोरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है। दूसरे रूप में सूत्र १-३५ में जहाँ स्त्रीलिंग नहीं गिना जायगा; अर्थात् नपुंसक लिंग में ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक लिंग का 'म्' प्रत्यय; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *चोरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुक्षिः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कुच्छी है। इसमें सूत्रसंख्या-२-१७ से 'क्ष' का 'छ्'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ् छ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्' १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *कुच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

बलिः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बली होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घस्वर 'ई' होकर *बली* रूप सिद्ध हो जाता है।

निधिः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप निही होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *निही* रूप सिद्ध हो जाता है।

विधिः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विही होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का 'ई' होकर *विही* रूप सिद्ध हो जाता है।

रश्मिः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप रस्सी हो जाता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'म्' का लोप; १-२६० से 'श्' का 'स्'; २-८९ से 'स्' का द्वित्व 'स्स'; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *रस्सी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्रन्थिः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गण्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१२० से ग्रंथि के स्थान

पर गण्ठि आदेश होता है। १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; ३-१९ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' का दीर्घ 'ई' होकर *गण्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्ता संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप गड्डा और गड्डो बनते हैं। इसमें सूत्र संख्या २-३५ से संयुक्त 'र्त' का 'ड'; २-८९ से प्राप्त 'ड' का द्वित्व 'ड्ड'; १-३५ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; सिद्ध हेम व्या० के २-४-१८ से 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'गड्डा' रूप सिद्ध हो जाता है। और पुल्लिंग होने पर प्रथमा एक वचन में ३-२ से 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्राप्त होकर 'गड्डो' रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ३५ ॥

बाहोरात् ॥ १-३६ ॥

बाहुशब्दस्य स्त्रियामाकारान्तादेशो भवति ॥ बाहाए जेण धरिओ एक्काए ॥ स्त्रियामित्येव । वामेअरो बाहू ॥

अर्थः—बाहु शब्द के स्त्रीलिंग रूप में अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'आ' आदेश होता है। जैसे बाहु का बाहा यह रूप स्त्रीलिंग में ही होता है। और पुल्लिंग में बाहु का बाहु ही रहता है।

बाहुना संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बाहाए होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३६ से स्त्रीलिंग का निर्धारण; और अन्त्य 'उ' के स्थान पर 'आ' का आदेश; ३-२९ से तृतीया के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर '*बाहाए*' रूप सिद्ध होता है।

येन संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप जेण होता है। संस्कृत मूल शब्द 'यत्' है; इसमें १-११ से 'त्' का लोप; १-२४५ से 'य' का 'ज'; ३-६ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण'; ३-१४ से प्राप्त 'ज' में स्थित 'अ' का 'ए' होकर *जेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

धृतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप धरिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३४ से ऋ का 'अर्'; ४-२३९ से हलन्त 'र्' में 'अ' का आगम; सिद्ध हेम व्याकरण के ४-३२ से 'त' प्रत्यय के होने पर पूर्व में 'इ' का आगम; १-१० से प्राप्त इ' के पहिले रहे हुए 'अ' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *धरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

एकेन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप स्त्रीलिंग में एक्काए होता है। इसमें सूत्र संख्या २-९९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से स्त्रीलिंग में अकारान्त का 'आकारान्त'; और ३-२९ से तृतीया के एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एक्काए* रूप सिद्ध हो जाता है।

वामेतरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वामेअरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *वामेअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाहु: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बाहू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'विसर्ग' का लोप होकर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *बाहू* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ३६ ॥

अतो डो विसर्गस्य ॥ १-३७ ॥

संस्कृतलक्षणोत्पन्नस्यातः परस्य विसर्गस्य स्थाने डो इत्यादेशो भवति। सर्वतः। सव्वओ ॥ पुरतः। पुरओ ॥ अग्रतः। अग्गओ ॥ मार्गतः। मग्गओ ॥ एवं सिद्धावस्थापेक्षया। भवतः। भवओ ॥ भवन्तः। भवन्तो ॥ सन्तः। सन्तो ॥ कुतः। कुदो ॥

अर्थः—संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्राप्त हुए 'तः' में स्थित विसर्ग के स्थान पर 'डो' अर्थात् 'ओ' आदेश हुआ करता है। जैसे-सर्वतः में सव्वओ। यों आगे के शेष उदाहरण मार्गतः में मग्गओ तक जान लेना। अन्य प्रत्ययों से सिद्ध होने वाले शब्दों में भी यदि 'तः' प्राप्त हो जाय; तो उस 'तः' में स्थित विसर्ग के स्थान पर 'डो' अर्थात् 'ओ' आदेश हुआ करता है। जैसे-भवतः में भवओ। भवन्तः में भवन्तो। यों ही सन्तो और कुदो को समझ लेना।

सर्वतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सव्वओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' का आदेश होकर *सव्वओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पुरओ होता है। इसमें सूत्र संख्या -१७७ से 'त्' का लोप; १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *पुरओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अग्रतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अग्गओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर अग्गओ रूप सिद्ध हो जाता है।

मार्गतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मग्गओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'मा' के 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *मग्गओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवतः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भवओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *भवओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवन्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भवन्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *भवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सन्त: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *सन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुत: संस्कृत शब्द है। इसका शौरसेनी भाषा में कुदो रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२६० से 'त' का 'द'; और १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' आदेश होकर *कुदो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्प्रती ओत्परी माल्य-स्थोर्वा ॥ १-३८ ॥

निर् प्रति इत्येतौ माल्य शब्दे स्थाधातौ च परे यथा संख्यम् ओत् परि इत्येवं रूपौ वा भवतः। अभेदनिर्देशः सर्वादेशार्थः। ओमालं। निम्मल्लं॥ ओमालयं वहइ। परिट्ठा। पइट्ठा। परिट्ठिअं पइट्ठिअं॥

अर्थ:—माल्य शब्द के साथ में यदि निर् उपसर्ग आवे तो निर् उपसर्ग के स्थान पर आदेश रूप से विकल्प से 'ओ' होता है। तथा स्था धातु के साथ में यदि 'प्रति' उपसर्ग आवे तो 'प्रति' उपसर्ग के स्थान पर आदेश रूप से विकल्प से 'परि' होता है। इस सूत्र में दो उपसर्गों की जो बात एक ही साथ कही गई है; इसका कारण यह है कि संपूर्ण उपसर्ग के स्थान पर आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे-निर्माल्यम् का ओमालं और निम्मल्लं। प्रतिष्ठा का परिट्ठा और पइट्ठा प्रतिष्ठितम् का *परिट्ठिअं* और *पइट्ठिअं*।

निर्माल्यम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ओमालं और निम्मल्लं दोनों होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-३८ से विकल्प से 'निर्' का 'ओ'; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एकवचन में नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *ओमालं* रूप सिद्ध होता है। द्वितीय रूप में १-८४ से 'मा' में स्थित 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वारहोकर *निम्मल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्माल्यकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ओमालयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-३८ से (विकल्प से) 'निर्' का 'ओ'; २-७८ से 'य्' का लोप; १-१७७ से 'क' का लोप; १-१८० से 'क' के 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *ओमालयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वहति संस्कृत धातु रूप है। इसका प्राकृत रूप वहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' होकर *वहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिष्ठा संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप परिट्ठा और पइट्ठा होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-३८ से 'प्रति' के स्थान पर विकल्प से 'परि' आदेश; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से

प्राप्त 'पूर्व ठ्' का 'ट्'; सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'आ' की प्राप्ति होकर *परिट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में जहां 'परि' आदेश नहीं होगा; वहां पर सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'आ' की प्राप्ति होकर *पइट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिष्ठितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप परिट्ठिअं और पइट्ठिअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-३८ से विकल्प से 'प्रति' के स्थान पर 'परि' आदेश; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *'परिट्ठिअं'* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में जहां 'परि' आदेश नहीं होगा; वहां *पइट्ठिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आदेः ॥ १-३९ ॥

आदेरित्यधिकारः कगचज (१-१७७) इत्यादि सूत्रात् प्रागविशेषे वेदितव्यः ॥

अर्थः—यह सूत्र आदि अक्षर के संबंध में यह आदेश देता है कि इस सूत्र से प्रारंभ करके आगे १-१७७ सूत्र से पूर्व में रहे हुए सभी सूत्रों के सम्बन्ध में यह विधान है कि जहां विशेष कुछ भी नहीं कहा गया है; वहां इस सूत्र से शब्दों में रहे हुए आदि अक्षर के सम्बन्ध में 'कहा हुआ उल्लेख' समझ लेना। अर्थात् सूत्र संख्या १-३९ से १-१७६ तक में यदि किसी शब्द के सम्बन्ध में कोई उल्लेख हो; और उस उल्लेख में आदि-मध्य अन्त्य अथवा उपान्त्य जैसा कोई उल्लेख न हो तो समझ लेना कि यह उल्लेख आदि अक्षर के लिये है; न कि शेष अक्षरों के लिये।

त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् ॥ १-४० ॥

त्यदादेरव्ययाच्च परस्य तयोरेव त्यदाद्यव्यययोरादेः स्वरस्य बहुलं लुग् भवति ॥ अम्हेत्थ अम्हे एत्थ। जइमा जइ इमा। जइहं जइ अहं ॥

अर्थः—सर्वनाम शब्दों और अव्ययों के आगे यदि सर्वनाम शब्द और अव्यय आदि आ जांय; तो इन शब्दों में रहे हुए स्वर यदि पास-पास में आ जांय; तो आदि स्वर का बहुधा करके लोप हो जाया करता है।

वयम् संस्कृत शब्द है। इसका मूल 'अस्मद्' के प्रथमा के बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय सहित सूत्र-संख्या ३-१०६ 'अम्हे' आदेश होता है। यों *अम्हे* रूप सिद्ध हो जाता है।

अत्र संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप एत्थ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-५७ से 'अ' का 'ए'; और २-१६१ से 'त्र' के स्थान पर 'त्थ' होकर *एत्थ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अम्हे + एत्थ = अम्हेत्थ; यहाँ पर सूत्र संख्या १–४० से एत्थ के आदि 'ए' का विकल्प से लोप होकर एवं संधि होकर अम्हेत्थ रूप सिद्ध हुआ। तथा जहाँ लोप नहीं होता है; वहाँ पर अम्हे एत्थ होगा। *यदि* संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जइ होता है। इसमें सूत्र संख्या–१–२४५ से 'य' का 'ज'; और १–१७७ से 'द्' का लोप होकर जइ रूप सिद्ध हो जाता है।

इयम् संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप इमा होता है। इसमें सूत्र संख्या–३–७२ से स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के परे रहने पर मूल शब्द इदम् का 'इम' आदेश होता है। तत्पश्चात् सिद्ध हेम व्याकरण के ४–४–१८ से स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय लगा कर '*इमा*' रूप सिद्ध हो जाता है।

जइ + *इमा* = जइमा; यहाँ पर सूत्र संख्या १–४० से 'इमा' के आदि स्वर 'इ' का विकल्प से लोप होकर एवं संधि होकर *जइमा* रूप सिद्ध हो जाता है। तथा जहाँ लोप नहीं होता है; वहाँ पर जइ *इमा* होगा।

अहम् संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप भी अहं ही होता है। अस्मद् मूल शब्द में सूत्र संख्या ३–१०५ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय परे रहने पर अस्मद् का अहं आदेश होता है। यों अहं रूप सिद्ध हो जाता है।

जइ + अहं = जइहं; यहाँ पर सूत्र-संख्या १–४० से 'अहम् के आदिस्वर 'अ' का विकल्प से लोप होकर एवं संधि होकर जइहं रूप सिद्ध हो जाता है। तथा जहाँ लोप नहीं होता है, वहाँ पर जइ अहं होगा ॥ ४० ॥

पदादपेर्वा ॥ १–४१ ॥

पदात् परस्य अपेरव्ययस्यादे लुंग् वा भवति ॥ तं पि तमवि। किं पि किमवि। केण वि। केणावि। कहं पि कहमवि ॥

अर्थः–पद के आगे रहने वाले अपि अव्यय के आदि स्वर 'अ' का विकल्प से लोप हुआ करता है। जैसे–तं पि तमवि। इत्यादि रूप से शेष उदाहरणों में भी समझ लेना। इन उदाहरणों में एक स्थान पर तो लोप हुआ है; और दूसरे स्थान पर लोप नहीं हुआ है। लोप नहीं होने की दशा में संधि–योग्य स्थानों पर संधि भी हो जाया करती है।

'तं' की सिद्धि सूत्र-संख्या १–७ में की गई है।

अपि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप यहाँ पर 'पि' है। इसमें सूत्र संख्या १–४१ से 'अ' का लोप होकर '*पि*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अपि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप अवि है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' होकर *अवि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'कि' शब्द की सिद्धि १-२९ में की गई है।

केन संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप केण होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-७१ से 'किम्' का 'क'; ३-६ से तृतीया एक वचन में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण'; ३-१४ से 'क' के 'अ' का 'ए'; होकर 'केण' रूप सिद्ध हो जाता है। इसी के साथ म 'अवि' अव्यय है; अतः ण' में स्थित 'अ' और 'अवि' का 'अ' दोनों की संधि १-५ से होकर केणावि रूप सिद्ध हो जाता है।

कथमपि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप *कहमवि* होता है। इसकी सिद्धि १-२९ में करदी गई है ॥ ४१ ॥

इतेः स्वरात् तश्च द्विः ॥ १-४२ ॥

पदात् परस्य इतेरादे र्लुग् भवति स्वरात् परश्च तकारो द्विर्भवति ॥ किं ति । जं ति । दिट्ठं ति । न जुत्तं ति ॥ स्वरात् । तह त्ति । झ त्ति । पिओ त्ति । पुरिसो त्ति ॥ पदादित्येव । इअ विज्झ-गुहा-निलयाए ॥

अर्थः—यदि 'इति' अव्यय किसी पद के आगे हो तो इस 'इति' की आदि 'इ' का लोप हो जाया करता है। और यदि 'इ' लोप हो जाने के बाद शेष रहे हुए 'ति' के पूर्व-पद के अंत में स्वर रहा हुआ हो तो इस 'ति' के 'त' का द्वित्व 'त्त' हो जाता है। जैसे—'किम् इति' का 'किं ति'; 'यत् इति' का 'जं ति'; 'दृष्टम् इति' का 'दिट्ठं ति' और 'न युक्तम् इति' का 'न जुत्तं ति'। इन उदाहरणों में 'इति' अव्यय पदों के आगे रहा हुआ है; अतः इनमें 'इ' का लोप देखा जा रहा है। स्वर-संबंधित उदाहरण इस प्रकार हैः—'तथा इति' का 'तह त्ति'; 'झग् इति' का 'झ त्ति'; 'प्रियः इति' का 'पिओ त्ति'; 'पुरुषः इति' का 'पुरिसो त्ति' इन उदाहरणों में 'इति' के शेष रूप 'ति' के पूर्व पदों के अंत में स्वर है; अतः ति' के 'त्' का द्वित्व 'त्त' हो गया है।

'पदात्' ऐसे शब्द का उल्लेख करने का तात्पर्य यह है कि यदि 'इति' अव्यय किसी पद के आगे न रह कर वाक्य के आदि में ही आ जाय तो 'इ' का लोप नहीं होता जैसा कि 'इअ विज्झ-गुहा-निलयाए' में देखा जासकता है।

'किं' शब्द की सिद्धि—१-२९ में की गई है।

(किम्) इति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'किं ति' होता है। सूत्रसंख्या १-४२ से 'इति' के 'इ' का लोप होकर 'ति' रूप हो जाता है। '*यत् इति*' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप '*जं ति*' होता है। 'जं' की सिद्धि-१-२४ में कर दी गई है। और 'इति' के 'ति' की सिद्धि भी इसी सूत्र में ऊपर दी गई है।

दृष्टं इति संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठं ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' का 'इ'; २-३४० से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्'; ३-५ से द्वितीया के एक वचन में 'अम्' प्रत्यय के 'अ' का लोप १-२३ 'म्' का अनुस्वार होकर *दिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है। और १-४२ से 'इति' के 'इ' का लोप होकर *दिट्ठंति* सिद्ध हो जाता है।

('न) युक्तम् (इति', संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'न जुत्तं ति' है। इसमें से 'न' की सिद्धि १–६ में की गई है। और 'ति' की सिद्धि भी इसी सूत्र में की गई है। जुत्तं की साधनिका इस प्रकार है। इसमें सूत्र संख्या १–२४५ से 'य' का 'ज'; २–७७ से 'क्' का लोप; २–८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; ३–२५ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १–२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *जुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तथा इति संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप तह त्ति होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १–१८७ से 'थ' का 'ह'; १–४२ से इति के 'इ' का लोप; और 'त्ति' के 'त' का द्वित्व 'त'; १–८४ से 'हा' के 'आ' का 'अ' होकर *तह त्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

झग इति संस्कृत अव्यय है; इसके प्राकृत रूप झत्ति होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १–११ से 'ग्' का लोप; १–४२ से इति के 'इ' का लोप; तथा 'ति' के 'त' का द्वित्व 'त्त' होकर *झ त्ति* रूप बन जाता है।

प्रियः (इति) संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप 'पिओ त्ति' होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; १–१७७ से 'य्' का लोप; ३–२ से प्रथमा एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ'; होकर *पिओ* रूप सिद्ध हो जाता है। 'त्ति' की सिद्धि इसी सूत्र में की गई है।

पुरुषः इति संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पुरिसो त्ति होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १–१११ से 'रु' के 'उ' को 'इ'; १–२६० से 'ष' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *पुरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है। 'त्ति' की सिद्धि इसी सूत्र में की गई है।

इति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'इअ' है। इसमें सूत्र संख्या–१–९१ से 'ति' में रही हुई 'इ' का 'अ' १–१७७ से 'त्' का लोप; होकर *'इअ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

विन्ध्य संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विञ्झ होता है। इसमें सूत्र संख्या २–२६ से 'ध्य' का 'झ'; १–३० से अनुस्वार का 'ञ्' होकर *विञ्झ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुहा शब्द का रूप संस्कृत और प्राकृत में 'गुहा' होता है। *निलयायाः* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निलयाए होता है। इसमें सूत्र संख्या ३–२९ से ङस् याने षष्ठी एक वचन के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *निलयाए* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ४२ ॥

लुप्त-य-र-व-श-ष-सां श-ष-सां दीर्घः ॥ १–४३ ॥

प्राकृतलक्षणवशाल्लुप्ता याद्या उपरि अधो वा येषां शकारषकारसकाराणां तेषामादेः स्वरस्य दीर्घो भवति ॥ शस्य य लोपे। पश्यति। पासइ। कश्यपः। कासवो॥ आवश्यकं। आवासयं॥ रलोपे। विश्राम्यति। वीसमइ। विश्रामः। वीसामो॥ मिश्रम्। मीसं॥ संस्पर्शः। संफासो॥ वलोपे। अश्वः। आसो। विश्वसिति। वीससइ॥ विश्वासः। वीसासो॥ शलोपे।

दुश्शासनः । दूसासणो ॥ मनः शिला । मणासिला ॥ षस्य यलोपे । शिष्यः । सीसो ॥ पुष्यः । पूसो ॥ मनुष्यः । मणूसो ॥ रलोपे । कर्षकः । कासओ ॥ वर्षाः । वासा ॥ वर्षः वासो ॥ वलोपे । विष्वाणः । वीसाणो ॥ विष्वक् । वीसु ॥ षलोपे । निष्षिक्तः । नीसित्तो ॥ सस्य यलोपे । सस्यम् । सासं ॥ कस्यचित् कासइ रलोपे । उस्रः । ऊसो ॥ विस्रम्भः । वीसम्भो ॥ वलोपे । विकस्वरः । विकासरो ॥ निःस्वः नीसो ॥ सलोपे । निस्सहः । नीसहो ॥ नदीर्घानुस्वरात् (२–९२) इति प्रतिषेधात् सर्वत्र अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् (२–८९) इति द्वित्वाभावः ॥

अर्थः–प्राकृत–व्याकरण के कारण से शकार, षकार, और सकार से संबंधित य, र, व, श, ष, स, का पूर्व में अथवा पश्चात् में लोप होने पर शकार, षकार और सकार के आदि स्वर का दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे-शकार के साथ में रहे हुए 'य' के लोप के उदाहरण = इसमें 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ होता है। जैसे–पश्यति = पासइ। कश्यपः = कासवो। आवश्यकं = आवासयं। यहाँ पर 'य' का लोप होकर 'श्' के पूर्व स्वर का दीर्घ हुआ है।

शकार के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण। जैसे–विश्राम्यति = वीसमइ ॥ विश्रामः = वीसामो ॥ मिश्रम् = मीसं ॥ संस्पर्शः = संफासो ॥ इनमें 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

शकार के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण। जैसे अश्वः=आसो ॥ विश्वसिति = वीससइ ॥ विश्वासः = वीसासो ॥ इनमें 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

शकार के साथ में रहे हुए 'श' के लोप के उदाहरण। जैसे–दुश्शासनः = दूसासणो। मनः शिला = मणा-सिला। इनमें भी 'श्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

षकार के साथ में रहे हुए 'य' के लोप के उदाहरण। जैसे–शिष्यः = सीसो। पुष्यः = पूसो ॥ मनुष्यः = मणूसो ॥ इनमें 'ष्' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

'षकार' के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण। जैसे–कर्षकः=कासओ। वर्षाः = वासा ॥ वर्षः = वासो। यहाँ पर 'ष' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

'षकार' के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण। जैसे–विष्वाणः = वीसाणो ॥ विष्वक् = वीसुं ॥ इनमें 'ष' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

'षकार' के साथ में रहे हुए 'ष' के लोप के उदाहरण। जैसे–निष्षिक्तः = नीसित्तो ॥ यहां पर 'ष' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'य' के लोप के उदाहरण। जैसे-सस्यम् = सासं। कस्यचित् = कासइ ॥ यहां पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'र' के लोप के उदाहरण। जैसे-उस्रः = ऊसो। विस्रम्भः = वीसम्भो ॥ यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'व' के लोप के उदाहरण। जैसे-विकस्वरः = विकासरो। निःस्वः = नीसो। यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

सकार के साथ में रहे हुए 'स' के लोप के उदाहरण। जैसे-निस्सहः = नीसहो यहाँ पर 'स' के पूर्व में रहे हुए स्वर का दीर्घ हुआ है।

यहाँ पर वर्ण के लोप होने पर इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र संख्या ८९ के अनुसार शेष वर्ण को द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होनी चाहिये थी; किन्तु इसी व्याकरण के पाद द्वितीय के सूत्र-संख्या ९२ के अनुसार द्वित्व-प्राप्ति का निषेध कर दिया गया है; अतः द्वित्व का अभाव जानना।

पश्यति संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप पासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-४३ से 'प' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श्' का 'स'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *पासइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कश्यपः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'विसर्ग' अथवा 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवश्यकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आवासयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से 'क' के शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *आवासयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्राम्यति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीसमइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' को दीर्घ 'ई'; १-८४ से 'सा' के 'आ'; का 'अ' २-७८ से 'य्' का लोप; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीसमइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्रामः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसामो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *विसामो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिश्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मीसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्'; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *मीसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्पर्शः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप संफासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से 'स्प' का 'फ'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'फ' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर '*संफासो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अश्वः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप १-४३ से आदि 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा पुल्लिग एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर '*आसो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वसिति संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप वीससइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' के 'इ' को दीर्घ 'ई'; ४-२३९ से 'सि' के 'इ' का 'अ'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर *वीससइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्वासः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'इ' को दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुश्शासनः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दूसासणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप; १-४३ से 'उ' को दीर्घ 'ऊ'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से प्रथमा पुल्लिग एक वचन में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *दूसासणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मणासिला की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

शिष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सीसो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'श' और 'ष' का 'स'; १-४३ से 'इ' को दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर सीसो रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *पूसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मनुष्यः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मणूसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-४३ से 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर मणूसो रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्षकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कासओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से आदि 'क' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१७७ से 'क' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *कासओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्षाः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वासा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; ३-४ से प्रथमा बहुवचन में पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति तथा लोप; और ३-१२ से 'स' के 'अ' का 'आ' होकर *वासा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्षः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'व' के 'अ' का 'आ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर '*वासो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

विष्वाणः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसाणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-४३ से 'वि' के 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'ष' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान 'ओ' होकर *वीसाणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

'वीसुं' शब्द की सिद्धि १-२४ में की गई है।

निष्षिक्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीसित्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; १-४३ से 'नि' के 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'ष' का 'स'; २-७७ से 'क्' का लोप; ३-२ से प्रथमा में पुल्लिग के एक वचन में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *नीसित्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सस्यम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सासं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४३ से आदि 'स' के 'अ' का 'आ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्'; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर 'सासं' रूप सिद्ध हो जाता है।

कस्यचित् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप कासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'च्' का लोप; १-११ से 'त्' का लोप होकर '*कासइ*' रूप सिद्ध हो जाता है।

उस्रः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ऊसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से ह्रस्व 'उ' का दीर्घ 'ऊ'; ३-२ से प्रथमा एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *ऊसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विश्रम्भः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वीसम्भो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'वि' के ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *वीसम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकस्वरः संस्कृत-शब्द है। इसका प्राकृत रूप विकासरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'व्' का लोप; १-४३ से 'क' के 'अ' का 'आ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *विकासरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निःस्वः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीसो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'निः' में रहे हुए विसर्ग अर्थात् 'स्' का लोप; १-४३ से 'नि' के ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-१७७ से 'व' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'ओ' की प्राप्ति होकर *नीसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निस्सहः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीसहो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से आदि 'स्' का लोप; १-४३ से 'नि' में रही हुई ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *नीसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अतः समृद्ध्यादौ वा ॥ १-४४ ॥

समृद्धि इत्येवमादिषु शब्देषु आदेरकारस्य दीर्घो वा भवति। सामिद्धी समिद्धी। पासिद्धी पसिद्धी। पायडं पयडं। पाडिवआ पडिवआ। पासुत्तो पसुत्तो। पाडिसिद्धी पडिसिद्धी। सारिच्छो सरिच्छो। माणंसी मणंसी। माणंसिणी मणंसिणी। आहिआई अहिआई। पारोहो परोहो। पावासू पवासू। पाडिप्फद्धी पडिप्फद्धी॥ समृद्धि। प्रसिद्धि। प्रकट। प्रतिपत्। प्रसुप्त। प्रतिसिद्धि। सदृक्ष। मनस्विन्। मनस्विनी। अभियाति। प्ररोह। प्रवासिन्। प्रतिस्पर्द्धिन्॥ आकृतिगणोयम्। तेन। अस्पर्शः। आफंसो॥ परकीयम्। पारकेरं। पारक्कं॥ प्रवचनं। पावयणं॥ चतुरन्तम्। चाउरन्तं इत्याद्यपि भवति॥

अर्थः—समृद्धि आदि इन शब्दों में आदि में रहे हुए 'अ' का विकल्प से दीर्घ अर्थात् 'आ' होता है जैसे-समृद्धि = सामिद्धी और समिद्धी॥ प्रसिद्धि = पासिद्धि और पसिद्धी॥ प्रकट = पायडं और पयडं॥ प्रतिपत् = पाडिवआ और पडिवआ। यों आगे भी शेष शब्दों में समझ लेना चाहिये।

वृत्ति में 'आकृति गणोऽयम्' कह कर यह तात्पर्य समझाया है कि जिस प्रकार ये उदाहरण दिये गये हैं; वैसे ही अन्य शब्दों में भी आदि 'अ' का दीर्घ 'आ' आवश्यकतानुसार समझ लेना। जैसे कि—अस्पर्शः = आफंसो। परकीयम् = पारकेरं और पारक्कं॥ प्रवचनम् = पावयणं॥ चतुरन्तम् = चाउरन्तं इत्यादि रूप से 'अ' का 'आ' जान लेना।

समृद्धिः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सामिद्धी और समिद्धी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ 'ऋ' की 'इ'; १-४४ से विकल्प से आदि 'अ' का 'आ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' दीर्घ 'ई' होकर *सामिद्धी* और *समिद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रसिद्धिः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पासिद्धी और पसिद्धी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का 'आ' विकल्प से होता है। ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व-इ' दीर्घ 'ई' होकर *पासिद्धी* और *पसिद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रकटम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पायडं और पयडं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; १–४४ से आदि 'अ' का 'आ' विकल्प से होता है। १–१७७ से 'क्' का लोप; १–१८० से शेष 'अ' का 'य'; १–१९५ से 'ट' का 'ड'; ३–२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पायडं पयडं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिपत् संस्कृत शब्द हैं। इसके प्राकृत रूप पाडिवआ और पडिवआ होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; १–४४ से आदि 'अ' का 'आ' विकल्प से होता है; १–२०६ से 'त' का 'ड'; १–२३१ से 'प' का 'व'; १–१५ से अन्त्य व्यञ्जन अर्थात् 'त्' के स्थान पर 'आ'; होकर *पाडिवआ* और *पडिवआ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रसुप्तः संस्कृत शब्द हैं। इसके प्राकृत रूप पासुत्तो पसुत्तो होते हैं। इसमें सूत्र संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; १–४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; २–७७ से द्वितीय 'प्' का लोप; २–८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; और ३–२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' अथवा 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' होकर *पासुत्तो* और *पसुत्तो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिसिद्धिः संस्कृत शब्द हैं इसके प्राकृत रूप पाडिसिद्धी और पडिसिद्धी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २–७९ से 'र्' का लोप; १–४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; १-२०६ से 'त' का 'ड'; ३-१९ से प्रथमा के एकवचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'इ' को दीर्घ होकर *पाडिसिद्धी* और *पडिसिद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सदृक्षः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सारिच्छो और सरिच्छो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१४२ से 'ऋ' का 'रि' १-४४ से आदि-'अ' का विकल्प से 'आ' २-३ से 'क्ष' का 'छ' २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्' और ३-२ से प्रथमा पुल्लिग एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *सारिच्छो* और *सरिच्छो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

मणंसी की सिद्धि १–२६ में की गई है।

माणंसी की सिद्धि-१-४४ से आदि 'अ' का दीर्घ 'आ' होकर होती है। शेष सिद्ध मणंसी के समान जानना।

मणंसिणी की सिद्धि–१–२६ में की गई है।

माणंसिणी में १–४४ से आदि 'अ' का दीर्घ 'आ' होकर यह रूप सिद्ध हो जाता है।

अभियाती संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप आहिआई और अहिआई होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १–१८७ से 'भ' का 'ह'; १–४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; १–१७७ से 'य्' का और 'त्' का लोप; तथा ३–१८२ से इकारान्त की 'ई' प्राप्त होकर *आहिआई* और *अहिआई* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्ररोह:-संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारोहो और परोहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; ३-२ से प्रथमा में पुल्लिग के एक वचन के 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पारोहो* और *परोहो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रवासी संस्कृत शब्द है। इसका मूल प्रवासिन् है। इसके प्राकृत रूप पावासू और पवासू होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का विकल्प से 'आ'; १-९५ से 'इ' का 'उ'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप; और ३-१९ से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *पावासू* और *पवासू* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिस्पर्द्धी संस्कृत शब्द है। इसका मूल रूप प्रतिस्पर्द्धिन् है। इसके प्राकृत रूप पाडिप्फद्धी पडिप्फद्धी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-७९ से दोनों 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का विकल्प से दीर्घ आ; १-२०६ से 'त' का 'ड'; २-५३ से 'स्प' का 'फ'; २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फफ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप; और ३-१९ से अन्त्य 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *पाडिप्फद्धी* और *पडिप्फद्धी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अस्पर्शः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आफंसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४४ की वृत्ति से आदि 'अ' का 'आ'; ४-१८२ से स्पर्श के स्थान पर 'फंस' का आदेश; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आफंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

परकीयम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारकेरं और पारक्कं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-४४ की वृत्ति से 'आदि-अ' का 'आ'; २-१४८ से कीयम् के स्थान पर केर और क्क की प्राप्ति; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *पारकेरं* और *पारक्कं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रवचनम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पावयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४४ से आदि 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *पावयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चतुरन्तम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चाउरन्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४४ से आदि 'अ' का 'आ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *चाउरन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ४४॥

दक्षिणे हे ॥ १-४५ ॥

दक्षिण शब्दे आदेरतो हे परे दीर्घो भवति ॥ दाहिणो ॥ ह इति किम् । दक्खिणो ॥

अर्थः—दक्षिण शब्द में यदि नियमानुसार 'क्ष' का 'ह' हो जाय तो ऐसा 'ह' आगे रहने पर 'द' में रहे हुए 'अ' का 'आ' होता है। जैसे कि-दक्षिणः = दाहिणो। 'ह' ऐसा क्यों कहा ? क्योंकि यदि 'ह' नहीं होगा तो 'द' के 'अ' का 'आ' नहीं होगा। जैसे कि—दक्षिणः=दक्खिणो ॥

दक्षिणः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दाहिणो और दक्खिणो दोनों होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७२ से विकल्प से 'क्ष' का 'ह'; १-४५ से आदि 'अ' का 'आ'; ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *दाहिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' का 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *दक्खिणो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ४५ ॥

इः स्वप्नादौ ॥ १-४६ ॥

स्वप्न इत्येवमादिषु आदेरस्य इत्वं भवति ॥ सिविणो। सिमिणो ॥ आर्षे उकारोपि। सुमिणो ॥ ईसि। वेडिसो। विलिअं। विअणं। मुइङ्गो। किविणो। उत्तिमो। मिरिअं। दिण्णं ॥ बहुलाधिकाराण्णत्वाभावे न भवति। दत्तं। देवदत्तो ॥ स्वप्न। ईषत्। वेतस। व्यलीक। व्यजन। मृदङ्ग। कृपण। उत्तम। मरिच। दत्त इत्यादि ॥

अर्थः—स्वप्न आदि इन शब्दों में आदि 'अ' की 'इ' होती है। जैसे—स्वप्नः = सिविणो और सिमिणो ॥ आर्षरूप में 'उ' भी होता है—जैसे—सुमिणो ॥ ईषत् = ईसि ॥ वेतसः = वेडिसो ॥ व्यलीकम् = विलिअं। व्यजनम् = विअणं। मृदङ्गः = मुइंगो ॥ कृपणः=किविणो ॥ उत्तमः = उत्तिमो ॥ मरिचम् = मिरिअं ॥ दत्तम् = दिण्णं ॥

'बहुलम्' के अधिकार से जब दत्तम् में 'ण' नहीं होता है; अर्थात दिण्णं रूप नहीं होता है; तब दत्तम् में आदि 'अ' की 'इ' भी नहीं होती है। जैसे—दत्तम् = दत्तं ॥ देवदत्तः = देवदत्तो ॥ इत्यादि ॥

स्वप्नः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सिविणो; सिमिणो; और आर्ष में सुमिणो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-४६ से 'व' के 'अ' की 'इ'; १-१७७ से 'व्' का लोप; २-१०८ से 'न' से पूर्व 'प' में 'इ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' होकर '*सिविणो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सिमिणो में सूत्र संख्या १-२५९ से 'व्' के स्थान पर 'म्' होता है; तब *सिमिणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या १-४६ की वृत्ति के अनुसार 'आर्ष' में आदि 'अ' का 'उ' भी हो जाता है। यों *सुमिणो* रूप सिद्ध हो जाता है। शेष सिद्धि ऊपर के समान जानना।

ईषत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप ईसि होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२६० से 'ष' का 'स'; १-४६ से 'स' के 'अ' की 'इ' १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर 'ईसि' रूप सिद्ध हो जाता है।

[illegible handwritten/stamped text]

वेतसः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वेडिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-४६ से 'त' के 'अ' को 'इ'; १-२०७ से 'त' का 'ड'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *'वेडिसो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यलीकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विलीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या-२-७८ से 'य्' का लोप; १-४६ से प्राप्त 'व' के 'अ' को 'इ'; १-८४ से 'ली' के दीर्घ 'ई' को ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यजनम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विअणं होता है इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४६ से प्राप्त 'व' के 'अ' को 'इ'; १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा में एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *'विअणं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदङ्गः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मुइङ्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१३७ से 'ऋ' का 'उ'; १-४६ से 'द' के 'अ' को 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर मुइङ्गो रूप सिद्ध हो जाता है।

कृपणः संस्कृत शब्द है। इसका रूप किविणो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१२८ से 'ऋ' को 'इ'; १४६ से 'प' के 'अ' को 'इ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्ययन के स्थान पर 'ओ' होकर *किविणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्तमः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप उत्तिमो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४६ से 'त' के 'अ' को 'इ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन म पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *उत्तिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मरिचम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मिरिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४६ से 'म' के 'अ' को 'इ'; १-१७७ से 'च्' का लोप; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दत्तम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिण्णं बनता है। इसमें सूत्र संख्या १-४६ 'द' के 'अ' को 'इ' २-४३ से 'त्त' के स्थान पर 'ण' का आदेश; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिण्णं* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवदत्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप देवदत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से पुल्लिग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *देवदत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-४६॥

पक्वाङ्गार-ललाटे वा ॥ १-४७ ॥

एष्वादेरत इत्वं वा भवति ॥ पिक्कं पक्कं । इङ्गालो अङ्गारो । णिडालं णडालं ॥

अर्थः—इन शब्दों में-पक्व-अङ्गार-और ललाट में आदि में रहे हुए 'अ' की 'इ' विकल्प से होती है । जैसे—पक्वम् = पिक्कं और पक्कं । अङ्गारः = इङ्गालो और अङ्गारो । ललाटम् = णिडालं और णडालं ॥ ऐसा जानना ।

पक्वम् संस्कृत शब्द है । इसके प्राकृत रूप पिक्कं और पक्कं होते हैं । इनमें सूत्र संख्या १-४७ से आदि 'अ' की विकल्प से 'इ'; १-१७७ से 'व' का लोप; २-८९ से शेष 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पिक्कं* और *पक्कं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

अङ्गारः संस्कृत शब्द है । इसके प्राकृत रूप इङ्गालो और अङ्गारो होते हैं । इनमें सूत्र संख्या १-४७ से आदि 'अ' की विकल्प से 'इ' १-२५४ से 'र' का 'ल' विकल्प से, और ३-२ से पुंल्लिग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *इङ्गालो* और *अङ्गारो* रूप सिद्ध हो जाते है ।

ललाटम् संस्कृत शब्द है । इसके प्राकृत रूप णिडालं और णडालं होते हैं । इनमें सूत्र संख्या १–२५७ से आदि 'ल' का 'ण'; १–४७ से प्राप्त 'ण' के 'अ' की विकल्प से 'इ'; १–१९५ से 'ट' का 'ड'; २–१२३ से द्वितीय 'ल' और प्राप्त 'ड' का व्यत्यय (आगे का पीछे और पीछे का आगे); –३–२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *णिडालं* और *णडालं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ –४७ ॥

मध्यम–कतमे द्वितीयस्य ॥ १–४८ ॥

मध्यम शब्दे कतम शब्दे च द्वितीयस्यात इत्वं भवति ॥ मज्झिमो । कइमो ॥

अर्थः—मध्यम शब्द में और कतम शब्द में द्वितीय 'अ' को 'इ' होती है । जैसे—मध्यमः = मज्झिमो । कतमः = कइमो ॥

मध्यमः संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप मज्झिमो होता है । इसमें सूत्र संख्या–१–४८ से द्वितीय 'अ' को 'इ'; २–२६ से 'ध्य' का 'झ'; २–८९ से प्राप्त 'झ' का द्वित्व 'झ्झ'; २–९० से प्राप्त 'झ्' का 'ज्'; ३–२ से पुंल्लिग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर '*मज्झिमो*' रूप सिद्ध हो जाता है ।

कतमः संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप कइमो होता है । इसमें सूत्र संख्या–१–१७७ से 'त्' का लोप; १–४८ से शेष द्वितीय 'अ' की 'इ'; ३–२ से पुंल्लिग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *कइमो* रूप सिद्ध हो जाता है । ॥ ४८ ॥

सप्तपर्णे वा ॥ १–४९ ॥

सप्तपर्णे द्वितीयस्यात इत्वं वा भवति ॥ छत्तिवण्णो । छत्तवण्णो ॥

अर्थः–सप्तपर्ण शब्द में द्वितीय 'अ' को 'इ' विकल्प से होती है। जैसे–सप्तपर्णः = छत्तिवण्णो और छत्तवण्णो ॥

सप्तपर्णः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप छत्तिवण्णो और छत्तवण्णो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या–१–२६५ से 'स' का 'छ'; २–७७ से 'प' का लोप; २–८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; १–४९ से द्वितीय 'अ' की यानी 'त' के 'अ' की 'इ' विकल्प से; १–२३१ से 'प' का 'व'; २–७९ से 'र्' का लोप; २–८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; और ३–२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *छत्तिवण्णो* और *छत्तवण्णो* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ ४९ ॥

मयट्यइर्वा ॥ १-५० ॥

मयट् प्रत्यये आदेरतः स्थाने अइ इत्यादेशो भवति वा ॥ विषमयः । विसमइओ । विसमओ ।

अर्थः-'मयट्' प्रत्यय में आदि 'अ' के स्थान पर 'अइ' ऐसा आदेश विकल्प से हुआ करता है। जैसे-विषमयः = विसमइओ और विसमओ ॥

विषमयः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप विसमइओ और विसमओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-५० से 'मय' में 'म' के 'अ' के स्थान पर 'अइ' आदेश की विकल्प से प्राप्ति; १-१७७ 'य' का लोप; और ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *विसमइओ* और *विसमओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ईर्हरे वा ॥ १-५१ ॥

हर शब्दे आदेरत ईर्वा भवति । हीरो हरो ॥

अर्थः–हर शब्द में आदि के 'अ' की 'ई' विकल्प से होती है। जैसे–हरः = हीरो और हरो ॥

हरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हीरो और हरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-५१ से आदि 'अ' की विकल्प से 'ई'; और ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *हीरो* और *हरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

ध्वनि-विष्वचोरुः ॥ १–५२ ॥

अनयोरादेरस्य उत्वं भवति ॥ झुणी । वीसुं ॥ कथं सुणओ । शुनक इति प्रकृत्यन्तरस्य ॥ श्वन् शब्दस्य तु साणो इति प्रयोगौ भवतः ॥

अर्थः—श्वन् और विष्वक् शब्दों के आदि 'अ' का 'उ' होता है। जैसे-श्वानि = सुणी। विष्वक् = वीसुं ॥ 'सुणओ' रूप कैसे हुआ ? उत्तर-इसका मूल शब्द भिन्न है; और वह शुनक है। इससे 'सुणओ' बनता है। और 'श्वन्' शब्द के प्राकृत रूप 'सा' और 'साणो' ऐसे दो होते हैं।

श्वानि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुणी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१५ से 'श्व' का 'स'; १-५२ से आदि 'अ' का 'उ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-१९ से स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर ह्रस्व 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *सुणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*वीसुं*' शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२४* में की गई है।

शुनकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुणओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एकवचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *सुणओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्वन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श्' का 'स्'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप, और ३-४९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर '*सा*' रूप सिद्ध हो जाता है।

श्वन् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप साणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व' का लोप, १-२६० से 'श्' का 'स्', ३-५६ से 'न्' के स्थान पर 'आण' आदेश की प्राप्ति १-४ से 'स' के 'अ' के साथ में 'आण' के 'आ' की संधि, और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिंग में सि प्रत्यय के स्थान पर ओ होकर *साणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्द्र-खण्डिते णा वा ॥ १-५३ ॥

अनयोरादेरस्य णकारेण सहितस्य उत्वं वा भवति ॥ वुन्द्रं वन्द्रं । खुडिओ । खण्डिओ ।

अर्थः—वन्द्र शब्द में आदि 'अ' का विकल्प से 'उ' होता है। सूत्रानुसार यहाँ पर 'ण्' तो दिखलाई नहीं देता है। परन्तु प्राकृत व्याकरण की हस्त लिखित पाठ की प्रति में 'वन्द्र' के स्थान पर 'वण्ड' लिखा हुआ है। अतः 'वण्ड' और खण्डित में 'ण्' के साथ 'आदि-अ' का 'उ' विकल्प से होता है। जैसे वन्द्रम् का वुन्द्रं और वन्द्रं। खण्डितः का खुडिओ और खण्डिओ।

वन्द्रम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप वुन्द्रं और वन्द्रं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-५३ से आदि-'अ' का विकल्प से 'उ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वुन्द्रं* और *वन्द्रं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

खण्डित: संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खुडिओ और खण्डिओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-५३ से आदि-'अ' का 'ण्' सहित विकल्प से 'उ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *खुडिओ* और *खण्डिओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

गवये वः ॥ १-५४ ॥

गवय शब्दे वकाराकारस्य उत्वं भवति ॥ गउओ । गउआ ॥

अर्थः-गवय शब्द में 'व' के 'अ' का 'उ' होता है। जैसे-गवयः = गउओ और गउआ ॥

गवयः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गउओ होता है इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'य्' का लोप; १-५४ से लुप्त 'व' के 'अ' का 'उ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर '*गउओ*' रूप सिद्ध हो जाता है।

गवया संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गउआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' और 'य्' का लोप; १-५४ से लुप्त 'व' के 'अ' का 'उ'; और सिद्ध-हेम-व्याकरण के २-४-१८ से सूत्र 'आत्' से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर *गउआ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ५४ ॥

प्रथमे प-थो वा ॥ १-५५ ॥

प्रथम शब्दे पकार थकारयोरकारस्य युगपत् क्रमेण च उकारो वा भवति ॥ पुढुमं पुढमं पढुमं पढमं ॥

अर्थः-प्रथम शब्द में 'प' के और 'थ' के 'अ' का 'उ' विकल्प से एक साथ भी होता है और क्रम से भी होता है। जैसे-प्रथमम् = (एक साथ का उदाहरण) पुढुमं। (क्रम के उदाहरण-) पुढमं और पढुमं। (विकल्प का उदाहरण-) पढमं।

प्रथमम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चार होते हैं। पुढुमं, पुढमं, पढुमं और पढमं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२१५ से 'थ' का 'ढ'; १-५५ से 'प' और प्राप्त 'ढ' के 'अ' का 'उ' विकल्प से; युगपद् रूप से और क्रम से; ३-२५ से प्रथमा के एकवचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *पुढुमं*, *पुढमं*, *पढुमं*, और *पढमं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥५५॥

ज्ञो णत्वेभिज्ञादौ ॥ १-५६ ॥

अभिज्ञ एवं प्रकारेषु ज्ञस्य णत्वे कृते ज्ञस्यैव अत उत्वं भवति ॥ अहिण्णू । सव्वण्णू । कयण्णू । आगमण्णू ॥ णत्व इति किम् । अहिज्जो । सव्वज्जो ॥ अभिज्ञादाविति किम् । प्राज्ञः । पण्णो ॥ येषां ज्ञस्य णत्वे उत्वं दृश्यते ते अभिज्ञादयः ॥

अर्थः–अभिज्ञ आदि इस प्रकार के शब्दों में 'ज्ञ' का 'ण' करने पर 'ज्ञ' में रहे हुए 'अ' का 'उ' होता है। जैसे–अभिज्ञः = अहिण्णु। सर्वज्ञः = सव्वण्णू। कृतज्ञः = कयण्णू। आगमज्ञः = आगमण्णू। 'णत्व' ऐसा ही क्यों कहा गया है? क्योंकि यदि 'ज्ञ' का 'ण' नहीं करेंगे तो वहां पर 'ज्ञ' में रहे हुए 'अ' का 'उ' नहीं होगा। जैसे–अभिज्ञः = अहिज्जो। सर्वज्ञः = सव्वज्जो॥ अभिज्ञ आदि में ऐसा क्यों कहा गया है? क्योंकि जिन शब्दों में 'ज्ञ' का 'ण' करने पर भी 'ज्ञ' में रहे हुए 'अ' का 'उ' नहीं किया गया है, उन्हें 'अभिज्ञ-आदि' शब्दों की श्रेणी में मत गिनना। जैसे–प्राज्ञः = पण्णो॥ अतएव जिन शब्दों में 'ज्ञ' का 'ण' करके 'ज्ञ' के 'अ' का 'उ' देखा जाता है उन्हें ही 'अभिज्ञ' आदि की श्रेणी वाला जानना।

अभिज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अहिण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर '*अहिण्णू*' रूप सिद्ध हो जाता है।

सर्वज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सव्वण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर '*सव्वण्णू*' रूप सिद्ध हो जाता है।

कृतज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कयण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त' का लोप; १-१८० से 'त' के 'अ' का 'य'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *कयण्णू* रूप सिद्ध हो जाता है।

आगमज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आगमण्णू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-५६ से 'ण' के 'अ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *आगमण्णू* रूप सिद्ध हो जाता है।

अभिज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अहिज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; २-८३ से 'ज्ञ' में रहे हुए 'ञ' का लोप; २-८९ से शेष 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *अहिज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सर्वज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सव्वज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; २-८३ से 'ज्ञ' में रहे हुए 'ञ' का लोप; २-८९ से शेष 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *सव्वज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्राज्ञः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'पण्णो' होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से 'पा' के 'आ' का 'अ'; २-४२ से 'ज्ञ' का 'ण'; २-८९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर '*पण्णो*' रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ५६ ॥

एच्छय्यादौ ॥ १-५७ ॥

शय्यादिषु आदेरस्य एत्वं भवति ॥ सेज्जा । सुन्देरं । गेन्दुअं । एत्थ ॥ शय्या । सौन्दर्यं । कन्दुकं । अत्र ॥ आर्षे पुरे कम्मं ।

अर्थः—शय्या आदि शब्दों में आदि 'अ' का 'ए' होता है। जैसे–शय्या = सेज्जा। सौन्दर्यम् = सुन्देरं। कन्दुकम् = गेन्दुअं। अत्र=एत्थ ॥ आर्ष में आदि 'आ' का 'ए' भी देखा जाता है। जैसे–पुरा कर्म = पुरे कम्मं ॥

शय्या संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सेज्जा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-५७ से 'श' के आदि 'अ' का 'ए'; १-२६० से 'श' का 'स'; २-२४ से 'य्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; और सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से आकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर *सेज्जा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौन्दर्यम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुन्देरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' का 'उ'; १-५७ से 'द' के 'अ' का 'ए'; २-६३ से 'र्य' का 'र'; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुन्देरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कन्दुकम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गेन्दुअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८२ से आदि 'क' का 'ग'; १-५७ से प्राप्त 'ग' के 'अ' का 'ए'; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; ३-२५ से नपुंसक लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गेन्दुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एत्थ' की सिद्धि १-४० में की गई है।

पुराकर्म संस्कृत शब्द है। इसका आर्ष प्राकृत रूप पुरे कम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-५७ की वृत्ति से 'आ' का 'ए'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर '*पुरेकम्मं*' रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ५७ ॥

वल्ल्युत्कर-पर्यन्ताश्चर्ये वा ॥ १-५८ ॥

एषु आदेरस्य एत्वं वा भवति ॥ वेल्ली वल्ली । उक्केरो उक्करो । पेरन्तो पज्जन्तो । अच्छेरं अच्छरिअं अच्छअरं अच्छरिज्जं अच्छरीअं ॥

अर्थः-वल्ली, उत्कर, पर्यन्त और आश्चर्य में आदि 'अ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे-वल्ली = वेल्ली और वल्ली। उत्करः = उक्केरो और उक्करो। पर्यन्तः=पेरन्तो और पज्जन्तो। आश्चर्यम् = अच्छेरं, अच्छरिअं इत्यादि॥

वल्ली संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप वेल्ली और वल्ली होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-५८ से आदि 'अ' का विकल्प से 'ए' और ३-१९ से स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर दीर्घ का दीर्घ ही होकर *'वेल्ली'* और *वल्ली* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उत्करः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप उक्केरो और उक्करो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; १-५८ से 'क' के 'अ' का विकल्प से 'ए'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *उक्केरो* और *उक्करो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पर्यन्तः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेरन्तो और पज्जन्तो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-५८ से 'प' के 'अ' का 'ए'; २-६५ से 'र्य' का 'र'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पेरन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप पज्जन्तो में सूत्र संख्या २-२४ से 'र्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पज्जन्तो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आश्चर्यम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप अच्छेरं, अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं और अच्छरीअं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'आ' का 'अ'; २-२१ से 'श्च' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छछ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; २-६६ से 'र्य' का 'र'; १-५८ से 'छ' के 'अ' का विकल्प से 'ए'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर *अच्छेरं* रूप सिद्ध हो जाता है। २-६७ से पक्ष में 'र्य' का विकल्प से 'रिअ'; 'अर'; 'रिज्ज', और 'रीअ' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अच्छरिअं, अच्छअरं, अच्छरिज्जं* और *अच्छरीअं* रूप सिद्ध हो जाते हैं॥ ५८॥

ब्रह्मचर्ये चः॥ १-५९॥

ब्रह्मचर्य शब्दे चस्य अत एत्वं भवति॥ बम्हचेरं॥

अर्थः-ब्रह्मचर्य शब्द में 'च' के 'अ' का 'ए' होता है। जैसे-ब्रह्मचर्यम् = बम्हचेरं॥

ब्रह्मचर्यम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बम्हचेरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७४ से 'ह्म' का 'म्ह'; २-६३ से 'र्य' का 'र'; १-५९ से 'च' के 'अ' का 'ए'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *बम्हचेरं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ५९॥

तोन्तरि ॥ १-६० ॥

अन्तर शब्दे तस्य अत एत्वं भवति ॥ अन्तः पुरम् । अन्ते उरं ॥ अन्तश्चारी । अन्ते आरी । क्वचिन्न भवति । अन्तग्गयं । अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं ॥

अर्थः—अन्तर-शब्द में 'त' के 'अ' का 'ए' होता है । जैसे-अन्तः पुरम् = अन्ते उरं । अन्तश्चारी = अन्ते आरी ॥ कहीं कहीं पर 'अन्तर' के 'त' के 'अ' का 'ए' नहीं भी होता है । जैसे-अन्तर्गतम् = अन्तग्गयं ॥ अन्तर-विश्रम्भ-निवेसितानाम् = अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं ॥

अन्तःपुरम् संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्ते उरं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'र्' अथवा 'विसर्ग' का लोप १-६० से 'त' के 'अ' का 'ए', १-१७७ से 'प्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा के एकवचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति, १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर '*अन्तेउरं*' रूप सिद्ध हो जाता है ।

अन्तश्चारी संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्तेआरी होता है । इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'स्' का लोप, १-६० से 'त' के 'अ' का 'ए'; १-१७७ से 'च्' का लोप; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर की दीर्घता होकर *अन्तेआरी* रूप सिद्ध हो जाता है ।

अन्तर्गतम् संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्तग्गयं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; १-१७७ से द्वितीय 'त' का लोप; १-१८० से 'त्' के शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अन्तग्गयं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

अन्तर-विश्रम्भ-निवेसितानाम् संस्कृत शब्द है । इसका प्राकृत रूप अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-३७ से 'अन्तर्' के 'र्' का 'ओ'; २-७९ से 'श' के 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-४३ से 'वि' की 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-६ से षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय 'आम्' वाले 'साम्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-१२ से प्राप्त 'ण' के पहिले के स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ'; १-२७ से 'ण' पर अनुस्वार का आगम होकर *अन्तो-वीसम्भ-निवेसिआणं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

ओत्पद्मे ॥ १-६१ ॥

पद्म शब्दे आदेरत ओत्वं भवति ॥ पोम्मं ॥ पद्म-छद्म-(२-११२) इति विश्लेषे न भवति । पउमं ॥

अर्थः—पद्म शब्द में आदि 'अ' का 'ओ' होता है । जैसे-पद्मम् = पोम्मं । किन्तु सूत्र संख्या २-११२ से विश्लेष अवस्था में आदि 'अ' का 'ओ' नहीं होता है । जैसे-पद्मम् = पउमं ॥

पद्मम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पोम्मं और पउमं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६१ से आदि 'अ' का 'ओ'; २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पोम्मं रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में २-७७ से 'द्' का लोप; २- ११२ से 'द्' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पउमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'छम्र' की सिद्धि आगे २-११२ में की जायगी ॥ ६१ ॥

नमस्कार-परस्परे द्वितीयस्य ॥ १-६२ ॥

अनयो द्वितीयस्य अत ओत्वं भवति ॥ नमोक्कारो । परोप्परं ॥

अर्थः-नमस्कार और परस्पर इन दोनों शब्दों में 'द्वितीय-अ' का 'ओ' होता है। जैसे-नमस्कारः = नमोक्कारो। परस्परम् = परोप्परं ॥

नमस्कारः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नमोक्कारो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६२ से द्वितीय 'अ' का 'ओ'; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से 'क' का 'द्वित्व क्क'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *नमोक्कारो* सिद्ध हो जाता है।

परस्परम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप परोप्परं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६२ से 'द्वितीय-अ' का 'ओ'; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'प' का 'द्वित्व प्प'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *परोप्परं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्पौ ॥ १-६३ ॥

अर्पयतौ धातौ आदेरस्य ओत्वं वा भवति ॥ ओप्पेइ अप्पेइ । ओप्पिअं अप्पिअं ॥

अर्थः-'अर्पयति' धातु में आदि 'अ' का विकल्प से 'ओ' होता है। जैसे-अर्पयति = ओप्पेइ और अप्पेइ। अर्पितम् = ओप्पिअं और अप्पिअं ॥

अर्पयति संस्कृत प्रेरणार्थक क्रिया पद है। इसके प्राकृत रूप ओप्पेइ अप्पेइ होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-६३ से आदि 'अ' का विकल्प से 'ओ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; ३-१४९ से प्रेरणार्थक में 'णि' प्रत्यय के स्थान पर यहाँ पर प्राप्त 'अय' के स्थान पर 'ए'; और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष में एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' होकर *ओप्पेइ* और *अप्पेइ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अर्पितम् संस्कृत भूत कृदन्त क्रियापद है। इसके प्राकृत रूप ओप्पिअं और अप्पिअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६३ से आदि 'अ' का विकल्प से 'ओ'; २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प' ३-१५६

से भूत कृदन्त के 'त' प्रत्यय के पहिले आने वाली 'इ' की प्राप्ति मौजूद ही है; १–१७७ से 'त्' का लोप; ३–२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ओप्पिअं अप्पिअं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ।। ६३ ।।

स्वपावुच्च ।। १-६४ ।।

स्वपितौ धातौ आदेरस्य ओत् उत् च भवति ।। सोवइ सुवइ ।।

अर्थः–'स्वपिति' धातु में आदि 'अ' का 'ओ' होता है और 'उ' भी होता है । जैसे–स्वपिति = सोवइ और सुवइ ।।

स्वपिति संस्कृत क्रियापद है; इसका धातु स्वप् है । इसका प्राकृत रूप सोवइ और सुवइ होता है । इसमें सूत्र संख्या ४–२३९ से हलन्त 'प्' में 'अ' का संयोजन; १–२६० से 'श्' का 'स्'; २–७९ से 'व' का लोप; १–२३१ से 'प्' का 'व्'; १-६४ से आदि 'अ' का 'ओ' और 'उ' क्रम से ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' होकर क्रम से *सोवइ* और *सुवइ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ।। ६४ ।।

नात्पुनर्यादाई वा ।। १–६५ ।।

नञः परे पुनः शब्दे आदेरस्य 'आ' 'आइ' इत्यादेशौ वा भवतः ।। न उणा ।। न उणाइ । पक्षे न उण । न उणो ।। केवलस्यापि दृश्यते । पुणाइ ।।

अर्थः–नञ् अव्यय के पश्चात् आये हुए 'पुनर्' शब्द में आदि 'अ' को 'आ' और 'आइ' ऐसे दो आदेश क्रम से और विकल्प से प्राप्त होते हैं । जैसे–न पुनर् = न उणा और न उणाइ । पक्ष में–न उण और न उणो भी होते हैं । कहीं कहीं पर 'न' अव्यय नहीं होने पर भी 'पुनर्' शब्द में विकल्प रूप से उपरोक्त आदेश 'आइ' देखा जाता है । जैसे–पुनर = पुणाइ ।।

न पुनः संस्कृत अव्यय है । इसके प्राकृत रूप न उणा; न उणाइ; न उण; न उणो होते हैं । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; १-२२८ से पुनर् के 'न' का 'ण'; १-११ से विसर्ग याने 'र्' का लोप; १-६५ से प्राप्त 'ण' के 'अ' को क्रम से और विकल्प से 'आ' एवं 'आइ' आदेशों की प्राप्ति होकर *न उणा*, *न उणाइ*, और *न उण* रूप सिद्ध हो जाते हैं । एवं पक्ष में १-११ के स्थान पर १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'ओ' होकर *न उणो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

पुनः का रूप पक्ष में पुणाइ भी होता है । इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-११ से विसर्ग अर्थात् 'र्' का लोप; और १-६५ से 'अ' को केवल 'आइ' आदेश की प्राप्ति होकर '*पुणाइ*' रूप सिद्ध हो जाता है ।। ६५ ।।

वालाब्वरण्ये लुक् ॥१-६६ ॥

अलाब्वरण्य शब्दयोरादेरस्य लुग् वा भवति। लाउं अलाउं। लाऊ, अलाऊ। रण्णं अरण्णं॥ अत इत्येव। आरण्ण-कुञ्जरो व्व वेल्लन्तो॥

अर्थः-अलाबू और अरण्य शब्दों के आदि-'अ' का विकल्प से लोप होता है। जैसे-अलाबुम् = लाउं और अलाउं। अरण्यम् = रण्णं और अरण्णं॥ 'अरण्य' के आदि में 'अ' हो; तभी उस 'अ' का विकल्प से लोप होता है। यदि 'अ' नहीं होकर अन्य स्वर हो तो उसका लोप नहीं होगा। जैसे-आरण्य कुञ्जर-इव रममाणः = आरण्ण कुञ्जरो व्व वेल्लन्तो-इस दृष्टान्त में 'आरण्ण' में 'आ' है; अतः इसका लोप नहीं हुआ।

अलाबुम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप लाउं और अलाउं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप; १-६६ से आदि 'अ' का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से लाउं और अलाउं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अलाबूः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप लाऊ और अलाऊ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप; १-६६ से आदि-अ-का विकल्प से लोप; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर क्रम से *लाऊ* और *अलाऊ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अरण्यम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप रण्णं और अरण्णं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-६६ से आदि 'अ' का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *रण्णं* और *अरण्णं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आरण्य संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आरण्ण होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; और २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण' होकर *आरण्ण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुञ्जरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कुञ्जरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *कुञ्जरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

'व्व' की सिद्धि १-६ में की गई है।

रममाणः संस्कृत वर्तमान कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वेल्लन्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१६८ से रम् धातु को 'वेल्ल' आदेश; ३-१८१ से प्राप्त वाले आमण् प्रत्यय के स्थान पर 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेल्लन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ६६॥

वाऽव्ययोत्खातादावदातः ॥ १-६७ ॥

अव्ययेषु उत्खातादिषु च शब्देषु आदेराकारस्य अद् वा भवति ॥ अव्ययम् । जह जहा । तह तहा । अहव अहवा । व वा । ह हा । इत्यादि ॥ उत्खातादि । उक्खयं उक्खायं । चमरो चामरो । कलओ कालओ ठविओ ठाविओ । परिट्ठविओ परिट्ठाविओ । संठविओ संठाविओ । पययं पाययं । तलवेण्टं तालवेण्टं । तल वोण्टं ताल वोण्टं । हलिओ हालिओ । नराओ नाराओ । बलया बलाया । कुमरो कुमारो । खइरं खाइरं ॥ उत्खात । चामर । कालक । स्थापित । प्राकृत । ताल वृन्त । हालिका । नाराच । बलाका । कुमार । खादिर । इत्यादि ॥ केचिद् ब्राह्मण पूर्वाह्णयोर- पीच्छन्ति । बम्हणो बाम्हणो । पुव्वण्हो पुव्वाण्हो ॥ दवग्गी । दावग्गी ॥ चडू चाडू । इति शब्द-भेदात् सिद्धम् ॥

अर्थः-कुछ अव्ययों में और उत्खात आदि शब्दों में आदि में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'अ' हुआ करता है। अव्ययों के दृष्टान्त इस प्रकार हैं-यथा = जह और जहा। तथा = तह और तहा। अथवा = अहव और अहवा। वा = व और वा। हा = ह और हा ॥ इत्यादि।

उत्खात आदि के उदाहरण इस प्रकार हैं-

उत्खातम् = उक्खयं और उक्खायं। चामरः = चमरो और चामरो। कालकः = कलओ और कालओ। स्थापितः = ठविओ और ठाविओ। प्रति स्थापितः = परिट्ठविओ और परिट्ठाविओ। संस्थापितः = संठविओ और संठाविओ। प्राकृतम् = पययं और पाययं।

तालवृन्तम् = तलवेण्टं और तालवेण्टं। तलवोण्टं, तालवोण्टं। हालिकः = हलिओ और हालिओ। नाराचः = नराओ और नाराओ। बलाका = बलया और बलाया। कुमारः = कुमरो और कुमारो। खादिरम् = खइरं और खाइरं ॥ इत्यादि रूप से जानना। कोई २ ब्राह्मण और पूर्वाह्ण शब्दों के आदि 'आ' का विकल्प से 'अ' होना मानते हैं। जैसे-ब्राह्मणः = बम्हणो और बाम्हणो। पूर्वाह्णः = पुव्वण्हो और पुव्वाण्हो ॥ दवाग्निः-दावाग्निः दवग्गी और दावग्गी। चटुः और चाटुः = चडू और चाडू। अंतिम चार रूपों में-(दवग्गी से चाडू तक में)-भिन्न भिन्न शब्दों के आधार से परिवर्तन होता है; अतः इनमें यह सूत्र १-६७ नहीं लगाया जाना चाहिये। अर्थात् इनकी सिद्धि शब्द-भेद से याने अलग अलग शब्दों से होती है। ऐसा जानना।

यथा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप जह और जहा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *जह* और *जहा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तथा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप तह और तहा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' का 'ह'; और १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *तह* और *तहा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अथवा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप अहव और अहवा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' का 'ह' और १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *अहव* और *अहवा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप व और वा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर *व* और *वा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप ह और हा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ' होकर 'ह' और '*हा*' रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उत्खातम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप उक्खयं और उक्खायं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या–२-७७ से आदि 'त्' का लोप; २-८९ से 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप; १-१८० से 'त्' के 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन म नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *उक्खयं* और *उक्खायं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चामरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप चमरो और चामरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या–१-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *चमरो* और *चामरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

कालकः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कलओ और कालओ होते है। इनमें सूत्र संख्या–१-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *कलओ* और *कालओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

स्थापितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ठविओ और ठाविओ होते हैं। इन में सूत्र संख्या-४-१६ से "स्था" का "ठा"; १-६७ से प्राप्त "ठा" के "आ" का विकल्प से "अ"; १-२३१ से "प" का "व"; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय होकर क्रमसे *ठविओ* और *ठाविओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रतिस्थापितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप परिट्ठविओ और परिट्ठाविओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-३८ से "प्रति" के स्थान पर "परि"; ४-१६ से "स्था" का "ठा"; २-८९ से "प्राप्त ठ" को द्वित्व "ठ् ठ"; २-९० से प्राप्त पूर्व "ठ्" का "ट्"; १-२३१ से "प" का "व"; १-६७ से प्राप्त "ठा" के "आ" का विकल्प से "अ"; १-१७७ से "त्" का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" होकर *परिट्ठविओ* और *परिट्ठाविओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

संस्थापितः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप संठविओ और संठाविओ होते हैं; इनमें सूत्र-संख्या ४-१६ से "स्था" का "ठा"; १-६७ से प्राप्त "ठा" के "आ" का "अ"; १-२३१ से "प" का "व";

१-१७७ से "त्" का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" होकर क्रम से *संठविओ* और *संठाविओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्राकृतम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पययं और पाययं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-६७ से 'पा' के 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' और 'त्' का लोप; १-१८० से 'क्' और 'त्' के शेष दोनों 'अ' को क्रम से 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पययं* और *पाययं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तालवृन्तम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप तलवेण्टं, तालवेण्टं, तलवोण्टं और तालवोण्टं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१३९ से 'ऋ' का 'ए' और 'ओ' क्रम से; २-३१ से 'न्त' का 'ण्ट'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *तलवेण्टं, तालवेण्टं, तलवोण्टं* और *तालवोण्टं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हालिकः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हलिओ और हालिओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *हलिओ* और *हालिओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नाराचः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप नराओ और नाराओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'च्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *नराओ* और *नाराओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

बलाका संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बलया और बलाया होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष-'अ' का 'य'; और सिद्ध-हेम व्याकरण के २-४-१८ से आकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर क्रम से *बलया* और *बलाया* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

कुमारः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कुमरो और कुमारो होते हैं। इन में सूत्र-संख्या १-६७ से 'आ' का विकल्प से 'अ'; और ३-२ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *कुमरो* और *कुमारो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

खादिरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप खइरं और खाइरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *खइरं* और *खाइरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ब्राह्मणः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बम्हणो और बाम्हणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; ५-७४ से 'ह्म' का 'म्ह'; १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *बम्हणो* और *बाम्हणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पूर्वाह्णः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पुव्वण्हो और पुव्वाण्हो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; १-८४ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; १-६७ से आदि 'आ' का विकल्प से 'अ'; २-७५ से 'ह्ण' का 'ण्ह'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *पुव्वण्हो* और *पुव्वाण्हो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्वाग्निः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दावग्गी होता है। इसमें सूत्र संख्या-२-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' १-८४ से 'वा' के 'आ' का 'अ'; ३-१९ से पुल्लिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *दवग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

दावाग्निः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दावग्गी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से 'ग्' का द्वित्व 'ग्ग'; १-८४ से 'वा' के 'आ' का 'अ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ह्रस्व स्वर इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *दावग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

चटुः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चडू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड'; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर चडू रूप सिद्ध हो जाता है।

चाटुः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चाडू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड'; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर चाडू रूप सिद्ध हो जाता है।

घञ् वृद्धे र्वा ॥ १-६८ ॥

घञ् निमित्तो यो वृद्धि रूप आकारस्तस्यादिभूतस्य अद् वा भवति ॥ पवहो पवाहो। पहरो पहारो। पयरो पयारो। प्रकारः प्रचारो वा। पत्थवो पत्थावो॥ क्वचिन्न भवति। रागः राओ॥

अर्थः–घञ् प्रत्यय के कारण से वृद्धि प्राप्त आदि 'आ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसे–प्रवाहः = पवहो और पवाहो॥ प्रहारः=पहरो और पहारो॥ प्रकारः अथवा प्रचारः = पयरो और पयारो॥ प्रस्तावः = पत्थवो और पत्थावो॥ कहीं कहीं पर 'आ' का 'अ' नहीं भी होता है। जैसे–रागः = राओ

प्रवाहः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पवहो और पवाहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-६८ से 'आ' का विकल्प से 'अ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *पवहो* और *पवाहो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रहारः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पहरो और पहारो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-६८ से 'आ' का विकल्प से 'अ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *पहरो* और *पहारो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रकारः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पयरो और पयारो होते हैं। इन में सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-६८ से 'आ' का विकल्प से 'अ'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *पयरो* और *पयारो* सिद्ध हो जाते हैं। *प्रचारः* के प्राकृत रूप पयरो और पयारो की सिद्धि ऊपर लिखित 'प्रकार' शब्द की सिद्धि के समान ही जानना।

प्रस्तावः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पत्थवो और पत्थावो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; २-४५ से 'स्त' का 'थ'; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्'; १-६८ से 'आ' का 'अ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से पत्थवो और *पत्थावो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

रायः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप राओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या- -१७७ से 'य्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर '*राओ*' रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ६८ ॥

महाराष्ट्रे ॥ १-६९ ॥

महाराष्ट्र शब्दे आदेराकारस्य अद् भवति ॥ मरहट्ठं । मरहट्ठो ॥

अर्थः महाराष्ट्र शब्द में आदि 'आ' का 'अ' होता है। जैसे-महाराष्ट्रम् = मरहट्ठं। महाराष्ट्रः = मरहट्ठो ॥

महाराष्ट्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मरहट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६९ से आदि 'आ' का 'अ'; १-८४ से 'रा' के 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'ष्ट्र' के 'र्' का लोप; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; २-११९ से 'ह' और 'र' वर्णों का व्यत्यय ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मरहट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

महाराष्ट्र: = 'मरहट्ठो' शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों लिंग वाला होने से पुल्लिग में ३-२ से 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *मरहट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मांसादिष्वनुस्वारे ॥ १-७० ॥

मांसप्रकारेषु अनुस्वारे सति आदेरातः अद् भवति। मंसं। पंसू। पंसणो। कंसं। कंसिओ। वंसिओ। पंडवो। संसिद्धिओ। संजत्तिओ॥ अनुस्वार इति किम्। मासं। पासू॥ मांस। पांसु। पांसन। कांस्य। कांसिक। वांशिक। पाण्डव। सांसिद्धिक। सांयात्रिक। इत्यादि॥

अर्थ:–मांस आदि जैसे शब्दों में अनुस्वार करने पर आदि 'आ' का 'अ' होता है। जैसे-मांसम् = मंसं। पांशु: = पंसू। पांसन: = पंसणो। कांस्यम् = कंसं। कांसिक: = कंसिओ। वांशिक: = वंसिओ। पाण्डव: = पंडवो। सांसिद्धिक: = संसिद्धिओ। सांयात्रिक: = संजत्तिओ। सूत्र में अनुस्वार का उल्लेख क्यों किया?

उत्तर–यदि अनुस्वार नहीं किया जायगा तो 'आदि आ' का 'अ' भी नहीं होगा। जैसे-मांसम् = मासम्। पांशु: = पासू॥ इन उदाहरणों में आदि 'आ' का 'अ' नहीं किया गया है। क्योंकि अनुस्वार नहीं है।

मंसं शब्द की सिद्धि १-२९ में की गई है।

पंसू शब्द की सिद्धि १-२६ में की गई है।

पांसन: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पंसणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-७० से 'आ' का 'अ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२ से पुल्लिग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पंसणो* रूप सिद्ध होता जाता है।

कंसं की सिद्धि १-२९ में की गई है।

कांसिक: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कंसिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; १-७० से आदि 'आ' का 'अ'; ३-२ से प्रथमा के वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *कंसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वांशिक: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वंसिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२६० से 'श' का 'स'; १-७० से 'आदि-आ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *वंसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाण्डव: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पंडवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-७० से 'आदि-आ' का 'अ'; १-२५ से 'ण्' का अनुस्वार; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'ओ' प्रत्यय होकर *पंडवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सांसिद्धिक: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संसिद्धिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७० से आदि 'आ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एकवचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *संसिद्धिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सांयात्रिक: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संजत्तिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७० से आदि 'आ' का 'अ'; १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-८४ से द्वितीय 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-१७७ से क् का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *संजत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मासं और पासू शब्दों की सिद्धि भी १-२९ में की गई है ।७० ॥

श्यामाके मः ॥ १-७१

श्यामाके मस्य आतः अद् भवति ॥ सामओ ॥

अर्थ:—श्यामाक में 'मा' के 'आ' का 'अ' होता है। जैसे श्यामाकः = सामओ ॥

श्यामाक: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सामओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' का 'स'; २-७८ से 'य' का लोप; १-७१ से 'मा' के 'आ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *सामओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ७१ ॥

इः सदादौ वा ॥ १-७२ ॥

सदादिषु शब्देषु आत इत्वं वा भवति ॥ सइ सया । निसिअरो निसा-अरो । कुप्पिसो कुप्पासो ॥

अर्थ:—सदा आदि शब्दों में 'आ' की 'इ' विकल्प से होती है। जैसे—सदा = सइ और सया । निशाचरः = निसिअरो और निसाअरो । । कूर्पासः = कुप्पिसो और कुप्पासो ॥

सदा संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप सइ और सया होते हैं। इनमें सूत्र संख्या—१-१७७ से 'द' का लोप; और १-७२ से शेष 'आ' की 'इ' विकल्प से होकर 'सइ' रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में—१-१७७ से 'द' का लोप; और १-१८० शेष 'अ' अर्थात् 'आ' का 'या' होकर *सया* रूप सिद्ध हो जाता है।

निसिअरो और निसाअरो शब्दो की सिद्धि १-८ में की गई है।

कूर्पास: संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कुप्पिसो और कुप्पासो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या—१-८४ से 'कू' के 'ऊ' का 'उ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; १-७२ से 'आ' की विकल्प से 'इ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर कुप्पिसो *कुप्पासो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥७२॥

आचार्ये चोच्च ॥ १-७३ ॥

आचार्य शब्दे चस्य आत इत्वम् अत्वं च भवति ॥ आइरिओ, आयरिओ ॥

अर्थः—आचार्य शब्द में 'चा' के 'आ' की 'इ' और 'अ'; होता है। जैसे-आचार्यः = आइरिओ और आयरिओ ॥

आचार्यः—संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप आइरिओ और आयरिओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-७३ से 'चा' के 'आ' की 'इ' और 'अ'; २-१०७ से 'र्य' के पूर्व में 'इ' का आगम होकर 'रिअ' रूप; १-१७७ से 'च' और 'य्' का लोप; द्वितीय रूप में १-१८० से प्राप्त 'च' के 'अ' का 'य्' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आइरिओ* और *आयरिओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ ७३ ॥

ईः स्त्यान-खल्वाटे ॥ १-७४ ॥

स्त्यान खल्वाटयोरादेरात ईर्भवति॥ ठीणं। थीणं। थिण्णं ॥ खल्लीडो ॥ संखायं इति तु समः स्त्यः खा (४-१५) इति खादेशे सिद्धम् ॥

अर्थः—स्त्यान और खल्वाट शब्दों के आदि 'आ' की ई होती है। जैसे-स्त्यानम् = ठीणं, थीणं, थिण्णं ॥ खल्वाटः = खल्लीडो ॥ संखायं-ऐसा प्रयोग तो सम् उपसर्ग के बाद में आने वाली स्त्यै धातु के स्थान पर (४-१५) से होने वाले 'खा' आदेश से सिद्ध होता है।

स्त्यानम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप ठीणं, थीणं और थिण्णं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य' का लोप; २-३३ से 'स्त' का 'ठ'; १-७४ से 'आ' की 'ई'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; यों ठीण हुआ। द्वितीय रूप में 'स्त' का २-४५ से 'थ'; यों थीण हुआ। तृतीय रूप में २-९९ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; और १-८४ से 'थी' के 'ई' की ह्रस्व 'इ'; यों थिण्ण' हुआ। बाद में ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *ठीणं*, *थीणं* और *थिण्णं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

खल्वाटः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप खल्लीडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप; २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; १-७४ से 'आ' की 'ई'; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *खल्लीडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संस्त्यानम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप संखायं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-४-१५ से 'स्त्या' के स्थान पर 'खा' का आदेश; २-७८ से 'न्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से

प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संखायं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ७४ ॥

उः सास्ना-स्तावके ॥ १-७५ ॥

अनयोरादेरात उत्वं भवति ॥ सुण्हा । थुवओ ॥

अर्थः-सास्ना और स्तावक शब्दों में आदि 'आ' का 'उ' होता है। जैसे-सास्ना = सुण्हा। स्तावकः = थुवओ।

सास्नाः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुण्हा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७५ से 'स्ना' का ण्हा'; १-७५ से आदि 'आ' का 'उ'; सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ से स्त्रीलिंग आकारान्त शब्दों में प्रथमा के एक वचन में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुण्हा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तावकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप थुवओ होता। इसमें सूत्र-संख्या-२-४५ से 'स्त' का 'थ'; १-७५ से आदि 'आ' का 'उ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *थुवओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ७५ ॥

ऊद्वासारे ॥ १-७६ ॥

आसार शब्दे आदेरात ऊद् वा भवति । ऊसारो । आसारो ॥

अर्थः-आसार शब्द में आदि 'आ' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे-आसारः = ऊसारो और आसारो ॥

आसारः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ऊसारो और आसारो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-७६ से आदि 'आ' का विकल्प से 'ऊ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर क्रम से *ऊसारो* और *आसारो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ७६ ॥

आर्यायां र्यः श्वश्र्वाम् ॥ १-७७ ॥

आर्या शब्दे श्वश्र्वां वाच्यायां र्यस्यात ऊर्भवति ॥ अज्जू ॥ श्वश्र्वामिति किम् । अज्जा ॥

अर्थः-आर्या शब्द का अर्थ जब 'सासु' होवे तो आर्या के 'र्या' के 'आ' का 'ऊ' होता है। जैसे-आर्या = अज्जू-(सासु)। श्वश्रु-याने सासु ऐसा क्यों कहा गया है ? उत्तर-जब आर्या का अर्थ सासु नहीं होगा; तब 'र्या' के 'आ' का 'ऊ' नहीं होगा। जैसे-आर्या = अज्जा ॥ (साध्वी)।

आर्या–संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अज्जू होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-७७ से 'र्या' के 'आ' का 'ऊ'; २-२४ से 'र्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; १-८४ से आदि 'आ' का 'अ'; ३-१९ से स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर की दीर्घता-होकर अर्थात् 'ऊ' का 'ऊ' ही रहकर अज्जू रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्या संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अज्जा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२४ से 'र्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; १-८४ से आदि 'आ' का 'अ'; सिद्ध हेम व्याकरण के २-४-१८ के अनुसार स्त्रीलिंग में प्रथमा के एक वचन में आकारान्त शब्द में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अज्जा रूप सिद्ध हो जाता है॥ ७७॥

एद् ग्राह्ये॥ १–७८॥

ग्राह्य शब्दे आदेरात् एद् भवति॥ गेज्झं।

अर्थः–ग्राह्य शब्द में आदि 'आ' का 'ए' होता है। जैसे–ग्राह्यम्=गेज्झं।

ग्राह्यम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गेज्झं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-७८ से आदि 'आ' का 'ए'; २-२६ से 'ह्य' का 'झ'; २-८९ से प्राप्त 'झ' का द्वित्व 'झ्झ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर गेज्झं रूप सिद्ध हो जाता है॥ ७८॥

द्वारे वा॥ १-७९॥

द्वार शब्दे आत एद् वा भवति॥ देरं। पक्षे। दुआरं दारं वारं॥ कथं नेरइओ नारइओ। नैरयिक नारयिक शब्दयो र्भविष्यति॥ आर्षे अन्यत्रापि। पच्छेकम्मं। असहेज्ज देवासुरी॥

अर्थ–द्वार शब्द में 'आ' का 'ए' विकल्प से होता है। जैसे–द्वारम्=देरं। पक्ष में–दुआरं दारं और वारं जानना। नेरइओ और नारइयो कैसे बने हैं? उत्तर 'नैरयिक' ऐसे मूल संस्कृत शब्द से नेरइओ बनता है और 'नारयिक' ऐसे मूल संस्कृत शब्द से 'नारइओ' बनता है। आर्ष प्राकृत में अन्य शब्दों में भी 'आ' का 'ए' देखा जाता है। जैसे—पश्चात् कर्म=पच्छे कम्मं। यहां पर 'चा' के 'आ' का 'ए' हुआ है। इसी प्रकार से असहाय्य देवासुरी=असहेज्ज देवासुरी। यहां पर 'हा' के 'आ' का 'ए' देखा जाता है।

द्वारम्–संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप देरं, दुआरं, दारं और वारं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप; १-७९ से 'आ' का 'ए'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर

दैरं रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में-२-११२ से विकल्प से 'द्' में 'उ' का 'आगम'; १-१७७ से 'व्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दुआरं सिद्ध हो जाता है। तृतीय रूप में-१-१७७ से 'व्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दारं सिद्ध हो जाता है। चतुर्थ रूप में-२-७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर 'वारं' सिद्ध हो जाता है।

नैरयिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नेरइओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए' १-१७७ से 'य्' और 'क' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नेरइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नारकिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नारइओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'क' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नारइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पश्चात् कर्म संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पच्छे कम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१ से 'श्च' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्' १-७९ की वृत्ति से 'आ' का 'ए'; १-११ से 'त्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पच्छे कम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है।

असहाय्य संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप असहेज्ज होता है। इसमें सूत्र संख्या—१-७९ की वृत्ति से 'आ' का 'ए'; २-२४ से 'य्य' का 'ज' २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; यों *असहेज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवासुरी का संस्कृत और प्राकृत रूप सामान ही होता है॥ ७९ ॥

पारापते रो वा ॥ १-८० ॥

पारापत शब्दे रस्थस्यात एद् वा भवति ॥ पारेवओ पारावओ ॥

अर्थः-पारापत शब्द में 'र' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे-पारापतः=पारेवओ और पारावओ ॥ *पारापतः* संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पारेवओ और पारावओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-१-८० से 'रा' के 'आ' को विकल्प से 'ए'; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१७७ से 'त्' का

लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *पारेवओ* और *पारावओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ ८० ॥

मात्रटि वा ॥ १-८१ ॥

मात्रट्प्रत्यये आत एद् वा भवति ॥ एत्तिअमेत्तं । एत्तिअमत्तं ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिन्मात्रशब्दे पि । भोअण–मेत्तं ॥

अर्थः—मात्रट् प्रत्यय के 'मा' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे–एतावन्–मात्रं =एत्तिअमेत्तं और एत्तिअमत्तं ॥ बहुलाधिकार से कभी कभी 'मात्र' शब्द में भी 'आ' का 'ए' देखा जाता है। जैसे–भोजन–मात्रम् भोअण–मेत्तं ॥

एतावत्–मात्रम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप एत्तिअमेत्तं और एत्तिअमत्तं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या-२-१५७ में एतावत् के स्थान पर 'एत्तिअ' आदेश; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-८१ से 'मा' में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'ए'; द्वितीय रूप में–१-८४ से 'मा' के 'आ' का 'अ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *एत्तिअमेत्तं* और *एत्तिअमत्तं* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

भोजन–मात्रम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भोअणं-मेत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ से 'ज्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-८१ की वृत्ति से 'आ' का 'ए'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; और ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भोअण–मेत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥

उदोद्वार्द्रे ॥ १-८२ ॥

आर्द्र शब्दे आदेरात उद् ओच्च वा भवतः ॥ उल्लं । ओल्लं ॥ पक्षे । अल्लं । अद्दं ॥ बाह-सलिल-पवहेण उल्लेइ ॥

अर्थः–आर्द्र शब्द में रहे हुए 'आ' का 'उ' और 'ओ' विकल्प से होते हैं। जैसे–आर्द्रम् = उल्लं ओल्लं; पक्ष में अल्लं और अद्दं ॥ बाष्प-सलिल-प्रवाहेण आर्द्रयति = बाह-सलिल-पवहेण उल्लेइ। अर्थात् अश्रुरूप जल के प्रवाह से गीला करता है।

आर्द्रम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप उल्लं, ओल्लं, अल्लं और अद्दं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-८२ से आदि 'आ' का विकल्पसे 'उ' और 'ओ;' २-७९ से ऊर्ध्व 'र्' का लोप; २-७७ से 'द्' का लोप; १-२५४ से शेष 'र' का 'ल'; २-८९ से प्राप्त 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा के एक

वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से उल्लं और ओल्लं रूप सिद्ध हो जाते हैं। तृतीय रूप में १-८४ से 'आ' का 'अ'; और शेष साधनिका ऊपर के समान ही जानना। यों अल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्द्रम्: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अद्दं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ'; २-७९ से दोनों 'र्' का लोप; २-८९ शेष 'द' का द्वित्व 'द्द'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' अनुस्वार होकर *द्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाष्प: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'बाह' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७० से 'ष्प' का 'ह्' होकर *बाह* रूप सिद्ध हो जाता है।

सलिल: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *सलिल* ही होता है।

प्रवाहेन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पवहेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-६८ से 'आ' का 'अ'; ३-६ से तृतीया विभक्ति के पुल्लिंग में एक वचन के प्रत्यय 'टा' के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-१४ से 'ण' प्रत्यय के पूर्व में रहे हुए 'ह' के 'अ' का 'ए' होकर *पवहेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्द्रयति: संस्कृत अकर्मक क्रिया पद है; इसका प्राकृत रूप 'उल्लेइ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८२ से 'आ' का 'उ'; २-७७ से 'द्' का लोप; १-२५४ से 'र' का 'ल'; २-८९ से प्राप्त 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; १-१७७ से 'य्' का लोप; ३-१५८ से शेष विकरण 'अ' का 'ए'; ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय होकर *उल्लेइ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥८२॥

ओदाल्यां पंक्तौ ॥ १-८३ ॥

आली शब्दे पङ्क्ति वाचिनि आत ओत्वं भवति ॥ ओली ॥ पङ्क्ताविति किम्। आली सखी ॥

अर्थः—'आली' शब्द का अर्थ जब पंक्ति हो; तो उस समय में आली के 'आ' का 'ओ' होता है। जैसे आली = (पंक्ति-अर्थ में-) ओली। 'पंक्ति' ऐसा उल्लेख क्यों किया? उत्तर—जब 'आली' शब्द का अर्थ पंक्तिवाचक नहीं होकर 'सखी' वाचक होता है; तब उसमें 'आ' का 'ओ' नहीं होता है। जैसे-आली = (सखी अर्थ में) आली ॥

आली संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'ओली' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८३ से 'आ' का 'ओ' होकर *ओली* रूप सिद्ध हो जाता है।

आली संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *आली* ही होता है।

ह्रस्वः संयोगे ॥ १-८४ ॥

दीर्घस्य यथादर्शनं संयोगे परे ह्रस्वो भवति ॥ आत् । आम्रम् । अम्बं ॥ ताम्रम् । तम्बं ॥ विरहाग्निः । विरहग्गी ॥ आस्यम् । अस्सं ॥ ईत् । मुनीन्द्रः । मुणिन्दो ॥ तीर्थम् । तित्थं ॥ ऊत् । गुरूल्लापाः गुरुल्लावा ॥ चूर्णः । चुण्णो ॥ एत् । नरेन्द्रः । नरिन्दो ॥ म्लेच्छः । मिलिच्छो ॥ दिट्ठिक्क- थण-वट्टं ॥ ओत् अधरोष्ठः । अहरुट्ठं ॥ नीलोत्पलम् । नीलुप्पलं ॥ संयोग इतिकिम् ? आयासं । ईसरो । ऊसवो ॥

अर्थः—दीर्घ स्वर के आगे यदि संयुक्त अक्षर हो तो; उस दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर हो जाया करता है। 'आ' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों का उदाहरण; जिनमें कि 'आ' का 'अ' हुआ है। उदाहरण इस प्रकार हैं:— आम्रम् = अम्बं ॥ ताम्रम् = तम्बं ॥ विरहाग्नि: = विरहग्गी ॥ आस्यम् = अस्सं ॥ इत्यादि ॥

'ई' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण; जिनमें कि 'ई' की 'इ' हुई है। जैसे कि-मुनीन्द्रः = मुणिन्दो ॥ तीर्थम् = तित्थं ॥ इत्यादि ॥ 'ऊ' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण; जिनमें कि 'ऊ' का 'उ' हुआ है। जैसे कि-गुरूल्लापाः = गुरुल्लावा ॥ चूर्णः = चुण्णो ॥ इत्यादि। 'ए' स्वरके आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण; जिनमें कि 'ए' का 'इ' हुआ है। जैसे कि नरेन्द्रः = नरिन्दो ॥ म्लेच्छः = मिलिच्छो ॥ दृष्टैक स्तन = वृत्तम् दिट्ठिक्क-थण-वट्टं ॥

'ओ' स्वर के आगे संयुक्त अक्षर वाले शब्दों के उदाहरण; जिनमें कि 'ओ' का 'उ' हुआ है। जैसे कि—अधरोष्ठः = अहरुट्ठं ॥ नीलोत्पलम् = नीलुप्पलं ॥

संयोग अर्थात् 'संयुक्त अक्षर' ऐसा क्यों कहा गया है ? उत्तरः—यदि दीर्घ स्वर के आगे संयुक्त अक्षर नहीं होगा तो उस दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर नहीं होगा। जैसे-आकाशम् = आयासं। ईश्वर = ईसरो। और उत्सवः = ऊसवो। वृत्ति में यथा दर्शनं शब्द लिखा हुआ है; जिसका तात्पर्य यह है कि यदि शब्दों में दीर्घ का ह्रस्व किया हुआ देखा जावे तो ह्रस्व कर देना; और यदि दीर्घ का ह्रस्व नहीं किया हुआ देखा जावे तो ह्रस्व नहीं करना; जैसे-ईश्वरः = ईसरो; और उत्सवः = ऊसवो। इनमें 'ई' और 'ऊ' दीर्घ हैं; किन्तु इन्हें ह्रस्व नहीं किया गया है।

आम्रम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अम्बं होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ'; २-५६ से 'म्र' का 'म्ब'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अम्बं रूप सिद्ध हो जाता है।

सरस्वतिचन्द्र मफ़तलाल

ताम्रम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तम्बं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ता' के 'आ' का 'अ'; २-५६ से 'म्र' का 'म्ब'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तम्बं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विरहाग्निः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विरहग्गी होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ;' २-७८ से 'न' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर दीर्घ होकर *विरहग्गी* रूप सिद्ध हो जाता है।

आस्यम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अस्सं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'आ' का 'अ'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'स' का द्वित्व 'स्स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अस्सं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुनीन्द्रः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मुणिन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ई' की 'इ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-७९ से 'र्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुणिन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तीर्थम्:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तित्थं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ई' की 'इ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त 'थ्' का 'त्'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तित्थं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुरूल्लापाः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गुरुल्लावा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ऊ' का 'उ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-४ से प्रथमा के बहुवचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय का लोप; ३-१२ से लुप्त 'जस्' के पूर्व में रहे हुए 'अ' का 'आ' होकर *गुरुल्लावा* रूप सिद्ध हो जाता है।

चूर्णः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप चुण्णो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ऊ' का 'उ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का 'ण्ण'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *चुण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नरेन्द्रः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नरिन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से 'ए' की 'इ';२-७९ से 'र्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नरिन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

म्लेच्छः:-संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मिलिच्छो होता है। इस में सूत्र-संख्या-२-१०६ से 'ल' के पूर्व में याने 'म्' में 'इ' की प्राप्ति; १-८४ से 'ए' की 'इ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन

में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मिलिच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इष्टीक (इष्ट + एक) संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठिक्क होता है। इसमें सूत्र संख्या १–१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २–३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २–८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २–९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; १–८४ से 'ए' की 'इ'; २–९९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; १–१० से 'ठ' में रहे हुए 'अ' का लोप; और 'ठ्' में 'इ' की संधि होकर *दिट्ठिक्क* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तन संस्कृत शब्द है; इसका प्राकृत रूप थण होता है। उसमें सूत्र संख्या–२–४५ से 'स्त' का 'थ'; और १–२२८ से 'न' का 'ण' होकर *'थण'* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वट्टं होता है। इसमें सूत्र संख्या १–१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-२९ से 'त्त' का 'ट'; २-८९ से शेष 'ट' का द्वित्व 'ट्ट'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वट्टं रूप सिद्ध हो जाता है।

अधरोष्ठः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अहरुट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या–१-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-८४ से 'ओ' का 'उ'; २-३४ 'ष्ठ' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर 'अहरुट्ठं' रूप सिद्ध हो जाता है।

नीलोत्पलम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप नीलुप्पलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ओ' का 'उ'; २-७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नीलुप्पलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकाशम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप आयासं होता है। इसमें सूत्र संख्या–१-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *'आयासं'* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईश्वरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ईसरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ईसरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्सवः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप ऊसवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-११४ से 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' कालोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'ऊसवो' रूप सिद्ध होता है ॥ ८४ ॥

इत एद्वा ॥ १-८५ ॥

संयोग इति वर्तते। आदेरिकारस्य संयोगे परे एकारो वा भवति ॥ पेण्डं पिण्डं। धम्मेल्लं धम्मिल्लं। सेन्दूरं सिन्दूरं। वेण्हू विण्हू। पेट्ठं पिट्ठं। वेल्लं बिल्लं ॥ क्वचिन्न भवति। चिन्ता ॥

अर्थः-'संयोग' शब्द ऊपर के १-८४ सूत्रसे ग्रहण कर लिया जाना चाहिये। संयोग का तात्पर्य 'संयुक्त अक्षर' से है। शब्द में रही हुई आदि ह्रस्व 'इ' के आगे यदि संयुक्त अक्षर आजाय; तो उस आदि 'इ' का 'ए' विकल्प से हुआ करता है। जैसे-पिण्डम्=पेण्ड' और पिण्ड'। धम्मिल्लम्=धम्मेल्लं और धम्मिल्लं। सिन्दूरम्=सेन्दूरं और सिन्दूरं ॥ विष्णुः=वेण्हू और विण्हू ॥ पिष्टम्=पेट्ठं और पिट्ठं ॥ बिल्वम्=बेल्लं और बिल्लं ॥ कहीं कहीं पर ह्रस्व 'इ' के आगे संयुक्त अक्षर होने पर भी उस ह्रस्व 'इ' का 'ए' नहीं होता है। जैसे-चिन्ता=चिन्ता ॥ यहाँ पर 'इ' का 'ए' नहीं हुआ है।

पिण्डम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेण्ड' और पिण्ड' होते हैं। इन में सूत्र-संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रमसे *पेण्डं* और *पिण्डं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

धम्मिल्लम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप धम्मेल्लं और धम्मिल्लं होते हैं। इन में सूत्र-संख्य-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *धम्मेल्लं* और *धम्मिल्लम्* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सिन्दूरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सेन्दूरं और सिन्दूरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रमसे *सेन्दूरं* और *सिन्दूरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विष्णुः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप वेण्हू और विण्हू होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए'; २-७५ से 'ष्ण' का 'ण्ह'; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर का दीर्घ स्वर आने ह्रस्व 'उ' का 'दीर्घ ऊ' होकर क्रम से *वेण्हू* और *विण्हू* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पिष्टम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेट्ठं और पिट्ठं होते हैं इनमें सूत्र संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का

'ट्', ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पेट्ठं* और *पिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

बिल्वम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप बेल्लं और बिल्लं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-८५ से 'इ' का विकल्प से 'ए' १-१७७ से 'व' का लोप; २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *बेल्लं* और *बिल्लं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चिन्ता संस्कृत शब्द है और इसका प्राकृत रूप भी *चिन्ता* ही होता है ॥८५॥

किंशुके वा ॥ १-८६ ॥

किंशुक शब्दे आदेरित एकारो वा भवति ॥ केसुअं किंसुअं ॥

अर्थः-किंशुक शब्द में आदि 'इ' का विकल्प से 'ए' होता है। जैसे-किंशुकम् = केसुअं और किंसुअं ॥ केसुअं और किंसुअं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

मिरायाम् ॥ १-८७ ॥

मिरा शब्दे इत एकारो भवति ॥ मेरा ॥

अर्थः-मिरा शब्द में रही हुई 'इ' का 'ए' होता है। जैसे मिरा = मेरा ॥

मिरा देशज शब्द है। इसका प्राकृत रूप मेरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८७ से 'इ' का 'ए' होकर *मेरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुन्मूषिक-हरिद्रा-बिभीतकेष्वत् ॥ १-८८ ॥

एषु आदेरितोकारो भवति ॥ पहो। पुहई। पुढवी। पडंसुआ। मूसओ। हलद्दी। हलद्दा। बहेडओ ॥ पन्थं किर देसित्तेति तु पथि शब्द समानार्थस्य पन्थ शब्दस्य भविष्यति ॥ हरिद्रायां विकल्प इत्यन्ये। हलिद्दी हलिद्दा ॥

अर्थः—पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुत-मूषिक-हरिद्रा, और बिभीतक; इन शब्दों में रही हुई 'आदि इ' का 'अ' होता है। जैसे-पथिन् (पन्था) = पहो; पृथिवी = पुहई और पुढवी। प्रतिश्रुत् = पडंसुआ ॥ मूषिकः = मूसओ ॥ हरिद्रा = हलद्दी और हलद्दा ॥ बिभीतकः = बहेडओ ॥ पन्थ शब्द का जो उल्लेख किया गया है; वह पथिन् शब्द का नहीं बना हुआ है। किन्तु 'मार्ग-वाचक' और यही अर्थ रखने वाले 'पन्थ' शब्द से बना हुआ है। ऐसा जानना। कोई २ आचार्य 'हरिद्रा' शब्द में रही हुई 'इ' का 'अ' विकल्प रूप से मानते हैं। जैसे-हरिद्रा = हलिद्दी और हलद्दा ये दो रूप उपरोक्त हलिद्दी और हलद्दा से

अधिक जानना। इन चारों रूपों में से दो रूपों में तो 'इ' है और दो रूपों में 'अ' है। यों वैकल्पिक-व्यवस्था जानना।

पन्था संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पहो होता है। इसका मूल शब्द पथिन् है। इसमें सूत्र संख्या-१-८८ से 'इ' का 'अ'; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-११ से 'न्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *पहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथिवी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पुहई होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-८८ से आदि 'इ' का 'अ'; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-१७७ से 'व्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर का दीर्घ याने 'इ' का 'ई' होकर *पुहई* रूप सिद्ध होता है।

पृथिवी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पुढवी होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-२१६ से 'थ' का 'ढ'; १-८८ से आदि 'इ' का 'अ'; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर का दीर्घ-याने 'ई' का 'ई' ही रह कर *पुढवी* रूप सिद्ध हो जाता है। *पडंसुआ* रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२६ में की गई है।

मूषिकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मूसओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८८ से 'इ' का 'अ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मूसओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हारिद्रा संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हलद्दी और हलद्दा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-८८ से 'इ' का 'अ'; १-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल' २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'द' का द्वित्व 'द्द' ३-३४ से 'आ' की विकल्प से 'ई'; और ३-२८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में *हलद्दी* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में है०२-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर *हलद्दा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिभीतकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप बहेडओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८८ से आदि 'इ' का 'अ'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-१०५ से 'ई' का 'ए'; १-२०६ से 'त' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *बहेडओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हरिद्रा संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप हलिद्दी और हलिद्दा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल'; २-७९ से द्र के 'र्' का लोप; २-८९ से 'द' का द्वित्व 'द्द'; और ३-३४ से 'आ' की विकल्प से 'ई' और ३-२८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में *हलद्दी* रूप सिद्ध हो जाता

है। द्वितीय रूप में हे०२-४-१८ से प्रथमा के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' होकर हलद्दा रूप सिद्ध हो जाता है।

शिथिलेङ्गुदे वा ॥ १-८९ ॥

अनयोरादेरितोद् वा भवति ॥ सढिलं । पसढिलं । सिढिलं । पसिढिलं ॥ अङ्गुअं इङ्गुअं ॥ निर्मित शब्दे तु वा आत्वं न विधेयम् । निर्मात निर्मित शब्दाभ्यामेव सिद्धेः ॥

अर्थः—शिथिल और इंगुद शब्दों में आदि 'इ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसे-शिथिलम्=सढिलं और सिढिलं। प्रशिथिलम्=पसढिलं और पसिढिलं। इंगुदम्=अंगुअं और इंगुअं॥ निर्मित शब्द में तो विकल्प रूप से 'इ' का 'आ' करने की आवश्यकता नहीं है। निर्मात संस्कृत शब्द से निम्माओ होगा; और निर्मित शब्द से निम्मिओ होगा। अतः इनमें 'आदि 'इ' का 'अ'' ऐसे सूत्र की आवश्यकता नहीं है।

शिथिलम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप सढिलं और सिढिलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १–८९ से आदि 'इ' का विकल्प से 'अ'; १–२६० से 'श' का 'स'; १–२१५ से 'थ' का 'ढ'; ३–२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *सढिलं* और *सिढिलं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रशिथिलम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पसढिलं और पसिढिलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-८९ से आदि 'इ' का विकल्प से 'अ'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२१५ से 'थ' का 'ढ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पसढिलं* और *पसिढिलं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

इंगुदम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप अंगुअं और इंगुअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या–१-८९ से 'इ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अंगुअं* और *इंगुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तित्तिरौ रः ॥ १-९० ॥

तित्तिरिशब्दे रस्येतोद् भवति ॥ तित्तिरो ॥

अर्थः—तित्तिरि शब्द में 'र' में रही हुई 'इ' का 'अ' होता है। जैसे-तित्तिरिः=तित्तिरो ॥

तित्तिरिः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तित्तिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-९० से 'रि' में रही हुई 'इ' का 'अ'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *तित्तिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इतौ तो वाक्यादौ ॥ १-९१ ॥

वाक्यादिभूते इति शब्दे यस्तस्तत्संबन्धिन इकारस्य अकारो भवति ॥ इअ जम्पिअ-आवसणे। इअ विअसिअ-कुसुमसरो ॥ वाक्यादाविति किम्। पिओत्ति। पुरिसो त्ति ॥

अर्थः—यदि वाक्य के आदि में 'इति' शब्द हो तो; 'ति' में रही हुई 'इ' का 'अ' होता है। जैसे इति कथितावसाने=इअ जम्पिअआवसाणे। इति विकसित-कुसुमशरः=इअ विअसिअ-कुसुम-सरो ॥ मूल-सूत्र में 'वाक्य के आदि में' ऐसा क्यों लिखा गया है? उत्तर-यदि यह 'इति' अव्यय वाक्य की आदि में नहीं होकर वाक्य में अन्य स्थान पर हो तो; उस अवस्था में 'ति' की 'इ' का 'अ' नहीं होता है। जैसे-प्रियः इति=पिओत्ति। पुरुषः इति=पुरिसोत्ति ॥ 'इअ' की सिद्धि सूत्र-संख्या-१-४२ में की गई है।

कथितावसाने संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप जम्पिअआवसाणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२ से 'कथ्' धातु के स्थान पर 'जम्प' का आदेश; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-११ सप्तमी विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्पिअआवसाणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकसित-कुसुम-शरः संस्कृत शब्द है। इनको प्राकृत रूप विअसिअ-कुसुम-सरो होते हैं। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ 'विकसित' के 'क' और 'त्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *विअसिअ-कुसुम-सरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिओत्ति और पुरिसोत्ति की सिद्धि सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

ईर्जिह्वा-सिंह-त्रिंशद्विंशतौ त्या ॥ १-९२ ॥

जिह्वादिषु इकारस्य तिशब्देन सह ईर्भवति ॥ जीहा। सीहो। तीसा। वीसा ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति। सिंह-दत्तो। सिंह-राओ ॥

अर्थः—जिह्वा सिंह और त्रिंशत् शब्द में रही हुई 'इ' की 'ई' होती है। तथा विंशति शब्द में 'ति' के साथ याने 'ति' का लोप होकर के 'इ' की 'ई' होती है। जैसे-जिह्वा=जीहा। सिंहः=सीहो। त्रिंशत्=तीसा। विंशतिः=वीसा ॥ बहुलाधिकार से कहीं कहीं पर सिंह' आदि शब्दों में 'इ' की 'ई' नहीं भी होती है। जैसे-सिंह-दत्तः=सिंह-दत्तो। सिंह-राजः=सिंह-राओ ॥ इत्यादि ॥

जिह्वा संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप जीहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-९२ से 'इ' की 'ई'; १-१७७ से 'व्' का लोप; हे० २-४-१८ से स्त्रीलिंग आकारान्त में प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जीहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सीहो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या-१-२९ में की गई है। तीसा और वीसा शब्दों की सिद्धि सूत्र संख्या-१-२८ में की गई है।

सिंह-दत्तः संस्कृत विशेषण है; इसका प्राकृत रूप *सिंह-दत्तो* होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय आकर *सिंह-दत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिंह-राजः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिंह-राओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *सिंह-राओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ९२ ॥

लुंकि निरः ॥ १-९३ ॥

निर् उपसर्गस्य रेफलोपे सति इत ईकारो भवति ॥ नीसरइ। नीसासो ॥ लुंकीति किम्। निण्णओ। निस्सहाइँ अङ्गाइं ॥

अर्थः जिस शब्द में 'निर्' उपसर्ग हो; और ऐसे 'निर्' के 'र्' का याने 'रेफ' का लोप होने पर 'नि' में रही हुई 'इ' की दीर्घ 'ई' हो जाती है। जैसे-निर्सरति=नीसरइ। निश्वास=नीसासो॥ 'लुक्' ऐसा क्यों कहा गया है। उत्तर जिन शब्दों में इस सूत्र का उपयोग नहीं किया जायगा; वहां पर 'नि' में रही हुई 'इ' की दीर्घ 'ई' नहीं होकर 'नि' के पर-वर्ती व्यञ्जन का अन्य सूत्रानुसार द्वित्व हो जायगा। जैसे-निर्णयः=निण्णओ। निर्सहानि अङ्गानि=निस्सहाइँ अङ्गाइं। इन उदाहरणों में व्यञ्जन का द्वित्व हो गया है।

निर्सरति संस्कृत क्रिया है। इसका प्राकृत रूप नीसरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३ से 'निर्' के 'र्' का लोप; १-९३ से आदि 'इ' की दीर्घ 'ई'; ३-१३९ से प्रथम पुरुष में वर्तमान काल में एक वचन 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' होकर *नीसरइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्वासः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप नीसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३ से 'निर्' के 'र्' का लोप; १-९३ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-१७७ से 'व' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *नीसासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्णय: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'निण्णओ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-१७७ से 'य्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय लगाकर *निण्णओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्सहानि संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निस्सहाइँ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'स' का द्वित्व 'स्स'; ३-२६ से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में नपुंसकलिंग में 'जस्' और 'शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इँ' प्रत्यय की प्राप्ति; और इसी सूत्र से प्रत्यय के पूर्व स्वर को दीर्घता होकर '*निस्सहाइँ*' रूप सिद्ध हो जाता है।

अंगाणि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अङ्गाइं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२६ से प्रथमा और द्वितीया के बहु वचन में नपुंसक लिंग में 'जस्' और 'शस्' प्रत्ययों के स्थान पर 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति; और इसी सूत्र से प्रत्यय के पूर्व स्वर को दीर्घता होकर '*अंगाइं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विन्योरुत् ॥ १-९४ ॥

द्विशब्दे नावुपसर्गे च इत उद् भवति ॥ द्वि। दुमत्तो। दुआई। दुविहो। दुरेहो। दु-वयणं ॥ बहुलाधिकारात् क्वचित् विकल्पः ॥ दु-उणो। बि-उणो ॥ दुइओ। बिइओ ॥ क्वचिन्न भवति। द्विजः। दिओ ॥ द्विरदः दिरओ ॥ क्वचिद् ओत्वमपि। दो वयणं ॥ नि। णुमज्जइ। णुमन्नो ॥ क्वचिन्न भवति। निवडइ ॥

अर्थ:—'द्वि' शब्द में और 'नि' उपसर्ग में रही हुई 'इ' का 'उ' होता है। जैसे-'द्वि' के उदाहरण-द्विमात्रः=दुमत्तो। द्विजातिः=दुआई। द्विविधः=दुविहो। द्विरेफः=दुरेहो। द्विवचनम्=दु-वयणं ॥ 'बहुलम्' के अधिकार से कहीं कहीं पर 'द्वि' शब्द की 'इ' का 'उ' विकल्प से भी होता है। जैसे कि-द्विगुणः=दु-उणो और बि-उणो ॥ द्वितीयः=दुइओ और बिइओ ॥ कहीं कहीं पर 'द्वि' शब्द में रही हुई 'इ' में किसी भी प्रकार का कोई रूपान्तर नहीं होता है; जैसे कि-द्विजः=दिओ। द्विरदः=दिरओ ॥ कहीं कहीं पर 'द्वि' शब्द में रही हुई 'इ' का 'ओ' भी होता है। जैसे कि-द्वि-वचनम्=दो वयणं। 'नि' उपसर्ग में रही हुई 'इ' का 'उ' होता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं:-निमज्जति=णुमज्जइ। निमग्नः=णुमन्नो। कहीं कहीं पर 'नि' उपसर्ग में रही हुई 'इ' का 'उ' नहीं होता है। जैसे-निपतति=निवडइ ॥

द्विमात्रः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दुमत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप; १-९४ से 'इ' का 'उ'; १-८४ से 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दुमत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विजाति: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दुआई होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-७७ से 'व्' और 'ज्' एवं 'त्' का लोप; १-९४ से 'इ' का 'उ'; ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *दुआई* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विविध: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दुविहो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप; १-९४ से आदि 'इ' का 'उ'; १-१८७ से 'ध' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दुविहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विरेफ: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दुरेहो होता है। इसमें सूत्र संख्या-१-१७७ से 'व्' का लोप; १-९४ से 'इ' का 'उ'; १-२३६ से 'फ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दुरेहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विवचनं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दुवयणं होता है; इसमें सूत्र संख्या १-१-७७ से आदि 'व्' और 'च्' का लोप; १-९४ से 'इ' का 'उ'; १-१८० से 'च' के शेष 'अ' का 'य'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुवयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विगुण: संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दु-उणो और बि-उणो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-९४ से 'इ' का 'उ'; १-१७७ से 'ग्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *दु-उणो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'ग्' का लोप; 'व' का 'ब' समान श्रुति से; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *बि-उणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय: संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दुइओ और बिइओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'व्'; 'त्'; और 'य्' का लोप; १-९४ से आदि 'इ' का विकल्प से 'उ'; १-१०१ से द्वितीय 'ई' की 'इ'; और ३-२ से प्रथमा के वचन से पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय का 'ओ' होकर *दुइओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'बिइओ' की सिद्धि सूत्र संख्या १-५ में करदी गई है।

द्विज: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'ज्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *'दिओ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विरद: संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'दिरओ' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और द्वितीय 'द्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'दिरओ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विवचनम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दो वयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'आदि व्' और 'च्' का लोप; १-९४ की वृत्ति से 'इ' का 'ओ'; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; १-२२८ से 'न' का 'ण' ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर '*दो-वयणं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

निमज्जति संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप णुमज्जइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण'; १-९४ से आदि 'इ' का 'उ'; और ३- १३९ से वर्तमान-काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय होकर *णुमज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निमग्नः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप णुमन्नो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण्'; १-९४ से 'इ' का 'उ'; २-७७ से 'ग्' का लोप;२-८९ से 'न्' का द्वित्व 'न्न';और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णुमन्नो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निपतति संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप निवडइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२३१ से 'प' का 'व' ४-२१९ से पत् धातु के 'त्' का 'ड्', और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय होकर *निवडइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवासीक्षौ ॥ १-९५ ॥

अनयोरादेरित उत्वं भवति। पावासुओ। उच्छू ॥

अर्थः—प्रवासी और इक्षु शब्दों में आदि 'इ' का 'उ' होता है। जैसे-प्रवासिकः = पावासुओ। इक्षुः = उच्छू ॥

प्रवासिकः संस्कृत विशेषण शब्द है। इसका प्राकृत रूप पावासुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप, १-४४ से 'प' के 'अ' का 'आ'; १-९५ से 'इ' का 'उ'; १-१७७ से 'क' का लोप, और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *पावासुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

इक्षुः संस्कृत शब्द है इसका प्राकृत रूप उच्छू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-९५ से 'इ' का 'उ'; २-१७ से 'क्ष' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छछ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्'; और ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर उच्छू रूप सिद्ध हो जाता है।

युधिष्ठिरे वा ॥ १-९६ ॥

युधिष्ठिर शब्दे आदेरित उत्वं वा भवति ॥ जहुट्ठिलो । जहिट्ठिलो ॥

अर्थः—युधिष्ठिर शब्द में आदि 'इ' का विकल्प से 'उ' होता है। जैसे-युधिष्ठिरः = जहुट्ठिलो और जहिट्ठिलो ॥

युधिष्ठिरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप जहुट्ठिलो और जहिट्ठिलो होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-२४५ से 'य्' का 'ज्'; १-१०७ से 'उ' का 'अ'; १-१८७ से 'ध्' का 'ह्'; १-९६ से आदि 'इ' का विकल्प से 'उ'; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; १-२५४ से 'र' का 'ल'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *जहुट्ठिलो* और *जहिट्ठिलो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ओच्च द्विधाकृगः ॥ १-९७ ॥

द्विधा शब्दे कृग् धातोः प्रयोगे इत ओत्वं चकारादुत्वं च भवति ॥ दोहा-किज्जइ । दुहा-किज्जइ ॥ दोहा-इअं । दुहा-इअं ॥ कृग इति किम् । दिहा-गयं ॥ क्वचित् केवलस्यापि ॥ दुहा वि सो सुर-वहू-सत्थो ॥

अर्थः—द्विधा शब्द के साथ में यदि कृग् धातु का प्रयोग किया हुआ हो तो 'द्विधा' में रही हुई 'इ' का 'ओ' और 'उ' क्रम से होता है। जैसे-द्विधा क्रियते = दोहा-किज्जइ और दुहा-किज्जइ ॥ द्विधाकृतम् = दोहा-इअं और दुहा-इअं। 'कृग्' ऐसा उल्लेख क्यों किया ? उत्तर—यदि द्विधा के साथ में 'कृग्' नहीं होगा तो 'इ' का 'ओ' और 'उ' नहीं होगा। जैसे-द्विधा-गतम् = दिहा-गयं ॥ कहीं २ पर केवल द्विधा ही हो और कृग् धातु साथ में नहीं हो तो भी 'द्विधा' के 'इ' का 'उ' देखा जाता है। जैसे-द्विधापि सः सुर-वधू-सार्थः = दुहा वि सो सुर-वहू-सत्थो। यहां पर 'द्विधा' में रही हुई 'इ' का 'उ' हुआ है ॥

द्विधा क्रियते संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसके प्राकृत रूप दोहा-किज्जइ और दुहा-किज्जइ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७७ से 'द्' का लोप; १-९७ से 'द्वि' के 'इ' का क्रम से 'ओ' और 'उ'; १-१८७ से 'ध' का 'ह'; २-७९ से 'र्' का लोप; ३-१६० से संस्कृत में कर्मणि वाच्य में प्राप्त 'इय' प्रत्यय के स्थान पर 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति, १-१० से 'इ' का लोप; ३-१३९ से प्रथम पुरुष के एक वचन में वर्तमान काल के 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दोहा-किज्जइ* और *दुहा-किज्जइ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्विधा-कृतम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दोहा-इअं और दुहा-इअं होते हैं। इनमें से दोहा और दुहा की सिद्धि तो ऊपर के अनुसार जानना। शेष कृतम् रहा। इसकी सिद्धि इस प्रकार है:-

सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'क्' और 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दोहा-इअं* और *दुहा-इअं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्विधा-गतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दिहा-गयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'व' और 'त्' का लोप; १-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-१८० से 'त्' के शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिहा-गयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'दुहा' की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

'वि' की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

सः संस्कृत सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप सो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८६ से *'सो'* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुर-वधू-सार्थः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सुर-वहू-सत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ध' का 'ह'; १-८४ से 'सा' के 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्'; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुर-वहू-सत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वा निर्झरे ना ॥ १-९८ ॥

निर्झर शब्दे नकारेण सह इत ओकारो वा भवति ॥ ओज्झरो निज्झरो ॥

अर्थः—निर्झर शब्द में रही हुई 'नि' याने 'न्' और 'इ' दोनों के स्थान पर 'ओ' का विकल्प से आदेश हुआ करता है। जैसे-निर्झरः=ओज्झरो और निज्झरो। विकल्प से दोनों रूप जानना।

निर्झरः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप ओज्झरो और निज्झरो होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-९८ से 'नि' का विकल्प से 'ओ'; २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'झ' का द्वित्व 'झ्झ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *ओज्झरो* और *निज्झरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ ९८ ॥

हरीतक्यामीतोत् ॥ १-९९ ॥

हरीतकीशब्दे आदेरीकारस्य अद् भवति ॥ हरडई ॥

अर्थः—'हरीतकी' शब्द में 'आदि 'ई' का 'अ' होता है। जैसे-हरीतकी=हरडई ॥

हरीतकी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप हरडई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-९९ से आदि 'ई' का 'अ'; १-२०६ से 'त' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप; होकर **हरडई** रूप सिद्ध हो जाता है।

आःकश्मीरे ॥ १-१०० ॥

कश्मीर शब्दे ईत आद् भवति ॥ कम्हारा ॥

अर्थः—कश्मीर शब्द में रही हुई 'ई' का 'आ' होता है। जैसे-कश्मीराः = कम्हारा ॥

कश्मीराः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कम्हारा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७४ से 'श्म' का 'म्ह'; १-१०० से 'ई' का 'आ'; ३-४ से प्रथमा के बहु वचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं लोप; ३-१२ से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' होकर *कम्हारा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पानीयादिष्वित् ॥ १-१०१ ॥

पानीयादिषु शब्देषु ईत इद् भवति ॥ पाणिअं। अलिअं। जिअइ। जिअउ। विलिअं। करिसो। सिरिसो। दुइअं। तइअं। गहिरं। उवणिअं। आणिअं पलिविअं। ओसिअन्तं। पसिअ। गहिअं। वम्मिओ। तयाणिं॥ पानीय। अलीक॥ जीवति। जीवतु। व्रीडित। करीष। शिरीष। द्वितीय। तृतीय। गभीर। उपनीत। आनीत। प्रदीपित। अवसीदत्। प्रसीद। गृहीत। वल्मीक। तदानीम् इति पानीयादयः॥ बहुलाधिकारादेषु क्वचिन्नित्यं क्वचिद् विकल्पः। तेन। पाणीअं। अलीअं। जीअइ। करीसो। उवणीओ। इत्यादि। सिद्धम्॥

अर्थः—पानीय आदि शब्दों में रही हुई 'ई' की 'इ' होती है। जैसे-पानीयम् = पाणिअं। अलीकम् = अलिअं। जीवति = जिअइ। जीवतु = जिअउ। व्रीडितम् = विलिअं। करीषः = करिसो। शिरीषः = सिरिसो। द्वितीयम् = दुइअं। तृतीयम् = तइअं। गभीरम् = गहिरम्। उपनीतम् = उवणिअं। आनीतम् = आणिअं। प्रदीपितम् = पलिविअं। अवसीदत् = ओसिअन्तं। प्रसीद = पसिअ। गृहीतम् गहिअं। वल्मीकः = वम्मिओ। तदानीम् = तयाणिं। इस प्रकार ये सब 'पानीय आदि' जानना। बहुल का अधिकार होने से इन शब्दों में कहीं कहीं पर तो 'ई' की 'इ' नित्य होती है; और कहीं कहीं पर 'ई' की 'इ' विकल्प से हुआ करती है। इस कारण से पानीयम् = पाणीअं और पाणिअं; अलीकम् = अलीअं और अलिअं; जीवति = जीअइ और जीअइ; करीषः = करीसो और करिसो; उपनीतः = उवणीओ और उवणिओ। इत्यादि स्वरूप वाले होते हैं।

पानीयम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पाणिअं और पाणीअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' का ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा

के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पाणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में-१-२ के अधिकार से सूत्र संख्या १-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यों की त्यों ही रह कर *पाणीअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अलीकम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप अलिअं और अलीअं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'क्' का लोप; १-१०१ से 'दीर्घ ई' का ह्रस्व 'इ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-२ के अधिकार से सूत्र-संख्या १-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यों की त्यों ही रह कर *अलीअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जीवति संस्कृत अकर्मक क्रिया है; इसके प्राकृत रूप जिअइ और जीअइ होते हैं। मूल धातु 'जीव्' है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से 'व्' में 'अ' की प्राप्ति; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' १-१७७ से 'व्' का लोप; ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जिअइ* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-२ के अधिकार से सूत्र-संख्या १-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यों की त्यों ही रहकर *जीअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

जीवतु संस्कृत अकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप 'जिअउ' होता है। इसमें 'जिअ' तक सिद्धि ऊपर के अनुसार जानना और ३-१७३ से आज्ञार्थ में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'तु' प्रत्यय के स्थान पर 'उ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जिअउ* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्रीडितम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विलिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-२०२ से 'ड' का 'ल' १-१७७ से 'त' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

करीषः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप करिसो और करीसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *करिसो* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-२ के अधिकार से सूत्र-संख्या-१-१०१ का निषेध करके दीर्घ 'ई' ज्यों की त्यों ही रह कर *करीसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिरीषः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-२६० से 'श' तथा 'ष' का 'स;' और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दुइअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'द'; त् और 'य' का लोप; १-९४ से आदि 'इ' का 'उ'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की 'इ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुइअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीयम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तइअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' और 'य' का लोप; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तइअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गभीरम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गहिरम् होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गहिरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उपनीतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उवणिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२३१ से 'प' का 'व्'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उवणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आनीतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप आणिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रदीपितम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पलिविअं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२२१ से 'द' का 'ल'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पलिविअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवसीदतम् संस्कृत वर्तमान कृदन्त है। इसका प्राकृत रूप ओसिअन्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७२ से 'अव' का 'ओ'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-१८१ से 'शतृ' प्रत्यय के स्थान पर न्त' प्रत्यय का आदेश; ३-२५ से प्रथमा एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ओसिअन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रसीद संस्कृत अकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप पसिअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७६ से 'र' का लोप; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; होकर *पसिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृहीतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गहिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गहिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वल्मीकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वम्मिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७६ से 'ल्' का लोप; २-८६ से 'म्' का द्वित्व 'म्म'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-१७७ से 'क' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वम्मिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तदानीम् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप तयाणिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से से शेष 'आ' का 'या'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *तयाणिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाणिअं, अलिअं, ओअइ, करीसो शब्दों की सिद्धि ऊपर की जा चुकी है।

उपनीतः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप उवणीओ और उवणिओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उवणीओ* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१०१ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' होकर *उवणिओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ० ॥

उज्जीर्णे ॥ १-१०२ ॥

जीर्ण शब्दे ईत उद् भवति ॥ जुण्ण-सुरा ॥ क्वचिन्न भवति । जिण्णे भोअणमत्ते ॥

अर्थः—जीर्ण शब्द में रही हुई 'ई' का 'उ' होता है। जैसे—जीर्ण—सुरा = जुण्ण—सुरा। कहीं कहीं पर इस 'जीर्ण' में रही हुई 'ई' का 'उ' नहीं होता है। किन्तु दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ' देखी जाती है। जैसे—जीर्णे भोजन-मात्रे = जिण्णे भोअणमत्ते ॥

जीर्ण संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जुण्ण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०२ से 'ई' का 'उ'; २-७६ से 'र्' का लोप; और २-८६ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण' होकर '*जुण्ण*' रूप सिद्ध हो जाता है।

सुरा संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भी सुरा ही होता है।

जीर्णे संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जिण्णे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ई' को 'इ'; २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; और ३-११ से सप्तमी के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *'जिण्णे'* रूप सिद्ध हो जाता है।

भोजन–मात्रे संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भोअण-मत्ते होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-८४ से 'आ' का 'अ'; २-७६ से 'र्' का लोप, २-८६ 'त' का द्वित्व 'त्त'; और ३-११ से सप्तमी के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भोअण–मत्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऊर्हीन-विहीने वा ॥ १-१०३ ॥

अनयोरीत ऊत्वं वा भवति ॥ हूणो, हीणो। विहूणो विहीणो ॥ विहीन इतिकिम्। पहीण–जर–मरणा ॥

अर्थः—हीन और विहीन इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ई' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे–हीनः=हूणो और हीणो ॥ विहीनः=विहूणो और विहीणो ॥ विहीन–इस शब्द का उल्लेख क्यों किया ? उत्तर–यदि विहीन शब्द में 'वि' उपसर्ग नहीं होकर अन्य उपसर्ग होगा तो 'हीन' में रही हुई 'ई' का 'ऊ' नहीं होगा। जैसे–प्रहीन–जर–मरणाः=पहीण–जर–मरणा। यहाँ पर 'प्र' अथवा 'प' उपसर्ग है और 'वि' उपसर्ग नहीं है; अतः 'ई' का 'ऊ' नहीं हुआ है।

हीनः संस्कृत विशेषण है; इसके प्राकृत रूप हूणो और हीणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१–१०३ से 'ई' का विकल्प से 'ऊ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *हूणो* और *हीणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विहीनः संस्कृत विशेषण है; इसके प्राकृत रूप विहूणो और विहीणो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१–१०३ से 'ई' का विकल्प से 'ऊ'; १–२२८ से 'न' का 'ण'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से *विहूणो* और *विहीणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रहीन संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पहीण होता है। इसमें-सूत्र-संख्या-२–७६ से 'र्' का लोप; और १–२२८ से 'न' का 'ण' होकर *पहीण* रूप सिद्ध हो जाता है।

जरा-मरणाः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप जर-मरणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से आदि 'आ' का 'अ'; ३–४ से प्रथमा के बहुवचन में पुल्लिग में 'जस्'; प्रत्यय की प्राप्ति; एवं लोप; और ३–१२ से 'ण' के 'अ' का 'आ' होकर *जर-मरणा* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १०३ ॥

तीर्थे हे ॥ १-१०४ ॥

तीर्थ शब्दे हे सति ईत ऊत्वं भवति ॥ तूहं ॥ इइति किम् । तित्थं ॥

अर्थः—तीर्थ शब्द में 'र्थ' का 'ह' करने पर 'तीर्थ' में रही हुई 'ई' का 'ऊ' होता है। जैसे-तीर्थम्=तूहं। 'ह' ऐसा कथन क्यों किया गया है? उत्तर-जहां पर तीर्थ में रहे हुए 'र्थ' का 'ह' नहीं किया जायगा; वहां पर 'ई' का 'ऊ' नहीं होगा। जैसे-तीर्थम्=तित्थं।

तीर्थम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तूहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१०४ से 'ई' का 'ऊ'; २-७२ से 'र्थ' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तूहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'तित्थं' शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है।

एत्पीयूषापीड-बिभीतक-कीदृशेदृशे ॥ १-१०५ ॥

एषु ईत एत्वं भवति ॥ पेऊसं। आमेलो। बहेडओ। केरिसो। एरिसो ॥

अर्थः—पीयूष, आपीड, बिभीतक, कीदृश, और ईदृश शब्दों में रही हुई 'ई' की 'ए' होती है। जैसे पीयूषम्=पेऊसं; आपीडः=आमेलो; बिभीतकः=बहेडओ; कीदृशः=केरिसो; ईदृशः=एरिसो ॥

पीयूषम्= संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पेऊसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०५ से 'ई' की 'ए'; १-१७७ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'ष' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पेऊसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आपीडः संस्कृत शब्द है। इस का प्राकृत रूप आमेलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३४ से 'प' का 'म'; १-१०५ से 'ई' की 'ए'; १-२०२ से 'ड' का 'ल'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आमेलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहेडओ की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८८ में की गई है।

कीदृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप केरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०५ से 'ई' की 'ए'; १-१४२ से 'दृ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *केरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईदृशः संस्कृत विशेषण है इसका प्राकृत रूप एरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०५ से

'ई' की 'ए'; १-१४२ से 'ऋ' की रि; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर एरिसो रूप सिद्ध हो जाता है।

नीड-पीठे वा ॥ १-१०६ ॥

अनयोरीत एत्वं वा भवति ॥ नेडं नीडं । पेढं पीढं ॥

अर्थः—नीड और पीठ इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ई' की 'ए' विकल्प से होती है। जैसे-नीडम्=नेडं और नीडं। पीठम्=पेढं और पीढं।

नीडम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप नेडं और नीडं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१०६ से 'ई' की विकल्प से 'ए'; और ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से नेडं और *नीडं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पीठम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप पेढं और पीढं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१०६ से 'ई' की विकल्प से 'ए'; १-१९९ से 'ठ' का 'ढ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से पेढं और *पीढं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १०६ ॥

उतो मुकुलादिष्वत् ॥ १-१०७ ॥

मुकुल इत्येवमादिषु शब्देषु आदेरुतोत्वं भवति ॥ मउलं । मउलो । मउरं मउडं । अगरुं । गरुई । जहुट्ठिलो । जहिट्ठिलो । सोअमल्लं । गलोई ॥ मुकुल । मुकुर । मुकुट । अगुरु । गुर्वी । युधिष्ठिर । सौकुमार्य । गुडूची । इति मुकुलादयः । क्वचिदाकारोपि । विद्रुतः । विद्दाओ ॥

अर्थः—मुकुल इत्यादि इन शब्दों में रहे हुए आदि 'उ' का 'अ' होता है। जैसे—मुकुलम्=मउलं और मउलो। मुकुरम्=मउरं। मुकुटम्=मउडं। अगुरुम्=अगरुं। गुर्वी=गुरुई। युधिष्ठिरः=जहुट्ठिलो और जुहुट्ठिलो। सौकुमार्यम्=सोअमल्लं। गुडूची=गलोई। इस प्रकार इन शब्दों को मुकुल आदि में जानना। किन्हीं किन्हीं शब्दों में आदि 'उ' का 'आ' भी हो जाया करता है। जैसे—विद्रुतः=विद्दाओ। इस 'विद्दाओ' शब्द में आदि 'उ' का 'आ' हुआ है। ऐसा ही अन्यत्र भी जानना।

मुकुलम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मउलं और मउलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर 'मउलं' रूप

सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में लिंग के भेद से पुल्लिंग मान् लेने पर ३-२ से प्रथमा के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मउलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुकुरं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *मउरं* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मउरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुकुटं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *मउडं* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मउडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अगुरुं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'अगरुं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अगरुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुर्वी संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *गरुई* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से 'उ' का 'अ'; २-११३ से 'र्वी' का 'रुवी'; १-१७७ से प्राप्त 'रुवी' में से 'व्' का लोप होकर *गरुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

जहुट्ठिलो और जहिट्ठिलो शब्दों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९६ में की गई है।

सौकुमार्यम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *सोअमल्लं* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से 'उ' का 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१५९ से 'औ' का 'ओ'; १-८४ से 'आ' का 'अ'; २-६८ से 'र्य' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोअमल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुडूची संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप *गलोई* होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से आदि 'उ' का 'अ'; १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; १-२०२ से 'ड' का 'ल'; १-१७७ से 'च्' का लोप होकर *गलोई* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्रुतः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप *विद्दाओ* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१०७ की वृत्ति से 'उ' का 'आ'; २-८९ से 'द' का द्वित्व 'द्द'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विद्दाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१०७॥

वोपरौ ॥ १-१०८॥

उपरावुतोद् वा भवति ॥ अवरिं । उवरिं ॥

अर्थः—उपरि शब्द में रहे हुए 'उ' का विकल्प से 'अ' हुआ करता है। जैसे-उपरि=अवरिं और उवरिं ॥

अवरिं शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है

उपरि संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप उवरिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; और १-२६ से अनुस्वार की प्राप्ति होकर उवरिं रूप सिद्ध हो जाता है।

गुरौ के वा ॥ १-१०९ ॥

गुरौ स्वार्थे के सति आदेरुतोद् वा भवति ॥ गरुओ गुरुओ ॥ क इति किम् ? गुरू ॥

अर्थः—गुरु शब्द में स्वार्थ-वाचक 'क' प्रत्यय लगा हुआ हो तो 'गुरु' के आदि में रहे हुए 'उ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसेः—गुरुकः=गरुओ और गुरुओ। 'क' ऐसा क्यों लिखा है ?

उत्तरः—यदि स्वार्थ-वाचक 'क' प्रत्यय नहीं लगा हुआ हो तो 'गुरु' के आदि 'उ' का 'अ' नहीं होगा। जैसे-गुरुः=गुरू ॥

गुरुकः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप गरुओ और गुरुओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१०९ से आदि 'उ' का विकल्प से 'अ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर क्रम से गरुओ और गुरुओ रूप सिद्ध हो जाते हैं।

गुरुः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप गुरू होता है। इस में सूत्र-संख्या ३-१९ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर को दीर्घ स्वर होकर गुरू रूप सिद्ध हो जाता है।

इर्भ्रुकुटौ ॥ १-११० ॥

भ्रुकुटावादेरुत इर्भवति ॥ भिउडी ॥

अर्थः—भ्रुकुटि शब्द में रहे हुए आदि 'उ' की 'इ' होती है। जैसे-भ्रुकुटिः=भिउडी ॥

भ्रुकुटि संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भिउडी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-११० से आदि 'उ' की 'इ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; और ३-१९ से

प्रथमा के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *भिउडी* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ११० ॥

पुरुषे रोः ॥ १-१११ ॥

पुरुषशब्दे रोरुत इर्भवति ॥ पुरिसो । पउरिसं ॥

अर्थः—पुरुष शब्द में 'रु' में रहे हुए 'उ' की 'इ' होती है। जैसे-पुरुषः=पुरिसो। पौरुषम्=पउरिसं ॥

पुरिसो शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

पौरुषं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पउरिसं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' का 'अउ'; १-१११ से 'रु' के 'उ' की 'इ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पउरिसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईः क्षुते ॥ १-११२ ॥

क्षुतशब्दे आदेरुत ईत्वं भवति ॥ छीअं ॥

अर्थः—क्षुत शब्द में रहे हुए आदि 'उ' की 'ई' होती है। जैसे-क्षुतम्=छीअं।

क्षुतम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप छीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' का 'छ'; १-११२ से 'उ' की 'ई'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर 'छीअं' रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ११२ ॥

ऊत्सुभग-मुसले वा ॥ १-११३ ॥

अनयोरादेरुत ऊद् वा भवति ॥ सूहवो सुहओ । मूसलं मुसलं ॥

अर्थः—सुभग और मुसल इन दोनों शब्दों में रहे हुए आदि 'उ' का विकल्प से दीर्घ 'ऊ' होता है। जैसे-सुभगः=सूहवो और सुहओ। मुसलम्=मूसलं और मुसलं ॥

सुभगः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप सूहवो और सुहओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११३ से आदि 'उ' का विकल्प से 'ऊ'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-१९२ से प्रथम रूप में 'ऊ' होने पर 'ग' का

'ष'; और द्वितीय रूप में 'ऊ' नहीं होने पर १-१७७ से 'ग' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से सूहवो और सुहओ रूप सिद्ध हो जाता है।

मुसलं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मूसलं और मुसलं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११३ से आदि 'उ' का विकल्प से दीर्घ 'ऊ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से मूसलं और मुसलं रूप सिद्ध हो जाते हैं॥ ११३॥

अनुत्साहोत्सन्ने त्सच्छे ॥ १-११४ ॥

उत्साहोत्सन्नवर्जिते शब्दे यौ त्सच्छौ तयोः परयोरादेरुत ऊद् भवति ॥ त्स । ऊसुओ । ऊसवो । ऊसित्तो । ऊसरइ ॥ छ । उद्गताः शुका यस्मात् सः ऊसुओ । ऊससइ ॥ अनुत्साहोत्सन्न इति किम् । उच्छाहो । उच्छन्नो ॥

अर्थः—उत्साह और उत्सन्न इन दो शब्दों को छोड़ करके अन्यकिसी शब्द में 'त्स' अथवा 'च्छ' आवे; तो इन 'त्स' अथवा 'च्छ' वाले शब्दों के आदि 'उ' का 'ऊ' होता है। 'त्स' के उदाहरण इस प्रकार है:—

उत्सुकः = ऊसुओ। उत्सवः = ऊसवो। उत्सिक्तः = ऊसित्तो। उत्सरति = ऊसरइ। 'च्छ' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—जहाँ से तोता-(पक्षी विशेष) निकल गया हो वह 'उच्छुक' होता है। इस प्रकार उच्छुकः = ऊसुओ॥ उच्छ्वसति = ऊससइ॥ उत्साह और उत्सन्न इन दोनों शब्दों का निषेध क्यों किया? उत्तरः—इन शब्दों में 'त्स' होने पर भी आदि 'उ' का 'ऊ' नहीं होता है अतः दीर्घ 'ऊ' की उत्पत्ति का इन शब्दों में अभाव ही जानना जैसे–उत्साहः = उच्छाहो। उत्सन्नः = उच्छन्नो॥

उत्सुकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप ऊसुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ऊसुओ रूप सिद्ध हो जाता है।

ऊसवो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है।

उत्सिक्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप ऊसित्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; २-८९ से शेष द्वितीय 'त' का द्वित्व 'त्त'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर ऊसित्तो रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्तरति संस्कृत अकर्मक क्रिया पद है; इसका प्राकृत रूप ऊसरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' का लोप; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ऊसरइ रूप सिद्ध हो जाता है।

उच्छुकः =(उत् + शुकः)-संस्कृत विशेषण है; इसका प्राकृत रूप ऊसुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ऊसुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उच्छ्वसति (उत्श्वसति) = संस्कृत सकर्मक क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप ऊससइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-११४ से आदि 'उ' का 'ऊ'; २-७७ से 'त्' का लोप; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ऊससइ रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्साहः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप उच्छाहो होता है। इसमें-सूत्र-संख्या २-२१ से 'त्स' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उच्छाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्सन्नः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उच्छन्नो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-२१ से 'त्स' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्'; का 'च्'; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उच्छन्नो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ११४॥

लुकि दुरो वा ॥ १-११५ ॥

दुर् उपसर्गस्य रेफस्य लोपे सति उत ऊत्वं वा भवति ॥ दूसहो दुसहो। दूहवो दुहओ॥ लुकीति किम्? दुस्सहो विरहो॥

अर्थः—'दुर्' उपसर्ग में रहे हुए 'र्' का लोप होने पर 'दु' में रहे हुए 'उ' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे:-दुःसहः = दूसहो और दुसहो॥ दुर्भगः = दूहवो और दुहओ 'र्' का लोप होने पर ऐसा उल्लेख क्यों किया ?

उत्तरः—यदि 'दुर्' उपसर्ग में रहे हुए 'र्' का लोप नहीं होगा तो 'दु' में रहे हुए 'उ' का भी दीर्घ 'ऊ' नहीं होगा। जैसे:-दुस्सहः विरहः = दुस्सहो विरहो। यहाँ पर 'र्' का स् हो गया है और उसका लोप नहीं हुआ है; अतः 'दु' में स्थित 'उ' का भी 'ऊ' नहीं हुआ है। ऐसा जानना।

दूसहो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३ में की गई है।

दुस्सहः (दुस्सहः) संस्कृत विशेषण है इसका प्राकृत रूप दुसहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३ से 'र्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दुसहो रूप सिद्ध हो जाता है।

दुर्भगः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप दूहवो और दुहओ होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१३ से 'र्' का लोप; १-११५ से आदि 'उ' का विकल्प से 'ऊ'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-१९२ से आदि दीर्घ 'ऊ' वाले प्रथम रूप में 'ग' का 'व'; और १-१७७ से ह्रस्व 'उ' वाले द्वितीय रूप में 'ग्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दूहवो और दुहओ रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दुसहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३ में की गई है।

विरहः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विरहो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुर्ल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विरहो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ ११५॥

ओत्संयोगे॥ १-११६ ॥

संयोगे परे आदेरुत ओत्वं भवति॥ तोण्डं। मोण्डं। पोक्खरं कोट्टिमं। पोत्थओ। लोद्धओ। मोत्था। मोग्गरो पोग्गलं। कोण्ढो। कोन्तो। वोक्कन्तं॥

अर्थः—शब्द में रहे हुए आदि 'उ' के आगे यदि संयुक्त अक्षर आ जाय; तो उस 'उ' का 'ओ' हो जाया करता है। जैसे-तुण्डम्=तोण्डं। मुण्डं=मोण्डं। पुष्करम्=पोक्खरं। कुट्टिमम्=कोट्टिमम्। पुस्तकः=पोत्थओ। लुब्धकः=लोद्धओ। मुस्ता=मोत्था। मुद्गरः=मोग्गरो। पुद्गलं=पोग्गलं। कुष्ठः कोण्ढो। कुन्तः=कोन्तो। व्युत्क्रान्तम्=वोक्कन्तं॥

तुण्डम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तोण्डं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तोण्डम् रूप सिद्ध हो जाता है।

मुण्डम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मोण्डं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर मोण्डं रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्करं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोक्खरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-४ से 'ष्क' का 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'ख्ख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पोक्खरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुट्टिमं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कोट्टिमं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कोट्टिमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुस्तकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोत्थओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-४५ से 'स्त' का 'थ'; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पोत्थओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लुब्धकः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप 'लोद्धओ' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-७९ से 'ब्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' का द्वित्व 'ध्ध'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध' का 'द्'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोद्धओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुस्ता संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप मोत्था होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-४५ से 'स्त' का 'थ'; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; और २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्' होकर *मोत्था* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुद्गरः संस्कृत शब्द है; इसका प्राकृत रूप मोग्गरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मोग्गरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुद्गलं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोग्गलं होता है। इस में सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; ३-२५ से प्रथमा के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति;और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पोग्गलं* रूप सिद्ध हो जाता है

कुण्ठः संस्कृत शब्द है; इसका प्राकृत रूप कोण्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; १-१९९ से 'ठ' का 'ढ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *कोण्ढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुन्तः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप कोन्तो होता है; इसमें सूत्र संख्या १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन से पुलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्य की प्राप्ति होकर कोन्तो रूप सिद्ध हो जाता है।

व्युत्क्रान्तं संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वोक्कन्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-११६ से आदि 'उ' का 'ओ'; २-७६ से 'र्' का लोप; २-७७ से 'त्' का लोप; २-८६ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; १-८४ से 'का' में रहे हुए 'आ' का 'अ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वोक्कन्तं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥११६॥

कुतूहले वा ह्रस्वश्च ॥ १-११७ ॥

कुतूहल शब्दे उत ओद् वा भवति तत्संनियोगे ह्रस्वश्च वा ॥ कोऊहलं कुऊहलं कोउहल्लं ॥

अर्थः—कुतूहल शब्द में रहे हुए आदि 'उ' का विकल्प से 'ओ' होता है। और जब 'ओ' होता है, तब 'तू' में रहा हुआ दीर्घ 'ऊ' विकल्प से ह्रस्व हो जाया करता है। जैसे-कुतूहल=कोऊहलं; कुऊहलं; और कोउहल्लं। तृतीय रूप में आदि 'उ' का 'ओ' हुआ है; अतः उसके पास वाले-याने संनियोग वाले 'तू' में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' हो गया है।

कुतूहलं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कोऊहलं; कुऊहलं; कोउहल्लं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११७ से आदि 'उ' का विकल्प से 'ओ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से कोऊहलं और कुऊहलं रूप सिद्ध हो जाते हैं। तृतीय रूप में सूत्र संख्या १-११७ से आदि 'उ' का 'ओ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-११७ से 'ओ' की संनियोग अवस्था होने के कारण से द्वितीय दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; २-९९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कोउहल्लं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥११७॥

अदूतः सूक्ष्मे वा ॥ १-११८ ॥

सूक्ष्म शब्दे ऊतोद् वा भवति ॥ सण्हं सुण्हं ॥ आर्षे । सुहुमं ॥

अर्थः—सूक्ष्म शब्द में रहे हुए 'ऊ' का विकल्प से 'अ' होता है। जैसे-सूक्ष्मम्=सण्हं और सुण्हं ॥ आर्ष प्राकृत में सुहुमं रूप भी पाया जाता है।

सूक्ष्मं संस्कृत विशेषण है; इसके प्राकृत रूप सण्हं और सुण्हं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-११८ से 'ऊ' का विकल्प से 'अ'; २-७५ से 'क्ष्म' का 'ण्ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप सण्हं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-११८ के वैकल्पिक विधान के अनुस्वार 'ऊ' का 'अ' नहीं होने पर १-८४ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' होकर सुण्हं रूप सिद्ध हो जाता है।

सूक्ष्मं संस्कृत विशेषण है। इसका आर्ष में प्राकृत रूप सुहुमं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष्' का 'ख्'; १-१८७ से प्राप्त 'ख्' का 'ह्'; २-११३ से प्राप्त 'ह्' में 'उ' की प्राप्ति; १-८४ से 'सू' में रहे हुए 'ऊ' का 'उ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सुहुमं रूप सिद्ध हो जाता है।

दुकूले वा लश्च द्विः ॥ १-११९ ॥

दुकूल शब्दे ऊकारस्य अत्वं वा भवति। तत्संनियोगे च लकारो द्विर्भवति ॥ दुअल्लं, दुऊलं ॥ आर्षे दुगुल्लं ॥

अर्थः—दुकूल शब्द में रहे हुए द्वितीय दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से 'अ' होता है; इस प्रकार 'अ' होने पर आगे रहे हुए 'ल' का द्वित्व 'ल्ल' हो जाता है; जैसे—दुकूलम्=दुअल्लं और दुऊलं ॥ आर्ष-प्राकृत में दुकूलम् का दुगुल्लं रूप भी होता है।

दुकूलं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप दुअल्लं और दुऊलं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'क' का लोप; १-११९ से 'ऊ' का विकल्प से 'अ'; और 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दुअल्लं और दुऊलं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दुकूलम् संस्कृत शब्द है। इसका आर्ष-प्राकृत में दुगुल्लं रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३ से 'दुकूल' का 'दुगुल्ल'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दुगुल्लं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ११९ ॥

ईर्वोद्व्यूढे ॥ १-१२० ॥

उद्व्यूढशब्दे ऊत ईत्वं वा भवति ॥ उव्वीढं। उव्वूढं ॥

अर्थः—उद्व्यूढ शब्द में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' की विकल्प से दीर्घ 'ई' होती है। जैसे—उद्व्यूढम्=उव्वीढं और उव्वूढं ॥

उद्व्यूढम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप उव्वीढं और उव्वूढं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'व्' का द्वित्व 'व्व्'; १-१२० से दीर्घ 'ऊ' की विकल्प से दीर्घ 'ई'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *उव्वीढं* और उव्वूढं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उर्भ्रू-हनुमत्कण्डूय-वातूले ॥ १-१२१ ॥

एषु ऊत उत्वं भवति ॥ भुमया । हणुमन्तो । कण्डुअइ । वाउलो ॥

अर्थः—भ्रू, हनुमत, कण्डूयति, और वातूल इन शब्दों में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' होता है। जैसे—भ्रूमया = भुमया। हनूमान = हणुमन्तो। कण्डूयति = कण्डुअइ। वातूलः = वाउलो।

भ्रूमया संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप भुमया होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ' होकर भुमया रूप सिद्ध हो जाता है।

हनूमान संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप हणुमन्तो होता है। इसका मूल शब्द हनूमत् है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; २-१५९ से 'स्वार्थ' में मत्' प्रत्यय के स्थान पर 'मन्त' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हणुमन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कण्डूयति संस्कृत सकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप कण्डुअइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; १-१७७ से 'य्' का लोप; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति होकर *कण्डुअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वातूलः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वाउलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१२१ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाउलो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१२१॥

मधूके वा ॥ १-१२२ ॥

मधूक शब्दे ऊत उद् वा भवति ॥ महुअं महूअं ॥

अर्थः—मधूक शब्द में रहे हुए दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से ह्रस्व 'उ' होता है। जैसे-मधूकम् = महुअं और महूअं।

मधूकं संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप महुअं और महूअं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१८७

से 'थ' का 'ह'; १-१२२ से दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से ह्रस्व 'उ'; १-१७७ से 'क्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *महुअं* और *महूअं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१२२॥

इदेतौ नुपूरे वा ॥ १-१२३ ॥

नूपुर शब्दे उत इत् एत् इत्येतौ वा भवतः ॥ निउरं नेउरं । पक्षे नूउरं ॥

अर्थः—नूपुर शब्द में रहे हुए आदि दीर्घ 'ऊ' के विकल्प से 'इ' और 'ए' होते हैं। जैसे–नूपुरम् = निउरं, नेउरं और पक्ष में नूउरं। प्रथम रूप में 'ऊ' की 'इ'; द्वितीय रूप में 'ऊ' का 'ए'; और तृतीय रूप में विकल्प–पक्ष के कारण से 'ऊ' का 'ऊ' ही रहा।

नूपुरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप निउरं, नेउरं और नूउरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२३ से आदि दीर्घ 'ऊ' का विकल्प से 'इ' और 'ए'; और पक्ष में 'ऊ'; १-१७७ से 'प्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *निउरं*, *नेउरं*, और *नूउरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १२३ ॥

ओत्कूष्माण्डी-तूणीर-कूर्पर-स्थूल-ताम्बूल-गुडूची-मूल्ये ॥ १-१२४ ॥

एषु उत ओत् भवति ॥ कोहण्डी कोहली । तोणीरं कोप्परं । थोरं । तम्बोलं । गलोई मोल्लं ॥

अर्थः—कूष्माण्डी, तूणीर, कूर्पर, स्थूल, ताम्बूल, गुडूची, और मूल्य में रहे हुए 'ऊ' का 'ओ' होता है। जैसे–कूष्माण्डी = कोहण्डी और कोहली। तूणीरम् = तोणीरं। कूर्परम् = कोप्परं। स्थूलम् = थोरं। ताम्बूलम् = तम्बोलं। गुडूची = गलोई। मूल्यं = मोल्लं ॥

कूष्माण्डी संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप कोहण्डी और कोहली होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; २-७३ से 'ष्मा' का 'ह'; और इसी सूत्र से 'ण्ड' का विकल्प से 'ल'; होकर क्रम से *कोहण्डी* और *कोहली* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तूणीरम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तोणीरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तोणीरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कूर्परम् संस्कृत शब्द है इसका प्राकृत रूप कोप्परं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में

नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कोप्परं* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थूलं संस्कृत विशेषण है; इसका प्राकृत रूप थोरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; १-२५५ से 'ल' का 'र'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थोरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ताम्बूलं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तम्बोलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४से आदि 'आ' का 'अ'; १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तम्बोलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गलोई शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या १-१०७ में की गई है।

मूल्यं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मोल्लं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२४ से 'ऊ' का 'ओ'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मोल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।॥ १२४॥

स्थूणा-तूणे वा ॥१-१२५॥

अनयोरूत ओत्वं वा भवति। थोणा थूणा। तोणं तूणं॥

अर्थः—स्थूणा और तूण शब्दों में रहे हुए 'ऊ' का विकल्प से 'ओ' होता है। जैसे-स्थूणा= थोणा और थूणा। तूणम्=तोणं और तूणं॥

स्थूणा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप थोणा और थूणा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-१२५ से 'ऊ' का विकल्प से 'ओ' होकर *थोणा* और *थूणा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

तूणं संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप तोणं और तूणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२५ से 'ऊ' का विकल्प से 'ओ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तोणं* और *तूणं* रूप सिद्ध हो जाते हैं॥ १२५॥

ऋतोत् ॥ १-१२६ ॥

आदेर्ऋकारस्य अत्वं भवति॥ घृतम्। घयं॥ तृणम्। तणं॥ कृतम्। कयं॥ वृषभः। वसहो॥ मृगः। मओ॥ घृष्टः। घट्ठो॥ दुहाइअमिति कृपादिपाठात्॥

अर्थः—शब्द में रही हुई आदि 'ऋ' का 'अ' होता है। जैसे-घृतम्=घयं ॥ तृणम्=तणं ॥ कृतम्=कयं ॥ वृषभः=वसहो ॥ मृगः=मओ ॥ घृष्टः= घट्ठो ॥ द्विधा-कृतम्=दुहाइअं इत्यादि शब्दों की सिद्धि 'कृपादि' के समान अर्थात् सूत्र संख्या १-१२८ के अनुसार जानना।

घृतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृतक रूप घयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *घयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृतम् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप कयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *कयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृषभः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वसहो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'ग्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

घृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप घट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुहाइअं शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९७ में की गई है ॥१२६॥

आत्कृशा-मृदुक-मृदुत्वे वा ॥ १-१२७ ॥

एषु आदेॠत आद् वा भवति ॥ कासा किसा । माउक्कं मउअं । माउक्कं मउत्तणं ॥

अर्थः—कृशा, मृदुक, और मृदुत्व; इन शब्दों में रही हुई आदि 'ऋ' का विकल्प से 'आ'

होता है। जैसे–कृशा = कासा और किसा ॥ मृदुकम् = माउक्कं और मउअं ॥ मृदुत्वम् = माउक्कं और मउत्तणं ॥

कृशा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कासा और किसा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का विकल्प से 'आ'; १-२६० से 'श' का 'स' होकर प्रथम रूप *कासा* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' और शेष पूर्ववत् होकर *किसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदुकम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप माउक्कं और मउअं होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का विकल्प से 'आ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-९९ से 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप और शेष पूर्व रूपवत् होकर *मउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृदुत्वं संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माउक्कं और मउत्तणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२७ से 'ऋ' का 'आ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-२ से 'त्व' के स्थान पर विकल्प से 'क्' का आदेश; २-९९ से प्राप्त 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर विकल्प से 'त्तण' का आदेश; और शेष पूर्व रूप वत् होकर *मउत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इत्कृपादौ ॥ १-१२८ ॥

कृपाइत्यादिषु शब्देषु आदेऋ्त इत्वं भवति ॥ किवा । हिययं । मिट्ठं रसे एव । अन्यत्र मट्ठं । दिट्ठं । दिट्ठी । सिट्ठं सिट्ठी गिण्ठी गिण्ठी । पिच्छी । भिऊ । भिङ्गो । भिङ्गारो । सिङ्गारो । सिआलो । घिणा । घुसिणं । विद्ध-कई । समिद्धी । इद्धी । गिद्धी । किसो । किसाणू । किसरा । किच्छं । तिप्पं । किसिओ । निवो । किच्चा । किई । धिई । किवो । किविणो । किवाणं । विञ्चुओ । वित्तं । वित्ती हिअं । वाहित्तं । बिंहिओ । विसी । इसी । विइण्हो । छिहा । सइ । उक्किट्ठं । निसंसो ॥ क्वचिन्न भवति । रिद्धी कृपा । हृदय । मृष्ट । दृष्ट । दृष्टि । सृष्ट । सृष्टि । गृष्टि । पृथ्वी । भृगु । भृङ्ग । भृङ्गार । शृङ्गार । शृगाल । घृणा । घुसृण । वृद्ध कवि । समृद्धि । ऋद्धि । गृद्धि । कृश । कृशानु । कृसरा । कृच्छ । तृप्त । कृषित । नृप । कृत्या । कृति । धृति । कृप । कृपण । कृपाण । वृश्चिक । वृत्त । वृत्ति । हृत । व्याहृत । बृंहित । बृसी । ऋषि । वितृष्ण । स्पृहा । सकृत । उत्कृष्ट । नृशंस ॥

अर्थः—कृपा आदि शब्दों में रही हुई आदि 'ऋ' की 'इ' होती है। जैसे—कृपा = किवा। हृदयम् = हिययं। मृष्टम् = (रस वाचक अर्थ में हो) मिट्ठं। मृष्टम् = (रस से अतिरिक्त अर्थ में) मट्ठं। दृष्टम् = दिट्ठं। दृष्टिः = दिट्ठी। सृष्टम् = सिट्ठं। सृष्टिः = सिट्ठी। गृष्टिः = गिट्ठी और गिण्ठी। पृथ्वी = पिच्छी। भृगुः = भिऊ। भृङ्गः = भिङ्गो। भृङ्गारः = भिङ्गारो। शृङ्गारः = सिङ्गारो। शृगालः = सिआलो। घृणा = घिणा। घुसृणम् = घुसिणम्। वृद्ध कविः = विद्ध-कई। समृद्धिः = समिद्धी। ऋद्धिः = इद्धि। गृद्धिः = गिद्धी। कृशः = किसो। कृशानुः = किसाणू। कृसरा = किसरा। कृच्छ्रम् = किच्छं। तृप्तम् = तिप्पं। कृषितः = किसिओ। नृपः = निवो। कृत्या = किच्चा। कृतिः = किई। धृतिः = धिई। कृपः = किवो। कृपणः = किविणो। कृपाणम् = किवाणं। वृश्चिकः = विञ्चुओ। वृत्तम् = वित्तं। वृत्तिः = वित्ती। हृतम् = हिअं। व्याहृतम् = वाहित्तं। बृंहितः = बिंहिओ। वृसी = विसी। ऋषिः = इसी। वितृष्णः = वितिण्हो। स्पृहा = छिहा। सकृत् = सइ। उत्कृष्टम् = उक्किट्ठं। नृशंसः = निसंसो। किसी किसी शब्द में 'ऋ' की 'इ' नहीं भी होती है। जैसे—ऋद्धिः = रिद्धी।

कृपा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से आदि 'ऋ' की 'इ'; और १-२३१ से 'प' का 'व' होकर *किवा* रूप सिद्ध हो जाता है।

हृदयम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिययं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हिययं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मिट्ठं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार *मिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृष्टम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिट्ठं रूप की सिद्धी सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

दृष्टिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठी होता है, इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *दिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

दृष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सिट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सृष्टिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का ठ्; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *सिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृष्टिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गिट्ठी और गिण्ठी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *गिट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; १-२६ से प्रथम आदि स्वर 'इ' के आगे आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *गिण्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिच्छी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-१५ से 'थ्व' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; होकर *पिच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृगुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'ग्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *भिऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृंगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिङ्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिङ्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृंगारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिङ्गारो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिंगारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शृङ्गारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिङ्गारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ'

की 'इ'; १-२६० से 'श्' का 'स्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सिङ्गारो रूप सिद्ध हो जाता है।

शृगालः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिआलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'श' का 'स्'; १-१७७ से 'ग्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक-वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिआलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

घृणा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घिणा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; होकर *घिणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

घुसृणं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घुसिणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *घुसिणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृद्ध-कविः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप विद्धकई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'व्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *विद्धकई* रूप सिद्ध हो जाता है।

समिद्धी शब्द की सिद्धि सूत्र संख्या १-४४ में की गई है। *ऋद्धिः* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इद्धी हो जाता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *इद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृद्धिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गिद्धी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *गिद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप किसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृशानुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किसाणू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किसाणू* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृसरा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किसरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; होकर *किसरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृच्छ्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किच्छं होता है। इसमें संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-७९ से अन्त्य 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृप्तं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तिप्पं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की इ'; २-७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' का द्वित्व 'प्प'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *तिप्पं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृषितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप किसिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ; १-२६० से 'ष्' का 'स्'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नृपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२३१ से 'प' का 'व'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्या स्त्री लिंग शब्द है। इसका प्रकृत रूप किचा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-१३ से 'त्य' का 'च'; और २-८९ से प्राप्त 'च' का द्वित्व 'च्च' होकर *किच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *किई* रूप सिद्ध होता है।

धृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धिई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' को 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *धिई* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२३१से 'प्' का 'व्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *किवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

किविणो शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-४६* में की गई है।

कृपाणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किवाणं होता है। इसमें-सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२३१ से 'प्' का 'व्' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किवाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विञ्चुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-१६ से स्वर सहित 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश; १-१७७ से क् का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विञ्चुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वित्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वित्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *वित्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

हृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याहृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वाहित्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-९८ से 'त्' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वाहित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृंहितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप बिंहिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिंहिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृसी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' होकर *विसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋषिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इसी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'ष्' का 'स्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर इसी रूप सिद्ध हो जाता है।

वितृष्णः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विइण्हो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-७५ से 'ष्ण' का 'ण्ह'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर विइण्हो रूप सिद्ध हो जाता है।

स्पृहा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छिहा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२३ से 'स्प्' का 'छ', और १-१२८ से 'ऋ' की 'इ' होकर छिहा रूप सिद्ध हो जाता है।

सकृत् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप सइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर सइ रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्कृष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उक्किट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से 'क्' का द्वित्व 'क्क्'; २-३४ से 'ष्ट्' का 'ठ्'; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' का द्वित्व 'ठ्ठ्'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर उक्किट्ठं रूप सिद्ध हो जाता है।

नृशंसः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निसंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-२६० से 'श' का 'स्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर निसंसो रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋद्धिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिद्धी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४० से 'ऋ' की 'रि'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर रिद्धी रूप सिद्ध हो जाता है॥ १२८॥

पृष्ठे वानुत्तरपदे ॥ १-१२९ ॥

पृष्ठ शब्देऽनुत्तर पदे ऋत इद् भवति वा ॥ पिट्ठी पट्ठी ॥ पिट्ठि परिट्ठविअं ॥ अनुत्तर पद इति किम्। महिवट्ठं ॥

अर्थ—यदि 'पृष्ठ' शब्द किसी अन्य शब्द के अन्त में नहीं जुड़ा हुआ हो; अर्थात् स्वतंत्र रूप से रहा हुआ हो अथवा संयुक्त शब्द में आदि रूप से रहा हुआ हो तो 'पृष्ठ' शब्द में रही हुई 'ऋ' की 'इ' विकल्प से होती है। जैसे-पृष्ठिः = पिट्ठी और पट्ठी। पृष्ठ-परिस्थापितम् = पिट्ठि परिट्ठविअं।

સરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ શાહ

सूत्र में 'अनुत्तर पद' ऐसा क्यों लिखा गया है? उत्तर-यदि 'पृष्ठ' शब्द आदि में नहीं होकर किसी अन्य शब्द के साथ में पीछे जुड़ा हुआ होगा तो पृष्ठ शब्द में रही हुई 'ऋ' की 'इ' नहीं होगी। जैसे-मही-पृष्ठम् = महिवट्ठं ॥ यहाँ पर 'ऋ' की 'इ' नहीं होकर 'अ' हुआ है ॥

पिट्ठी शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

पृष्ठिः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-३४ से 'ष्ठ'; का 'ठ'२-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *पट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृष्ठ-परिस्थापितम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पिट्ठि-परिट्ठविअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; २-३४ से 'ष्ठ' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; १-४६ से प्राप्त 'ट्' में रहे हुए 'अ' की 'इ'; ४-१६ से 'स्था' धातु के स्थान पर 'ठा' का आदेश; १-६७ से 'ठा' में रहे हुए 'आ' का 'अ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; १-२३१ से 'प्' का 'व'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पिट्ठि-परिट्ठविअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

महीपृष्ठम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महिवट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-४ से 'ई' की 'इ'; १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; २-३४ से 'ष्ठ' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *महिवट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१२९॥

मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु-शृंग-धृष्टे वा ॥ १-१३० ॥

एषु ऋत इद् वा भवति ॥ मसिणं मसणं। मिअङ्को मयङ्को। मिच्चू। मच्चू। सिङ्गं सगं। धिट्ठो ॥ धट्ठो।

अर्थः—मसृण, मृगाङ्क, मृत्यु, शृङ्ग और धृष्ट; इन शब्दों में रही हुई 'ऋ' की विकल्प से 'इ' होती है। तदनुसार प्रथम रूप में तो 'ऋ' की 'इ' और द्वितीय वैकल्पिक रूप में 'ऋ' का 'अ' होता है। जैसे-मसृणम् = मसिणं और मसणं। मृगाङ्कः = मिअङ्को और मयङ्को ॥ मृत्युः = मिच्चू और मच्चू ॥ शृङ्गम् = सिङ्गं और सङ्गं ॥ धृष्टः = धिट्ठो और धट्ठो ॥

मसृणम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप मसिणं और मसणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१३० से 'ऋ' को विकल्प से 'इ' और १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से मसिणं और मसणं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

मृगांकः संस्कृत रूप है। इस प्राकृत रूप मिअंको और मयंको होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१३० से 'ऋ' की विकल्प से 'इ'; १-१७७ से 'ग्' का लोप; १-८४ से शेष 'आ' का 'अ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप मिअंको सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'ग्' का लोप; १-८४ से शेष 'आ' का 'अ'; १-१८० से प्राप्त 'अ' का 'य' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर मयंको रूप सिद्ध हो जाता है।

मृत्युः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मिच्चू और मच्चू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१३० से 'ऋ' की विकल्प से 'इ'; २-१३ से 'त्य्' के स्थान पर 'च्' का आदेश; २-८९ से आदेश प्राप्त 'च्' का द्वित्व 'च्च्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर मिच्चू रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर मच्चू रूप सिद्ध हो जाता है।

शृंगं संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिंगं और संगं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१३० से 'ऋ' की विकल्प से 'इ'; और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-२६० से 'श्' का 'स्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से सिंगं और संगं रूप सिद्ध हो जाते हैं।

धृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप धिट्ठो और धट्ठो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१३० से 'ऋ' की विकल्प से 'इ'; और द्वितीय रूप सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से धिट्ठो और धट्ठो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१-१३०॥

उदृत्वादौ ॥ १-१३१ ॥

ऋतु इत्यादिषु शब्देषु आदेर्ऋत उद् भवति ॥ उऊ। परामुट्ठो। पुट्ठो। पउट्ठो। पुहई। पउत्ती। पाउसो पाउओ। भुई। पहुडि। पाहुडं। परहुओ। निहुअं। निउअं। विउअं। संवुअं। वुत्तन्तो। निव्वुअं। निव्वुई। वुन्दं। वुन्दावणो। वुड्ढो। वुड्ढी। उसहो।

मुणालं। उज्जू। जामाउओ। माउओ। माउआ। माऊओ। पिउओ। पुहुवी॥ ऋतु। परामृष्ट। स्पृष्ट। प्रवृष्ट। पृथिवी। प्रवृत्ति। प्रावृष्। प्रावृत। भृति। प्रभृति। प्राभृत। परभृत। निभृत। निवृत। विवृत। संवृत। वृत्तान्त। निर्वृत। निर्वृति। वृन्द। वृन्दावन। वृद्ध। वृद्धि। ऋषभ। मृणाल। ऋजु। जामातृक। मातृक। मातृका। भ्रातृका। पितृक। पृथ्वी। इत्यादि॥

अर्थः—ऋतु इत्यादि शब्दों में रही हुई आदि 'ऋ' का 'उ' होता है। जैसे-ऋतुः=उऊ। परामृष्टः=परामुट्ठो। स्पृष्टः=पुट्ठो। प्रवृष्टः=पउट्ठो। पृथिवी=पुहई। प्रवृत्तिः=पउत्ती। प्रावृष=(प्रावृट्)=पाउसो। प्रावृतः=पाउओ। भृतिः=भुई। प्रभृति=पहुडि। प्राभृतम्=पाहुडं। परभृतः=परहुओ। निभृतम्=निहुअं। निवृतम्=निउअं। विवृतम्=विउअं। संवृतम्=संवुअं। वृत्तान्तः=वुत्तन्तो। निर्वृतम=निव्वुअं। निर्वृत्तिः=निव्वुई। वृन्दम्=वुन्दं। वृन्दावनो=वुन्दावणो। वृद्धः=वुड्ढो। वृद्धिः=वुड्ढी। ऋषभः=उसहो। मृणालम्=मुणालं। ऋजुः=उज्जू। जामातृकः=जामाउओ। मातृकः=माउओ। मातृका=माउआ। भ्रातृकः=भाउओ। पितृकः=पिउओ। पृथ्वी=पुहुवी। इत्यादि इन ऋतु आदि शब्दों में आदि 'ऋ' का 'उ' होता है; ऐसा जानना।

ऋतुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१७७ से 'त्' का लोप, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ 'ऊ' होकर उऊ रूप सिद्ध हो जाता है।

परामृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप परामुट्ठो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ', २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर परामुट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है।

स्पृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पुट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७७ से आदि 'स्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पुट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पउट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ' २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ' का 'ट्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पउट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है।

पुहई रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८८ में की गई है।

प्रवृत्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पउत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१३१ 'ऋ' का 'उ'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *पउत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाउसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१९ में की गई है।

प्रावृतः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पाउओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'व्' और 'त्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पाउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *भुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रभृति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप पहुडि होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'भ्' का 'ह्'; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; और १-२०६ से 'त्' का 'ड्' होकर *पहुडि* सिद्ध हो जाता है।

प्राभृतं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाहुडं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'भ्' का 'ह'; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-२०६ 'त्' का 'ड्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पाहुडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

परभृतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप परहुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ्' का 'ह्'; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *परहुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निभृतं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निहुअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१८७ से 'भ्' का 'ह्'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निहुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवृतं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निउअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'त्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग

में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विवृतं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विउअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'त्' का लोप, १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विउअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवृतं संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संवुअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संवुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृत्तान्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वुत्तन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-८४ से 'आ' का 'अ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वुत्तन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वृतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निव्वुअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व्' का द्वित्व 'व्व'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निव्वुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निव्वुई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व्' का द्वित्व 'व्व'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' का दीर्घ स्वर 'ई' होकर *निव्वुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृन्दं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वुन्दं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वुन्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृन्दावनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वुन्दावणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वुन्दावणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृद्धः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वुड्ढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ'

का 'उ'; २-४० से 'द्ध' का 'ढ'; २-८९ से प्राप्त 'ढ' का द्वित्व 'ढ्ढ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ्' का 'ड्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बुड्ढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृद्धिः का प्राकृत रूप वुड्ढी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-४० से संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' का 'ढ्'; २-८९ से प्राप्त 'ढ्' का द्वित्व 'ढ्ढ्'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ्' का ड'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *वुड्ढी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋषभः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उसहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-२६० से 'ष' का 'स' १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृणालं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणालं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मुणालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋजुः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप उज्जू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-९८ से 'ज्' का द्वित्व 'ज्ज्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *उज्जू* सिद्ध हो जाता है।

जामातृकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जामाउओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जामाउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातृकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप माउओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातृका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप और १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' होकर *माउआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रातृकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भाउओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भाउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिउओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' का 'उ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पिउओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुहुवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; २-११३ से अन्त्य व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में 'उ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ्' का 'ह्' होकर *पुहुवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवृत्त-वृन्दारके वा ॥ १-१३२ ॥

अनयोर्ऋत उद् वा भवति ॥ निवुत्तं निअत्तं । वुन्दारया वन्दारया ॥

अर्थः-निवृत्त और वृन्दारक इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ऋ' का विकल्प से 'उ' होता है। जैसे निवृत्तम् = निवुत्तं अथवा निअत्तं। वृन्दारकाः = वुन्दारया अथवा वन्दारया ॥

निवृत्तम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप निवुत्तं और निअत्तं होते हैं इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या-१-१३२ 'ऋ' का विकल्प से 'उ'; ३-२५ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निवुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; १-१७७ से 'व्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर *निअत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृन्दारकाः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप वुन्दारया और वन्दारया होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या-१-१३२ से 'ऋ' का विकल्प से 'उ'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य'; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और प्राप्त प्रत्यय का लोप; तथा ३-१२ से अन्त्य स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' होकर *वुन्दारया* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १२६ से 'ऋ' का 'अ'; और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर *वन्दारया* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१३२ ॥

वृषभे वा वा ॥ १-१३३ ॥

वृषभे ऋतो वेन सह उद् वा भवति ॥ उसहो वसहो ॥

अर्थः—वृषभ शब्द में रही हुई 'ऋ' का विकल्प से 'व्' के साथ 'उ' होता है। अर्थात् 'व्' व्यञ्जन सहित 'ऋ' का विकल्प से 'उ' होता है। जैसे—वृषभः = उसहो और वसहो। इस प्रकार विकल्प पक्ष होने से प्रथम रूप में 'वृ' का 'उ' हुआ है और द्वितीय रूप में केवल 'ऋ' का 'अ' हुआ है।

उसहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है। वसहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२६ में की गई है। ॥ १-१३३ ॥

गौणान्त्यस्य ॥ १-१३४ ॥

गौण शब्दस्य योन्त्य ऋत् तस्य उद् भवति ॥ माउ-मण्डलं । माउ-हरं । पिउ-हरं । माउ-सिआ । पिउ-सिआ । पिउ-वणं । पिउ-वई ॥

अर्थः—दो अथवा अधिक शब्दों से निर्मित संयुक्त शब्द में गौण रूप से रहे हुए शब्द के अन्त में यदि 'ऋ' हो तो उस 'ऋ' का 'उ' होता है। जैसे-मातृ-मण्डलम् = माउ-मण्डलं। मातृ-गृहम् = माउ-हरम्। पितृ-गृहम् = पिउ-हरं। मातृ-ष्वसा = माउ-सिआ। पितृ-ष्वसा = पिउ-सिआ। पितृ-वनम् = पिउ वणं। पितृ-पतिः = पिउ-वई ॥

मातृ-मण्डलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउ-मण्डलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१३४ से 'ऋ' का 'उ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउ-मण्डलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातृ-गृहम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउ-हरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१३४ से आदि 'ऋ' का 'उ'; २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' का आदेश; १-१८७ से प्राप्त 'घ' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माउ-हरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृ-गृहम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *पिउ-हरं* होता है। इसकी साधनिका ऊपर वर्णित 'मातृ-गृहम् = माउ-हरं' रूप के समान ही जानना।

मातृ-ष्वसा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउ-सिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१३४ से 'ऋ' का 'उ'; २-१४२ से 'ष्वसा' शब्द के स्थान पर 'सिआ' का आदेश होकर *माउसिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृ-ष्वसा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *पिउ-सिआ* होता है। इसकी साधनिका ऊपर-वर्णित मातृ-ष्वसा = माउ-सिआ ॥ रूप के समान ही जानना।

पितृ-वनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिउ-वणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'त्' का लोप; १-१३४ 'ऋ' का 'उ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पिउ-वणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पितृ-पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिउ-वई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'त्' का लोप; १-१३४ से 'ऋ' का 'उ'; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' होकर *पिउवई* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१३४॥

मातुरिद्वा ॥ १-१३५ ॥

मातृ शब्दस्य गौणस्य ऋत इद् वा भवति ॥ माइ-हरं। माउ-हरं ॥ क्वचिदगौणस्यापि। माईणं ॥

अर्थः-किसी संयुक्त शब्द में गौण रूप से रहे हुए 'मातृ' शब्द के 'ऋ' की विकल्प से 'इ' होती है। जैसे-मातृ-गृहम्=माइ-हरं अथवा माउ-हरं॥ कहीं कहीं पर गौण नहीं होने की स्थिति में भी 'मातृ' शब्द के 'ऋ' की 'इ' हो जाती है। जैसे-मातृणाम्=माइणं ।

मातृ-गृहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माइ-हरं और माउ-हरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१३५ से आदि 'ऋ' की विकल्प से 'इ'; और शेष 'हरं' की साधनिका सूत्र संख्या १-१३४ में वर्णित 'हरं' रूप के अनुसार जानना। द्वितीय रूप 'माउ-हरं' की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३४ में की गई है।

मातृणाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माईणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१३५ से 'ऋ' की 'इ'; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में स्त्रीलिंग में 'आम्' प्रत्यय के स्थानपर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१२ से 'आम्' प्रत्यय अर्थात् 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति होने के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' और १-२७ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय पर विकल्प से अनुस्वार की प्राप्ति होकर *माईणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१३५॥

उदूदोन्मृषि ॥ १-१३६॥

मृषा शब्दे ऋत उत् ऊत् ओच्च भवति ॥ मुसा। मूसा मोसा। मुसा-वाओ। मूसा-वाओ मोसा-वाओ ॥

अर्थः—मृषा शब्द में रही हुई 'ऋ' का 'उ' अथवा 'ऊ' अथवा 'ओ' होता है। जैसे—मृषा = मुसा अथवा मूसा अथवा मोसा। मृषा-वादः=मुसा-वाओ अथवा मूसा-वाओ अथवा मोसा-वाओ ॥

मृषा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप क्रम से मुसा, मूसा और मोसा होता है। इनमें सूत्र-संख्या १-१३६ से 'ऋ' का क्रम से 'उ' 'ऊ'; और 'ओ' और १-२६० से 'ष्' का 'स्' होकर क्रम से *मुसा* *मूसा* और *मोसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृषावादः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मुसावाओ; मूसावाओ; और मोसा-वाओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३६ से 'ऋ' के क्रम से और विकल्प से 'उ'; 'ऊ'; और 'ओ'; १-२६० से 'ष' का स; १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से और विकल्प से *मुसावाओ, मूसावाओ* और *मोसा-वाओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-१३६ ॥

इदुतौवृष्ट-वृष्टि-पृथङ् मृदंग -नप्तृके ॥ १-१३७ ॥

एषु ऋत इकारोकारौ भवतः ॥ विट्ठो वुट्ठो। विट्ठी वुट्ठी। पिहं पुहं मिइंगो मुइंगो। नत्तिओ नत्तुओ ॥

अर्थः—वृष्ट, वृष्टिः पृथक्; मृदङ्ग और नप्तृक में रही हुई 'ऋ' की 'इ' और 'उ' क्रम से होते हैं। जैसे:-वृष्टः = विट्ठो और वुट्ठो। वृष्टिः = विट्ठी और वुट्ठी। पृथक् = पिहं और पुहं। मृदङ्गः = मिइङ्गो और मुइङ्गो। नप्तृकः = नत्तिओ और नत्तुओ ॥

वृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप विट्ठो और वुट्ठो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' की विकल्प से अथवा क्रम से 'इ' और 'उ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विट्ठो* और *वुट्ठो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वृष्टिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विट्ठी और वुट्ठी होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' की विकल्प से अथवा क्रम से 'इ' और 'उ'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' और प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *विट्ठी* और *वुट्ठी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पिहं अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४ में की गई है।

पृथक् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप पुहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' का 'उ'; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'क्' का लोप और १-२४ से आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *पुहं* रूप सिद्ध होता है।

मइङ्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है।

मृदंगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मिइङ्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१३७ से 'ऋ' को 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-४६ से शेष 'अ' की 'इ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मिइंगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नप्तृकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नत्तिओ और नत्तुओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७७ से 'प्' का लोप, १-१३७ से 'ऋ' की क्रम से और विकल्प से 'इ' और 'उ'; २-८९ से 'त्' का द्वित्व 'त्त'; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नत्तिओ* एवं *नत्तुओ* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥१-१३७॥

वा बृहस्पतौ ॥ १-१३८ ॥

बृहस्पति शब्दे ऋत इदुतौ वा भवतः ॥ बिहप्फई बुहप्फई । पक्षे बहप्फई ॥

अर्थः—बृहस्पति शब्द में रही हुई 'ऋ' की विकल्प से एवं क्रम से 'इ' और 'उ' होते हैं। जैसे-बृहस्पतिः = बिहप्फई और बुहप्फई। पक्ष में बहप्फई भी होता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बिहप्फई, बुहप्फई और बहप्फई होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' की क्रम से और विकल्प से 'इ' और 'उ'; तथा पक्ष में १-१२६ से 'ऋ' को 'अ'; २-५३ से 'स्प' का 'फ' २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फ्फ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्'; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर क्रम से बिहप्फई; बुहप्फई और पक्ष में वैकल्पिक रूप से बहप्फई रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-१३८ ॥

इदेदोद्वृन्ते ॥ १-१३९ ॥

वृन्त शब्दे ऋत इत् एत् ओच्च भवन्ति ॥ विण्टं वेण्टं वोण्टं ॥

अर्थः-वृन्त शब्द में रही हुई 'ऋ' की 'इ'; 'ए'; और 'ओ' क्रम से एवं विकल्प से होते हैं। जैसे-वृन्तम् = विण्टं, वेण्टं अथवा वोण्टं।

वृन्तम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विण्टं, वेण्टं और वोण्टं होते हैं। इन में सूत्र-संख्या-१–१३९ से 'ऋ' की क्रम से और वैकल्पिक रूप से 'इ' 'ए' और 'ओ'; २–३१ से संयुक्त 'न्त' का 'ण्ट'; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से तथा वैकल्पिक रूप से *विण्टं वेण्टं* और *वोण्टं* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १–१३९ ॥

रिः केवलस्य ॥ १–१४० ॥

केवलस्य व्यञ्जनेनासंपृक्तस्य ऋतो रिरादेशो भवति ॥ रिद्धी । रिच्छो ॥

अर्थः–किसी भी शब्द में यदि 'ऋ' किसी अन्य व्यञ्जन के साथ जुड़ी हुई नहीं हो, अर्थात् स्वतंत्र

रूप से रही हुई हों तो उस 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का आदेश होता है। जैसे—ऋद्धिः = रिद्धी। ऋक्षः = रिच्छो॥

रिद्धी शब्द की सिद्धि सूत्र-संख्या १–१२८ में की गई है।

ऋक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिच्छो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१–१४० से 'ऋ' की 'रि'; २–१६ से 'क्ष' का 'छ'; २–८६ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छ्छ'; २–६० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रिच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऋणर्ज्वृषभत्वृषौ वा ॥ १-१४१ ॥

ऋण ऋजु ऋषभऋतु ऋषिषु ऋतो रिर्वा भवति॥ रिणं अणं। रिज्जू उज्जू। रिसहो उसहो। रिऊ उऊ। रिसी इसी॥

अर्थः—ऋण; ऋजु, ऋषभ; ऋतु और ऋषि शब्दों में रही हुई 'ऋ' की विकल्प से रि होती है। जैसे-ऋणम् = रिणं अथवा अणं। ऋजुः = रिज्जू अथवा अज्जू। ऋषभः = रिसहो अथवा उसहो। ऋतुः = रिऊ अथवा उऊ। ऋषिः = रिसी अथवा इसी॥

ऋणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रिणं अथवा अणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१४१ से 'ऋ' की विकल्प से 'रि'; ३- ५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रिणं* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *अणं* में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ' और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् जानना।

ऋजुः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप रिज्जू और उज्जू होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-१-१४१ से 'ऋ' की विकल्प से 'रि'; २-८६ से 'ज्' का द्वित्व 'ज्ज्' और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *रिज्जू* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; शेष साधनिक प्रथम रूपवत् जानना।

ऋषभः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रिसहो और उसहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-४१ से 'ऋ' की विकल्प 'रि'; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रिसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उसहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है।

ऋतुः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप रिऊ और उऊ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-४१ से 'ऋ' की विकल्प से 'रि'; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग

में अथवा स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *रिऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है।

ऋषिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रिसी और इसी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१४१ से 'ऋ' की विकल्प से 'रि'; १-२६० से 'ष्' का 'स्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' होकर *रिसी* रूप सिद्ध हो जाता है। इसी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२८ में की गई है। ॥ १-१४१ ॥

दृशः क्विप्-टक्-सकः ॥ १-१४२ ॥

क्विप् टक् सक् इत्येतदन्तस्य दृशे र्धातो ॠतो रिरादेशो भवति ॥ सदृक्। सरि-रूवो। सरि-वन्दीणं ॥ सदृशः। सरिसो। सदृक्षः। सरिच्छो ॥ एवम् एआरिसो। भवारिसो। जारिसो। तारिसो। केरिसो। एरिसो। अन्नारिसो। अम्हारिसो। तुम्हारिसो ॥ टक्सक्साहचर्यात् त्यदाद्यन्यादि [हे० ५-१] सूत्र-विहितः क्विबिह गृह्यते ॥

अर्थः—यदि दृश् धातु में 'क्विप्', 'टक्', और 'सक्' कृदन्त प्रत्ययों में से कोई एक प्रत्यय लगा हुआ हो तो 'दृश्' धातु में रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का आदेश होता है। जैसे-सदृक्=सरि ॥ सदृश्-वर्णः=सरि-वण्णो। सदृश्-रूपः=सरि-रूवो। सदृश्-वन्दीनाम्=सरि-वन्दीणं ॥ सदृशः= सरिसो ॥ सदृक्षः=सरिच्छो ॥ इसी प्रकार से अन्य उदाहरण यों हैं:—एतादृशः=एआरिसो। भवादृशः=भवारिसो। यादृशः=जारिसो। तादृशः=तारिसो। कीदृशः=केरिसो। ईदृशः=एरिसो। अन्यादृशः=अन्नारिसो। अस्मादृशः=अम्हारिसो। युष्मादृशः=तुम्हारिसो ॥ इस सूत्र में 'टक्' और 'सक्' प्रत्ययों के साथ 'क्विप्' प्रत्यय का उल्लेख किया गया है; इस पर से यह समझा जाना चाहिये कि इस सूत्र को 'त्यदाद्यन्यादि-(हे० ५-१-१५२) सूत्र के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये। जिसका तात्पर्य यह है कि 'तत्' आदि सर्वनामों के रूपों के साथ में यदि दृश् धातु रही हुई हो और उस स्थिति में 'दृश्' धातु में क्विप् प्रत्यय लगा हुआ हो तो 'दृश्' धातु की 'ऋ' के स्थानपर 'रि' का आदेश होता है। ऐसा तात्पर्य समझना।

सदृक् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सरि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि' और १-११ से 'क्' का लोप होकर *सरि* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्णः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वण्णो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृक्-रूपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरिक्खो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरिक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृक्-बन्दीनाम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरि बन्दीणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; बन्दीनाम् का मूल शब्द 'बन्दिन्' (चारण-गायक) (न कि बन्दी याने कैदी) होने से सूत्र संख्या १-११ से 'न्' का लोप; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन के प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-१२ से प्राप्त 'ण' के पूर्व ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति; और १-२७ से प्राप्त 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *सरि-बन्दीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सरिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सरिच्छो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४४ में की गई है।

एतादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप एआरिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' और 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एआरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भवारिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भवारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

यादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जारिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज्'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तारिसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

केरिसो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १०५ में की गई है।

एरिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १०५ की गई है।

अन्यादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अन्नारिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'न' का द्वित्व 'न्न्'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अन्नारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्मादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अम्हारिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से 'स्म्' के स्थान पर 'म्ह्' का आदेश; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अम्हारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

युष्मादृशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तुम्हारिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२४६ से 'य्' के स्थान पर 'त्' का आदेश २-७४ से 'ष्म्' के स्थान पर 'म्ह्' का आदेश; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१४२ से 'ऋ' की 'रि'; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तुम्हारिसो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १४२॥

आदृते ढिः ॥ १-१४३ ॥

आदृत शब्दे ऋतो ढिरादेशो भवति ॥ आढिओ ॥

अर्थः—आदृत शब्द में रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'ढि' आदेश होता है। जैसे—आदृतः का आढिओ ॥

आदृतः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप आढिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द् का लोप १-१४३ से 'ऋ' की 'ढि'; १-१७७ से त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आढिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१४३॥

अरिर्दृप्ते ॥ १-१४४ ॥

दृप्त शब्दे ऋतो रिरादेशो भवति ॥ दरिओ । दरिअ-सीहेण ॥

अर्थः—दृप्त शब्द में रही हुई 'ऋ' के स्थान पर 'अरि' आदेश होता है।

दृप्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप दरिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४४ से 'ऋ' के स्थान पर 'अरि' का आदेश; २-७७ से 'प्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *दरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

दृप्त–सिंहेन संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दरिअ–सीहेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४४ से ऋ के स्थान पर 'अरि' का आदेश; २-७७ से 'प्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-९२ से ह्रस्व 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२९ से अनुस्वार का लोप; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की आदेश रूप से प्राप्ति; और ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'ह' के 'अ' को 'ए' होकर *'दरिअ–सीहेण'* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १४४ ॥

लृत इलिः क्लृप्त-क्लृन्ने ॥ १-१४५ ॥

अनयोर्ऌत इलिरादेशो भवति ॥ किलित्त–कुसुमोवयारेसु ॥ धारा किलिन्न-वत्तं ॥

अर्थः—क्लृप्त और क्लृन्न इन दोनों शब्दों में रही हुई 'लृ' के स्थान पर 'इलि' का आदेश होता है। जैसे–क्लृप्त–कुसुमोपचारेषु=किलित्त–कुसुमोवयारेसु ॥ धारा–क्लृन्न–पात्रम्=धारा–किलिन्न–वत्तं ॥

क्लृप्त–कुसुमोपचारेषु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किलित्त-कुसुमोवयारेसु होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४५ से 'लृ' के स्थान पर 'इलि' का आदेश; २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-२३१ से 'प' का; 'व' १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से शेष 'आ' का 'या'; १-२६० से 'ष्' का 'स्' और ३-१५ से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त 'सु' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'र' के 'अ' का 'ए' होकर *किलित्त–कुसुमोवयारेसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

धारा-क्लृन्न–पात्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धारा–किलिन्न–वत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४५ से 'लृ' के स्थान पर 'इलि' का आदेश; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; १-८४ से 'आ' का 'अ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त' ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *धारा-किलिन्न–वत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १४५ ॥

एत इद्वा वेदना-चपेटा-देवर-केसरे ॥ १-१४६ ॥

वेदनादिषु एत इत्वं वा भवति ॥ विअणा वेअणा। चविडा। विअडचवेडा विणोआ। दिअरो देवरो ॥ मह महिअ दसण-किसरं। केसरं ॥ महिला महेला इति तु महिला महेलाभ्यां शब्दाभ्यां सिद्धम् ॥

अर्थः—वेदना, चपेटा, देवर, और केसर; इन शब्दों में रही हुई 'ए' की विकल्प से 'इ' होती है। जैसे-वेदना=विअणा और वेअणा ॥ चपेटा=चविडा ॥ विकट-चपेटा-विनोदा-=विअड-चवेडा-

विणोआ ॥ देवरः=दिअरो और देवरो ॥ मह महित-दशन केसरम्=मह महिअ-दसण-किसरं ॥ अथवा केसरं ॥ महिला और महेला इन दोनों शब्दों की सिद्धि क्रम से महिला और महेला शब्दों से ही जानना। इसका तात्पर्य यह है कि 'महेला' शब्द में रही हुई 'ए' की 'इ' नहीं होती है। दोनों ही शब्दों की सत्ता पारस्परिक रूप से स्वतंत्र ही है।

वेदना संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विअणा और वेअणा होते हैं। इसमें सूत्र संख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर क्रम से *विअणा* और *वेअणा* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चपेटा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चविडा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ'; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; और १-१९५ से 'ट्' का 'ड्' होकर *चविडा* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकट-चपेटा-विनोदा संस्कृत रूप हैं। इसका प्राकृत-रूप विअड-चवेडा-विणोआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१९५ से 'ट्' का 'ड्'; १-२३१ से 'प्' का 'व्'; १-१९५ से 'ट्' का 'ड्'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर *विअड-चवेडा-विणोआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दिअरो और देवरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ'; १-१७७ से 'व्' का विकल्प से लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *दिअरो* और *देवरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

मह महित संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मह महिअ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *मह महिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

दशन संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप दसण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *दसण* रूप सिद्ध हो जाता है।

केसरम् संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप किसरं और केसरं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१४६ से 'ए' की विकल्प से 'इ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *किसरं* और *केसरं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

महिला संस्कृत शब्द है और इसका प्राकृत रूप भी *महिला* ही होता है। इसी प्रकार से *महेला* भी संस्कृत शब्द है और इसका प्राकृत रूप भी *महेला* होता है। अतएव इन शब्दों में 'ए' का 'इ' होना आवश्यक नहीं है। ॥ १४६ ॥

ऊः स्तेने वा ॥ १-१४७ ॥

स्तेने एत ऊद् वा भवति ॥ थूणो थेणो ।

अर्थः—'स्तेन' शब्द में रहे हुए 'ए' का विकल्प से 'ऊ' होता है। जैसे-स्तेनः=थूणो और थेणो ॥

स्तेनः संस्कृत पुल्लिग रूप है। इसके प्राकृत रूप थूणो और थेणो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-४५ से 'स्त' का 'थ'; १-१४७ से 'ए' का विकल्प से 'ऊ'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *थूणो* और *थेणो* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १४७ ॥

ऐत एत् ॥ १-१४८ ॥

ऐकारस्यादौ वर्तमानस्य एत्वं भवति ॥ सेला। तेलोक्कं। एरावणो। केलासो। वेज्जो। केढवो। वेहव्वं ॥

अर्थः—यदि संस्कृत शब्द में आदि में 'ऐ' हो तो प्राकृत रूपान्तर में उस 'ऐ' का 'ए' हो जाता है। जैसे-शैलाः=सेला। त्रैलोक्यम्=तेलोक्कं। ऐरावणः=एरावणो। कैलासः=केलासो। वैद्यः=वेज्जो। कैटभः=केढवो। वैधव्यम्=वेहव्वं ॥ इत्यादि ॥

शैलाः का प्राकृत रूप सेला होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; ३-४ प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप, और ३-१२ से 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का 'आ' होकर *सेला* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रैलोक्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तेलोक्कं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' का द्वित्व 'क्क'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तेलोक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऐरावणः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एरावणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एरावणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कैलासः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप केलासो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *केलासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैद्य: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; २-२४ से 'द्य' का 'ज'; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कैटभ: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप केढवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; १-१९६ से 'ट' का 'ढ'; १-२४० से 'भ' का 'व'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *केढवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैधव्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेहव्वं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; १-१८७ से 'ध' का 'ह'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'व' का द्वित्व 'व्व'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वेहव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १४८ ॥

इत्सैन्धव-शनैश्चरे ॥ १-१४९ ॥

एतयोरैत इत्वं भवति ॥ सिन्धवं । सणिच्छरो ॥

अर्थ:—सैन्धव और शनैश्चर इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ऐ' की 'इ' होती है। जैसे—सैन्धवम् = सिन्धवं और शनैश्चरः = सणिच्छरो ॥

सैन्धवम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप सिन्धवं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४९ से 'ऐ' की 'इ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सिन्धवं* रूप सिद्ध जाता है।

शनैश्चरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सणिच्छरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१४९ से 'ऐ' की 'इ'; २-२१ से 'श्च' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छछ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' का 'च्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सणिच्छरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ ४९ ॥

सैन्ये वा ॥ १-१५० ॥

सैन्य शब्दे ऐत इद् वा भवति ॥ सिन्नं सेन्नं ॥

अर्थ:—सैन्य शब्द में रही हुई 'ऐ' की विकल्प से 'इ' होती है। जैसे—सैन्यम् = सिन्नं ॥

सैन्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिन्नं और सेन्नं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१५० से 'ऐ' की विकल्प से 'इ' और १-१४८ से 'ऐ' की 'ए'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व

'न्न'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *सिन्नं* और *सेन्नं* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१५०॥

अइर्दैत्यादौ च ॥ १-१५१ ॥

सैन्य शब्दे दैत्य इत्येवमादिषु च ऐतो अइ इत्यादेशो भवति। एत्वापवादः॥ सइन्नं। दइच्चो। दइन्नं। अइसरिअं। भइरवो। वइजवणो। दइवअं। वइआलीअं। वइएसो वइएहो। वइदब्भो। वइस्साणरो। कइअवं। वइसाहो। वइसालो। सइरं। चइत्तं॥ दैत्य। दैन्य। ऐश्वर्य। भैरव। वैजवन। दैवत। वैतालीय। वैदेश। वैदेह। वैदर्भ। वैश्वानर। कैतव। वैशाख। वैशाल। स्वैर। चैत्य। इत्यादि। विश्लेषे न भवति। चैत्यम्। चेइअं॥ आर्षे। चैत्य वन्दनम्। ची-वन्दणं॥

अर्थः—सैन्य शब्द में और दैत्य, दैन्य, ऐश्वर्य, भैरव, वैजवन, दैवत, वैतालीय, वैदेह, वैदर्भ, वैश्वानर, कैतव, वैशाख, वैशाल, स्वैर, चैत्य इत्यादि शब्दों में रहे हुए 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' ऐसा आदेश होता है। यह सूत्र सूत्रसंख्या १-१४८ का अपवाद है। जैसे-सैन्यम् = सइन्नं। दैत्यः = दइच्चो। दैन्यम् = दइन्नं। ऐश्वर्यम् = अइसरिअं। भैरवः = भइरवो। वैजवनः = वइजवणो। दैवतम् = दइवअं। वैतालीयम् = वइआलीअं। वैदेशः = वइएसो। वैदेहः = वइएहो। वैदर्भः = वइदब्भो। वैश्वानरः = वइस्साणरो। कैतवम् = कइअवं। वैशाखः = वइसाहो। वैशालः = वइसालो। स्वैरम् = सइरं। चैत्यम् = चइत्तं। इत्यादि॥ जिस शब्द में संधि-विच्छेद करके शब्द को स्वरसंयुक्त कर दिया जाय; तो उस शब्द में रहे हुए 'ऐ' की 'अइ' नहीं होती है। जैसे-चैत्यम् = चेइअं॥ यहाँ पर "चैत्यम्" शब्द में संधि-विच्छेद करके 'चेतियम्' बना दिया गया है; इसलिये 'चैत्यम्' में रहे हुए 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' आदेश नहीं करके सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' ही किया गया है। आर्ष-प्राकृत में 'चैत्य-वन्दनम्' का 'ची-वन्दणं' भी होता है॥

सैन्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सइन्नं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व 'न्न'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सइन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दैत्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दइच्चो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-१३ से 'त्य' का 'च'; २-८९ से प्राप्त 'च' का द्वित्व 'च्च'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दइच्चो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दैन्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दइन्नं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व 'न्न'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दइन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ऐश्वर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अइसरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर "अइ" का आदेश; २-७९ से "व्" का लोप; १-२६० से शेष "श" का "स"; २-१०७ से "र्" में "इ" का आगम; १-१७७ से "य्" का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर *अइसरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। *भैरवः* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भइरवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर "अइ" का आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भइरवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैजवनः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वइजवणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर "अइ" का आदेश; १-२२८ से "न" का "ण"; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइजवणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दैवतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दइवअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५१ से "ऐ" के स्थान पर "अइ" का आदेश; १-१७७ से "त्" का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर *दइवअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैतालीयम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइआलीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; १-१७७ से 'त्' और 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वइआलीअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैदेशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वइएसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइएसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैदेहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइएहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; १-१७७ से 'द्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइएहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैदर्भः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइदब्भो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'भ' का द्वित्व 'भ्भ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' का 'ब्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइदब्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैश्वानरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइस्साणरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७९ से 'व्' लोप, १-२६० से 'श' का 'स'; २-८९ से प्राप्त 'स' का द्वित्व 'स्स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइस्साणरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कैतवम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कइअवं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कइअवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैशाखः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वइसाहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; १-२६० से 'श' का 'स'; १-१८७ से 'ख' का 'ह'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइसाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैशालः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वइसालो होता है इसमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; १-२६० से 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइसालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वैरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सइरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर "*सइरं*" रूप सिद्ध हो जाता है।

चैत्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चइत्तं और चेइअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का आदेश; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *चइत्तं* प्रथम रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (चेइअं) में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' की 'ए'; २-१०७ से 'य्' के पूर्व में 'इ' का आगम; १-१७७ से म् और 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर चेइअं भी सिद्ध हो जाता है।

चैत्य वन्दनम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में ची-वन्दणं रूप भी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५१ की वृत्ति से आर्ष-दृष्टि से 'चैत्य' के स्थान पर 'ची' का आदेश; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर ची-वन्दणं आर्ष-रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१५१॥

वैरादौ वा ॥ १-१५२ ॥

वैरादिषु ऐतः अइरादेशो वा भवति ॥ वइरं वेरं । कइलासो केलासो । कइरवं केरवं । वइसवणो वेसवणो । वइसम्पायणो वेसम्पायणो । वइआलिओ वेआलिओ । वइसिअं वेसिअं । चइत्तो चेत्तो ॥ वैर । कैलास । कैरव । वैश्रवण । वैशम्पायन । वैतालिक । वैशिक । चैत्र । इत्यादि ॥

अर्थः—वैर, कैलास, कैरव, वैश्रवण, वैशम्पायन, वैतालिक, वैशिक और चैत्र इत्यादि शब्दों में रही हुई 'ऐ' के स्थान पर विकल्प से 'अइ' आदेश भी होता है। आदेश के अभाव में शब्द के द्वितीय रूप में 'ऐ' के स्थान पर 'ए' भी होता है। जैसे—वैरम्=वइरं और वेरं। कैलासः=कइलासो और केलासो। कैरवम्=कइरवं और केरवं। वैश्रवणः=वइसवणो और वेसवणो। वैशम्पायनः=वइसम्पायणो और वेसम्पायणो। वैतालिकः=वइआलिओ और वेआलिओ। वैशिकम्=वइसिअं और वेसिअं। चैत्रः=चइत्तो और चेत्तो॥ इत्यादि॥

वइरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

वैरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' का 'ए'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वेरं रूप सिद्ध हो जाता है।

कैलासः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कइलासो और केलासो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कइलासो रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप केलासो की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४८ में की गई है।

कैरवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कइरवं और केरवं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप "*कइरवं*" सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप केरवं में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप केरवं सिद्ध हो जाता है।

वैश्रवणः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइसवणो और वेसवणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन से पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वइसवणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वेसवणो में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष सिद्धि उपरोक्त वइसवणो के अनुसार होकर *वेसवणो* भी सिद्ध हो जाता है।

वैशम्पायनः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइसम्पायणो और वेसम्पायणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण', और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वइसम्पायणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वेसम्पायणो में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *वेसम्पायणो* रूप सिद्ध हुआ। शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना।

वैतालिकः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप वइआलिओ और वेआलिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश, १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वइआलिओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वेआलिओ में सूत्र-संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष-सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *वेआलिओ* रूप सिद्ध हुआ।

वैशिकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइसिअं और वेसिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' का आदेश; १-२६० से 'श्' का 'स्'; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान

पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप वइसिअं सिद्ध हो जाता है

द्वितीय रूप (वेसिअं) में सूत्र-संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष-सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों वेसिअं रूप सिद्ध हो जाता है।

चैत्रः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चइत्तो और चेत्तो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५२ से 'ऐ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अइ' की प्राप्ति; २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप चइत्तो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (चेत्तो) में सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और शेष-सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों चेत्तो रूप सिद्ध हुआ ॥ १-१५२ ॥

एच्च दैवे ॥ १-१५३ ॥

दैव शब्दे ऐत एत् अइश्चादेशो भवति ॥ देव्वं दइव्वं दइवं ॥

अर्थः—'दैव' शब्द में रही हुई 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और 'अइ' का आदेश हुआ करता है। जैसे—दैवम् = देव्वं और दइव्वं। इसी प्रकार से दैवम् = दइवं ॥

दैवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप देव्वं; दइव्वं और दइवं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१५३ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-९९ से 'व' को विकल्प रूप से द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप देव्वं रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप दइव्वं में सूत्र संख्या १-१५३ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों दइव्वं रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप दइवं में सूत्र संख्या १-१५३ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दइवं रूप भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१५३॥

उच्चैर्नीचैस्यअः ॥ १-१५४ ॥

अनयोरैतः अअ इत्यादेशो भवति। उच्चअं। नीचअं। उच्चनीचाभ्याम् के सिद्धम्। उच्चैर्नीचैसोस्तु रूपान्तर निवृत्यर्थं वचनम् ॥

अर्थः—उच्चैः और नीचैः इन दोनों शब्दों में रही हुई 'ऐ' के स्थान पर 'अअ' का आदेश होता है। जैसे-उच्चैः=उच्चअं और नीचैः=नीचअं ॥ उच्चैः और नीचैः शब्दों की सिद्धि कैसे होती है? इस प्रश्न के दृष्टि कोण से ही यह बतलाना है कि इन दोनों शब्दों के अन्य रूप नहीं होते हैं; क्यों कि ये अव्यय हैं अतः अन्य विभक्तियों में इन के रूप नहीं बनते हैं।

उच्चैस् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप उच्चअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५४ से 'ऐ' के स्थान पर 'अअ' का आदेश १-२४ की वृत्ति से 'स्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उच्चअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीचैस् संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप नीचअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५४ से 'ऐ' के स्थान पर 'अअ' का आदेश; १-२४ की वृत्ति से 'स्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नीचअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईद्धैर्ये ॥ १-१५५ ॥

धैर्य शब्दे ऐत ईद् भवति ॥ धीरं हरइ विसाओ ॥

अर्थः—धैर्य शब्द में रही हुई 'ऐ' की 'ई' होती है। जैसे-धैर्यं हरति विषादः=धीरं हरइ विसाओ ॥

धैर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धीरं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५५ से 'ऐ' की 'ई'; २-६४ से 'र्य' का विकल्प से 'र'; ३-५ से द्वितीय विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'अम्' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *धीरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हरति संस्कृत सकर्मक क्रिया है। इसका प्राकृत रूप हरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१३९ से वर्तमान-काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हरइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विषादः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष्' का 'स्'; १-१७७ से 'द्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-१५५ ॥

ओतोद्वान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य-शिरोवेदना-मनोहर-सरोरुहेक्तोश्च वः ॥ १-१५६ ॥

एषु ओतोत्त्वं वा भवति तत्संनियोगे च यथा संभवं ककार तकारयोर्वादेशः ॥ अन्नुन्नं

अन्नुन्नं । पवट्ठो पउट्ठो । आवज्जं आउज्जं । सिर विअणा सिरो-विअणा । मणहरं मणोहरं । सररुहं सरोरुहं ॥

अर्थः-अन्योन्य, प्रकोष्ठ, आतोद्य, शिरोवेदना, मनोहर और सरोरुह में रहे हुए 'ओ' का विकल्प से 'अ' हुआ करता है; और 'अ' होने की दशा में यदि प्राप्त हुए उस 'अ' के साथ 'क्' वर्ण अथवा 'त्' वर्ण जुड़ा हुआ हो तो उस 'क्' अथवा उस 'त्' के स्थान पर 'व्' वर्ण का आदेश हो जाया करता है जैसे-अन्योन्यम्=अन्नन्नं अथवा अन्नुन्नं। प्रकोष्ठः=पवट्ठो और पउट्ठो। आतोद्यं=आवज्जं और आउज्जं। शिरोवेदना=सिर-विअणा और सिरो-विअणा। मनोहरम्=मणहरं और मणोहरं। सरोरुहम्=सर-रुहं और सरोरुहं ॥

अन्योन्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्नन्नं और अन्नुन्नं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७८ से दोनों 'य्' का लोप; २-८९ से शेष दोनों 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; १-१५६ से 'ओ' का विकल्प से 'अ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *अन्नन्नं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (अन्नुन्नं) में सूत्र-संख्या १-१५६ के अभाव में वैकल्पिक-पक्ष होने से १-८४ से "ओ" के स्थान पर "अ" नहीं होकर "ओ" को "उ" की प्राप्ति; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *अन्नुन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रकोष्ठः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पवट्ठो और पउट्ठो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से "र्" का लोप; १-१५६ से "ओ" का "अ"; १-१५६ से ही "क्" को "व्" की प्राप्ति; २-३४ से "ष्ठ" का "ठ"; २-८९ से प्राप्त "ठ" को द्वित्व "ठ्ठ" की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व "ठ्" को "ट्" की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पवट्ठो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (पउट्ठो) में सूत्र-संख्या १-१५६ के अभाव में वैकल्पिक पक्ष होने से १-८४ से "ओ" को "उ" की प्राप्ति; १-१७७ से "क्" का लोप, और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *पउट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आतोद्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आवज्जं और आउज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५६ से "ओ" को "अ" की प्राप्ति और इसी सूत्र से "त्" के स्थान पर "व्" का आदेश; २-२४ से "द्य" को "ज" की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त "ज" को द्वित्व "ज्ज" की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर प्रथम रूप आवज्जं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (आउज्जं) में सूत्र-संख्या १-१५६ के अभाव में वैकल्पिक पक्ष होने से १-८४ से "ओ" को "उ" की प्राप्ति; १-१७७ से "त्" का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। यों *आउज्जं* सिद्ध हुआ।

शिरोवेदना संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिरविअणा और सिरोविअणा होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५६ से वैकल्पिक रूप से "ओ" को "अ" की प्राप्ति; १-२६० से "श" का "स"; १-१४६ से "ए" को "इ" की प्राप्ति; १-१७७ से "द्" का लोप; १-२२८ से "न" का "ण"; संस्कृत-विधान से स्त्रीलिंग में प्रथमा-विभक्ति के एक वचन में "सि" प्रत्यय की प्राप्ति; इस "सि" में स्थित "इ" की इत् संज्ञा और सूत्र-संख्या १-११ से शेष "स्" का लोप होकर *सिरविअणा* और *सिरोविअणा* दोनों ही रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

मनोहरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मणहरं और मणोहरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५६ से वैकल्पिक रूप से "ओ" को "अ" की प्राप्ति; १-२२८ से "न" का "ण"; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *मणहरं* और *मणोहरं* सिद्ध हो जाते हैं।

सरोरुहम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सररुहं और सरोरुहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१५६ से वैकल्पिक रूप से "ओ" को "अ" की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *सररुहं* और *सरोरुहं* सिद्ध हो जाते हैं। ॥१-१५६॥

ऊत्सोच्छ्वासे ॥१-१५७॥

सोच्छ्वास शब्दे ओत ऊद् भवति ॥ सोच्छ्वासः । सूसासो ।

अर्थः—सोच्छ्वास शब्द में रहे हुए "ओ" को "ऊ" की प्राप्ति होती है। जैसे-सोच्छ्वासः= सूसासो ॥

सोच्छ्वासः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सूसासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५७ से "ओ" को "ऊ" की प्राप्ति; "च्छ्वा" शब्दांश का निर्माण संस्कृत-व्याकरण की संधि के नियमों के अनुसार "श्वा" शब्दांश से हुआ है; अतः २-७६ से "श्" का लोप, १-२६० से "श" का "स"; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सूसासो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१५७॥

गव्यउ-आअः ॥१-१५८॥

गो शब्दे ओतः अउ आअ इत्यादेशौ भवतः ॥ गउओ । गउआ । गाओ । हरस्स एसा गाई ॥

अर्थः—गो शब्द में रहे हुए "ओ" के स्थान पर क्रम से "अउ" और "आअ" का आदेश हुआ करता है। जैसे-गवयः=गउओ और गउआ तथा गाओ॥ हरस्य एषा गौः=हरस्स एसा गाई॥ गउओ और गउआ इन दोनों शब्द-रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५४ में की गई है।

गौः संस्कृत रूप (गो+सि) है। इसका प्राकृत रूप गाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५८ से 'ओ' के स्थान पर 'आअ' का आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हरस्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरस्स होता है। इसमें 'हर' मूल रूप के साथ सूत्र संख्या ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन का पुल्लिंग का 'स्स' प्रत्यय संयोजित होकर *हरस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एसा' सर्व नाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३३ में की गई है।

गौः संस्कृत (गो+सि) रूप है। इसका प्राकृत रूप गाई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५८ से 'ओ' के स्थान पर 'आअ' आदेश की प्राप्ति; ३-३१ से पुल्लिंग शब्द को स्त्रीलिंग में रूपान्तर करने पर 'अन्तिम-अ' के स्थान पर 'ई' की प्राप्ति; संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्-संज्ञा; और १-११ से शेष 'स्' का लोप; होकर *गाई* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१५८ ॥

औत ओत ॥ १-१५९ ॥

औकारस्यादेरोद् भवति ॥ कौमुदी कोमुई ॥ यौवनम् जोव्वणं ॥ कौस्तुभः कोत्थुहो ॥ कौशाम्बी कोसम्बी ॥ क्रौञ्चः कोञ्चो ॥ कौशिकः कोसिओ ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत शब्द के आदि में 'औ' रहा हुआ हो तो प्राकृत रूपान्तर में उस 'औ' का 'ओ' हो जाता है। जैसे-कौमुदी=कोमुई॥ यौवनम्=जोव्वणं॥ कौस्तुभः=कोत्थुहो॥ कौशाम्बी= कोसम्बी॥ क्रौञ्चः कोञ्चो॥ कौशिकः=कोसिओ॥ इत्यादि॥

कौमुदी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोमुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर *कोमुई* रूप सिद्ध हो जाता है।

यौवनं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जोव्वणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; १-२४५ से 'य' का 'ज'; २-९८ से 'व' का द्वित्व 'व्व'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जोव्वणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौस्तुभः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोत्थुहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; २-४५ से 'स्त' का 'थ'; २-८९ से प्राप्त 'थ' का द्वित्व थ्थ; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कोत्थुहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौशाम्बी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोसम्बी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; १-२६० से 'श' का 'स'; और १-८४ से 'आ' का 'अ' होकर *कोसम्बी* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्रौञ्चः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोञ्चो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; २-७९ से 'र्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कोञ्चो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौशिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोसिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कोसिओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१५९॥

उत्सौन्दर्यादौ ॥ १-१६० ॥

सौन्दर्यादिषु शब्देषु औत उद् भवति ॥ सुन्देरं सुन्दरिअं । मुञ्जायणो । सुण्डो । सुद्धोअणी । दुवारिओ । सुगन्धत्तणं । पुलोमी । सुवण्णिओ ॥ सौन्दर्य । मौञ्जायन । शौण्ड । शौद्धोदनि । दौवारिक । सौगन्ध्य । पौलोमी । सौवर्णिक ॥

अर्थः—सौन्दर्य; मौञ्जायन; शौण्ड; शौद्धोदनि; दौवारिक; सौगन्ध्य; पौलोमी; और सौवर्णिक इत्यादि शब्दों में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'उ' होता है। जैसे-सौन्दर्यम्=सुन्देरं और सुन्दरिअं; मौञ्जायनः=मुञ्जायणो; शौण्डः=सुण्डो; शौद्धोदनिः=सुद्धोअणी; दौवारिकः=दुवारिओ; सौगन्ध्यम्=सुगन्धत्तणं; पौलोमी=पुलोमी; और सौवर्णिकः=सुवण्णिओ ॥ इत्यादि ॥

सुन्देरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-५७ में की गई है।

सौन्दर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुन्दरिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-१०७ से 'र्य' के पूर्व में 'इ' का आगम; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुन्दरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मौञ्जायनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुञ्जायणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुञ्जायणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शौण्डः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुण्डो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुण्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शौद्धोदनिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुद्धोअणी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' का 'स्'; १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-२२८ से 'न्' का 'ण्'; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' होकर *सुद्धोअणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

दौवारिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दुवारिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुवारिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौगन्ध्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुगन्धत्तणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-१५४ से संस्कृत 'त्व' प्रत्यय वाचक 'य्' के स्थान पर 'त्तण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुगन्धत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पौलोमी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुलोमी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति होकर *पुलोमी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौवर्णिकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सुवण्णिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६० से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुवण्णिओ* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥ १-१६० ॥

कौक्षेयके वा ॥ १-१६१ ॥

कौक्षेयक शब्दे औत उद् वा भवति ॥ कुच्छेअयं । कोच्छेअयं ॥

अर्थः—कौक्षेयक शब्द में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति विकल्प से होती है। जैसे-कौक्षेयकम् = कुच्छेअयं और कोच्छेअयं ॥

कौक्षेयकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कुच्छेअयं और कोच्छेअयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१६१ से वैकल्पिक रूप से 'औ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-१७ से क्ष् के स्थान पर 'छ' का आदेश; २-८९ से प्राप्त 'छ' का द्वित्व 'छछ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' का 'च्'; १-१७७ से 'य्' और 'क्' का लोप; १-१८० से शेष अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'य्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *कुच्छेअयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कोच्छेअयं) में सूत्र संख्या १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना यों *कोच्छअयं* रूप सिद्ध हुआ ॥ १६१ ॥

अउः पौरादौ च ॥ १-१६२ ॥

कौक्षेयके पौरादिषु च औत अउरादेशो भवति ॥ कउच्छेअयं ॥ पौरः । पउरो । पउर-जणो ॥ कौरवः । कउरवो ॥ कौशलम् । कउसलं । पौरुषम् । पउरिसं ॥ सौधम् । सउहं ॥ गौडः । गउडो ॥ मौलिः । मउली ॥ मौनम् । मउणं ॥ सौराः । सउरा ॥ कौलाः । कउला ॥

अर्थः—कौक्षेयक; पौर-जन; कौरव; कौशल; पौरुष; सौध; गौड और कौल इत्यादि शब्दों में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश होता है। जैसे-कौक्षेयकम् = कउच्छेअयं; पौरः = पउरो; पौर-जनः = पउर-जणो; कौरवः = कउरवो; कौशलम् = कउसलं; पौरुषम् = पउरिसं; सौधम् = सउहं; गौडः = गउडो; मौलिः = मउली; मौनम् = मउणं; सौराः = सउरा और कौलाः = कउला इत्यादि ॥

कौक्षेयकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउच्छेअयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और शेष-सिद्धि सूत्र संख्या १-१६१ में लिखित नियमानुसार जानना। यों *कउच्छेअयं* रूप सिद्ध होता है।

पौरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पउरो होता है। इस में सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पौर-जनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पउर-जणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउर-जणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौरवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउरवो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कउरवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौशलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउसलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कउसलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पउरिसं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१११ में की गई है।

सौधम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सउहं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश; १-१८७ से 'ध' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सउहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गौडः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गउडो होता है। इस में सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गउडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मौलिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मउली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ 'ई' होकर *मउली* रूप सिद्ध हो जाता है।

मौनम् : संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मउणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' का आदेश; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मउणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सौराः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सउरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की आदेश प्राप्ति; ३-४० से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिंग में में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और उसका लोप; ३-१२ से प्राप्त और लुप्त जस् प्रत्यय की प्राप्ति के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'आ' होकर *सउरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कौलाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउला होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१६२ से 'औ' के स्थान पर 'अउ' की आदेश प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और उसका लोप; ३-१२ से प्राप्त और लुप्त जस् प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' का दीर्घ स्वर 'आ' होकर *कउला* रूप सिद्ध हो जाता है।

आच्च गौरवे ॥ १-१६३ ॥

गौरव शब्दे औत आत्वम् अउश्च भवति ॥ गारवं गउरवं ॥

अर्थः—गौरव शब्द में रहे हुए 'औ' के स्थान पर क्रम से 'आ' अथवा 'अउ' की प्राप्ति होती है। जैसे-गौरवम् = गारवं और गउरवं ॥

गौरवम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गारवं और गउरवं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१६३ से क्रमिक पक्ष होने से 'औ' के स्थानपर 'आ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गारवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (गउरवं) में सूत्र संख्या १-१६३ से ही क्रमिक पक्ष होने से 'औ' के स्थानपर 'अउ' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। इस प्रकार द्वितीय रूप गउरवं भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१६३॥

नाव्यावः ॥ १-१६४ ॥

नौ शब्दे औत आवादेशो भवति ॥ नावा ॥

अर्थः—नौ शब्द में रहे हुए 'औ' के स्थान पर 'आव' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे-नौ = नावा ॥

नौ संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नावा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६४ से 'औ' के स्थान पर 'आव' आदेश की प्राप्ति; ३-१५ स्त्री लिंग रूप-रचना में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति; संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष अन्त्य व्यञ्जन 'स्' का लोप; होकर *नावा* रूप सिद्ध हो जाता है।

एत् त्रयोदशादौ स्वरस्य सस्वर व्यञ्जनेन ॥ १-१६५ ॥

त्रयोदश इत्येवंप्रकारेषु संख्या शब्देषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वरेण व्यञ्जनेन सह एद् भवति ॥ तेरह । तेवीसा । तेतीसा ॥

अर्थः—त्रयोदश इत्यादि इस प्रकार के संख्या वाचक शब्दों में आदि में रहे हुए 'स्वर' का पर वर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ 'ए' हो जाता है। जैसे-त्रयोदश = तेरह, त्रयोविंशतिः = तेवीसा और त्रयस्त्रिंशत् = तेतीसा। ॥ इत्यादि ॥

त्रयोदश संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तेरह होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'त्र'

में स्थित 'र्' का लोप; १-१६५ से शेष 'त' में स्थित 'अ' का और 'यो' के लोप के साथ 'ए' की प्राप्ति; १-२१९ से 'द' के स्थान पर 'र' का आदेश; और १-२६२ से 'श' के स्थान पर 'ह' का आदेश होकर तेरह रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रयोविंशति संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप तेवीसा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-१६५ से शेष 'त' में स्थित 'अ' का और 'यो' के लोप के साथ 'ए' की प्राप्ति; १-२८ से अनुस्वार का लोप; १-९२ से ह्रस्व इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति और इसी सूत्र से 'ति' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-१२ से 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होने से अन्त्य 'अ' का 'आ'; और ३-४ से प्राप्त 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एवं इनका लोप हो जाने से *तेवीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रयस्त्रिंशत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तेत्तीसा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-१६५ से शेष 'त' में स्थित 'अ' का और 'य' के लोप के साथ 'ए' की प्राप्ति २-७७ से 'स्' का लोप; १-२८ से अनुस्वार का लोप; २-७९ से द्वितीय 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त्' को द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति; १-९२ से 'इ' की दीर्घ 'ई'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप; ३-१२ से 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होने से अन्त्य 'अ' का 'आ' और ३-४ से प्राप्त 'जस्' अथवा 'शस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एवं इनका लोप हो जाने से *तेत्तीसा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१६५ ॥

स्थविर-विचकिलायस्कारे ॥ १-१६६ ॥

एत् आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह एद् भवति ॥ थेरो वेइल्लं । मुद्ध-विअइल्ल-पसूण पुञ्जा इत्यपि दृश्यते । एक्कारो ॥

अर्थः—स्थविर, विचकिल और अयस्कार इत्यादि शब्दों में रहे हुए आदि स्वर को पर-वर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ 'ए' की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-स्थविरः=थेरो; विचकिलम्=वेइल्लं; अयस्कारः=एक्कारो ॥ मुग्ध-विचकिल-प्रसून-पुञ्जाः=मुद्ध-विअइल्ल-पसूण-पुञ्जा इत्यादि उदाहरणों में इस सूत्र का अपवाद भी अर्थात् "आदि स्वर को परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ 'ए' की प्राप्ति" का अभाव भी देखा जाता है।

स्थविरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप थेरो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-१६६ से 'थवि' का 'थे'; ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के साथ 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर थेरो रूप सिद्ध हो जाता है।

विचकिलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेइल्लं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६६ से

से 'विच' का 'वे'; १-१७७ से 'क्' का लोप; २-९८ से 'ल' का द्वित्व 'ल्ल'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वेइल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

मुग्ध संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मुद्ध होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' का द्वित्व 'ध्ध्'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' का 'द्' होकर *मुद्ध* रूप सिद्ध हो जाता है।

विचकिल संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप विअइल्ल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' और 'क्' का लोप; और २-९८ से 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *विअइल्ल* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रसून संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पसूण होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *पसूण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुञ्जाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुञ्जा होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और इसका लोप तथा ३-१२ से 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं इसके लोप होने से पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' का 'आ' होकर *पुञ्जा* रूप सिद्ध हो जाता है।

अयस्कारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एक्कारो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६६ से 'अय' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एक्कारो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-१६६॥

वा कदले ॥१-१६७॥

कदल शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वर-व्यञ्जनेन सह एद् वा भवति ॥ केलं कयलं । केली कयली ॥

अर्थः—कदल शब्द में रहे हुए आदि स्वर 'अ' को परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ वैकल्पिक रूप से 'ए' की प्राप्ति होती है। जैसे-कदलम् = केलं और कयलं ॥ कदली = केली और कयली ॥

कदलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप केलं और कयलं होता है। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१६७ से 'कद' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप केलं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कयलं) में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना। इस प्रकार *कयलं* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

कदली संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप केली और कयली होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१६७ से 'कद्' के स्थान पर 'के' की प्राप्ति; संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति; और प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत् संज्ञा; तथा १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर प्रथम रूप *केली* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कयली) में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' का 'य' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही जानना॥ इस प्रकार *कयली* रूप भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१६७॥

वेतः कर्णिकारे ॥१-१६८॥

कर्णिकारे इतः सस्वर व्यञ्जनेन सह एद् वा भवति ॥ कण्णेरो। कण्णिआरो ॥

अर्थः—कर्णिकार शब्द में रही हुई 'इ' के स्थान पर पर-वर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ वैकल्पिक रूप से 'ए' की प्राप्ति होती है। जैसे-कर्णिकारः=कण्णेरो और कण्णिआरो॥

कर्णिकारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कण्णेरो और कण्णिआरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-१६८ से वैकल्पिक रूप से 'इ' सहित 'का' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम *कण्णेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कण्णिआरो) में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कण्णिआरो* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

अयौ वैत् ॥१-१६९॥

अयि शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ऐद् वा भवति। ऐ बीहेमि। अइ उम्मत्तिए। वचनादैकारस्यापि प्राकृते प्रयोगः॥

अर्थः—'अयि' अव्यय संस्कृत शब्द में आदि स्वर 'अ' और परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन 'यि' के स्थान पर अर्थात् संपूर्ण 'अयि' अव्ययात्मक शब्द के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ऐ' की प्राप्ति होती है। जैसे-अयि! बिभेमि=ऐ बीहेमि॥ अयि! उन्मत्तिके=अइ उम्मत्तिए॥ इस सूत्र में 'अयि' अव्यय के स्थान पर 'ऐ' का आदेश किया गया है। यद्यपि प्राकृत भाषा में 'ऐ' स्वर नहीं होता है; फिर भी

इस अव्यय में सम्बोधन रूप वाक्य प्रयोग की स्थिति होने से प्राकृत भाषा में 'ऐ' स्वर का प्रयोग किया गया है ।।

अयि संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप ऐ और अइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१६९ से 'अयि' के स्थान पर 'ऐ' का आदेश; हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप होने से *अइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिभेमि संस्कृत क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप बीहेमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-५३ से 'भी' संस्कृत धातु के स्थान पर 'बीह' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से व्यञ्जनान्त धातु में पुरुष-बोधक प्रत्ययों की प्राप्ति के पूर्व में 'अ' की प्राप्ति; ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ए' का आदेश; और ३-१४१ से वर्त्तमानकाल में तृतीय-पुरुष के अथवा उत्तम पुरुष के एक वचन में 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बीहेमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

उन्मत्तिके संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उम्मत्तिए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'उन्-मत्तिके' संस्कृत मूल रूप होने से 'न्' का लोप; २-८९ से 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-१७७ से 'क्' का लोप; होकर उम्मत्तिए रूप सिद्ध हो जाता है ।। १-१६९ ।।

ओत्पूतर-बदर-नवमालिका-नवफलिका-पूगफले ।। १-१७० ।।

पूतरादिषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ओत् भवति ।। पोरो । बोरं । बोरी । नोमालिआ । नोहलिआ । पोप्फलं । पोप्फली ।।

अर्थः—पूतर; बदर; नवमालिका; नवफलिका और पूगफल इत्यादि शब्दों में रहे हुए आदि स्वर के साथ परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे:—पूतरः = पोरो; बदरम् = बोरं; बदरी = बोरी; नवमालिका = नोमालिआ; नवफलिका = नोहलिआ; पूगफलम् = पोप्फलं और पूगफली = पोप्फली ।।

पूतरः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप पोरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'ऊ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'त' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति अर्थात् 'पूत' के स्थान पर 'पो' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पोरो रूप सिद्ध हो जाता है।

बदरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बोरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'द' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; अर्थात् 'बद' के स्थान पर 'बो' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर बोरं रूप सिद्ध हो जाता है।

बदरी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बोरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती-स्वर सहित 'द' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; अर्थात 'बद' के स्थान पर 'बो' की प्राप्ति; संस्कृत विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति तथा प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा; और १-११ से शेष 'स्' प्रत्यय का लोप होकर *बोरी* रूप सिद्ध हो जाता है

नवमालिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नोमालिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; (अर्थात् 'नव' के स्थान पर 'नो' की प्राप्ति); १-१७७ से 'क्' का लोप; संस्कृत-विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति तथा प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष 'स्' प्रत्यय का लोप होकर नोमालिआ रूप सिद्ध हो जाता है। *नवफलिका* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नोहलिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७० से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; (अर्थात् 'नव' के स्थान पर 'नो' की प्राप्ति) १-२३६ से 'फ' का 'ह'; १-१७७ से 'क्' का लोप; संस्कृत-विधान से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति तथा प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष 'स्' प्रत्यय का लोप होकर *नोहलिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पूगफलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पोप्फलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७० से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'ग' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; (अर्थात् 'पूग' के स्थान पर 'पो' की प्राप्ति;) २-८९ से 'फ' का द्वित्व 'फ्फ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पोप्फलं रूप सिद्ध हो जाता है।

पूगफली संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पोप्फली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७० से आदि स्वर 'उ' सहित पर वर्ती स्वर सहित 'ग' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति; (अर्थात् 'पूग' के स्थान पर 'पो' की प्राप्ति;) २-८९ से 'फ' का द्वित्व 'फ्फ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; संस्कृत-विधान के अनुसार स्त्रीलिंग के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति; इस में 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से 'स्' का लोप होकर *पोप्फली* रूप सिद्ध हो जाता है।

न वा मयूख-लवण-चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार-कुतूहलोदूखलोलूखले ॥ १-१७१ ॥

मयूखादिषु आदेः स्वरस्य परेण सस्वर-व्यञ्जनेन सह ओद् वा भवति ॥ मोहो मऊहो । लोणं । इअ लवणुग्गमा । चोग्गुणो । चउग्गुणो । चोत्थो चउत्थो । चोत्थी चउत्थी ॥ चोद्दह ।

चउद्दह ॥ चोद्दसी चउद्दसी । चोव्वारो चउव्वारो । सोमालो सुकुमालो । कोहलं कोउहल्लं । तह मन्ने कोहलिए । ओहलो उऊहलो । ओक्खलं । उलूहलं ॥ मोरो मऊरो इति तु मोर-मयूर शब्दाभ्यां सिद्धम् ॥

अर्थः—मयूख; लवण; लवणोद्गमा, चतुर्गुण, चतुर्थ, चतुर्थी, चतुर्दश, चतुर्दशी, चतुर्वार, सुकुमार, कुतूहल, कुतूहलिका और उदूखल, इत्यादि शब्दों में रहे हुए आदि स्वर का परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के साथ विकल्प से 'ओ' होता है। जैसे-मयूखः = मोहो और मऊहो। लवणम् = लोणं और लवणं। चतुर्गुणः = चोग्गुणो और चउग्गुणो। चतुर्थः = चोत्थो और चउत्थो। चतुर्थी = चोत्थी और चउत्थी। चतुर्दशः = चोद्दहो और चउद्दहो। चतुर्दशी = चोद्दसी और चउद्दसी। चतुर्वारः = चोव्वारो और चउव्वारो। सुकुमारः = सोमालो और सुकुमालो। कुतूहलम् = कोहलं और कोउहल्लं। कुतूहलिके = कोहलिए और कुऊहलिए। उदूखलः = ओहलो और उऊहलो। उलूखलम् = ओक्खलं और उलूहलं। इत्यादि ॥ प्राकृत शब्द मोरो और मऊरो संस्कृत शब्द मोरः और मयूरः इन अलग अलग शब्दों से रूपान्तरित हुए हैं; अतः इन शब्दों में सूत्र संख्या १-१७१ का विधान नहीं होता है।

मयूखः संस्कृत शब्द है। इसके प्राकृत रूप मोहो और मऊहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'य' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अयू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' का 'ह'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मोहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मऊहो में वैकल्पिक-विधान होने से सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *मऊहो* भी सिद्ध हो जाता है।

लवणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लोणं और लवणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *लोणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप लवणं में वैकल्पिक-विधान होने से सूत्र संख्या १-१७१ की प्राप्ति का अभाव; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *लवणं* भी सिद्ध हो जाता है।

इति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप इअ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-९१ से 'ति' में स्थित 'इ' का 'अ'; और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *इअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लवणोद्गमाः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप लवणुग्गमा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'ओ' का 'उ'; २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; ३-२७ से स्त्री लिंग में प्रथमा-विभक्ति और द्वितीया-विभक्ति में 'जस्' और 'शस्' प्रत्ययों के स्थान पर वैकल्पिक-पक्ष में प्राप्त प्रत्ययों का लोप होकर *लवणुग्गमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

चतुर्गुणः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोग्गुणो और चउग्गुणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप चोग्गुणो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग्' को द्वित्व 'ग्ग्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोग्गुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउग्गुणो में वैकल्पिक-स्थिति होने से १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *चउग्गुणो* भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोत्थो और चउत्थो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *चोत्थो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउत्थो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *चउत्थो* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थी संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोत्थी और चउत्थी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'थ' को द्वित्व 'थ्थ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्' और ३-३१ से संस्कृत मूल-शब्द 'चतुर्थ' के प्राकृत रूप चोत्थ में स्त्रीलिंग वाचक स्थिति में 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोत्थी* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउत्थी में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्ध प्रथम रूप के समान ही होकर *चउत्थी* रूप भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्दश: संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोद्दहो और चउद्दहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप;

२-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द्' की प्राप्ति; १-२६२ से 'श' को 'ह' की 'प्राप्ति' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *चोद्दहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप 'चउद्दहो' में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *चउद्दहो* भी सिद्ध हो जाता है।

चतुर्दशी संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चोद्दसी और चउद्दसी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' का 'स्' और ३-३१ से संस्कृत के मूल-शब्द चतुर्दश के प्राकृत रूप चौद्दस में स्त्री लिंग वाचक स्थिति में 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *चोद्दसी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउद्दसी में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *चउद्दसी* भी सिद्ध हो जाता है।

चतर्वार: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चोव्वारो और चउव्वारो होते हैं। इसके प्रथम रूप चोव्वारो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अतु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पि रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'व्' को द्वित्व 'व्व्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोव्वारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप चउव्वारो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *चउव्वारो* भी सिद्ध हो जाता है।

सुकमार: संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सोमालो और सुकुमालो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सोमालो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'कु' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उकु' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' को 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सोमालो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सुकुमालो में सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' को 'ल' की प्राप्ति' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सुकुमालो* भी सिद्ध हो जाता है।

कुतूहलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कोहलं और कोउहल्लं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप कोहलं में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तू' व्यञ्जन

સરસ્વતિબ્હેન મફતલાલ

के स्थान पर अर्थात् 'उलू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप कोहलं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप कोउहल्लं की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

तह अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६७ में की गई है।

मन्ये संस्कृत क्रियापद है। इसका प्राकृत रूप मन्ने होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति होकर मन्ने रूप सिद्ध हो जाता है।

कुतूहलिके संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप कोहलिए और कुऊहलिए होवे हैं। इनमें से प्रथम रूप कोहलिए में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'तू' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उतू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-४१ से मूल संस्कृत शब्द कुतूहलिका के प्राकृत रूपान्तर कुऊहलिआ में स्थित अन्तिम 'आ' का संबोधन के एक वचन में 'ए' होकर प्रथम रूप कोहलिए सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप कुऊहलिए में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्ध प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप कुऊहलिए भी सिद्ध हो जाता है।

उदूखलः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओहलो और उऊहलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओहलो में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'दू' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उदू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप ओहलो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप उऊहलो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप उऊहलो भी सिद्ध हो जाता है।

उलूखलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओक्खलं और उलूहलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओक्खलं में सूत्र संख्या १-१७१ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'लू' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उलू' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप ओक्खलं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप उलूहलं में सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' को 'ह' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप उलूहलं भी सिद्ध हो जाता है।

मोरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मोरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'मोरो' रूप सिद्ध हो जाता है।

मयूरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मऊरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर मऊरो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १—१७१ ॥

अवापोते ॥ १-१७२ ॥

अवापयोरुपसर्गयोरुत इति विकल्पार्थ—निपाते च आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ओद् वा भवति। अव। ओअरइ। अवयरइ। ओआसो अवयासो ॥ अप। ओसरइ अवसरइ। ओसारिअं अवसारिअं ॥ उत। ओ वणं। ओ घणो। उअ वणं। उअ घणो ॥ क्वचिन्न भवति। अवगयं। अवसद्दो। उअ रवी ॥

अर्थः—'अव' और 'अप' उपसर्गों के तथा विकल्प—अर्थ सूचक 'उत' अव्यय के आदि स्वर सहित परवर्ती स्वर सहित व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अव', 'अप' और 'उत' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति होती है। जैसे—'अव' के उदाहरण इस प्रकार हैं :—अवतरति = ओअरइ और अवयरइ। अवकाशः = ओआसो और अवयासो। 'अप' उपसर्ग के उदाहरण इस प्रकार हैं:—अपसरति= ओसरइ और अवसरइ। अपसारितम् = ओसारिअं और अवसारिअं ॥ उत अव्यय के उदाहरण इस प्रकार हैं:—उतवनम् = ओ वणं। और उअ वणं। उतघनः = ओ घणो और उअ घणो ॥ किन्हीं कन्हीं शब्दों में 'अव' तथा 'अप' उपसर्गों के और 'उत' अव्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति नहीं हुआ करती है। जैसे अवगतम् = अवगयं। अपशब्दः = अवसद्दो। उत रविः = उअ रवी ॥

अवतरति संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसके प्राकृत रूप ओअरइ और अवयरइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओअरइ में सूत्र-संख्या १—१७२ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अव' के स्थान पर वैकलिपक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत—प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय के प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओअरइ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अवयरइ में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप अवयरइ भी सिद्ध हो जाता है।

अवकाशः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओआसो और अवयासो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओआसो में सूत्र संख्या १-१७२ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के

स्थान पर अर्थात् 'अव' उपसर्ग के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओआसो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *अवयासो* की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है। *अपसरति* संस्कृत अकर्मक क्रियापद है। इसके प्राकृत रूप ओसरइ और अवसरइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओसरइ में सूत्र संख्या १-१७२ से आदिस्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अप' उपसर्ग के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति और ३-१३६ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत-प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओसरइ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अवसरइ में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *अवसरइ* भी सिद्ध हो जाता है।

अपसारितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप ओसारिअं और अवसारिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ओसारिअं में सूत्र संख्या १-१७२ से आदि स्वर 'अ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'अप' उपसर्ग के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और १-११ से 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *ओसारिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अवसारिअं में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *अवसारिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

उतवनम् संस्कृत वाक्यांश है इसके प्राकृत रूप ओवणं और उअवणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप 'ओवणं' में सूत्र संख्या १-१७२ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'त' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उत' अव्यय के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; द्वितीय शब्द वणं में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण' और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप "*ओवणं*" सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप 'उअ वणं' में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप '*उअवणं*' भी सिद्ध हो जाता है।

'*उतघनः*' संस्कृत वाक्यांश है। इसके प्राकृत रूप 'ओ घणो' और 'उअघणो' होते हैं। इनमें से प्रथम रूप 'ओ घणो' में सूत्र-संख्या १-१७२ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'त' व्यञ्जन के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ओ' की प्राप्ति; द्वितीय शब्द 'घणो' में सूत्र-संख्या १—२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ओघणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप उअघणो में सूत्र संख्या १-१७७ से 'न्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *उअघणो* भी सिद्ध हो जाता है।

अवगतम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अवगयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर *अवगयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अप शब्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवसद्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; १-२६० से 'श' का 'स'; २-७९ से 'ब्' का लोप; २-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवसद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत रविः संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप उअरवी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप होकर उअ अव्यय रूप सिद्ध हो जाता है। रवी में सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्राकृत वाक्यांश *उअ रवी* सिद्ध हो जाता है॥ १-१७२॥

ऊच्चोपे ॥ १-१७३ ॥

उपशब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वर व्यञ्जनेन सह ऊत् ओच्चादेशौ वा भवतः॥
ऊहसिअं ओहसिअं उवहसिअं। ऊज्झाओ ओज्झाओ उवज्झाओ। ऊआसो ओआसो उववासो॥

अर्थः—'उप' शब्द में आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् संपूर्ण 'उप' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से और क्रम से 'ऊ' और 'ओ' आदेश हुआ करते हैं। तदनुसार 'उप' के प्रथम रूप में 'ऊ'; द्वितीय रूप में 'ओ' और तृतीय रूप में 'उव' क्रम से, वैकल्पिक रूप से और आदेश रूप से हुआ करते हैं। जैसे—उपहसितम् = ऊहसिअं, ओहसिअं और उवहसिअं। उपाध्यायः = ऊज्झाओ, ओज्झाओ और उवज्झाओ। उपवासः = ऊआसो, ओआसो और उववासो॥

उपहसितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ऊहसिअं, ओहसिअं और उवहसिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ऊहसिअं में सूत्र संख्या १-१७३ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उप' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ऊ' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *ऊहसिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ओहसिअं में सूत्र संख्या १-१७३ से वैकल्पिक रूप से 'उप' शब्दांश के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *ओहसिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप उवहसिअं में वैकल्पिक विधान की संगति होने से सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'र' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *उवहसिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

उपाध्याय: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ऊज्झाओ, ओज्झाओ और उवज्झाओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ऊज्झाओ में सूत्र संख्या १-१७३ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'उप' शब्दांश के स्थान पर वैकल्कि रूप से 'ऊ' आदेश की प्राप्ति; १-८४ 'पा' में स्थित 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; २-२६ से 'ध्य्' के स्थान पर 'झ' का आदेश; २-८९ से प्राप्त 'झ्' को द्वित्व झ्झ् की प्राप्ति, २९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्'; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्ययके स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ऊज्झाओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ओज्झाओ में सूत्र-संख्या १-१७३ से वैकल्पिक रूप से 'उप' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *ओज्झाओ* सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप उवज्झाओ में वैकल्पिक-विधान संगति होने से सूत्र-संख्या-१-२३१ 'प' का 'व' और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान होकर तृतीय रूप *उवज्झाओ* भी सिद्ध हो जाता है।

उपवास: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ऊआसो, ओवआसो और उववासो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप ऊआसो में सूत्र संख्या १-१७३ से आदि स्वर 'उ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'प' व्यञ्जन के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ऊ' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'व्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *ऊआसो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप ओआसो में सूत्र-संख्या १-१७३ से वैकल्पिक रूप से 'उप' के स्थान पर 'ओ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *ओआसो* भी सिद्ध हो जाता है

तृतीय रूप उववासो में वैकल्पिक-विधान की संगति होने से सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *उववासो* भी सिद्ध हो जाता है॥ १-१७३॥

उमो निषण्णे ॥ १-१७४ ॥

निषण्ण शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह उम आदेशो वा भवति ॥ णुमण्णो णिसण्णो ॥

अर्थ:—'निषण्ण' शब्द में स्थित आदि स्वर 'इ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'ष' व्यञ्जन के

स्थान पर अर्थात् 'इष' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उम' आदेश की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे–निषण्णः = णुमण्णो और णिसण्णो ॥

निषण्णः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप णुमण्णो और णिसण्णो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप णुमण्णो में सूत्र-संख्या १–२२८ से 'न्' का 'ण'; १-१७४ से आदि स्वर 'इ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'ष' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'इष' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उम' आदेश की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *णुमण्णो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप णिसण्णो में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण्'; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *णिसण्णो* भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१७४॥

प्रावरणे अङ्ग्वाऊ ॥ १-१७५ ॥

प्रावरण शब्दे आदेः स्वरस्य परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह अङ्गु आउ इत्येतावादेशौ वा भवतः ॥ पङ्गुरणं पाउरणं पावरणं ॥

अर्थः—प्रावरणम् शब्द में स्थित आदि स्वर 'आ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'आव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से और क्रम से 'अङ्गु' और 'आउ' आदेशों की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे-प्रावरणम्=पङ्गुरणं, पाउरणं और पावरणं ॥

प्रावरणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पङ्गुरणं, पाऊरणं और पावरणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप पङ्गुरणं में सूत्र संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; १-१७५ से आदि स्वर 'आ' सहित परवर्ती स्वर सहित 'व' व्यञ्जन के स्थान पर अर्थात् 'आव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'अङ्गु' आदेश की प्राप्ति; ३-२५से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *पङ्गुरणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप पाउरणं में सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; १-१७५ से 'आव' शब्दांश के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'आउ' आदेश की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पाउरण* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप पावरणं में सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *पावरणं* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१७५ ॥

स्वरादसंयुक्तस्यानादेः ॥१-१७६॥

अधिकारोयम्। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्भवतीति वेदितव्यम्॥

अर्थः-यह सूत्र अधिकार-वाचक सूत्र है। अर्थात् इस सूत्र की सीमा और परिधि आगे आने वाले अनेक सूत्रों से संबंधित है। तदनुसार आगे आने वाले सूत्रों में लोप और आदेश आदि प्रक्रियाओं का जो विधान किया जाने वाला है; उनके संबंध में यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि लोप और आदेश आदि प्रक्रियाओं से संबंध रखने वाले वे वर्ण किसी भी स्वर के पश्चात्वर्ती हो; असंयुक्त हो अर्थात् हलन्त न होकर स्वरान्त हों और आदि में भी स्थित न हों। स्वर से परवर्ती; असंयुक्त और अनादि ऐसे वर्णों के संबंध में ही आगे के सूत्रों द्वारा लोप और आदेश आदि प्रक्रियाओं की दृष्टि से विधान किया जाने वाला है। यही सूचना, संकेत और विधान इस सूत्र में किया गया है। अतः वृत्ति में इसको 'अधिकार-वाचक' सूत्र की संज्ञा प्रदान की गई है; जो कि ध्यान में रक्खी जानी चाहिये ॥१-१७६॥

क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लुक् ॥१-१७७॥

स्वरात्परेषामनादिभूतानामसंयुक्तानां क ग च ज त द प य वानां प्रायो लुग् भवति॥ क। तित्थयरो। लोओ। सयढं॥ ग। नओ। नयरं। मयङ्को॥ च। सई॥ कय-ग्गहो॥ ज। रययं। पयावई। गओ॥ त। विआणं। रसायलं। जई॥ द। गया। मयणो॥ प। रिऊ। सुउरिसो॥ य। दयालू। नयणं। विओओ॥ व। लायण्णं। विउहो। वलयाणलो॥ प्रायो ग्रहणात् क्वचिन्न भवति। सुकुसुमं। पयाग-जलं। सुगओ। अगरू। सचावं। विजणं। सुतारं। विदुरो। सपावं। समवाओ। देवो। दाणवो॥ स्वरादित्येव। संकरो। संगमो। नक्कंचरो। धणंजओ। विसंतवो। पुरंदरो। संवुडो। संवरो॥ असंयुक्तस्येत्येव। अक्को। वग्गो। अच्चो। वज्जं। धुत्तो। उद्दामो। विप्पो। कज्जं। सव्वं॥ क्वचित् संयुक्तस्यापि। नक्तंचरः = नक्कंचरो॥ अनादेरित्येव। कालो। गन्धो। चोरो। जारो। तरू। दवो। पावं। वण्णो॥ यकारस्य तु जत्वम् आदौ वक्ष्यते। समासे तु वाक्यविभक्त्यपेक्षया भिन्न-पदत्वमपि विवक्ष्यते। तेन तत्र यथादर्शनमुभयमपि भवति। सुहकरो सुहयरो। आगमिओ आयमिओ। जलचरो जलयरो। बहुतरो बहुअरो। सुहदो सुहओ। इत्यादि॥ क्वचिदादेरपि। स पुनः = स उण। स च = सो अ॥ चिह्नं = इन्धं॥ क्वचिच्चस्य जः। पिशाची। पिसाजी॥ एकत्वम् = एगत्तं। एकः = एगो॥ अमुकः = अमुगो॥ असुकः = असुगो॥ श्रावकः = सावगो॥ आकारः = आगारो॥ तीर्थंकरः = तित्थगरो॥ आकर्षः = आगरिसो॥ लोगस्सुज्जोअगरा इत्यादिषु तु व्यत्ययश्च (४-४४७) इत्येव कस्य गत्वम्॥ आर्षे अन्यदपि दृश्यते। आकुञ्चनं = आउण्टणं॥ अत्र चस्य टत्वम्॥

अर्थः—यदि किसी भी शब्द में स्वर के पश्चात् क; ग; च; ज; त; द; प; य और व अनादि रूप से-(याने आदि में नहीं) और असंयुक्त रूप से (याने हलन्त रूप से नहीं) रहे हुए हों तो उनका प्रायः अर्थात् बहुल करके लोप हो जाता है। जैसे-'क' के उदाहरणः—तीर्थंकरः = तित्थयरो। लोकः = लोओ। शकटम् = सयढं। 'ग' के उदाहरणः = नगः = नओ। नगरम्=नयरं। मृगांकः=मयङ्को॥ 'च' के उदाहरणः- शची=सई। कचग्रहः=कयग्गहो। 'ज' के उदाहरणः—रजतम्=रययं। प्रजापतिः=पयावई गजः=गओ। 'त' के उदाहरणः=वितानम्=विआणं। रसातलम्=रसायलं। यतिः=जई॥ 'द' के उदाहरणः-गदा=गया। मदनः=मयणो। 'प' के उदाहरणः—रिपुः=रिऊ। सुपुरुषः=सुउरिसो॥ 'य' के उदाहरणः-दयालुः=दयालू। नयनम्=नयणं। वियोगः=विओओ॥ 'व' के उदाहरणः=लावण्यम्=लायण्णं। विबुधः=विउहो। वडवानलः- वलयाणलो॥

'सूत्र में 'प्रायः' अव्यय का ग्रहण किया गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि बहुत करके लोप होता है; तदनुसार किन्हीं किन्हीं शब्दों में क, ग, च, ज, त, प, य और व का लोप नहीं भी होता है। जैसे-'क' का उदाहरणः-सुकुसुमं = सुकुसुमं 'ग' के उदाहरण प्रयाग जलम्=पयाग जलं। सुगतः=सुगओ। अगुरुः=अगुरू। 'च' का उदाहरणः-सचापम्=सचावं। 'ज' का उदाहरणः-व्यजनम्=विजणं। 'त' का उदाहरणः-सुतारम्=सुतारं। 'द' का उदाहरणः-विदुरः=विदुरो। 'प' का उदाहरणः-सपापम्=सपावं। 'व' के उदाहरणः-समवायः=समवाओ। देवः=देवो। और दानवः=दाणवो॥ इत्यादि॥

प्रश्न—'स्वर के पर वर्ती हों'-ऐसा क्यों कहा गया ?

उत्तरः—यदि 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व, स्वर के परवर्ती अर्थात् स्वर के बाद में रहे हुए नहीं हों तो उनका लोप नहीं होता है। जैसे-'क' का उदाहरणः—शंकरः=संकरो। 'ग' का उदाहरणः- संगमः=संगमो। 'च' का उदाहरणः = नक्तंचरः=नक्कंचरो। 'ज' का उदाहरणः—धनंजयः=धणंजओ। 'त' को उदाहरणः—द्विषंतपः=विसंतवो। 'द' का उदाहरणः—पुरंदरः=पुरंदरो। 'व' के उदाहरणः—संवृतः= संवुडो और संवरः=संवरो॥

प्रश्नः—'असंयुक्त' याने पूर्ण-(हलन्त नहीं)-ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः-यदि 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व' हलन्त हैं; याने स्वरान्त रूप से नहीं हैं और अन्य वर्ण में संयुक्त रूप से स्थित हैं; तो इनका लोप नहीं होता है। जैसे-'क' का उदाहरणः-अर्कः = अक्को। 'ग्' का उदाहरणः-वर्गः=वग्गो। 'च्' का उदाहरणः-अर्चः = अच्चो। 'ज्' का उदाहरणः- वज्रम् = वज्जं। 'त्' का उदाहरणः-धूर्तः = धुत्तो। 'द्' का उदाहरणः = उद्दामः = उद्दामो। 'प्' का उदाहरणः-विप्रः = विप्पो। य् का उदाहरणः-कार्यम् = कज्जं। और 'व्' का उदाहरणः-सर्वम् = सव्वं॥ इत्यादि॥ किन्हीं किन्हीं शब्दों में संयुक्त रूप से रहे हुए 'क्' 'ग्' आदि का लोप भी देखा जाता है। जैसे-नक्तं चरः=नक्कं चरो। यहां पर संयुक्त 'त्' का लोप हो गया है।

प्रश्न:—'अनादि रूप से रहे हुए हों' अर्थात् शब्द के आदि में नहीं रहे हुए हों; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:—यदि 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व' वर्ण किसी भी शब्द के आदि भाग में रहे हुए हों तो इन का लोप नहीं होता है। जैसे-'क' का उदाहरण:-काल:=कालो। 'ग' का उदाहरण:-गन्ध:=गन्धो। 'च' का उदाहरण:-चोर:=चोरो। 'ज' का उदाहरण:-जार:=जारो। 'त' का उदाहरण:-तरु:=तरू। 'द' का उदाहरण:-दव:=दवो। 'प' का उदाहरण:-पापम्=पावम्। 'व' का उदाहरण:-वर्ण:=वण्णो॥ इत्यादि॥

शब्द में आदि रूप से स्थित 'य' का उदाहरण इस कारण से नहीं दिया गया है कि शब्द के आदि में स्थित 'य' का 'ज' हुआ करता है। इसका उल्लेख आगे सूत्र संख्या १-२४५ में किया जायगा। समास गत शब्दों में वाक्य और विभक्ति की अपेक्षा से पदों की गणना अर्थात् शब्दों की मान्यता पृथक् पृथक् भी मानी जा सकती है; और इसी बात का समर्थन आगे भी किया जायगा; तदनुसार उन समास गत शब्दों में स्थित 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व' का लोप होता है और नहीं भी होता है। दोनों प्रकार की स्थिति देखी जाती है। जैसे-'क' का उदाहरण:-सुखकर:=सुहकरो अथवा सुहयरो। 'ग' का उदाहरण:-आगमिक:=आगमिओ अथवा आयमिओ। 'च' का उदाहरण' जलचर:=जलचरो अथवा जलयरो 'त' का उदाहरण बहुतर:=बहुतरो अथवा बहुअरो। 'द' का उदाहरण:-सुखद:=सुहदो अथवा सुहओ॥ इत्यादि॥

किन्हीं किन्हीं शब्दों में यदि 'क, ग, च, ज, त, द, प, य और व' आदि में स्थित हों तो भी उनका लोप होता हुआ देखा जाता है। जैसे-'प' का उदाहरण:-स पुन:=स उण॥ 'च' का उदाहरण:-स च=सो अ॥ चिह्नम्=इन्धं॥ इत्यादि॥

किसी किसी शब्द में 'च' का 'ज' होता हुआ भी पाया जाता है। जैसे—पिशाची=पिसाजी॥ किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति हो जाती है। जैसे—एकत्वम्=एगत्तं॥ एक:=एगो॥ अमुक:=अमुगो॥ असुक:=असुगो॥ श्रावक:=सावगो॥ आकार:=आगारो। तीर्थंकर:=तित्थगरो॥ आकर्ष:=आगरिसो॥ लोकस्य उद्योतकरा:=लोगस्स उज्जोअगरा॥ इत्यादि शब्दों में 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति होती हुई देखी जाती है। इसे व्यत्यय भी कहा जाता है। व्यत्यय का तात्पर्य है—वर्णों का परस्पर में एक के स्थान पर दूसरे की प्राप्ति हो जाना; जैसे—'क' के स्थान पर 'ग' का होना और 'ग' के स्थान पर 'क' का हो जाना। इसका विशेष वर्णन सूत्र-संख्या ४-४४७ में किया गया है। आर्ष प्राकृत में वर्णों का अव्यवस्थित परिवर्तन अथवा अव्यवस्थित वर्ण आदेश भी देखा जाता है। जैसे—आकुञ्चनम्=आउण्टणं॥ इस उदाहरण में 'च' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति हुई है। यों अन्य आर्ष-रूपों में भी समझ लेना चाहिये॥

तीर्थंकरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तित्थयरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ 'ई' को ह्रस्व 'इ'; २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'थ' का द्वित्व 'थ्थ'; २-६० से प्राप्त पूर्व 'थ्' का 'त्'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तित्थयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लोओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शकटम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सयढं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-१६६ से 'ट' को 'ढ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सयढं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नगरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नयरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नयरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मयङ्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३० में की गई है।

शची संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' को स; १-१७७ से 'च्' का लोप; और संस्कृत-विधान के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारांत स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति; इसमें अन्त्य 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर *सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

कचग्रहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कयग्गहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च' का लोप; १-१८० से 'अ' को 'य' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कयग्गहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रजतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रययं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से, 'ज्' और 'त्' का लोप; १-१८० से शेष दोनों 'अ' 'अ' के स्थान पर 'य' 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति

के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रययं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रजापतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पयावई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का का लोप; १-१७७ से 'ज्' और 'त्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'ज्' के अवशिष्ट 'आ' को 'या' की प्राप्ति; १-२३१ से द्वितीय 'प' को 'व' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *पयावई* रूप सिद्ध हो जाता है।

गजः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वितानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विआणं होता है। इस में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विआणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

रसातलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रसायलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रसायलं* सिद्ध हो जाता है।

यतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-१७७ से 'त' का लोप; ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *जई* रूप सिद्ध हो जाता है।

गदा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गया होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से शेष 'आ' को 'या' की प्राप्ति; संस्कृत विधान के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्री लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा और १-११ से शेष अन्त्य 'स्' का लोप होकर *गया* रूप सिद्ध हो जाता है।

मदनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मयणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मयणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रिपुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ का दीर्घ स्वर 'ऊ' होकर *रिऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुउरिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है। *दयालुः* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दयालू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप; १-१८० से शेष 'आ' को 'या' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *दयालू* रूप सिद्ध हो जाता है।

नयनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से द्वितीय 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वियोगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विओओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' और 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विओओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लावण्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लायण्णं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'व्' और 'य्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'व्' के अवशिष्ट 'अ' को 'य' की प्राप्ति; २-८९ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *लायण्णं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विबुधः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विउहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३७ से 'ब' को 'व' की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'व्' का लोप; १-१८७ से 'ध्' को 'ह्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विउहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वडवानलः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वलयाणलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०२ से 'ड' को 'ल' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'व्' का लोप; १-१८० से लुप्त द्वितीय 'व्' में से अवशिष्ट 'अ' को 'य्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वलयाणलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुकुसुमम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुकुसुमं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुकुसुमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

સરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ શાહ

प्रयाग जलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पयागजलं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *पयाग जलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुगतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सुगओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुगओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अगुरुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अगुरू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'उ' को दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति होकर *अगुरू* रूप सिद्ध हो जाता है।

सचापम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सचावं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' को 'व' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सचावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्यजनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विजणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-४६ से शेष 'व' में स्थित 'अ' को 'इ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विजणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुतारम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सुतारं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुतारं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विदुरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विदुरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विदुरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सपापम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सपावं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' को 'व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सपावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

समवायः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप समवाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समवाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप देवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दानवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दाणवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दाणवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शंकरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संकरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति; १-२५ से 'ङ' का अनुस्वार; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संकरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संगमः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संगमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संगमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नक्तंचरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नक्कंचरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'त्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' का द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नक्कंचरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनञ्जयः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धणंजओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति; १-२५ से 'ञ्' को अनुस्वार की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धणंजओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विषंतपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसंतवो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; १-२६० से 'ष' को 'स' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' को 'व' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसंतओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरंदरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरंदरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुरंदरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवृतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संवुडो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' को 'उ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' को 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक

वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संकुडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संवरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर संवरो रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्कः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अक्को होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*अक्को*' रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्गः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वग्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्चः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अच्चो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर '*अच्चो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्जम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वज्जं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार होकर *वज्जं* रूप सिद्ध हो जाता है।

धूर्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धुत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ 'ऊ' का ह्रस्व 'उ'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' का द्वित्व 'त्त' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्दामः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उद्दामो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उद्दामो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विप्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विप्पो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विप्पो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कार्यम् संस्कृत विशेष रूप है। इसका प्राकृत रूप कज्जं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से

दीर्घ 'आ' का ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति; २-२४ से 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कज्जं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सर्वम् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप सव्वं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नक्कंचरो रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

कालः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कालो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गन्धः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गन्धो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गन्धो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चोरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चोरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चोरो* रूप सिद्ध हो जाता है

जारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जारो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तरू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व 'उ' का दीर्घ 'ऊ' होकर *तरू* रूप सिद्ध हो जाता है।

दवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दवो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पापम् संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप पावं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' को 'व'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

षण्णो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४२ में की गई है।

सुखकरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुहकरो और सुहयरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सुहकरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सुहयरो में सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुहयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आगमिकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आगमिओ और आयमिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप आगमिओ में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आगमिओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप आयमिओ में सूत्र-संख्या १–१७७ की वृत्ति से वैकल्पिक-विधान के अनुसार 'ग्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *आयमिओ* भी सिद्ध हो जाता है।

जलचरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जलचरो और जलयरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप जलचरो में सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *जलचरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप जलयरो में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च' का लोप; १–१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *जलयरो* भी सिद्ध हो जाता है।

बहुतरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप बहुतरो और बहुअरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप बहुतरो में सूत्र-संख्या ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *बहुतरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप बहुअरो में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *बहुअरो* भी सिद्ध हो जाता है।

सुखदः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुहदो और सुहओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सुहदो में सूत्र-संख्या १–१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में

पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप सुवहो सिद्ध हो जाता है ।

द्वितीय रूप सुहओ में सूत्र-संख्या १-१८७से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप सुहओ सिद्ध हो जाता है ।

'स' संस्कृत सर्व नाम रूप है । इसके प्राकृत रूप सो और स होते हैं । इनमें सूत्र संख्या ३-३ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होने पर वैकल्पिक रूप से 'सो' और 'स' रूप सिद्ध होते हैं । उण अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६५ में की गई है ।

सो सर्व नाम की सिद्धि सूत्र संख्या १-९७ में की गई है ।

च संस्कृत संबंध वाचक अव्यय है । इसका प्राकृत रूप 'अ' होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप होकर 'अ' रूप सिद्ध हो जाता है ।

चिह्नम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप इन्धं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; २-५० से 'ह्न' के स्थान पर 'न्ध' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर इन्धं रूप सिद्ध हो जाता है ।

पिशाची संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप पिसाजी होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' का 'स्'; १-१७७ की वृत्ति से 'च' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति होकर पिसाजी रूप सिद्ध हो जाता है ।

एकत्वम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप एगत्तं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर एगत्तं रूप सिद्ध हो जाता है ।

एकः संस्कृत सर्व नाम रूप है । इसका प्राकृत रूप एगो होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर एगो रूप सिद्ध हो जाता है ।

अमुकः संस्कृत सर्व नाम है । इसका प्राकृत रूप अमुगो होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अमुगो रूप सिद्ध हो जाता है ।

असुकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप असुगो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से और ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *असुगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रावकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सावगो होता है। इसमें इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से शेष 'श्' का 'स्'; १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सावगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आगारो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आगारो* रूप सिद्ध होता है।

तीर्थकरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तित्थगरो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ 'ई' के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से शेष 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; १-२५ से अनुस्वार का लोप; १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तित्थगरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकर्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आगरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग, की प्राप्ति २-१०५ से 'र्ष' के पूर्व में 'इ' का आगम होकर 'र्' को 'रि' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आगरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोकस्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लोगस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से और ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति; और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में "ङस्' प्रत्यय के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोगस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्योतकराः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उज्जोअगरा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-२४ से 'द्य' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज्' का द्वित्व 'ज्ज्'; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान पर 'ग' की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति और उसका लोप एवं ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व 'अ' का दीर्घ 'आ' होकर *उज्जोअगरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकुञ्चनम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप आउण्टणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१७७ की वृत्ति से 'च' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; १-३० से 'ञ्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आउण्टणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १—१७७ ॥

यमुना-चामुण्डा-कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकश्च ॥ १—१७८ ॥

एषु मस्य लुग् भवति, लुकि च सति मस्य स्थाने अनुनासिको भवति ॥ जउँणा । चाउँण्डा । काउँओ । अणिउँतयं ॥ क्वचिन्न भवति । अइमुंतयं । अइमुत्तयं ॥

अर्थ—यमुना, चामुण्डा, कामुक और अतिमुक्तक शब्दों में स्थित 'म्' का लोप होता है और लुप्त हुए 'म्' के स्थान पर 'अनुनासिक' रूप की प्राप्ति होती है। जैसे-यमुना=जउँणा। चामुण्डा=चाउँण्डा। कामुकः=काउँओ। अतिमुक्तकम्=अणिउँतयं॥ कभी कभी 'म्' का लोप नहीं होता है और तदनुसार अनुनासिक की भी प्राप्ति नहीं होती है। जैसे—अतिमुक्तकम्=अइमुंतयं और अइमुत्तयं॥ इस उदाहरण में अनुनासिक के स्थान पर वैकल्पिक रूप से अनुस्वार की प्राप्ति हुई है।

जउँणा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४ में की गई है।

चामुण्डा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चाउँण्डा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७८ से 'म्' का लोप और इसी सूत्र से अनुनासिक की प्राप्ति होकर *चाउँण्डा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कामुकः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप काउँओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७८ से 'म्' का लोप और इसी सूत्र से शेष 'उ' पर अनुनासिक की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *काउँओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अणिउँतयं, अइमुंतयं और अइमुत्तयं रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-२६ में की गई है। ॥१-१७८॥

नावर्णात् पः ॥ १-१७९ ॥

अवर्णात् परस्यानादेः पस्य लुग् न भवति ॥ सवहो । सावो ॥ अनादेरित्येव परउट्ठो ॥

अर्थः यदि किसी शब्द में 'प' आदि रूप से स्थित नहीं हो तथा ऐसा वह 'प' यदि 'अ' स्वर के पश्चात् स्थित हो तो उस 'प' व्यञ्जन का लोप नहीं होता है। जैसे शपथः=सवहो। शापः=सावो।

प्रश्न—'अनादि रूप से स्थित हो' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर—क्योंकि आदि रूप से स्थित 'प्' का लोप होता हुआ भी देखा जाता है। जैसे-पर-पुष्टः =परउट्ठो ॥

शपथः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सवहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१८७ से 'थ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सवहो रूप सिद्ध हो जाता है।

शापः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सावो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सावो रूप सिद्ध हो जाता है।

पर-पुष्टः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पर-उट्ठो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पर-उट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१७९ ॥

अवर्णो य श्रुतिः ॥ १-१८० ॥

क ग च जेत्यादिना लुकि सति शेषः अवर्णः अवर्णात् परो लघु प्रयत्नतर यकार श्रुतिर्भवति ॥ तित्थयरो। सयढं। नयरं। मयङ्को। कयग्गहो। कायमणी। रययं। पयावई रसायलं। पायालं। मयणो। गया। नयणं। दयालू। लायण्णं ॥ अवर्ण इति किम्। स उणो। पउणो। पउरं। राईवं। निहओ। निनओ। वाऊ। कई ॥ अवर्णादित्येव। लोअस्स। देअरो ॥ क्वचिद् भवति। पियइ।

अर्थः—क, ग, च, ज इत्यादि व्यञ्जन वर्णों के लोप होने पर शेष 'अ' वर्ण के पूर्व में 'अ अथवा आ' रहा हुआ हो तो उस शेष 'अ' वर्ण के स्थान पर लघुतर प्रयत्न वाला 'य' कार हुआ करता है। जैसे—तीर्थकरः=तित्थयरो। शकटम्=सयढं। नगरम्=नयरं। मृगाङ्कः=मयङ्को। कच-ग्रहः=कयग्गहो। काचमणिः=कायमणी। रजतम्=रययं। प्रजापतिः=पयावई। रसातलम्=रसायलं। पातालम्=पायालं। मदनः=मयणो। गदा=गया। नयनम्=नयणं। दयालुः=दयालू। लावण्यम्=लायण्णं ॥

प्रश्नः—लुप्त व्यञ्जन-वर्णों में से शेष 'अ' वर्ण का ही उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तरः—क्यों कि यदि लुप्त व्यञ्जन वर्णों में 'अ' स्वर के अतिरिक्त कोई भी दूसरा स्वर हो; तो उन शेष किसी भी स्वर के स्थान पर लघुतर प्रयत्न वाला 'य' कार नहीं हुआ करता है। जैसेः-शकुनः= सउणो। प्रगुणः=पउणो। प्रचुरम्=पउरं। राजीवम्=राईवं। निहतः=निहओ। निनदः=निनओ। वायुः= वाऊ। कविः=कई ॥

निहत: और निनद: में नियमानुसार लुप्त होने वाले 'त्' और 'द्' व्यञ्जन वर्णों के पश्चात् शेष 'अ:' रहता है। न कि 'अ'। तदनुसार इन शब्दों में शेष 'अ:' के स्थान पर 'य' कार की प्राप्ति नहीं हुई है।

प्रश्न–शेष रहने वाले 'अ' वर्ण के पूर्व में 'अ अथवा आ' हो तो उस शेष 'अ' के स्थान पर 'य' कार होता है। ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर:—क्योंकि यदि शेष रहे हुए 'अ' वर्ण के पूर्व में 'अ अथवा आ' स्वर नहीं होगा तो उस शेष 'अ' वर्ण के स्थान पर 'य' कार की प्राप्ति नहीं होगी। जैसे–लोकस्य=लोअस्स। देवर:=देअरो। किन्तु किसी किसी शब्द में लुप्त होने वाले व्यञ्जन वर्णों में से शेष 'अ' वर्ण के पूर्व में यदि 'अ अथवा आ' नहीं हो कर यदि कोई अन्य स्वर भी रहा हुआ हो तो उस शेष 'अ' वर्ण के स्थान पर 'य' कार भी होता हुआ देखा जाता है। जैसे-पिबति=पियइ॥ इत्यादि॥

तित्थयरो सयढं और नयरं रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

मयङ्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३० में की गई है।

कयग्गहो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

*काच-मणि:*संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप काय-मणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर *काय-मणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

रययं पयावई, रसायलं और मयणो रूपों की सिद्धि सूत्र–संख्या १-१७७ में की गई है।

पातालम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पायालं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पायालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'गया'; 'नयणं'; 'दयालू'; और 'लायण्णं' रूपों की भी सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

शकुन: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सउणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१७७ से क् का लोप; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सउणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रगुण: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पउणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप; १-१७७ से ग् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पउणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रचुरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पउरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'च्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पउरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

राजीवम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राईवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति में एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *राईवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निहत: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निहओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निहओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वायु: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वाऊ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *वाऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कई रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

लोकस्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लोअस्स होता है। इसके सूत्र-संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में 'ङस्' प्रत्यय के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लोअस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

देवर: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप देअरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिबति संस्कृत सकर्मक क्रिया रूप है। इसका प्राकृत रूप पियइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ब' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पियइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुब्ज-कर्पर-कीले कः खोऽपुष्पे ॥ १-१८१ ॥

एषु कस्य खो भवति पुष्पं चेत् कुब्जाभिधेयं न भवति ॥ खुज्जो । खप्परं । खीलओ ॥ अपुष्प इति किम् । बंधेउं कुज्जय-पसूणं । आर्षेऽन्यत्रापि । कासितं । खासिअं । कसितं । खसिअं ॥

अर्थः-कुब्ज; कर्पर; और कीलक शब्दों में रहे हुए 'क' वर्ण का 'ख' हो जाता है। किन्तु यह ध्यान में रहे कि कुब्ज शब्द का अर्थ 'पुष्प' नहीं हो तभी 'कुब्ज' में स्थित 'क' का 'ख' होता है; अन्यथा नहीं। जैसे-कुब्जः=खुज्जो। कर्परम्=खप्परं। कीलकः=खीलओ॥

प्रश्नः—'कुब्ज' का अर्थ फूल-'पुष्प' नहीं हो; तभी कुब्ज में स्थित 'क' का 'ख' होता है ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—क्योंकि यदि कुब्ज का अर्थ पुष्प होता हो तो कुब्ज में स्थित 'क' का 'क' ही रहता है। जैसेः—बंधितुम् कुब्जक-प्रसूनम्=बंधेउं कुज्जय-पसूणं॥ आर्ष-प्राकृत में उपरोक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों में भी 'क' के स्थान पर 'ख' का आदेश होता हुआ देखा जाता है। जैसेः-कासितम्=खासिअं। कसितम्=खसिअं॥ इत्यादि॥

कुब्जः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खुज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८१ से 'क' को 'ख' की प्राप्ति; २-७९ से 'ब्' का लोप; २-८९ से 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खुज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्परम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खप्परं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८१ से 'क' को 'ख' की प्राप्ति; २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खप्परं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कीलकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खीलओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८१ से प्रथम 'क' को 'ख' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खीलओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बंधितुम् संस्कृत हेत्वर्थ कृदन्त का रूप है। इसका प्राकृत रूप बंधेउं होता है। संस्कृत मूल धातु 'बंध्' है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त 'ध्' में 'अ' की प्राप्ति; संस्कृत (हेमचन्द्र) व्याकरण के ५-१-१३ सूत्र से हेत्वर्थ कृदन्त में 'तुम्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं सूत्र-संख्या ३-१५७ से 'ध' में प्राप्त 'अ' को

'ए' की प्राप्ति; १-१७७ से 'तुम्' प्रत्यय में स्थित 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार हो कर *वेढेउं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुब्जक संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुज्जय होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप; २-८९ से 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप और १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति होकर *कुज्जय* रूप सिद्ध हो जाता है।

कासितम् संस्कृत रूप है। आर्ष-प्राकृत में इसका रूप खासिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८१ की वृत्ति से 'क्' के स्थान पर 'ख्' का आदेश; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खासिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कसितम् संस्कृत रूप है। आर्ष-प्राकृत में इसका रूप खसिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८१ की वृत्ति से 'क्' के स्थान पर 'ख्' का आदेश और शेष सिद्धि उपरोक्त *खासिअं* रूप के समान ही जानना ॥ १-१८१ ॥

मरकत-मदकले गः कंदुके त्वादेः ॥ १-१८२ ॥

अनयोः कस्य गो भवति, कन्दुके त्वाद्यस्य कस्य ॥ मरगयं । मयगलो । गेन्दुअं ॥

अर्थः-मरकत और मदकल शब्दों में रहे हुए "क" का तथा कन्दुक शब्द में रहे हुए आदि 'क' का "ग" होता है। जैसे:-मरकतम्=मरगयं; मदकलः=मयगलो और कन्दुकम्=गेन्दुअं ॥

मरकतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मरगयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८२ से "क" के स्थान पर "ग" की प्राप्ति; १-१७७ से त् का लोप १-१८० से शेष 'अ' को य की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "म्" प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त "म्" का अनुस्वार होकर *मरगयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मदकलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मयगलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-१८२ से 'क' के स्थान पर 'ग' का आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मयगलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गेन्दुअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५७ में की गई है ॥ १-१८२ ॥

किराते चः ॥ १-१८३ ॥

किराते कस्य चो भवति ॥ चिलाओ ॥ पलिन्दे एवायं विधिः । कामरूपिणि तु नेष्यते । नमिमो हर-किरायं ॥

अर्थः—'किरात' शब्द में स्थित 'क' का 'च' होता है। जैसे:--किरातः=चिलाओ ॥ किन्तु इसमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जब 'किरात' शब्द का अर्थ 'पलिन्द' याने भील जाति वाचक हो; तभी किरात में स्थित 'क' का 'च' होगा। अन्यथा नहीं। द्वितीय बात यह है कि जिसने स्वेच्छा पूर्वक 'भील' रूप धारण किया हो और उस समय में उसके लिये यदि 'किरात' शब्द का प्रयोग किया जाय तो प्राकृत भाषा के रूपान्तर में उस 'किरात' में स्थित 'क' का 'च' नहीं होगा। जैसे--नमामः हर किरातम्= नमिमो हर-किरायं ॥

किरातः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चिलाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१- ८३ से 'क' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र्' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिलाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमामः संस्कृत सकर्मक क्रिया पद है। इसका प्राकृत रूप नमिमो होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से हलन्त 'नम्' धातु में 'अ' की प्राप्ति; ३-१५५ से प्राप्त 'अ' विकरण प्रत्यय के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; ३-१४४ से वर्तमानकाल के तृतीय पुरुष (उत्तम पुरुष) के बहु वचन में 'मो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नमिमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हर-किरातम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हर-किरायं होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'अम्' प्रत्यय में स्थित 'अ' का लोप और १-२३ से शेष 'म्' का अनुस्वार होकर *हर किरायं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१८३ ॥

शीकरे भ-हौ वा ॥ १-१८४ ॥

शीकरे कस्य भहौ वा भवतः ॥ सीभरो सीहरो । पक्षे सीअरो ॥

अर्थः- शीकर शब्द में स्थित 'क' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से एवं क्रम से 'भ' अथवा 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे- शीकरः = सीभरो अथवा सीहरो ॥ पक्षान्तर में सीअरो भी होता है।

शीकरः- संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सीभरो, सीहरो और सीअरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्'; १-१८४ से प्रथम रूप और द्वितीय रूप में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'क' के स्थान पर 'भ' अथवा 'ह' की प्राप्ति; १-१७७ से तृतीय रूप में पक्षान्तर के कारण से 'क्' का लोप और ३-२ से सभी रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर

'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *सीभरो, सीहरो* और *सीअरो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥१-१८४ ॥

चंद्रिकायां मः ॥ १-१८५ ॥

चंद्रिका शब्दे कस्य मो भवति ॥ चंदिमा ॥

अर्थः—चन्द्रिका शब्द में स्थित 'क्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति होती है। जैसे:- चंद्रिका=चन्दिमा ॥

चन्द्रिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चन्दिमा होता है। इसमें सूत्र- संख्या २-७६ से 'र्' का लोप और १-१८५ से 'क्' के स्थान पर 'म्' को प्राप्ति होकर *चन्दिमा* रूप सिद्ध हो जाता है। १-१८५।

निकष-स्फटिक-चिकुरे हः ॥ १-१८६ ॥

एषु कस्य हो भवति ॥ निहसो। फलिहो चिहुरो। चिहुर शब्दः संस्कृतेपि इति दुर्गः ॥

अर्थः—निकष, स्फटिक और चिकुर शब्दों में स्थित 'क' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे-- निकषः=निहसो। स्फटिकः=फलिहो। चिकुरः=चिहुरो ॥ चिहुर शब्द संस्कृत भाषा में भी होता है; ऐसा दुर्ग-कोष में लिखा हुआ है ॥

निकषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निहसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८६ से 'क' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निहसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्फटिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फलिहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'स' का लोप; १-१९७ से 'ट्' के स्थान पर 'ल्' की प्राप्ति; १-१८६ से 'क' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर फलिहो रूप सिद्ध हो जाता है।

चिकुरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चिहुरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८६ से 'क' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिहुरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१८६ ॥

ख-घ-थ-ध-भाम् ॥ १-१८७ ॥

स्वरात् परेषामसंयुक्तानामनादिभूतानां ख घ थ ध भ इत्येतेषां वर्णानां प्रायो हो भवति ॥ ख। साहा। मुहं। मेहला। लिहइ ॥ घ। मेहो। जहणं। माहो। लाहइ। थ। नाहो। आवसहो। मिहुणं। कहइ ॥ ध। साहू। वाहो। बहिरो। बाहइ। इन्द-हणू ॥ भ।

सहा । सहावो । नहं । थणहरो । सोहइ ॥ स्वरादित्येव । संखो । संघो । कंथा । बंधो । खंभो । असंयुक्तस्येत्येव । अक्खइ । अग्घइ । कत्थइ । सिद्धओ । बन्धइ । लब्भइ ॥ अनादेरित्येव । गज्जन्ते खे मेहा । गच्छइ घणो । प्राय इत्येव । सरिसव-खलो । पलय-घणो । अथिरो । जिण-धम्मो । पणट्ठ भओ । नभं ॥

अर्थः—'ख' का, 'घ' का, 'थ' का, 'ध' का, और 'भ' का प्रायः 'ह' उस समय होता है; जब कि ये वर्ण किसी भी शब्द में स्वर से पीछे रहे हुए हों; असंयुक्त याने हलन्त न हों तथा उस शब्द में आदि अक्षर रूप से नहीं रहे हुए हों ॥ जैसे—'ख' के उदाहरणः-शाखा=साहा; मुखम्=मुहं; मेखला=मेहला और लिखति=लिहइ ॥ 'घ' के उदाहरणः-मेघः=मेहो; जघनम्=जहणं; माघः=माहो और श्लाघते=लाहइ ॥ 'थ' के उदाहरणः-नाथः=नाहो; आवसथः=आवसहो; मिथुनम्=मिहुणं और कथयति=कहइ ॥ 'ध' के उदाहरणः-साधुः=साहू; व्याधः=वाहो; बधिरः=बहिरो; बाधते=बाहइ और इन्द्र-धनुः=इन्द-हणू ॥ 'भ' के उदाहरणः-सभा=सहा; स्वभावः=सहावो; नभम्=नहं; स्तन-भरः=थणहरो और शोभते=सोहइ ॥

प्रश्नः—'ख' 'घ' आदि ये वर्ण स्वर के पश्चात् रहे हुए हों 'ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्योंकि यदि ये वर्ण स्वर के पश्चात् नहीं रहते हुए किसी हलन्त व्यञ्जन के पश्चात् रहे हुए हों तो उस अवस्था में इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होगी । जैसेः-'ख' का उदाहरण-शंखः=संखो । 'घ' का उदाहरण-संघः=संघो । 'थ' का उदाहरण=कन्था=कंथा । 'ध' का उदाहरण-बन्धः = बन्धो और 'भ' का उदाहरण-स्तम्भः = खंभो ॥ इन शब्दों में 'ख' 'घ' आदि वर्ण हलन्त व्यञ्जनों के पश्चात् रहे हुए हैं; अतः इन शब्दों में 'ख' 'घ' आदि वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं हुई है ।

प्रश्नः—'असंयुक्त याने हलन्त रूप से नहीं रहे हुए हों; तभी इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्योंकि यदि ये 'ख' 'घ' आदि वर्ण हलन्त रूप से अवस्थित हों तो इनके स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होगी । जैसे- ख्' का उदाहरण-आख्याति = अक्खाइ । 'घ्' का उदाहरण-अर्घ्यते = अग्घइ । 'थ्' का उदाहरण-कथ्यते = कत्थइ । 'ध्' का उदाहरण-सिध्यकः = सिद्धओ । बद्ध्यते = बन्धइ और 'भ' का उदाहरण-लभ्यते = लब्भइ ॥

प्रश्नः—'शब्द में आदि अक्षर रूप से ये 'ख' 'घ' आदि वर्ण नहीं रहे हुए हों तो इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है'; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्योंकि यदि ये 'ख' 'घ' आदि वर्ण किसी भी शब्द में आदि अक्षर रूप से रहे हुए हों तो इनके स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होती है । जैसे-'ख' का उदाहरण-गर्जन्ति खे मेघाः = गज्जन्ते खे मेहा ॥ 'घ' का उदाहरण-गच्छति घनः = गच्छइ घणो ॥ इत्यादि इत्यादि ॥

प्रश्नः—'प्रायः इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है' ऐसा 'प्रायः अव्यय' का उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तरः—क्योंकि अनेक शब्दों में 'स्वर से परे; असंयुक्त और अनादि' होते हुए भी इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती हुई नहीं देखी जाती है। जैसे-'ख' का उदाहरण-सर्षप-खलः=सरिसव-खलो ॥ 'घ' का उदाहरण-प्रलय-घनः=पलय-घणो ॥ 'थ' का उदाहरण-अस्थिरः=अथिरो ॥ 'ध' का उदाहरण-जिन-धर्मः=जिण-धम्मो ॥ तथा 'भ' का उदाहरण-प्रणष्ट-भयः=पणट्ठ-भओ और नभम्=नभं ॥ इन उदाहरणों में 'ख' 'घ' आदि वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं हुई है ॥

शाखा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप साहा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' का 'स्'; और १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होकर *साहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुखम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुहं होता है। इसमें सूत्र संख्या १८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मुहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मेखला संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेहला होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होकर *मेहला* रूप सिद्ध हो जाता है।

लिखति संस्कृत क्रिया-पद रूप है। इसका प्राकृत रूप लिहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लिहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मेघः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मेहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जघनम् संस्कृत रूप है। इसक प्राकृत रूप जहणं होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जहणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

माघः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माहो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लाघते संस्कृत सकर्मक क्रिया-पद रूप है। इसका प्राकृत रूप सलाहइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या

२-७७ से 'श्' का लोप; १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम के पुरुष एक वचन में 'ति' प्रत्ययके स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लाहइ* रूप सिद्ध हो जाता है

नाथः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नाहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवसथः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप आवसहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आवसहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मिथुनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मिहुणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'थ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिहुणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कथयति संस्कृत क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप कहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से 'कथ्' धातु के हलन्त 'थ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; संस्कृत-भाषा में गण-विभाग होने से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अय' का प्राकृत-भाषा में गण-विभाग का अभाव होने से लोप; १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

साधुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप साहू होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *साहू* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याधः-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रूप वाहो होता है? इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बधिरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप बहिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बहिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाधते संस्कृत सकर्मक क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप बाहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति ४-२३९ से 'ध्' हलन्त व्यञ्जन के स्थानापन्न व्यञ्जन 'ह्' में

विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

इन्द्र धनुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इन्दहणू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति होकर *इन्दहणु* रूप सिद्ध हो जाता है।

सभा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सहा होता है। इसमें सूत्र- संख्या १- ८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और संस्कृत-व्याकरण के विधानानुसार आकारान्त स्त्रीलिंग वाचक शब्द में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' स्वर की इत्संज्ञा तथा १-११ से शेष 'स्' का लोप; प्रथमा विभक्ति के एक वचन के रूप से *सहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वभावः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सहावो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से व्' का लोप; १-१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सहावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नहं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३२* में की गई है।

स्तन भरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थणहरो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *थणहरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शोभते संस्कृत अकर्मक क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप सोहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से 'शोभ्' धातु में स्थित हलन्त 'भ्' में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सोहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संखो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३०* में की गई है।

सङ्घः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संघो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ 'ङ्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संघो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कन्था संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंथा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ से 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और संस्कृत व्याकरण के विधानानुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन

में स्त्रीलिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा तथा १-११ से शेष अन्त्य 'स्' का लोप होकर *कैथा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बन्धः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बंधो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ से 'न्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बंधो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तम्भः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खंभो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-८ से 'स्त' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति १-२३ की वृत्ति से 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खंभो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आख्याति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप अक्खइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से आदि 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ४-२३८ से 'खा' में स्थित 'आ' को 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अक्खइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्घ्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप अग्घइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'घ' को द्वित्व 'घ्घ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'घ्' को 'ग्' की प्राप्ति; ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अग्घइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कथ्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत-रूप कत्थइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; ३-१७७ से कर्म भाव-वाच्य प्रदर्शक संस्कृत प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में प्राप्तव्य ज्ज अथवा 'ज्जा' प्रत्यय का लोप और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'त' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कत्थइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिग्धकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *सिद्धओ* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिद्धओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बन्ध्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप बन्धइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१७७ से कर्म भाव-वाच्य प्रदर्शक संस्कृत प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में प्राप्तव्य 'ज्ज'

अथवा 'ज्जा' प्रत्यय का लोप; ४-२३९ से शेष हलन्त 'ध्' में 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान-काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बन्धइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

लभ्यते संस्कृत कर्म भाव-वाच्य क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप लब्भइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२४९ से कर्म-भाव-वाच्य 'य' प्रत्यय का लोप होकर शेष 'भ्' को द्वित्व भ्भ् की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति; ४-२३९ से हलन्त 'भ्' में 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान-काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लब्भइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्जन्ति संस्कृत अकर्मक क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप गज्जन्ते होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'न्ति' के स्थान पर 'न्ते' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गज्जन्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

खे संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भी खे ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'खे' रूप सिद्ध हो जाता है।

मेघाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'घ' को 'ह' की प्राप्ति और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप तथा ३-१२ से प्राप्त होकर लुप्त हुए जस् प्रत्यय के कारण से अन्त्य 'अ' को 'आ' की प्राप्ति होकर *मेहा* रूप सिद्ध हो जाता है

गच्छति संस्कृत सकर्मक क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप गच्छइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से गच्छ् धातु के हलन्त 'छ्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

घणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७२* में की गई है।

सर्षप-खलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सरिसव-खलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०५ से 'र्ष' शब्दांश के पूर्व में अर्थात् रेफ रूप 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-२३१ से 'प' का 'व'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरिसव-खलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रलय संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पलय होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप होकर *पलय* रूप सिद्ध हो जाता है।

पणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७२ में की गई है।

अस्थिर: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अथिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'स्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अथिरो रूप सिद्ध हो जाता है।

जिनधर्म: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जिण-धम्मो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'म्' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जिण-धम्मो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रणष्ट: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पणट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पणट्ठो* रुप सिद्ध हो जाता है।

भय: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रुप भओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *भओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३२ में की गई है॥ १-१८७॥

पृथकि धो वा ॥ १-१८८ ॥

पृथक् शब्दे थस्य धो वा भवति ॥ पिधं पुधं । पिहं पुहं ॥

अर्थ:—पृथक् शब्द में रहे हुए 'थ' का विकल्प रुप से 'ध' भी होता है। अतः पृथक् शब्द के प्राकृत में वैकल्पिक पक्ष होने से चार रूप इस प्रकार होते हैं:—पृथक्=पिधं; पुधं; पिहं और पुहं॥

पृथक् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत पिधं, पुधं पिहं और पुहं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-१३७ से 'ऋ' के स्थान पर विकल्प रुप से और क्रम से 'इ' अथवा 'उ' की प्राप्ति; १-१८८ से 'थ' के स्थान पर विकल्प रुप से प्रथम दो रूपों में 'ध' की प्राप्ति; तथा १-१८७ से तृतीय और चतुर्थ में विकल्प से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप; और १-२४ की वृत्ति से अन्त्य स्वर 'अ' को 'अनुस्वार' की प्राप्ति होकर क्रम से चारों रुप *पिधं, पुधं, पिहं* और *पुहं* सिद्ध हो जाते हैं॥ १-१८८॥

शृङ्खले खः कः ॥ १-१८९ ॥

शृङ्खले खस्य को भवति ॥ सङ्कलं ॥

अर्थः—शृङ्खल शब्द में स्थित 'ख' व्यञ्जन का 'क' होता है। जैसे—शृङ्खलम्=सङ्कलं ॥

शृङ्खलम् संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप सङ्कलं अथवा संकलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; १-३० और १-२५ से 'ङ्' व्यञ्जन का विकल्प से अनुस्वार अथवा यथा रूप की प्राप्ति; १-१८९ से 'ख' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सङ्कलं अथवा संकलं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१८९ ॥

पुन्नाग-भागिन्योर्गो मः ॥ १-१९० ॥

अनयोर्गस्य मो भवति ॥ पुन्नामाइँ वसन्ते । भामिणी ॥

अर्थः—पुन्नाग और भागिनी शब्दों में स्थित 'ग' का 'म' होता है। जैसे-पुन्नागानि=पुन्नामाइं ॥ *भागिनी*=भामिणी ॥

पुन्नागानि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुन्नामाइँ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९० से 'ग' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; ३-२६ से प्रथमा विभक्ति के बहु-वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'इँ' प्रत्यय की प्राप्ति और अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति भी इसी सूत्र (३-२६) से होकर *पुन्नामाइँ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वसन्ते संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वसन्ते होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'ङि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वसन्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

भागिनी संस्कृत स्त्री लिंग रूप है। इसका प्राकृत रूप भामिणी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९० से 'ग्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण' और संस्कृत व्याकरण के विधानानुसार दीर्घ ईकारान्त स्त्री लिंग के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' की इत्संज्ञा तथा १-११ से शेष अन्त्य 'स्' का लोप होकर *भामिणी* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१९० ॥

छागे लः ॥ १-१९१ ॥

छागे गस्य लो भवति ॥ छालो छाली ॥

अर्थः—छाग शब्द में स्थित 'ग' का 'ल' होता है। जैसेः—छागः=छालो ॥ छागी=छाली ॥

छागः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छालो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६१ से 'ग' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छागीः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छाली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१६१ से 'ग' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति होकर *छाली* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१६१ ॥

ऊत्वे दुर्भग-सुभगे वः ॥ १-१६२ ॥

अनयोरूत्वे गस्य वो भवति ॥ दूहवो । सूहवो ॥ ऊत्व इति किम् । दुहओ ॥ सुहओ ॥

अर्थः—दुर्भग और सुभग शब्दों में स्थित 'ग' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति होती है। जैसेः—दुर्भगः= दूहवो । सुभगः=सूहवो ॥ किन्तु इसमें शर्त यह है कि 'ग' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति होने की हालत में 'दुर्भग' और 'सुभग' शब्दों में स्थित ह्रस्व 'उ' को दीर्घ 'ऊ' की प्राप्ति भी होती है। यदि ह्रस्व 'उ' के स्थान पर दीर्घ 'ऊ' नहीं किया जायगा तो फिर 'ग' को 'व' की प्राप्ति नहीं होकर 'ग्' का लोप हो जायगा। इसीलिये सूत्र में और वृत्ति में 'ऊत्व' की शर्त का विधान किया गया है। अन्यथा 'ग्' का लोप होने पर 'दुर्भगः' का 'दुहओ' होता है और 'सुभगः' का 'सुहओ' होता है॥

दूहवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–११५ में की गई है।

सूहवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–११३ में की गई है।

दुहओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–११५ में की गई है।

सुहओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १–११३ में की गई है। ॥ १–१६२ ॥

खचित-पिशाचयोश्चः स—ल्लौ वा ॥ १-१६३ ॥

अनयोश्चस्य यथासंख्यं स ल्ल इत्यादेशौ वा भवतः ॥ खसिओ खइओ । पिसल्लो पिसाओ ।

अर्थः-खचित शब्द में स्थित 'च' का विकल्प से 'स' होता है। और पिशाच शब्द में स्थित 'च' का विकल्प से 'ल्ल' होता है। जैसेः- खचितः= खसिओ अथवा खइओ और पिशाचः= पिसल्लो अथवा पिसाओ।

खचितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप खसिओ और खइओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र- संख्या १-१६३ से विकल्प रूप से 'च्' के स्थान पर 'स्' आदेश की प्राप्ति और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से सूत्र- संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; दोनों ही रूपों में सूत्र- संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *खसिओ* तथा *खइओ* रूपों की सिद्धि हो जाती है

पिशाच: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पिसल्लो और पिसाओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र- संख्या १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' का 'स्'; १-१९३ से 'च्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ल्ल्' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप 'पिसल्लो' सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप पिसाओ में सूत्र- संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'च्' का लोप और ३-२ से प्रथम रूप के समान ही 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पिसाओ* भी सिद्ध हो जाता है।

जटिले जो झो वा ॥ १-१९४ ॥

जटिले जस्य झो वा भवति ॥ झडिलो जडिलो ॥

अर्थ: जटिल शब्द में स्थित 'ज' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'झ' की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे:- जटिल:= झडिलो अथवा जडिलो ॥

जटिल: संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप झडिलो और जडिलो होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-१९४ से 'ज' के स्थान पर विकल्प रूप से 'झ' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि- प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *झडिलो* और *जडिलो* रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १-१९४ ॥

॥ टो डः १-१९५ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेष्टस्य डो भवति ॥ नडो । भडो । घडो । घडइ ॥ स्वरादित्येव । घंटा ॥ असंयुक्तस्येत्येव । खट्टा ॥ अनादेरित्येव । टक्को ॥ क्वचिन्न भवति । अटति ॥ अटइ ॥

अर्थ:- यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ, असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् हलन्त भी न हो तथा आदि में भी स्थित न हो; तो उस 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती है। जैसे:- नट:= नडो ॥ भट:= भडो ॥ घट:= घडो ॥ घटति= घडइ ॥

प्रश्न:- "स्वर से परे रहता हुआ हो" ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:- क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा; तो उस 'ट' का 'ड' नहीं होगा। जैसे घण्टा=घंटा ॥

प्रश्न:-संयुक्त अर्थात् हलन्त नहीं होना चाहिये; याने असंयुक्त अर्थात् स्वर से युक्त होना चाहिये "ऐसा क्यों कहा गया है !

उत्तरः- क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण संयुक्त होगा; तो उस 'ट' का 'ड' नहीं होगा। जैसे:- खट्वा = खट्टा ॥

प्रश्नः- अनादि रूप से स्थित हो; याने शब्द के आदि- स्थान पर स्थित नहीं हो;- ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः-क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ट' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा; तो उस 'ट' का 'ड' नहीं होगा। जैसे:- टक्कः= टक्को ॥

किसी किसी शब्द में ऐसा भी देखा जाता है कि 'ट' वर्ण शब्द में अनादि और असंयुक्त है तथा स्वर से परे भी रहा हुआ है; फिर भी 'ट' का 'ड' नहीं होता है। जैसे:- अटति= अटइ।

नटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नडो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर नडो रूप सिद्ध हो जाता है।

भटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भडो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर भडो सिद्ध हो जाता है।

घटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घडो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर घडो रूप सिद्ध हो जाता है।

घटति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद रूप है। इसका प्राकृत रूप घडइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९५ से 'ट' का 'ड' और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर घडइ रूप सिद्धि हो जाता है।

घण्टा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घंटा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५ से 'ण्' का अनुस्वार होकर घंटा रूप सिद्ध हो जाता है।

खट्वा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खट्टा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व' का लोप; २-८९ से 'ट्' को द्वित्व 'ट्ट्' की प्राप्ति; और संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' का इत्संज्ञानुसार लोप तथा १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर खट्टा रूप सिद्ध हो जाता है।

टक्कः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टक्को होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर टक्को रूप सिद्ध हो जाता है।

सुरस्वतिबहेन मणीलाल शाह

अटति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप अटइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अटइ रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१९५ ॥

सटा-शकट-कैटभे ढः ॥ १-१९६ ॥

एषु टस्य ढो भवति ॥ सढा । सयढो । केढवो ॥

अर्थः—सटा, शकट और कैटभ में स्थित 'ट' का 'ढ' होता है। जैसेः-सटा= सढा ॥ शकटः= सयढो ॥ कैटभः= केढवो ॥

सटा संस्कृत स्त्री लिंग रूप है। इसका प्राकृत रूप सढा होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१९६ से 'ट' का 'ढ'; संस्कृत- व्याकरण के अनुसार प्रथमा विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्री लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय में स्थित 'इ' का इत्संज्ञानुसार लोप और १-११ से शेष 'स्' का लोप होकर सढा रूप सिद्ध हो जाता है।

शकटः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सयढो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लुप्त हुए 'क्' में स्थित 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-१९६ से 'ट' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सयढो रूप सिद्ध हो जाता है। केढवो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४८ में की गई है। १-१९६ ॥

स्फटिके लः ॥ १-१९७ ॥

स्फटिके टस्य लो भवति ॥ फलिहो ॥

अर्थः—स्फटिक शब्द में स्थित 'ट' वर्ण का 'ल' होता है। जैसेः- स्फटिकः= फलिहो ॥

फलिहो रूप की सिद्धि सूत्र- संख्या १-१८६ में की गई है ॥ १-१९७ ॥

चपेटा--पाटौ वा ॥ १ - १९८ ॥

चपेटा शब्दे ण्यन्ते च पटि धातौ टस्य लो वा भवति ॥ चविला चविडा । फालेइ फाडेइ ।

अर्थः—चपेटा शब्द में स्थित 'ट' का विकल्प से 'ल' होता है। तदनुसार एक रूप में तो 'ट' का 'ल' होगा और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से 'ट' का 'ड' होगा। जैसेः- चपेटा= चविला अथवा चविडा ॥ इसी प्रकार से 'पटि' धातु में भी प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप होने की हालत में 'ट' का वैकल्पिक रूप से 'ल' होता है। तदनुसार एक रूप में तो 'ट' का 'ल' होगा और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से 'ट' का 'ड' होगा ॥ जैसेः- पाटयति= फालेइ और फाडेइ ॥

चपेटा: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चविला और चविडा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र- संख्या १-२३१ से 'प' का 'व';-१-१४६ से 'ए' को 'इ' की प्राप्ति; १-१६८ से 'ट' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'ल' का आदेश होकर *चविला* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *चविडा* की सिद्धि सूत्र- संख्या १-१४६ में की गई है।

पाटयति संस्कृत सकर्मक प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत रूप फालेइ और फाडेइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ'; १-१६८ से वैकल्पिक रूप से 'ट' के स्थान पर 'ल्' का आदेश; ३-१४६ से प्रेरणार्थक में संस्कृत प्रत्यय 'णि' के स्थान पर अर्थात् 'णि' स्थानीय 'अय' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति से 'ल् + ए'='ले'; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप फालेइ सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप फाडेइ में सूत्र संख्या १-१९५ से वैकल्पिक पक्ष होने से 'ट्' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप फाडेइ भी सिद्ध हो जाता है। ॥१-१९८॥

ठो ढः ॥ १-१९९ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेष्ठस्य ढो भवति ॥ मढो । सढो । कमढो । कुढारो । पढइ ॥ स्वरादित्येव । वेकुंठो ॥ असंयुक्तस्येत्येव । चिट्ठइ ॥ अनादेरित्येव । हिअए ठाइ ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ; असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् हलन्त भी न हो तथा आदि में भी स्थित न हो; तो उस 'ठ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति होती है। जैसे:-मठः=मढो; शठः=सढो; कमठः=कमढो; कुठारः=कुढारो और पठति=पढइ ॥

प्रश्नः—'स्वर से परे रहता हुआ हो' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'ठ' का 'ढ' नहीं होगा। जैसे:-वैकुण्ठः=वेकुंठो ॥

प्रश्नः—'संयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये; याने स्वर से युक्त होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण संयुक्त होगा–हलन्त होगा–स्वर से रहित होगा; तो उस 'ठ' का 'ढ' नहीं होगा। जैसे:-तिष्ठति=चिट्ठइ ॥

प्रश्नः—शब्द के आदि स्थान पर स्थित नहीं हो; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:—क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ठ' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा; तो उस 'ठ' का 'ढ' नहीं होगा। जैसे:-हृदये तिष्ठति=हिअए ठाइ ॥

मठः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप मढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शठः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमठः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमढो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कमढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुठारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुढारो होता है। इसमें सूत्र – संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुढारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पठति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पढइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ' और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पढइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वैकुण्ठः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेकुंठो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; १-२५ से 'ण्' के स्थान पर 'अनुस्वार' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेकुंठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तिष्ठति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप चिट्ठइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१६ से संस्कृत धातु 'स्था' के आदेश रूप 'तिष्ठ' के स्थान पर चिट्ठ' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चिट्ठइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हृदये संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिअए होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' और 'य्' दोनों वर्णों का लोप; और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग में 'ङि'='इ' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हिअए* रूप सिद्ध हो जाता है।

तिष्ठति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप ठाइ होता है। इसमें सूत्रसंख्या ४-१६ से संस्कृत धातु 'स्था' के आदेश रूप 'तिष्ठ' के स्थान पर 'ठा' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ठाइ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-१९९ ॥

अङ्कोठे ल्लः ॥ १-२०० ॥

अङ्कोठे ठस्य द्विरुक्तो लो भवति ॥ अङ्कोल्ल तेल्लतुप्पं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द अङ्कोठ में स्थित 'ठ' का प्राकृत रूपान्तर में द्वित्व 'ल्ल' होता है। जैसे अङ्कोठ तैल घृतम् अङ्कोल्ल-तेल्ल-तुप्पं ॥

अंकोठ संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप अङ्कोल्ल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०० से 'ठ' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *अङ्कोल्ल* रूप सिद्ध हो जाता है।

तैल संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप तेल्ल होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और २-९८ से 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर 'तेल्ल' रूप सिद्ध हो जाता है।

घृतम् संस्कृत रूप है। इसका देश्य रूप तुप्पं होता है। इसमें सूत्र संख्या का अभाव है; क्योंकि घृतम् शब्द के स्थान पर तुप्पं रूप की प्राप्ति देश्य रूप से है; अतः तुप्पं शब्द रूप देशज है; न कि प्राकृत ज ॥ तदनुसार तुप्प देश्य रूप में ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देश्य रूप *तुप्पं* सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२०० ॥

पिठरे हो वा रश्च डः ॥ १-२०१ ॥

पिठरे ठस्य हो वा भवति तत् संनियोगे च रस्य डो भवति ॥ पिहडो पिढरो ॥

अर्थः-पिठर शब्द में स्थित 'ठ' का वैकल्पिक रूप से 'ह' होता है। अतः एक रूप में 'ठ' का 'ह' होगा और द्वितीय रुप में वैकल्पिक पक्ष होने से 'ठ' का 'ढ' होगा। जहां 'ठ' का 'ह' होगा; वहां पर एक विशेषता यह भी होगी कि पिठर शब्द में स्थित 'र' का 'ड' होजायगा। जैसे:-पिठरः=पिहडो अथवा पिढरो।

पिठरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रुप पिहडो और पिढरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२०१ से 'ठ' के स्थान पर वैकल्पिक रुप से 'ह' की प्राप्ति और इसी सूत्रानुसार 'ह' की प्राप्ति होने से 'र' को 'ड' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रुप *पिहडो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र- संख्या १-१९९ से वैकल्पिक पक्ष होने से 'ठ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ से 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पिढरो* भी सिद्ध हो जाता है ॥ १-२० ॥

डो लः ॥ २०२ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्डस्य प्रायो लो भवति ॥ वडवामुखम् । वलयामुहं ॥ गरुलो ॥ तलायं । कीलइ ॥ स्वरादित्येव । मोंडं । कोंडं ॥ असंयुक्तस्येत्येव । खग्गो ॥ अनादेरित्येव । रमइ डिम्भो ॥ प्रायो ग्रहणात् क्वचिद् विकल्पः । वलिसं वडिसं । दालिमं दाडिमं । गुलो गुडो । णाली णाडी । णलं णडं । आमेलो आवेडो ॥ क्वचिन्न भवत्येव । निबिडं । गउडो । पीडिअं । नीडं । उडू तडी ॥

अर्थः- यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् हलन्त - (स्वर रहित) भी - न हो तथा आदि में भी स्थित न हों; तो उस 'ड' वर्ण का प्रायः 'ल' होता है। जैसे- वडवामुखम्= वलयामुहं ॥ गरुडः = गरुलो ॥ तडागम् = तलायं । क्रीडति= कीलइ ॥

प्रश्नः- " स्वर से परे रहता हुआ हो " ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः-क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'ड' का 'ल' नहीं होगा। जैसेः- मुण्डम्= मोंडं और कुण्डम्= कोंडं इत्यादि ॥

प्रश्नः- ' संयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये; अर्थात् असंयुक्त याने स्वर से युक्त होना चाहिये ' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः-क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण संयुक्त होगा - हलन्त होगा - स्वर से रहित होगा; तो उस 'ड' वर्ण का 'ल' नहीं होगा। जैसेः- खड्गः= खग्गो ॥

प्रश्नः- " अनादि रूप से स्थित हो; शब्द के आदि स्थान पर स्थित नहीं हो; शब्द में प्रारंभिक-अक्षर रूप से स्थित नहीं हो; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः- क्योंकि यदि किसी शब्द में 'ड' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा; तो उस 'ड' का 'ल' नहीं होगा। जैसेः- रमते डिम्भः= रमइ डिम्भो ॥

प्रश्नः- " प्रायः " अव्यय का ग्रहण क्यों किया गया है ?

उत्तरः-" प्रायः " अव्यय का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ; असंयुक्त और अनादि होता हुआ हो तो भी उस 'ड' वर्ण का 'ल' वैकल्पिक रूप से होता है। जैसेः- बडिशम् =बलिसं अथवा बडिसं ॥ दाडिमम् =दालिमं अथवा दाडिमं ॥ गुडः=

गुलो अथवा गुडो ॥ नाडीः= णाली अथवा णाडी ॥ नडम्= णलं अथवा णडं ॥ आपीडः= आमेलो अथवा आमेडो ॥ इत्यादि ॥

किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'ड' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ; असंयुक्त एवं अनादि रूप हो; तो भी उस 'ड' वर्ण का 'ल' नहीं होता है। जैसे:-- निबिडम्=निबिडं ॥ गौडः= गउडो ॥ पीडितम्= पीडिअं ॥ नीडम्= नीडं ॥ उडुः= उडू ॥ तडित्= तडी ॥ इत्यादि ॥

वडवामुखम्:-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वलयामुहं होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'व्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'व' में से शेष 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' को 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वलयामुहं* रूप सिद्ध हो जाता है। गरुडः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गरुलो होता है। इसमें सूत्र- संख्या १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गरुलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तडागम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तलायं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ग्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'ग' में से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तलायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्रीडति संस्कृत अकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप कीलइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०२ से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कीलइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मोंडं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११६ में की गई है।

कुण्डम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कोंडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११६ से 'उ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; १-२५ से 'ण्' के स्थान पर पूर्व व्यञ्जन पर अनुस्वार की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कोंडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

खग्गो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३४ में की गई है।

रमते संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप रमइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ते' प्रत्यय के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रमइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

डिम्भः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप डिम्भो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *डिम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाडिशम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बलिसं और वडिसं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२३७ से 'ब' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १-२०२ से वैकल्पिक विधान के अनुसार 'ड' के स्थान पर विकल्प रूप से 'ल' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वलिसं* और *वडिसं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दाडिमम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दालिमं और दाडिमं होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२०२ से वैकल्पिक विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *दालिमं* और *दाडिमं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

गुडः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गुलो और गुडो होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२०२ से वैकल्पिक- विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुलो* और *गुडो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नाडी संस्कृत रूप है। इसमें प्राकृत रूप णाली और णाडी होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-२०२ से वैकल्पिक- विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति होकर *णाली* और *णाडी* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नडम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णलं और णडं होते हैं। इनमें सूत्र- संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-२०२ से वैकल्पिक- विधान के अनुसार विकल्प से 'ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णलं* और *णडं* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आमेलो रूप की सिद्धि सूत्र- संख्या *१—१०५* में की गई है।

आपीडः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आमेडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३४ से वैकल्पिक रूप से 'प्' के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति; १-१०५ से 'ई' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *आमेडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निबिडम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निबिडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *निबिडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गउडो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१६२ में की गई है।

पीडितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पीडिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पीडिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीडं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१०६ में की गई है।

उडुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उडू होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर उडू रूप सिद्ध हो जाता है।

तडिद्—(अथवा तडित्) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तडी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से 'द्' अथवा 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *तडी* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२०२॥

वेणौ णो वा ॥ १–२०३ ॥

वेणौ णस्य लो वा भवति ॥ वेलू । वेणू ॥

अर्थः—वेणु शब्द में स्थित 'ण' का विकल्प से 'ल' होता है। जैसेः—वेणुः=वेलू अथवा वेणू ॥

वेणुः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वेलू और वेणू होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२०३ से 'ण' के स्थान पर विकल्प से 'ल' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर वेलू और वेणू रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १–२०३ ॥

तुच्छे तश्च-छौ वा ॥ १–२०४ ॥

तुच्छ शब्दे तस्य च छ इत्यादेशौ वा भवतः ॥ चुच्छं । छुच्छं । तुच्छं ॥

अर्थः—तुच्छ शब्द में स्थित 'त्' के स्थान पर वैकल्पि रूप से और क्रम से 'च' अथवा 'छ' का आदेश होता है। जैसेः—तुच्छम्=चुच्छं अथवा छुच्छं अथवा तुच्छं ॥

तुच्छम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप चुच्छं; छुच्छं और तुच्छं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२०४ से 'त्' के स्थान पर क्रम से और वैकल्पिक रूप से 'च्' अथवा 'छ्' का आदेश; ३-२५ से

प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से चुच्छं; छुच्छं और तुच्छं रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२०४ ॥

तगर-त्रसर-तूवरे टः ॥ १-२०५ ॥

एषु तस्य टो भवति ॥ टगरो । टसरो । टूवरो ॥

अर्थः-तगर; त्रसर और तूवर शब्दों में स्थित 'त' का 'ट' होता है। जैसे:-तगरः = टगरो; त्रसरः = टसरो और तूवरः = टूवरो ॥

तगरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टगरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२०५ से 'त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *टगरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रसरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टसरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; १-२०५ से शेष 'त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *टसरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तूवरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप टूवरो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२०५ से 'त' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *टूवरो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२०५ ॥

प्रत्यादौ डः ॥ १—२०६ ॥

प्रत्यादिषु तस्य डो भवति ॥ पडिवन्नं । पडिहासो । पडिहारो । पाडिप्फद्धी । पडिसारो पडिनिअत्तं । पडिमा । पडिवया । पडंसुआ । पडिकरइ । पहुडि । पाहुडं । वावडो । पडाया । बहेडओ । हरडई । मडयं ॥ आर्षे । दुष्कृतम् । दुकडं ॥ सुकृतम् । सुकडं ॥ आहृतम् । आहडं । अवहृतम् । अवहडं । इत्यादि ॥ प्राय इत्येव । प्रति समयम् । पइ समयं ॥ प्रतीपम् । पईवं ॥ संप्रति । संपइ ॥ प्रतिष्ठानम् । पइट्ठाणं ॥ प्रतिष्ठा । पइट्ठा ॥ प्रतिज्ञा । पइण्णा ॥ प्रति । प्रभृति । प्राभृत । व्यापृत । पताका । बिभीतक । हरीतकी । मृतक । इत्यादि ॥

अर्थः—प्रति आदि उपसर्गों में स्थित 'त' का 'ड' होता है। जैसे:-प्रतिपन्नं=पडिवन्नं ॥ प्रतिभासः=पडिहासो ॥ प्रतिहारः=पडिहारो ॥ प्रतिस्पर्द्धिः=पाडिप्फद्धी ॥ प्रतिसारः=पडिसारो ॥ प्रतिनिवृत्तम्=पडिनिअत्तं ॥ प्रतिमा=पडिमा ॥ प्रतिपदा=पडिवया ॥ प्रतिश्रुत्=पडंसुआ ॥ प्रतिकरोति

पडिकरइ ॥ इस प्रकार 'प्रति' के उदाहरण जानना । प्रभृति = पहुडि ॥ प्राभृतम्=पाहुडं ॥ व्यापृतः= वावडो ॥ पताका = पडाया ॥ बिभीतकः = बहेडओ ॥ हरीतकी = हरडई ॥ मृतकम् = मडयं ॥ इन उदाहरणों में भी 'त' का 'ड' हुआ है ॥ आर्ष-प्राकृत में भी 'त' के स्थान पर 'ड' होता हुआ देखा जाता है । जैसेः—दुष्कृतम् = दुक्कडं ॥ सुकृतम् = सुकडं । आहृतम् = आहडं ॥ अवहृतम् = अवहडं ॥ इत्यादि ॥ अनेक शब्दों में ऐसा भी पाया जाता है कि संस्कृत रूपान्तर से प्राकृत रूपान्तर में 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती हुई नहीं देखी जाती है । इसी नियम को आचार्य हेमचन्द्र ने इसी सूत्र की वृत्ति में 'प्रायः' शब्द का उल्लेख करके प्रदर्शित किया है । जैसेः—प्रतिसमयम् = पइसमयं ॥ प्रतीपम् = पईवं ॥ संप्रति= संपइ ॥ प्रतिष्ठानम् = पइट्ठाणं ॥ प्रतिष्ठा = पइट्ठा ॥ प्रतिज्ञा = पइण्णा ॥ इत्यादि ॥

प्रतिपन्नम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप पडिवन्नं होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-२३१ से द्वितीय 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर **पडिवन्नं** रूप सिद्ध हो जाता है ।

प्रतिभासः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप पडिहासो होता है । इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर **पडिहासो** रूप सिद्ध हो जाता है ।

प्रतिहारः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप पडिहारो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **पडिहारो** रूप सिद्ध हो जाता है ।

पाडिप्फद्धी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १—४४ में की गई है ।

प्रतिसारः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप पडिसारो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर **पडिसारो** रूप सिद्ध हो जाता है ।

प्रतिनिवृतम् संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप पडिनिअत्तं होता है । इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१२६ से शेष 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन से अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर **पडिनिअत्तं** रूप सिद्ध हो जाता है ।

प्रतिमा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होकर *पडिमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाडिप्पया रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४४ में की गई है।

पइंसुआ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

प्रति करोति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिकरइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप;; १-२०६ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ४-२३४ से 'करो' क्रिया के मूल रूप 'कृ' धातु में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'अर्' की प्राप्ति; ४-२३९ से प्राप्त 'अर्' में स्थित हलन्त 'र्' में 'अ' रूप आगम की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **पडिकरइ** रूप सिद्ध हो जाता है।

पहुडि रूप की सिद्ध सूत्र - संख्या १-१३१ में की गई है।

पाहुडं रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-१३१ में की गई है।

व्यापृतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वावडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वावडो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पताका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडाया होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०६ से 'त्' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और १-१८० से लुप्त 'क्' में से शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'या' होकर *पडाया* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहेडओ रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-८८ में की गई है।

हरडई रूप की सिद्धि सूत्र - संख्या १-९९ में की गई है।

मृतकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मडयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मडयं* रूप की सिद्धि हो जाती है।

दुष्कृतम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में दुक्कडं रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति;

१-२०६ से 'त' को 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुक्कडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुकृतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुक्कडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-९९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' को 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुक्कडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आहृतं संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आहडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' को 'ड' प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आहडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवहृतं संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अवहडं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अवहडं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिसमयं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पइसमयं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पइसमयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतीपम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पईवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-२३१ से द्वितीय 'प' को 'व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि- प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पईवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संप्रति संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप संपइ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और १-१७७ से ,त्' का लोप होकर *संपइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिष्ठानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पइट्ठाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से शेष 'ठ्' को द्वितीय 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पइट्ठाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

સુરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ શાહ

पइट्ठा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-३८* में की गई है।

प्रतिज्ञा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पइण्णा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१७७ से 'त्' का लोप; २-४२ से ज्ञ् के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; और २-८९ से प्राप्त 'ण्' को द्वित्व ण्ण् की प्राप्ति होकर *पइण्णा* रूप सिद्ध हो जाता है॥ १-२०६ ॥

इत्वे वेतसे ॥ १-२०७ ॥

वेतसे तस्य डो भवति इत्वे सति ॥ वेडिसो ॥ इत्व इति किम् । वेअसो ॥ इः स्वप्ना-दौ [१-४६] इति इकारो न भवति इत्व इति व्यावृत्तिबलात् ॥

अर्थः—वेतस शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति उस अवस्था में होती है; जबकि 'त' में स्थित 'अ' स्वर सूत्र-संख्या १-४६ से 'इ' स्वर में परिणत हो जाता हो। जैसेः—वेतसः=वेडिसो ॥

प्रश्नः—वेतस शब्द में स्थित 'त' में रहे हुए 'अ' को 'इ' में परिणत करने की अनिवार्यता का विधान क्यों किया है?

उत्तरः—वेतस शब्द में स्थित 'त' का 'ड' उसी अवस्था में होगा; जब कि उस 'त' में स्थित 'अ' स्वर को 'इ' स्वर में परिणत कर दिया जाय; तदनुसार यदि 'त' का 'ड' नहीं किया जाता है; तो उस अवस्था में 'त' में रहे हुए 'अ' स्वर को 'इ' स्वर में परिणत नहीं किया जायगा। जैसेः—वेतसः=वेअसो॥ इस प्रकार सूत्र-संख्या १-४६-(इः स्वप्नादौ)-के अनुसार 'अ' के स्थान पर प्राप्त होने वाली 'इ' का यहाँ पर निषेध कर दिया गया है। इस प्रकार का नियम 'व्याकरण की भाषा' में 'व्यावृत्तिवाचक' नियम कहलाता है। तदनुसार 'व्यावृत्ति के बल से' 'इत्व' की प्राप्ति नहीं होती है।

वेडिसोः—रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-४६* में की गई है।

वेतसः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वेअसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *वेअसो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२०७ ॥

गर्भितातिमुक्तके णः ॥ १-२०८ ॥

अनयोस्तस्य णो भवति ॥ गब्भिणो अणिउँतयं ॥ क्वचिन्न भवत्यपि । अइमुत्तयं ॥ कथम् एरावणो । ऐरावण शब्दस्य । एरावओ इति तु ऐरावतस्य ॥

अर्थः—गर्भित और अतिमुक्तक शब्दों में स्थित 'त' को 'ण' की प्राप्ति होती है। अर्थात् 'त' के स्थान पर 'ण' का आदेश होता है। जैसेः—गर्भितः—गब्भिणो ॥ अतिमुक्तकम्=अणिउँतयं ॥ कभी कभी

'अतिमुक्तक' शब्द में स्थित प्रथम 'त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होती हुई नहीं देखी जाती है जैसे:- अतिमुक्तकम्=अइमुत्तयं ॥

प्रश्नः—क्या 'एरावणो' प्राकृत शब्द संस्कृत 'ऐरावत' शब्द से रूपान्तरित हुआ है ? और क्या इस शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति हुई है ?

उत्तर:—प्राकृत 'एरावणो' शब्द संस्कृत 'ऐरावणः' शब्द से रूपान्तरित हुआ है; अतः इस शब्द में 'त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है। प्राकृत शब्द 'एरावओ' का रूपान्तर 'ऐरावतः' संस्कृत शब्द से हुआ है। इस प्रकार एरावणो और एरावओ प्राकृत शब्दों का रूपान्तर क्रम से ऐरावणः और ऐरावतः संस्कृत शब्दों से हुआ है। तदनुसार एरावणो में 'त' के स्थान 'ण' की प्राप्ति होने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है।

गर्भितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गब्भिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'भ्' को द्वित्व 'भ्भ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ' को 'ब्' की प्राप्ति; १-२०८ से 'त्' को ण् की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गब्भिणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अणिउँतयं और *अइमुत्तयं* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

एरावणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४८ में की गई है।

एरावतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप एरावओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *एरावओ* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२०८ ॥

रुदिते दिना ण्णः ॥ १-२०९ ॥

रुदिते दिना सह तस्य द्विरुक्तो णो भवति ॥ रुण्णं ॥ अत्र केचिद् ऋत्वादिषु द इत्यारब्धवन्तः स तु शौरसेनी मागधी-विषय एव दृश्यते इति नोच्यते। प्राकृते हि। ऋतुः। रिऊ। उऊ ॥ रजतम्। रययं ॥ एतद्। एअं ॥ गतः। गओ ॥ आगतः। आगओ ॥ सांप्रतम्। संपयं ॥ यतः। जओ ॥ ततः। तओ ॥ कृतम्। कयं ॥ हतम्। हयं ॥ हताशः। हयासो ॥ श्रुतः। सुओ ॥ आकृतिः। आकिई ॥ निर्वृतः। निव्वुओ ॥ तातः। ताओ ॥ कतरः। कयरो ॥ द्वितीयः। दुइओ इत्यादयः प्रयोगा भवन्ति। न पुनः उदू रयदं इत्यादि ॥ क्वचित् भावे पि व्यत्ययश्च (४-४४७) इत्येव सिद्धम् ॥ दिही इत्येतदर्थं तु धृतेर्दिहिः (२-१३१) इति वक्ष्यामः ॥

अर्थः—'रुदित' शब्द में रहे हुए 'दि' सहित 'त' के स्थान पर अर्थात् 'दित' शब्दांश के स्थान पर द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति होती है। याने 'दित' के स्थान पर 'ण्ण' आदेश होता है जैसे:-रुदितम्=रुण्णं ॥ 'त' वर्ण से संबंधित विधि-विधानों के वर्णन में कुछ एक प्राकृत-व्याकरणकार 'ऋत्वादिषु द' अर्थात् ऋतु आदि शब्दों में स्थित 'त' का 'द' होता है' ऐसा कहते हैं; वह कथन प्राकृत-भाषा के लिये उपयुक्त नहीं है। क्योंकि 'त' के स्थान 'द' की प्राप्ति शौरसेनी और मागधी भाषाओं में ही होती हुई देखी जाती है। न कि प्राकृत-भाषा में ॥ अधिकृत-व्याकरण प्राकृत भाषा का है; अतः इसमें 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति नहीं होती है। उपरोक्त कथन के समर्थन में कुछ एक उदाहरण इस प्रकार है:-ऋतुः=रिऊ अथवा 'उऊ' ॥ रजतम्=रययं ॥ एतद्=एअं ॥ गतः=गओ ॥ आगतः=आगओ ॥ सांप्रतम्=संपयं ॥ यतः=जओ ॥ ततः=तओ ॥ कृतम्=कयं ॥ हतम्=हयं ॥ हताशः=हयासो ॥ श्रुतः=सुओ ॥ आकृतिः=आकिई ॥ निर्वृतः= निव्वुओ ॥ तातः=ताओ ॥ कतरः=कयरो ॥ और द्वितीयः=दुइओ ॥ इत्यादि 'त' संबंधित प्रयोग प्राकृत-भाषा में पाये जाते हैं ॥ प्राकृत-भाषा में 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति नहीं होती है। केवल शौरसेनी और मागधी भाषा में ही 'त' के स्थान पर 'द' का आदेश होता है। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं:-ऋतुः=उदू अथवा रुदू ॥ रजतम्=रयदं इत्यादि ॥

यदि किन्हीं किन्हीं शब्दों में प्राकृत-भाषा में 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति होती हुई पाई जाय तो उसको सूत्र-संख्या ४-४४७ से वर्ण-व्यत्यय अर्थात् अक्षरों का पारस्परिक रूप से अदला-बदली का स्वरूप समझा जाय; न कि 'त' के स्थान पर 'द' का आदेश माना जाय ॥ इस प्रकार से सिद्ध हो गया कि केवल शौरसेनी एवं मागधी भाषा में ही 'त' के स्थान पर 'द' की प्राप्ति होती है; न कि प्राकृत-भाषा में ॥ दिही' ऐसा जो रूप पाया जाता है; वह धृति शब्द का आदेश रूप शब्द है; और ऐसा उल्लेख आगे सूत्र संख्या २-१३१ में किया जायगा। इस प्रकार उपरोक्त स्पष्टीकरण यह प्रमाणित करता है कि प्राकृत-भाषा में 'त' के स्थान पर 'द' का आदेश नहीं हुआ करता है; तदनुसार प्राकृत-प्रकाश नामक प्राकृत-व्याकरण में 'ऋत्वादिषु तोदः' नामक जो सूत्र पाया जाता है। उस सूत्र के समान-अर्थक सूत्र-रचने की इस प्राकृत-व्याकरण में आवश्यकता नहीं है। ऐसा आचार्य हेमचन्द्र का कथन है।

रुदितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रुण्णं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२०९ से 'दित' शब्दांश के स्थान पर द्वित्व 'ण्ण' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रुण्णं रूप सिद्ध हो जाता है।

रिऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४१ में की गई है।

उऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है।

रययं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

एतद् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एअं होता है। इस में सूत्र संख्या १-११ से अन्त्य हलन्त व्यन्जन 'द्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *एअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

आगतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आगओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आगओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सांप्रतम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संपयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संपयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

यतः संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' को 'ज' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; और १-३७ से विसर्ग को 'ओ' की प्राप्ति होकर *जओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ततः संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और १-३७ से विसर्ग को 'ओ' की प्राप्ति होकर *तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कयं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२६ में की गई है।

हतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हताशः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप हयासो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लुप्त 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' को 'स' की

प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' होकर *हयासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुत: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

आकृति: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आकिई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' को 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ-स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *आकिई* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वृत: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निव्वुओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१३१ से 'ऋ' को 'उ' की प्राप्ति; २-८९ से 'व्' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निव्वुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तात: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ताओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'अ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ताओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कतर: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कयरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुइओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९४ में की गई है।

ऋतु: संस्कृत रूप है। इसका शौरसेनी और मागधी भाषा में उदू रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१३१ से 'ऋ' को 'उ' की प्राप्ति; ४-२६० से 'त्' को 'द्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *उदू* रूप सिद्ध हो जाता है।

रजतम् संस्कृत रूप है। इसका शौरसेनी और मागधी भाषा में रयदं रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ४-२६० से 'त' को 'द' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्तिः और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रययं रूप सिद्ध हो जाता है।

धृतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दिही होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३१ से 'धृति' के स्थान पर 'दिहि' रूप का आदेश और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *दिही* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२०९ ॥

सप्ततौ रः ॥ १-२१० ॥

सप्ततौ तस्य रो भवति ॥ सत्तरी ॥

अर्थः—सप्तति शब्द में स्थित द्वितीय 'त' के स्थान पर 'र्' का आदेश होता है। जैसेः—सप्ततिः =सत्तरी ॥

सप्ततिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सत्तरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से प्रथम 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-२१० से द्वितीय 'त्' के स्थान पर 'र्' का आदेश और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त रूप में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *सत्तरी* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२१० ॥

अतसी-सातवाहने लः ॥ १-२११ ॥

अनयोस्तस्य लो भवति ॥ अलसी । सालाहणो । सालवाहणो । सालाहणी भासा ॥

अर्थः—अतसी और सातवाहन शब्दों में रहे हुए 'त' वर्ण के स्थान पर 'ल' वर्ण की प्राप्ति होती है। जैसेः—अतसी=अलसी ॥ शातवाहनः=सालाहणो और सालवाहणो ॥ शातवाहनी भाषा=सालाहणी भासा ॥

अतसी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अलसी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२११ से 'त्' के स्थान पर 'ल' का आदेश होकर *अलसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सालाहणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

शातवाहनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सालवाहणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२११ से 'त' के स्थान पर 'ल' का आदेश; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सालवाहणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शातवाहनी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सालाहणी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२११ से 'त' के स्थान पर 'ल' का आदेश; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-५ से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'आ' की पूर्व वर्ण 'ल' के साथ संधि होकर 'ला' की प्राप्ति और १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति होकर *सालाहणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

भाषा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भासा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स' होकर *भासा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२११ ॥

पलिते वा ॥ १-२१२ ॥

पलिते तस्य लो वा भवति ॥ पलिलं । पलिअं ॥

अर्थः—पलित शब्द में स्थित 'त' का विकल्प से 'ल' होता है।

जैसेः—पलितम्=पलिलं अथवा पलिअं ॥

पलितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पलिलं और पलिअं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१२ से प्रथम रूप में 'त' के स्थान पर विकल्प से 'ल' आदेश की प्राप्ति; और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से पलिलं और पलिअं दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥१-२१२ ॥

पीते वो ले वा ॥ १—२१३ ॥

पीते तस्य वो वा भवति स्वार्थलकारे परे ॥ पीवलं ॥ पीअलं ॥ ल इति किम् । पीअं ॥

अर्थः—'पीत' शब्द में यदि 'स्वार्थ-बोधक' अर्थात् 'वाला' अर्थ बतलाने वाला 'ल' प्रत्यय जुड़ा हुआ हो तो 'पीत' शब्द में रहे हुए 'त' वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'व' वर्ण का आदेश हुआ करता है। जैसेः—पीतलम्=पीवलं अथवा पीअलं=पीले रंग वाला ॥

प्रश्नः—मूल-सूत्र में 'ल' वर्ण का उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तरः—'ल' वर्ण संस्कृत-व्याकरण में 'स्वार्थ-बोधक' अवस्था में शब्दों में जोड़ा जाता है। तदनुसार यदि 'पीत' शब्द में स्वार्थ-बोधक 'ल' प्रत्यय जुड़ा हुआ हो; तभी 'पीत' में स्थित 'त' के स्थान पर 'व' वर्ण का वैकल्पिक रूप से आदेश होता है; अन्यथा नहीं। इसी तात्पर्य को समझाने के लिये मूल-सूत्र में 'ल' वर्ण का उल्लेख किया गया है। स्वार्थ-बोधक 'ल' प्रत्यय के अभाव में पीत शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'व' वर्ण का आदेश नहीं होता है। जैसेः-पीतम्=पीअं ॥

पीतलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पीअलं और पीअलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२१३ से वैकल्पिक रूप से 'त' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पीवलं* और *पीअलं* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥

पीतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पीअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पीअं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१३ ॥

वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिंगे हः ॥ १-२१४ ॥

एषु तस्य हो भवति ॥ विहत्थी। वसही ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति। वसई। भरहो। काहलो। माहुलिङ्गं। मातुलुङ्ग शब्दस्य तु माउलुङ्गम् ॥

अर्थः— वितस्ति शब्द में स्थित प्रथम 'त' के स्थान पर और वसति, भरत, कातर तथा मातुलिङ्ग शब्दों में स्थित 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसे:—वितस्तिः=विहत्थी; वसतिः=वसही; भरतः=भरहो; कातरः=काहलो; और मातुलिङ्गम्=माहुलिङ्गं ॥ 'बहुलाधिकार' सूत्र के आधार से किसी किसी शब्द में 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसे:—वसतिः=वसई ॥ मातुलुङ्ग शब्द में स्थित 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होती है। अतः मातुलुङ्गम् रूप का प्राकृत रूप माउलुङ्गं होता है।

वितस्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विहत्थी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१४ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *विहत्थी* रूप सिद्ध हो जाता है।

वसतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वसही और वसई होते हैं। इनमें प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२१४ से 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२ के अधिकार से तथा १-१७७ से 'त्' का लोप; तथा दोनों रूपों में सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर क्रम से *वसही* और *वसई* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥

भरत: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भरहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२१४ से 'त' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भरहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कातरः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप काहलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१४ से 'त' के स्थान पर 'ह' को प्राप्ति; १-२५४ से 'र' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *काहलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातुलिंगम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माहुलिंगं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२१४ से 'त्' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *माहुलिंगं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मातुलुङ्गम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप माउलुङ्गं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर माउलुङ्गम् रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१४ ॥

मेथि-शिथिर-शिथिल-प्रथमे थस्य ढः ॥ १-२१५ ॥

एषु थस्य ढो भवति। हापवादः॥ मेढी। सिढिलो। सिढिलो। पढमो॥

अर्थः-सूत्र-संख्या १-१८७ में यह विधान किया गया है कि संस्कृत-शब्दों में स्थित 'थ' का प्राकृत रूपान्तर में 'ह' होता है। किन्तु यह सूत्र उक्त सूत्र का अपवाद रूप विधान है। तदनुसार मेथि; शिथिर; शिथिल और प्रथम शब्दों में स्थित 'थ' का 'ढ' होता है। जैसे:-मेथिः=मेढी; शिथिरः=सिढिलो; शिथिलः=सिढिलो और प्रथमः=पढमो॥ इस अपवाद रूप विधान के अनुसार उपरोक्त शब्दों में 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति नहीं होकर 'ढ' की प्राप्ति हुई है।

मेथिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मेढी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *मेढी* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिथिरः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सिढिलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिढिलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शिथिलः संस्कृत विशेषण रूप है इसका प्राकृत रूप सिढिलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिढिलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रथमः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पढमो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२१५ से 'थ' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पढमो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१५ ॥

निशीथ-पृथिव्यो र्वा ॥ १-२१६ ॥

अनयोस्थस्य ढो वा भवति ॥ निसीढो । निसीहो ॥ पुढवी ॥ पुहवी ॥

अर्थः—निशीथ और पृथिवी शब्दों में स्थित 'थ' का विकल्प से 'ढ' होता है। तदनुसार प्रथम रूप में 'थ' का 'ढ' और द्वितीय रूप में 'थ' का 'ह' होता है। जैसे:-निशीथः=निसीढो अथवा निसीहो और पृथिवी=पुढवी अथवा पुहवी ॥

निशीथः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप निसीढो और निसीहो होते हैं इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२१६ से प्रथम रूप में 'थ' का 'ढ' और १-१८७ से द्वितीय रूप में 'थ' का 'ह'; और ३-२ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *निसीढो* और *निसीहो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पुढवी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८८ में की गई है।

पृथिवी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुहवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' का 'उ'; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; और १-८८ से 'थि' में स्थित 'इ' को 'अ' की प्राप्ति होकर पुहवी रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२१६ ॥

दशन-दष्ट-दग्ध-दोला-दण्ड-दर-दाह-दम्भ-दर्भ-कदन-दोहदे दो वा डः ॥ १-२१७ ॥

एषु दस्य डो वा भवति ॥ डसणं दसणं ॥ डट्ठो दट्ठो ॥ डड्ढो दड्ढो ॥ डोला दोला ॥ डण्डो दण्डो ॥ डरो दरो ॥ डाहो दाहो ॥ डम्भो दम्भो ॥ डब्भो दब्भो ॥ कडणं कयणं । डोहलो दोहलो ॥ दर शब्दस्य च भयार्थवृत्ते रेव भवति । अन्यत्र दर-दलिअं ॥

अर्थः—दशन, दष्ट, दग्ध, दोला, दण्ड, दर, दाह, दम्भ, दर्भ, कदन और दोहद शब्दों में स्थित 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' होता है। जैसे:—दशनम्=डसणं अथवा दसणं ॥ दष्टः=डट्ठो अथवा दट्ठो ॥ दग्धः=डड्ढो अथवा दड्ढो ॥ दोला=डोला अथवा दोला ॥ दण्डः=डण्डो अथवा दण्डो ॥ दरः=डरो अथवा दरो ॥ दाहः=डाहो अथवा दाहो ॥ दम्भः=डम्भो अथवा दम्भो ॥ दर्भः= डब्भो अथवा दब्भो ॥ कदनम्= कडणं अथवा कयणं ॥ दोहदः=डोहलो अथवा दोहलो ॥ 'दर' शब्द में स्थित 'द्' का वैकल्पिक रूप से प्राप्त होने वाला 'ड' उसी अवस्था में होता है; जबकि दर'शब्द' का अर्थ 'डर' अर्थात् भय-वाचक हो; अन्यथा 'दर' के 'द' का 'ड' नहीं होता है। जैसे:—दर-दलितम् = दर-दलिअं ॥ तदनुसार 'दर' शब्द का अर्थ भय नहीं होकर 'थोड़ा सा' अथवा 'सूक्ष्म' अर्थ होने पर 'दर' शब्द में स्थित 'द' का प्राकृत रूप में 'द' ही रहा है। नाकि 'द' का 'ड' हुआ है। ऐसी विशेषता 'दर' शब्द के सम्बन्ध में जानना ॥

दशनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डसणं और दसणं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से डसणं और दसणं दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दष्टः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप डट्ठो और दट्ठो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; २-३४ से 'ष्ट' का 'ठ'; २-८९ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से डट्ठो और दट्ठो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दग्धः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप डड्ढो और दड्ढो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; २-४० से 'ग्ध' का 'ढ'; २-८९ से प्राप्त 'ढ' का द्वित्व 'ढ्ढ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से डड्ढो और दड्ढो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दोला संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डोला और दोला होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' होकर क्रम से *डोला* और *दोला* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दण्डः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डण्डो और दण्डो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; १-३० से अनुस्वार का आगे 'ड' होने से हलन्त 'ण्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से डण्डो और दण्डो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डरो और दरो होते हैं इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के

स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डरो* और *दरो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दाहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डाहो और दाहो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डाहो* और *दाहो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दम्भः संस्कृत रूप है इसके प्राकृत रूप डम्भो और दम्भो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *डम्भो* और *दम्भो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दर्भः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डब्भो और दब्भो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'भ' का द्वित्व 'भभ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' का 'ब्'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *डब्भो* और *दब्भो* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

कदनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कडणं और कयणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२१७ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड' और द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप तथा १-१८० से लोप हुए 'द' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से दोनों रूपों में 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कडणं* और *कयणं* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

दोहदः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप डोहलो और दोहलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२१७ से प्रथम 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ड'; १-२२१ से द्वितीय 'द' का 'ल'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *डोहलो* और *दोहलो* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

दर-दलितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दर-दलिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दर-दलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२१७॥

दंश-दहोः ॥१-२१८॥

अनयो र्धात्वोर्दस्य डो भवति ॥ डसइ । डहइ ॥

अर्थः—दंश और दह धातुओं में स्थित 'द' का प्राकृत रूपान्तर में 'ड' हो जाता है। जैसेः—दशति=डसइ॥ दहति=डहइ॥ *दशति* संस्कृत सकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप डसइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१८ से 'द' का 'ड'; १-२६० से 'श' का 'स' और ३-१३६ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत में प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **डसइ** रूप सिद्ध हो जाता है।

दहति संस्कृत सकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप डहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२१८ से 'द' का 'ड' और ३-१३६ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **डहइ** रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२१८ ॥

संख्या-गद्गदे रः १-२१६ ॥

संख्यावाचिनि गद्गद् शब्दे च दस्य रो भवति॥ एआरह। बारह॥ तेरह। गग्गरं। अनादेरित्येव। ते दस॥ असंयुक्तस्येत्येव॥ चउद्दह॥

अर्थः—संख्या वाचक शब्दों में और गद्गद् शब्द में रहे हुए 'द' का 'र' होता है। जैसेः—एकादश=एआरह॥ द्वादश=बारह॥ त्रयोदश=तेरह॥ गद्गदम्=गग्गरं॥

'सूत्र संख्या १-१७६ का विधान-क्षेत्र यह सूत्र भी है; तदनुसार संख्या-वाचक शब्दों में स्थित 'द' यदि अनादि रूप से ही हो; अर्थात् संख्या-वाचक शब्दों में आदि रूप से स्थित नहीं हो; तभी उस 'द' का 'र' होता है।

यदि संख्या-वाचक शब्दों में 'द' आदि अक्षर रूप से स्थित है; तो उस 'द' का 'र' नहीं होता है। ऐसा बतलाने के लिये ही इस सूत्र की वृत्ति में 'अनादेः' रूप शब्द का उल्लेख करना पड़ा है। जैसेः—त्रय दश=ते दस॥

सूत्र-संख्या १-१७६ के विधान-अन्तर्गत होने से यह विशेषता और है कि संख्या-वाचक शब्दों में स्थित 'द' का 'र' उसी अवस्था में होता है जबकि 'द' असंयुक्त हो; हलन्त नहीं हो; स्वर सहित हो; इसीलिये सूत्र की वृत्ति में 'असंयुक्त' ऐसा विधान किया गया है। 'संयुक्त' होने की दशा में 'द' का 'र' नहीं होगा। जैसेः—चतुर्दश=चउद्दह॥ इत्यादि॥

एकादश संख्या वाचक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप एआरह होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२१६ से 'द्' का 'र'; और १-२६२ से 'श' का 'ह' होकर **एआरह** रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वादश संख्या वाचक संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप बारह होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-१७४ से वर्ण-व्यत्यय के सिद्धान्तानुसार 'व' के स्थान पर 'ब' का आदेश;

१-२१९ से द्वितीय 'द' का 'र' और १-२६२ से 'श' का 'ह' होकर *बारह* रूप सिद्ध हो जाता है।

तेरह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६५ में की गई है।

गद्गद्गम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गग्गरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; १-२१९ से द्वितीय 'द' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गग्गरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तव दश संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ते दस होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से संस्कृत सर्वनाम 'युष्मद्' के षष्ठी विभक्ति के एक वचन के 'तव' रूप के स्थान पर 'ते' रूप का आदेश; और १-२६० से 'श' का 'स' होकर *ते दस* रूप सिद्ध हो जाता है।

चउद्दह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७१ में की गई है ॥ १-२१९ ॥

कदल्यामद्रुमे ॥ १-२२० ॥

कदली शब्दे अद्रुम-वाचिनि दस्य रो भवति ॥ करली ॥ अद्रुम इति किम् । कयली केली ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द कदली का अर्थ वृक्ष-वाचक केला नहीं होकर मृग-हरिण 'वाचक' अर्थ हो तो उस दशा में कदली शब्द में रहे हुए 'द' का 'र' होता है। जैसेः—कदली=करली अर्थात् मृग विशेष ॥

प्रश्नः—सूत्र में 'अद्रुम' याने वृक्ष अर्थ नहीं ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—यदि 'कदली' का अर्थ पशु-विशेष वाचक नहीं होकर केला-वृक्ष-विशेष वाचक हो तो उस दशा में कदली में रहे हुए 'द' का 'र' नहीं होता है; ऐसा बतलाने के लिये ही सूत्र में 'अद्रुम' शब्द का उल्लेख किया गया है। जैसेः—कदली = कयली अथवा केली अर्थात् केला-वृक्ष विशेष ॥

कदली संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप करली होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२० से 'द' का 'र' होकर *करली* रूप सिद्ध हो जाता है।

कयली और *केली* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६७ में की गई है ॥ १-२२० ॥

प्रदीपि-दोहदे लः ॥ १-२२१ ॥

प्रपूर्वे दीप्यतौ धातौ दोहद-शब्दे च दस्य लो भवति ॥ पलीवेइ । पलित्तं । दोहलो ॥

अर्थः—'प्र' उपसर्ग सहित दीप धातु में और दोहद शब्द में स्थित 'द' का 'ल' होता है। जैसेः— प्रदीपयति=पलीवेइ ॥ प्रदीप्तम्=पलित्तं ॥ दोहदः=दोहलो ॥

प्रदीपयति संस्कृत सकर्मक क्रिया का रूप है। इसका प्राकृत रूप पलीवेइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२२१ से 'द' का 'ल'; १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-१४९ से प्रेरणार्थक प्रत्यय 'णि' के स्थानीय प्रत्यय 'अय' के स्थान पर 'ए' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पलीवेइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रदीप्तम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पलित्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२२१ से 'द' का 'ल'; १-८४ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पलित्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दोहलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२१७ में की गई है। ॥ १-२२१ ॥

कदम्बे वा ॥ १-२२२ ॥

कदम्ब शब्दे दस्य लो वा भवति ॥ कलम्बो । कयम्बो ॥

अर्थः—कदम्ब शब्द में स्थित 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ल' होता है। जैसेः—कदम्बः = कलम्बो अथवा कयम्बो ॥

कदम्बः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कलम्बो अथवा कयम्बो होते हैं। प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२२ से 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कलम्बो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *कयम्बो* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३० में की गई है ॥ १-२२२ ॥

दीपौ धो वा ॥ १-२२३ ॥

दीप्यतौ दस्य धो वा भवति ॥ धिप्पइ । दिप्पइ ॥

अर्थ—दीप धातु में स्थित 'द' का वैकल्पिक रूप से 'ध' होता है। जैसे—दीप्यते=धिप्पइ अथवा दिप्पइ ॥

दीप्यते संस्कृत अकर्मक क्रिया का रूप है। इसके प्राकृत रूप धिप्पइ और दिप्पइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-२२३ से 'द्' का वैकल्पिक रूप से 'ध्'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति होकर दोनों रूप धिप्पइ और *दिप्पइ* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२२३ ॥

कदर्थिते वः ॥ १-२२४ ॥

कदर्थिते दस्य वो भवति ॥ कवट्टिओ ॥

अर्थः—कदर्थित शब्द में रहे हुए 'द' का 'व' होता है। जैसे-कदर्थितः=कवट्टिओ ॥

कदर्थितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप कवट्टिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२४ से 'द्' का 'व'; २-२९ से संयुक्त 'र्थ' का 'ट'; २-८९ से प्राप्त 'ट' का द्वित्व 'ट्ट'; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कवट्टिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१-२२४॥

ककुदे हः ॥ १-२२५ ॥

ककुदे दस्य हो भवति ॥ कउहं ॥

अर्थ—ककुद् शब्द में स्थित 'द' का 'ह' होता है। जैसे-ककुद्=कउहं ॥

ककुद् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कउहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; १-२२५ से 'द्' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कउहं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥१-२२५॥

निषधे धो ढः ॥ १-२२६ ॥

निषधे धस्य ढो भवति ॥ निसढो ॥

अर्थः—निषध शब्द में स्थित 'ध' का 'ढ' होता है। जैसे:-निषधः=निसढो ॥

निषधः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निसढो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-२२६ से 'ध' का 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निसढो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२२६ ॥

वौषधे ॥ १-२२७ ॥

औषधे धस्य ढो वा भवति ॥ ओसढं । ओसहं ॥

अर्थः—औषध शब्द में स्थित 'ध' का वैकल्पिक रूप से 'ढ' होता है। जैसे:-औषधम्=ओसढं अथवा ओसहं ॥

औषधम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ओसढं और ओसहं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१५९ से 'औ' का 'ओ'; १-२६० से 'ष' का 'स'; १-२२७ से प्रथम रूप में वैकल्पिक रूप से 'ध' का 'ढ' तथा द्वितीय रूप में १-१८७ से 'ध' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *ओसढं* और *ओसहं* सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२२७ ॥

नो णः ॥ १-२२८ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्नस्य णो भवति ॥ कणयं । मयणो । वयणं । नयणं । माणइ ॥ आर्षे ॥ आरनालं । अनिलो । अनलो । इत्याद्यपि ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'न' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् वह 'न' वर्ण हलन्त भी न हो याने स्वर रहित भी न हो; तथा आदि में भी स्थित न हो; शब्द में आदि अक्षर रूप से भी स्थित न हो; तो उस 'न' वर्ण का 'ण' हो जाता है। जैसे:—कनकम्=कणयं। मदनः=मयणो ॥ वचनम्=वयणं नयनम्=नयणं ॥ मानयति=माणइ ॥ आर्ष-प्राकृत में अनेक शब्द ऐसे भी पाये जाते हैं; जिनमें कि 'न' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप होता है; फिर भी उस 'न' वर्ण का 'ण' नहीं होता है। जैसे:=आरनालम्=आरनालं ॥ अनिलः=अनिलो ॥ अनलः= अनलो ॥ इत्यादि ॥

कनकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कणयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' 'ण'; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कणयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मयणो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

वचनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'च्' में से शेष रहे हुए 'अ' का 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नयणं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

मानयति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप माणइ होता है। इनमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; ४-२३९ से संस्कृत धातुओं में प्राप्त होने वाले विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत धातु 'माण्' में स्थित हलन्त 'ण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; और ३-१३९ से

वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माणइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

आरनालम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में आरनालं ही रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आरनालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अनिलः और *अनलः* संस्कृत रूप हैं। आर्ष-प्राकृत में इनके रूप क्रम से अनिलो और अनलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *अनिलो* और *अनलो* रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२२८ ॥

वादौ ॥ १-२२९ ॥

असंयुक्तस्यादौ वर्तमानस्य नस्य णो वा भवति। णरो नरो। णई नई। णेइ नेइ। असंयुक्तस्येत्येव। न्यायः। नाओ॥

अर्थः—किन्हीं किन्हीं शब्दों में ऐसा भी होता है कि यदि 'न' वर्ण आदि में स्थित हो और वह असंयुक्त हो; याने हलन्त न होकर स्वरान्त हो; तो उस 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' हो जाया करता है। जैसेः–नरः= णरो अथवा नरो। नदी=णई अथवा नई॥ नेति=णेइ अथवा नेइ॥

प्रश्नः—'शब्द के आदि में स्थित 'न' असंयुक्त होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—यदि शब्द के आदि में स्थित होता हुआ भी 'न' वर्ण हलंत हुआ; संयुक्त हुआ तो उस 'न' वर्ण का 'ण' नहीं होता है ऐसा बतलाने के लिये 'असंयुक्त' विशेषण का प्रयोग किया गया है। जैसेः— न्यायः= नाओ॥

नरः संस्कृत रूप है इसके प्राकृत रूप णरो और नरो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *णरो* और *नरो* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नदी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णई और नई होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' और १-१७७ से 'द्' का लोप होकर *णई* और *नई* दोनों रूप क्रम से सिद्ध होजाते हैं।

नेति संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप णेइ और नेइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण' और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *णइ* और *नेइ* दोनों रूप क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

न्यायः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से प्रथम 'य' का लोप; १-१७७ से द्वितीय 'य्' का भी लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नाओ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२२९ ॥

निम्ब-नापिते-ल-ण्हं वा ॥ १-२३० ॥

अनयानस्य ल ण्ह इत्येतौ वा भवतः ॥ लिम्बो निम्बो । ण्हाविओ नाविओ ॥

अर्थः—'निम्ब' शब्द में स्थित 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ल' होता है। तथा 'नापित' शब्द में स्थित 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण्ह' होता है। जैसे:-निम्बः=लिम्बो अथवा निम्बो ॥ नापितः=ण्हाविओ अथवा नाविओ ॥

निम्बः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप लिम्बो और निम्बो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२३० से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लिम्बो* और *निम्बो* दोनों रूपों की क्रम से सिद्धि हो जाती है।

नापितः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप ण्हाविओ और नाविओ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२३० से 'न' का वैकल्पिक रूप से 'ण्ह'; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *ण्हाविओ* और *नाविओ* दोनों रूपों की क्रम से सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२३० ॥

पो वः ॥ १-२३१ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेः पस्य प्रायो वो भवति । सवहो । सावो । उवसग्गो । पईवो । कासवो । पावं । उवमा । कविलं । कुणवं । कलावो । कवालं महि-वालो । गो-वइ । तवइ ॥ स्वरादित्येव । कम्पइ ॥ असंयुक्तस्येत्येव । अप्पमत्तो ॥ अनादेरित्येव । सुहेण पढइ ॥ प्राय इत्येव । कई । रिऊ ॥ एतेन पकारस्य प्राप्तयो र्लोप वकारयोर्यस्मिन् कृते श्रुति सुखमुत्पद्यते स तत्र कार्यः ।

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् हलन्त (स्वर-रहित) भी न हो एवं आदि में भी स्थित न हो; तो उस 'प' वर्ण का प्रायः 'व' होता है। जैसे:-शपथः=सवहो ॥ शापः=सावो ॥ उपसर्गः=उवसग्गो ॥ प्रदीपः=पईवो ॥ काश्यपः=कासवो । पापम्=पावं ॥ उपमा=उवमा ॥ कपिलम्=कविलं ॥ कुणपम्=कुणवं ॥ कलापः=कलावो ॥ कपालम्=कवालं ॥ महि-पालः=महिवालो ॥ गोपायति=गोवइ ॥ तपति=तवइ ॥

प्रश्नः—'स्वर से परे रहता हुआ हो' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'प' का 'ब' नहीं होगा। जैसेः-कम्पते=कम्पइ ॥ इस उदाहरण में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं है; किन्तु हलन्त व्यञ्जन के परे रहा हुआ है; अतः यहाँ पर 'प' का 'व' नहीं हुआ है। यों अन्य उदाहरणों में भी जान लेना ॥

प्रश्नः—'संयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये किन्तु असंयुक्त याने स्वर से युक्त होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण संयुक्त होगा स्वर रहित होगा-हलन्त होगा; तो उस 'प' वर्ण का 'व' नहीं होगा। जैसेः—अप्रमत्तः=अप्पमत्तो ॥ इस उदाहरण में 'प' वर्ण 'र' वर्ण में जुड़ा हुआ होकर संयुक्त है-स्वर रहित है-हलन्त है; अतः यहाँ पर 'प' का 'व' नहीं हुआ है। यही बात अन्य उदाहरणों में भी जान लेना ॥

प्रश्नः—'अनादि रूप से स्थित हो; शब्द में प्रथम अक्षर रूप से स्थित नहीं हो; अर्थात् शब्द में आदि-स्थान पर स्थित नहीं हो;" ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'प' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा; तो उस 'प' वर्ण का 'व' वर्ण नहीं होगा। जैसेः—सुखेन पठति=सुहेण पढइ ॥ इस उदाहरण में 'प' वर्ण 'पठति' क्रियापद में आदि अक्षर रूप से स्थित है; अतः यहाँ पर 'प' का 'व' नहीं हुआ है। इसी प्रकार से अन्य उदाहरणों में जान लेना ॥

प्रश्नः—'प्रायः' अव्यय का ग्रहण क्यों किया गया है ?

उत्तरः—'प्रायः' अव्यय का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि किन्हीं शब्दों में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप होता हुआ हो; तो भी उस 'प' वर्ण का 'व' वर्ण नहीं होता है। जैसेः—कपिः=कई और रिपुः=रिऊ ॥ इन उदाहरणों में 'प' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त भी है और अनादि रूप भी है; फिर भी इन शब्दों में 'प' वर्ण का 'व' वर्ण नहीं हुआ है। यों अन्य शब्दों में भी समझ लेना चाहिये।

अनेक शब्दों में सूत्र संख्या १-१७७ से 'प' का लोप होता है और अनेक शब्दों में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' होता है। इस प्रकार 'प' वर्ण की लोप-स्थिति एवं 'वकार-स्थिति' दोनों अवस्थाएं हैं; इन दोनों अवस्थाओं में से जिस अवस्था-विशेष से सुनने में आनंद आता हो; श्रुति-सुख उत्पन्न होता हो; उसी अवस्था का प्रयोग करना चाहिये; ऐसा सूत्र की वृत्ति में ग्रंथकार का आदेश है। जो कि ध्यान रखने के योग्य है ॥

सवहो और *साहो* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७९ में की गई है।

उपसर्गः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप उवसग्गो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उवसग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रदीपः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पईवो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-२३१ से द्वितीय 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पईवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कासवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४३ में की गई है।

पावं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

उपमा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उवमा होता है। इस में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' होकर *उवमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कपिलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कविलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कविलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुणपम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कुणवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से "प" का "व"; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कुणवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कलापः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कलावो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कलावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

महीपालः संस्कृत है। इसका प्राकृत रूप महिवालो होता है। इस में सूत्र संख्या १-४ से 'ही' में स्थित दीर्घ 'ई' की ह्रस्व 'इ'; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *महिवालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गोपायति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप गोवइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; ४-२३९ से संस्कृत व्यञ्जनान्त धातु 'गोप्' में प्राप्त संस्कृत

धात्विक विकरण प्रत्यय 'आय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गोवइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तपति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप तवइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तवइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कम्पइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३० में की गई है।

अप्रमत्तोः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पमत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' का द्वित्व 'प्प'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अप्पमत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुखेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सुहेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह'; ३-६ से अकारान्त पुल्लिग अथवा नपुंसक लिंग वाले शब्दों में तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'अ' को 'ए' की प्राप्ति होकर *सुहेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पढइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१९९ में की गई है।

कपिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कई होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *कई* रूप सिद्ध हो जाता है।

रिऊ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है। ॥ १-२३१ ॥

पाटि-परुष-परिघ-परिखा-पनस-पारिभद्रे फः ॥ १-२३२ ॥

ण्यन्ते पटि धातौ परुषादिषु च पस्य फो भवति ॥ फालेइ फाडेइ फरुसो फलिहो। फलिहा। फणसो। फालिहद्दो ॥

अर्थः—प्रेरणार्थक क्रिया बोधक प्रत्यय सहित पटि धातु में स्थित 'प' का और परुष, परिघ, परिखा, पनस एवं पारिभद्र शब्दों में स्थित 'प' का 'फ' होता है। जैसेः—पाटयति=फालेइ अथवा फाडेइ ॥ परुषः=फरुसो। परिघः=फलिहो ॥ परिखा=फलिहा ॥ पनसः=फणसो। पारिभद्रः=फालिहद्दो ॥

फालेइ और *फाडेइ* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१९८ में की गई है।

परुष: संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप फरुसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ'; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फरुसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

परिघ: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फलिहो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ'; १-२५४ से 'र' का 'ल'; १-१८७ से 'घ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फलिहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

परिखा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फलिहा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ'; १-२५४ से 'र' का 'ल' और १-१८७ से 'ख' का 'ह' होकर *फलिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पनस: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फणसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३२ से 'प' का 'फ'; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फणसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पारिभद्र: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फालिहद्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३२ से "प" का "फ"; १-२५४ से "र" का "ल"; १-१८७ से "भ" का "ह"; २-७९ से द्वितीय "र्" का लोप; २-८९ से "द" का द्वित्व "द्द" और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फालिहद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२३२ ॥

प्रभूते वः ॥ १-२३३ ॥

प्रभूते पस्य वो भवति ॥ वहुत्तं

अर्थ: प्रभूत विशेषण में स्थित 'प' का 'व' होता है। जैसे:—प्रभूतम्=वहुत्तं ॥

प्रभूतम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वहुत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३३ से 'प' का 'व'; २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' को ह्रस्व स्वर 'उ'; २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वहुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२३३॥

नीपापीडे मो वा ॥१-२३४॥

अनयोः पस्य मो वा भवति ॥ नीमो नीवो ॥ आमेलो आवेडो ॥

अर्थ:—नीप और आपीड शब्दों में स्थित 'प' का विकल्प से 'म' होता है। तदनुसार एक रूप

में तो 'प' का 'म' होता है और द्वितीय रूप में 'प' का 'व' होता है। जैसे:—नीपः=नीमो अथवा नीवो और आपीडः=आमेलो, आवेडो ॥

नीपः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नीमो और नीवो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२३४ से 'प' का विकल्प से 'म' और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व' तथा दोनों ही रूपों में ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नीमो* और *नीवो* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आमेलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१०५ में की गई है।

आवेडो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२०२ में की गई है। ॥ १-२३४ ॥

पापर्द्धौ रः ॥ १-२३५ ॥

पापर्द्धावपदादौ पकारस्य रो भवति ॥ पारद्धी ॥

अर्थः—पापर्द्धि शब्द में रहे हुए द्वितीय 'प' का 'र' होता है। जैसे:—पापर्द्धिः=पारद्धी ॥ इस में विशेष शर्त यह कि 'पापर्द्धि' शब्द वाक्य के प्रारंभ में नहीं होना चाहिये; तभी द्वितीय 'प' का 'र' होता है यह बात वृत्ति में 'अपदादौ' से बतलाई है।

पापर्द्धिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पारद्धी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३५ से द्वितीय 'प' का 'र'; २-७९ से रेफ रूप 'र' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *पारद्धी* रूप सिद्ध हो जाता है।

फो भ-हौ ॥ १-२३६ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेः फस्य भहौ भवतः ॥ क्वचिद् भः । रेफः । रेभो ॥ शिफा । सिभा । क्वचित्तु हः । मुत्ताहलं ॥ क्वचिदुभावपि । सभलं सहलं । सेभालिआ सेहालिआ । सभरी सहरी । गुभइ गुहइ ॥ स्वरादित्येव । गुंफइ ॥ असंयुक्तस्येत्येव । पुप्फं ॥ अनादेरित्येव । चिट्ठइ फणी ॥ प्राय इत्येव । कसण-फणी ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् वह 'फ' वर्ण हलन्त याने स्वर-रहित भी न हो; एवं आदि में भी स्थित न हो; तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' और 'ह' होता है। किसी किसी शब्द में 'भ' होता है। जैसे:—रेफः=रेभो ॥ शिफा=सिभा ॥ किसी किसी शब्द में 'ह' होता है। जैसे:—मुक्ताफलम्=मुत्ताहलं ॥ किसी किसी शब्द में 'फ' का 'भ'

और 'ह' दोनों ही होते हैं। जैसे:-सफलम्=सभलं अथवा सहलं ।। शेफालिका=सेभालिआ अथवा सेहालिआ ।। शफरी=सभरी अथवा सहरी ।। गुफति=गुभइ अथवा गुहइ ।।

प्रश्न:—'स्वर से परे रहता हुआ हो' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं होगा तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होगा। जैसे:—गुम्फति=गुंफइ। इस उदाहरण में 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ नहीं है; किन्तु हलन्त व्यञ्जन 'म्' के परे रहा हुआ है; अतः यहाँ पर 'फ' का 'भ' अथवा 'ह' नहीं हुआ है। ऐसा ही अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना ।।

प्रश्न;—'संयुक्त याने हलन्त नहीं होना चाहिये; किन्तु असंयुक्त याने स्वर से युक्त होना चाहिये' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'फ' वर्ण संयुक्त होगा-स्वर रहित होगा-हलन्त होगा; तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होगा। जैसे:-पुष्पम्=पुप्फं ।। (ग्रंथकार का यह दृष्टान्त यहाँ पर उपयुक्त नहीं है; क्यों कि अधिकृत विषय हलन्त 'फ' का है; न कि किसी अन्य वर्ण का; अतः हलन्त 'फ' का उदाहरण अन्यत्र देख लेना चाहिये।)

प्रश्न:—अनादि रूप से स्थित हो; शब्द में प्रथम अक्षर रूप से स्थित नहीं हो; अर्थात् शब्द में आदि स्थान पर स्थित नहीं हो'; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर:—क्यों कि यदि किसी शब्द में 'फ' वर्ण आदि अक्षर रूप होगा; तो उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होगा। जैसे:-तिष्ठति फणी=चिट्ठइ फणी ।। इस उदाहरण में 'फ' वर्ण 'फणी' पद में आदि अक्षर रूप से स्थित है; अतः यहाँ पर 'फ' का 'भ' अथवा 'ह' नहीं हुआ है। इसी प्रकार से अन्य उदाहरणों में भी जान लेना चाहिये ।।

प्रश्न:—वृत्ति में 'प्रायः' अव्यय का ग्रहण क्यों किया गया है ?

उत्तर:—'प्रायः' अव्यय का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि किन्हीं किन्हीं शब्दों में 'फ' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप होता हुआ हो; तो भी उस 'फ' वर्ण का 'भ' अथवा 'ह' नहीं होता है। जैसे:-कृष्ण-फणी=कसण-फणो ।। इस उदाहरण में 'फ' वर्ण स्वर से परे होता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप है; फिर भी 'फ' वर्ण का न तो 'भ' ही हुआ है; और न 'ह' ही। ऐसा ही अन्य शब्दों के संबंध में भी जान लेना चाहिये ।।

रेफः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रेभो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३६ से 'फ' का 'भ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर रेभो रूप सिद्ध हो जाता है।

शिफा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिभा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' और १-२३६ से 'फ' का 'भ' होकर *सिभा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुक्ताफलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुत्ताहलं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'क्' का लोप; २-८९ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-२३६ से 'फ' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मुत्ताहलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सफलम् संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप सभलं और सहलं होते हैं इनमें सूत्र संख्या १-२३६ से क्रम से प्रथम रूप में 'फ' का 'भ' और द्वितीय रूप में 'फ' का 'ह'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *सभलं* और *सहलं* दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

शेफालिका संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सेभालिआ और सेहालिआ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२३६ से 'फ' का क्रम से प्रथम रूप में 'भ' और द्वितीय रूप में 'फ' का 'ह'; और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर क्रम से *सेभालिआ* और *सेहालिआ* दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

शफरी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सभरी और सहरी होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श'; का 'स'; १-२३६ से क्रम से 'फ' का 'भ' प्रथम रूप में और 'फ' का 'ह' द्वितीय रूप में होकर दोनों *सभरी* और *सहरी* रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

गुफति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसके प्राकृत रूप गुभइ और गुहइ होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२३६ से क्रम से 'फ' का 'भ' प्रथम रूप में और 'फ' का 'ह' द्वितीय रूप में; और ३-१३९ से वर्त्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *गुभइ* और *गुहइ* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं॥

गुम्फति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है; इसका प्राकृत रूप गुंफइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' का अनुस्वार और ३-१३९ से वर्त्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुंफइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुष्पम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुप्फं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-५३ से 'ष्प' का 'फ'; २-८९ से प्राप्त 'फ' का द्वित्व 'फ्फ'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' का 'प्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पुप्फं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चिट्ठइ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१९९ में की गई है।

कृष्ण संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप कसण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-११० से हलन्त 'ष्' में 'अ' की प्राप्ति; और १-२६० से प्राप्त 'ष' का 'स' होकर कसण रूप सिद्ध हो जाता है।

बो वः ॥ १-२३७ ॥

स्वरात् परस्यासंयुक्तस्यानादेर्बस्य वो भवति ॥ अलाबू। अलावू। अलाऊ ॥ शबलः। सवलो ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'ब' वर्ण स्वर से परे रहता हुआ असंयुक्त और अनादि रूप हो; अर्थात् वह 'ब' वर्ण हलन्त याने स्वर रहित भी न हो एवं आदि में भी स्थित न हो; तो उस 'ब' वर्ण का 'व' हो जाता है। जैसे:-अलाबूः=अलाबू अथवा अलावू अथवा अलाऊ ॥ शबलः=सवलो ॥

अलाबू संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अलाबू, और अलावू और अलाऊ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप अलाबू में सूत्र संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ऊकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य दीर्घ स्वर 'ऊ' एवं विसर्ग का दीर्घ स्वर 'ऊ' ही रह कर अलाबू सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२३७ से 'ब' का 'व' और ३-१९ से प्रथम रूप के समान ही प्रथमा विभक्ति का रूप सिद्ध होकर *अलावू* रूप भी सिद्ध हो जाता है। तृतीय रूप *अलाऊ* की सिद्धि सूत्र संख्या १-६६ में की गई है।

शबलः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सवलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२३७ से 'ब' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सवलो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२३७ ॥

बिसिन्यां भः ॥ १-२३८ ॥

बिसिन्यां बस्य भो भवति ॥ भिसिणी ॥ स्त्रीलिंगनिर्देशादिह न भवति। बिस-तन्तु-पेलवाणं ॥

अर्थः—बिसिनी शब्द में रहे हुए 'ब' वर्ण का 'भ' होता है। जैसे:-बिसिनी=भिसिणी ॥ बिसिनी शब्द जहां स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होगा; वहीं पर ही बिसिनी में स्थित 'ब' का 'भ' होगा। किन्तु जहाँ पर 'बिस' रूप निर्धारित होकर नपुंसक लिंग में प्रयुक्त होगा; वहाँ पर 'बिस' में स्थित 'ब' का 'भ' नहीं होगा। जैसे:-बिस-तन्तु-पेलवानाम्=बिस-तन्तु-पेलवाणं ॥ इस उदाहरण में 'बिस' शब्द नपुंसक लिंग में रहा हुआ है; अतः 'बिस' में स्थित 'ब' का 'भ' नहीं हुआ है। यों लिंग-भेद से वर्ण-भेद जान लेना ॥

बिसिनी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भिसिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३८ से 'ब' का 'भ' और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *भिसिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिस-तन्तु-पेलवानाम् संस्कृत षष्ठयन्त वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूपांतर बिस-तन्तु-पेलवाणं होता है। इसमें केवल विभक्ति प्रत्यय का ही अन्तर है। तदनुसार सूत्र-संख्या ३-६ से संस्कृत षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१२ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'व' में रहे हुए 'अ' को 'आ' की प्राप्ति; और १-२७ से 'ण' प्रत्यय पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *बिस-तन्तु पेलवाणं* रूप की सिद्धि हो जाती है॥ १-२३८॥

कबन्धे म-यौ ॥ १-२३९ ॥

कबन्धे बस्य मयौ भवतः ॥ कमन्धो ॥ कयन्धो ॥

अर्थः—कबन्ध शब्द में स्थित 'ब' का कभी 'म' होता है और कभी 'य' होता है। तदनुसार कबन्ध के दो रूप होते हैं। जो कि इस प्रकार हैं:—कमन्धो और कयन्धो॥

कबन्धः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कमन्धो और कयन्धो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२३९ से प्रथम रूप में 'ब' का 'म' और द्वितीय रूप में इसी सूत्रानुसार 'ब' का 'य' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *कमन्धो* और *कयन्धो* की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२३९ ॥

कैटभे भो वः ॥ १-२४० ॥

कैटभे भस्य वो भवति ॥ केढवो ॥

अर्थः—कैटभ शब्द में स्थित 'भ' का 'व' होता है। जैसे:-कैटभः=केढवो॥

केढवो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१४८* में की गई है। ॥ १-२४० ॥

विषमे मो ढो वा ॥ १-२४१ ॥

विषमे मस्य ढो वा भवति ॥ विसढो । विसमो ॥

अर्थः—विषम शब्द में स्थित 'म' का वैकल्पिक रूप से 'ढ' होता है। जैसे:-विषमः=विसढो अथवा विसमो॥

विषमः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप विसढो और विसमो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-२४१ से 'म्' का वैकल्पिक रूप से 'ढ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक

वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *विसढो* और विसमो की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२४१ ॥

मन्मथे वः ॥ १-२४२ ॥

मन्मथे मस्य वो भवति ॥ वम्महो ॥

अर्थः—मन्मथ शब्द में स्थित आदि 'म' का 'व' होता है। जैसे:-मन्मथः=वम्महो ॥

मन्मथः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वम्महो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४२ से आदि 'म' का 'व'; २-६१ से 'न्म' का 'म'; २-८९ से प्राप्त 'म' का द्वित्व 'म्म'; १-१८७ से 'थ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वम्महो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२४२ ॥

वाभिमन्यौ ॥ १-२४३ ॥

अभिमन्यु शब्दे मो वो वा भवति ॥ अहिवन्नू अहिमन्नू ॥

अर्थः—अभिमन्यु शब्द में स्थित 'म' का वैकल्पिक रूप से 'व' होता है।

अभिमन्युः=अहिवन्नू अथवा अहिमन्नू ॥

अभिमन्युः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अहिवन्नू और अहिमन्नू होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' का 'ह'; १-२४३ से 'म' का विकल्प से 'व'; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' का द्वित्व 'न्न' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर क्रम से *अहिवन्नू* और *अहिमन्नू* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं। ॥ १-२४३ ॥

भ्रमरे सो वा ॥ १-२४४ ॥

भ्रमरे मस्य सो वा भवति ॥ भसलो भमरो ॥

अर्थः—भ्रमर शब्द में स्थित 'म' का विकल्प से 'स' होता है। जैसे:-भ्रमरः=भसलो अथवा भमरो ॥

भ्रमरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भसलो और भमरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-२४४ से विकल्प से 'म' का स; १-२५४ से द्वितीय 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भसलो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप;

और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ'प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *भमरो* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२४४ ॥

आदेर्यो जः ॥ १-२४५ ॥

पदादेर्यस्य जो भवति ॥ जसो । जमो । जाइ ॥ आदेरिति किम् । अवयवो । विणओ ॥ बहुलाधिकारात् सोपसर्गस्यानादेरपि । संजमो संजोगो । अवजसो ॥ क्वचिन्न भवति । पओओ ॥ आर्षे लोपोपि । यथाख्यातम् । अहक्खायं ॥ यथाजातम् । अहाजायं ॥

अर्थः—यदि किसी पद अथवा शब्द के आदि में 'य' रहा हुआ हो; तो उस 'य' का प्राकृत रूपान्तर में 'ज' हो जाता है। जैसे:-यशः=जसो ॥ यमः=जमो ॥ याति=जाइ ॥

प्रश्नः—'य' वर्ण पद के आदि में रहा हुआ हो; तभी 'य' का 'ज' होता है; ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—यदि 'य' वर्ण पद के आदि में नहीं होकर पद के मध्य में अथवा अन्त में रहा हुआ हो; अर्थात् 'य' वर्ण पद में अनादि रूप से स्थित हो तो उस 'य' का 'ज' नहीं होता है। जैसे:-अवयवः=अवयवो ॥ विनयः=विणओ ॥ इन उदाहरणों में 'य' अनादि रूप है; अतः इनमें 'य' का 'ज' नहीं हुआ है। यों अन्य पदों के सम्बन्ध में भी जान लेना ॥

'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से यदि कोई पद उपसर्ग सहित है; तो उस उपसर्ग सहित पद में अनादि रूप से रहे हुए 'य' का भी 'ज' हो जाया करता है। जैसे:-संयमः=संजमो ॥ संयोगः=संजोगो ॥ अपयशः=अवजसो ॥ इन उदाहरणों में अनादि रूप से स्थित 'य' का भी 'ज' हो गया है। कभी कभी ऐसा पद भी पाया जाता है जो कि उपसर्ग सहित है और जिसमें 'य' वर्ण अनादि रूप से स्थित है; फिर भी उस 'य' का 'ज' नहीं होता है। जैसे:-प्रयोगः=पओओ ॥ आर्ष-प्राकृत-पदों में आदि में स्थित 'य' वर्ण का लोप होता हुआ भी पाया जाता है। जैसे:-यथाख्यातम्=अहक्खायं ॥ यथाजातम्=अहाजायं ॥ इत्यादि ॥

जसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-११* में की गई है।

यमः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जमो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

याति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप जाइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन के प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवयवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवयवो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवयवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विनयः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विणओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विणओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संयमः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संजमो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संजमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

संयोगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संजोगो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संजोगो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अपयशस् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवजसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-२६० से 'श' का 'स'; १-११ से अन्त्य हलन्त 'स्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *अवजसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रयोगः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पओओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'य्' और 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *पओओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

यथाख्यातम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप अहक्खायं होता है। इस में सूत्र संख्या १-२४५ से-(वृत्ति से)-'य' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-८४ से प्राप्त 'हा' में स्थित 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अहक्खायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

यथाजातम् संस्कृत विशेषण है। इसका आर्ष-प्राकृत में अहाजायं रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ की वृत्ति से 'य' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१८७ से 'थ' का 'ह'; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के

एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अह्याजायं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२४६ ॥

युष्मद्यर्थपरे तः ॥ १-२४६ ॥

युष्मच्छब्देर्थपरे यस्य तो भवति ॥ तुम्हारिसो । तुम्हकेरो ॥ अर्थ पर इति किम् । जुम्ह-दम्ह-पयरणं ॥

अर्थः—जब 'युष्मद्' शब्द का पूर्ण रूप से 'तू-तुम' अर्थ व्यक्त होता हो; तभी 'युष्मद्' शब्द में स्थित 'य' वर्ण का 'त' हो जाता है। जैसे:—युष्मादृशः=तुम्हारिसो ॥ युष्मदीयः=तुम्हकेरो ॥

प्रश्नः—'अर्थ परः' अर्थात् पूर्ण रूप से 'तू-तुम' अर्थ व्यक्त होता हो; तभी 'युष्मद्' शब्द में स्थित 'य' वर्ण का 'त' होता है;' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि तू-तुम अर्थ 'युष्मद्' शब्द का नहीं होता हो, एवं कोई अन्य अर्थ 'युष्मद्' शब्द का प्रकट होता हो तो उस 'युष्मद्' शब्द में स्थित 'य' का 'त' नहीं होकर 'य' का 'ज' सूत्र-संख्या १-२४५ के अनुसार होता है। जैसेः—युष्मदस्मत्प्रकरणम्=(अमुक-तमुक से संबंधित=अनिश्चित व्यक्ति से संबंधित=) जुम्ह दम्ह-पयरणं ॥ इस उदाहरण में स्थित 'युष्मद्' सर्वनाम 'तू-तुम' अर्थ को प्रकट नहीं करता है; अतः इस में स्थित 'य' वर्ण का 'त' नहीं होकर 'ज' हुआ है ॥

तुम्हारिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१४२* में की गई है।

युष्मदीयः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तुम्हकेरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४६ से 'य्' का 'त'; २-७४ से 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति; १-११ से 'युष्मद्' शब्द में स्थित अन्त्य व्यञ्जन 'त' का लोप; २-१४७ से 'सम्बन्ध वाला' अर्थद्योतक संस्कृत प्रत्यय 'ईय' के स्थान पर प्राकृत में 'केर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तुम्हकेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

युष्मद्-अस्मद् संस्कृत सर्वनाम मूल रूप हैं। इनका (अमुक-तमुक अर्थ में) प्राकृत रूप जुम्ह दम्ह होता है। इनमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य्' का 'ज्'; २-७४ से 'ष्म' और 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति; १-५ से 'युष्मद्' में स्थित 'द्' की परवर्ती 'अ' के साथ संधि; और १-११ से 'अस्मद्' में स्थित अन्त्य 'द्' का लोप होकर *जुम्हदम्ह* रूप की सिद्धि हो जाती है।

प्रकरणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पयरणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पयरणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥१-२४६॥

यष्ट्यां लः ॥ १-२४७ ॥

यष्ट्यां यस्य लो भवति ॥ लट्ठी । वेणु-लट्ठी । उच्छु-लट्ठी । महु-लट्ठी ॥

अर्थः—यष्टि शब्द में स्थित 'य' का 'ल' होता है। जैसे:-यष्टिः=लट्ठी ॥ वेणु-यष्टिः=वेणु-लट्ठी ॥ इक्षु-यष्टिः=उच्छु-लट्ठी ॥ मधु-यष्टिः=महु-लट्ठी ॥

यष्टिः = संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लट्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४७ से 'य' का 'ल'; २-३४ से 'ष्ट' को 'ठ'; २-८६ से प्राप्त 'ठ' का द्वित्व 'ठ्ठ'; २-६० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' का 'ट्'; और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' एवं विसर्ग को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *लट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेणु-यष्टिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *वेणु-लट्ठी* होता है। इस रूप की सिद्धि ऊपर सिद्ध किये हुए 'लट्ठी' रूप के समान ही जानना ॥

इक्षु-यष्टिः-संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उच्छु-लट्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६५ से 'इ' को 'उ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' को 'छ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ'; २-६० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और शेष सिद्धि उपरोक्त लट्ठी के समान ही होकर *उच्छु-लट्ठी* रूप की सिद्धि हो जाती है।

मधु-यष्टिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महु-लट्ठी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध्' का 'ह्' और शेष सिद्धि उपरोक्त लट्ठी के समान ही होकर *महु-लट्ठी* रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२४७ ॥

वोत्तरीयानीय-तीय-कृद्ये ज्जः ॥ १-२४८ ॥

उत्तरीय शब्दे अनीयतीय कृद्य प्रत्ययेषु च यस्य द्विरुक्तो जो वा भवति ॥ उत्तरिज्जं उत्तरीअं ॥ अनीय । करणिज्जं--करणीअं ॥ विम्हयणिज्जं विम्हयणीअं ॥ जवणिज्जं । जवणीअं ॥ तीय । बिइज्जो बीओ ॥ कृद्य । पेज्जा पेआ ॥

अर्थः—उत्तरीय शब्द में और जिन शब्दों में 'अनीय', अथवा 'तीय' अथवा कृदन्त वाचक 'य' प्रत्ययों में से कोई एक प्रत्यय रहा हुआ हो तो इनमें रहे हुए 'य' वर्ण का द्वित्व 'ज्ज' की वैकल्पिक रूप से प्राप्ति हुआ करती है। जैसे:-उत्तरीयम्=उत्तरिज्जं अथवा उत्तरीअं ॥ 'अनीय' प्रत्यय से संबंधित उदाहरण इस प्रकार हैं:-करणीयम्=करणिज्जं अथवा करणीअं ॥ विस्मयनीयम्=विम्हयणिज्जं अथवा विम्हयणीअं ॥ यापनीयम्=जवणिज्जं अथवा जवणीअं ॥ 'तीय' प्रत्यय का उदाहरण:-द्वितीयः=बिइज्जो

अथवा वीओ ॥ कृदन्त वाचक 'य' प्रत्यय का उदाहरण:--पेया=पेज्जा अथवा पेआ ॥ उपरोक्त सभी उदाहरणों में 'य' वर्ण को द्वित्व 'ज्ज' की विकल्प से प्राप्ति हुई है।

उत्तरीयम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उत्तरिज्जं अथवा उत्तरीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; १-२४८ से विकल्प से 'य' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप उत्तरिज्जं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१७७ से 'य्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *उत्तरीअं* रूप जानना।

करणीयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप करणिज्जं अथवा करणीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; १-२४८ से विकल्प से 'य' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *करणिज्जं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *करणीअं* में सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होती है ॥

विस्मयनीयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप विम्हयणिज्जं अथवा विम्हयणीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७४ से 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; १-२४८ से द्वितीय 'य' को विकल्प से द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *विम्हयणिज्जं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'य्' का विकल्प से लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *विम्हयणीअं* जानना।

यापनीयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप जवणिज्जं अथवा जवणीअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४५ से आदि 'य' को 'ज' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; १-२३१ से ,प' का 'व'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-८४ से दीर्घ 'स्वर' 'ई' को ह्रस्व ,'इ' की प्राप्ति; १-२४८ से वैकल्पिक रूप से द्वितीय 'य' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *जवणिज्जं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'य्' का विकल्प से लोप और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान होकर *जवणीअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप बिइज्जो और बीओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; ४-४४७ से 'व' के स्थान पर 'ब' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; १-२४८ से 'य' के स्थान पर द्वित्व 'ज्ज' की विकल्प से प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बिइज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *बीओ* की सिद्धि सूत्र संख्या १-५ में की गई है।

पेया संस्कृत कृदन्त रूप है। इसके प्राकृत रूप पेज्जा और पेआ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४८ से 'य' के स्थान पर विकल्प से द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर *पेज्जा* रूप सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *पेआ* रूप सिद्ध हो जाता है।१-२४८।

छायायां हो कान्तौ वा ॥१-२४९

अकान्तौ वर्तमाने छाया शब्दे यस्य हो वा भवति ॥ वच्छस्स छाही। वच्छस्स छाया ॥ आतपाभावः। सच्छाहं सच्छायं ॥ अकान्ताविति किम् ॥ मुह-च्छाया। कान्तिरित्यर्थः ॥

अर्थः—छाया शब्द का अर्थ कांति नहीं होकर परछाई हो तो छाया शब्द में रहे हुए 'य' वर्ण का विकल्प से 'ह' होता है। जैसे:-वृक्षस्य छाया=वच्छस्स-छाही अथवा वच्छस्स-छाया ॥ यहाँ पर छाया शब्द का तात्पर्य 'आतप अर्थात् धूप का अभाव' है। इसीलिये छाया में रहे हुए 'य' वर्ण का विकल्प से 'ह' हुआ है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:-सच्छायम्=(छाया सहित)=सच्छाहं अथवा सच्छायं ॥

प्रश्न—'छाया शब्द का अर्थ कांति नहीं होने पर ही 'छाया' में स्थित 'य' वर्ण का विकल्प से 'ह' होता है' ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर:—यदि छाया शब्द का अर्थ परछाई नहीं होकर कांति वाचक होगा तो उस दशा में छाया में रहे हुए 'य' वर्ण को विकल्प से होने वाले 'ह' की प्राप्ति नहीं होगी; किन्तु उसका 'य' वर्ण ही रहेगा। जैसे:-मुख-छाया=(मुख की कांति)=मुह-च्छाया ॥ यहाँ पर छाया शब्द का तात्पर्य कान्ति है। अतः छाया शब्द में स्थित 'य' वर्ण 'ह' में परिवर्तित नहीं होकर ज्यों का त्यों ही-यथा रूप में ही स्थित रहा है।

वृक्षस्य संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; २-१७ से 'क्ष' का 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छछ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति; और ३-१० से संस्कृत में षष्ठी-विभक्ति-बोधक 'स्य' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वच्छस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

छाया संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप छाही और छाया होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२४९ से 'य' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति और ३-३४ से 'या' में अर्थात् आदेश रूप से प्राप्त 'हा' में स्थित 'आ' को स्त्रीलिंग-स्थिति में विकल्प से 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप छाही सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *छाया* संस्कृत के समान ही होने से सिद्धवत् ही है।

सच्छायम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सच्छाहं और सच्छायं होता है। प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४९ से 'य' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप सच्छाहं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' का अनुस्वार हो कर *सच्छायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुख—छाया संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुह-च्छाया होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह'; २-८९ से 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को च् की प्राप्ति होकर *मुहच्छाया* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२४९ ॥

डाह-वौ कतिपये ॥ १-२५० ॥

कतिपये यस्य डाह व इत्येतौ पर्यायेण भवतः ॥कइवाहं । कइअवं ॥

अर्थः—कतिपय शब्द में स्थित 'य' वर्ण को क्रम से एवं पर्याय रूप से 'आह' की और 'व' की प्राप्ति होती है। जो कि इस प्रकार हैः—कइवाहं और कइअवं ॥ *कतिपयम्* संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत में कइवाहं और कइअवं दो रूप होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-२३१ से 'प' का 'व'; १-२५० से 'य' को 'आह' की प्राप्ति; १—५ से 'व' में स्थित 'अ' के साथ प्राप्त 'आह' में स्थित 'आ' की संधि होकर 'वाह' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *कइवाहं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप कइअवं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' और 'प' का लोप; १-२५० से 'य' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *कइअवं* रूप की सिद्ध हो जाती है ॥—२५०॥

किरि-भेरे रो डः ॥ १-२५१ ॥

अनयो रस्य डो भवति ॥ किडी । भेडो ॥

अर्थः—किरि और भेर शब्द में रहे हुए 'र' का 'ड' होता है। जैसेः—किरिः=किडी भेरः=भेडो ॥

सरस्वतिप्रेउन मश्चित

किरिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किडी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५१ से 'र' का 'ड' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *किडी* रूप सिद्ध हो जाता है।

भरः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भेडो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५१ से 'र' का 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भेडो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२५१ ॥

पर्याणे डा वा ॥ १-२५२ ॥

पर्याणे रस्य डा इत्यादेशो वा भवति ॥ पडायाणं । पल्लाणं ॥

अर्थः-पर्याण शब्द में रहे हुए 'र्' के स्थान पर विकल्प से 'डा' का आदेश होता है। जैसेः-पर्याणम् = पडायाणं अथवा पल्लाणं ॥

पर्याणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पडायाणं और पल्लाणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२५२ से 'र्' के स्थान पर 'डा' का विकल्प से आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पडायाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-६८ से 'र्य' के स्थान पर 'ल्ल' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर *पल्लाणं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ १-२५२ ॥

करवीरे णः ॥ १-२५३ ॥

करवीरे प्रथमस्य रस्य णो भवति ॥ कणवीरो ॥

अर्थः—करवीर शब्द में स्थित प्रथम 'र' का 'ण' होता है। जैसेः-करवीरः=कणवीरो ॥

करवीरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कणवीरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५३ से प्रथम 'र' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कणवीरो* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥१-२५३॥

हरिद्रादौ लः ॥ १-२५४ ॥

हरिद्रादिषु शब्देषु असंयुक्तस्य रस्य लो भवति ॥ हलिद्दी दलिद्दाइ । दलिद्दो । दालिद्दं । हलिद्दो । जहुट्ठिलो । सिढिलो । मुहलो । चलणो । वलुणो । कलुणो । इङ्गालो । सक्कालो ।

सोमालो । चिलाओ । फलिहा । फलिहो । फालिहद्दो । काहलो । लुक्को । अवद्दालं । भमलो । जढलं । बढलो । निट्ठुलो ॥ बहुलाधिकाराच्चरण शब्दस्य पादार्थवृत्तेरेव । अन्यत्र चरण-करणं ॥ भ्रमरे स संनियोगे एव । अन्यत्र भमरो । तथा । जढरं । बढरो । निट्ठुरो इत्याद्यपि ॥ हरिद्रा दरिद्राति । दरिद्र । दारिद्र्य । हारिद्र । युधिष्ठिर । शिथिर । मुखर । चरण । वरुण । करुण । अङ्गार । सत्कार । सुकुमार । किरात । परिखा । परिघ । पारिभद्र । कातर । रुग्ण । अपद्वार । भ्रमर । जठर । बठर । निष्ठुर । इत्यादि ॥ आर्षे दुवालसङ्गे इत्याद्यपि ॥

अर्थः—इसी सूत्र में नीचे लिखे हुए हरिद्रा, दरिद्राति इत्यादि शब्दों में रहे हुए असंयुक्त - अर्थात् स्वरान्त 'र' वर्ण का 'ल' होता है । जैसेः- हरिद्रा=हलिद्दी; दरिद्राति=दलिद्दाइ; दरिद्रः=दलिद्दो; दारिद्र्यम्=दालिद्दं; हारिद्रः=हलिद्दो; युधिष्ठिरः=जहुट्ठिलो; शिथिरः=सिढिलो, मुखरः=मुहलो; चरणः=चलणो; वरुणः=वलुणो; करुणः= कलुणो; अङ्गारः=इङ्गालो; सत्कारः= सक्कालो; सुकुमारः=सोमालो; किरातः=चिलाओ; परिखा=फलिहा; परिघः=फलिहो; पारिभद्रः = फालिहद्दो; कातरः =काहलो; रुग्णः=लुक्को; अपद्वारम्=अवद्दालं; भ्रमरः=भसलो; जठरम् = जढलं; बठरः = बढलो; और निष्ठुरः = निट्ठुलो ॥ इत्यादि ॥ इन उपरोक्त सभी शब्दों में रहे हुए असंयुक्त 'र' वर्ण का 'ल' हुआ है । इसी प्रकार से अन्य शब्दों में भी 'र' का 'ल' होता है; ऐसा जान लेना ॥ 'बहुलम्' सूत्र के अधिकार से 'चरण' शब्द में रहे हुए असंयुक्त 'र' का 'ल' उसी समय में होता है; जबकि 'चरण' शब्द का अर्थ 'पैर' हो; यदि 'चरण' शब्द का अर्थ चारित्र-वाचक हो तो उस समय में 'र' का 'ल' नहीं होगा । जैसेः—चरण-करणम् = चरण करणं अर्थात् चारित्र तथा गुण-संयम ॥ इसी प्रकार से 'भ्रमर' शब्द में रहे हुए 'र' का 'ल' उसी समय में होता है; जबकि इसमें स्थित 'म' का 'स' होता हो; यदि इस 'म' का 'स' नहीं होता है तो 'र' का भी 'ल' नहीं होगा । जैसेः—भ्रमरः = भमरो इसी प्रकार से बहुलं सूत्र के अधिकार से कुछ एक शब्दों में 'र' का 'ल' विकल्प से होता है; तदनुसार उन शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैः—जठरम् = जढरं जढलं; बठरः = बढरो बढलो; और निष्ठुरः = निट्ठुरो निट्ठुलो इत्यादि ॥ आर्ष-प्राकृत में 'द' का भी 'ल' होता हुआ देखा जाता है । जैसेः—द्वादशाङ्गे = दुवालसंगे ॥ इत्यादि ॥

हलिद्दी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८८ में की गई है ।

दरिद्राति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप दलिद्दाइ होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२५४ से प्रथम एवं असंयुक्त 'र' का 'ल'; २-७९ से अथवा २-८० से द्वितीय 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए र् में से शेष रहे हुए 'द्' का द्वित्व 'द्द' और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दलिद्दाइ* रूप सिद्ध जाता है ।

दरिद्रः संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप दलिद्दो होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल'; २-७९ से अथवा २-८० से द्वितीय 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' में से

शेष रहे हुए 'द्' का द्वित्व 'द्द' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हलिद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दारिद्र्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दालिद्दं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२५४ से 'असंयुक्त' 'र' का 'ल'; २-७९ से अथवा २-८० से द्वित्व 'र्' का लोप; २-७८ से 'य' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' तथा 'य्' में से शेष रहे हुए 'द्' का द्वित्व 'द्द'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हुए 'म्' का अनुस्वार होकर *दालिद्दं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हारिद्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हलिद्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से आदि दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; १-२५४ से असंयुक्त 'र' का 'ल'; २-७९ से अथवा २-८० से द्वितीय संयुक्त 'र' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' में से शेष रहे हुए 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हलिद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जहुट्ठिलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९६ में की गई है।

सिढिलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२१५ में की गई है।

मुखरः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मुहलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' का 'ह'; १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्त होकर *मुहलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चरणः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चलणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चलणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वरुणः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वलुणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वलुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

करुणः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप कलुणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कलुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इंगालो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४७ में की है।

सत्कारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्कालो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'त्' का

लोप; २-८६ से 'क' का द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' का 'ल'; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सक्काला* रूप सिद्ध हो जाता है।

सोमालो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१७१* में की गई है।

चिलाओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१८३* में की गई है।

फलिहा रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२३२* में की गई है।

फलिहो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२३२* में की गई है।

फालिहद्दो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२३२* में की गई है।

काहलो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२१४* में की गई है।

रुग्ण: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप लुक्को होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' का 'ल'; २-२ से संयुक्त 'ग्ण' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लुक्को* रूप की सिद्धि हो जाती है।

अपद्वारम्—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवद्दालं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' का 'ल'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अवद्दालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भसलो—रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४४* में की गई है।

जठरम्—संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जढलं और जढरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ'; १-२५४ से प्रथम रूप में 'र' का 'ल' और द्वितीय रूप में १-२ से 'र' का 'र' ही; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर दोनों रूप *जढलं* तथा *जढरं* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

बठर: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बढलो और बढरो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१९९ से 'ठ' का 'ढ'; १-२५४ से प्रथम रूप में 'र' का 'ल' तथा द्वितीय रूप में १-२ से 'र' का 'र' ही और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दोनों रूप *बढलो* और *बढरो* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

निष्ठुरः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप निट्ठुलो और निट्ठुरो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' का 'ल' तथा द्वितीय रूप में १-२ से 'र' का 'र' ही और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दोनों रूप *निट्ठुलो* एवं *निट्ठुरो* क्रम से सिद्ध हो जाते हैं।

चरण-करणम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चरण-करणं ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर **चरण-करणं** रूप सिद्ध हो जाता है।

भमरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४४ में की गई है।

द्वादशाङ्गे संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में **दुवालसङ्गे** रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या १-७९ से 'द्वा' को पृथक् पृथक् करके हलन्त 'द्' में 'उ' की प्राप्ति; १-२५४ की वृत्ति से द्वितीय 'द्' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; १-८४ से प्राप्त 'सा' में स्थित दीर्घस्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर आर्ष-प्राकृत में *दुवालसंगे* रूप की सिद्धि हो जाती है। यदि 'द्वादशाङ्ग' ऐसा प्रथमान्त संस्कृत रूप बनाया जाय तो सूत्र संख्या ४-२८७ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर आर्ष-प्राकृत में प्रथमान्त रूप **दुवालसंगे** सिद्ध हो जाता है। १-२५४

स्थूले लो रः ॥ १-२५५ ॥

स्थूले लस्य रो भवति ॥ थोरं ॥ कथं थूलभद्दो ॥ स्थूरस्य हरिद्रादि लत्वे भविष्यति ॥

अर्थः—'स्थूल' शब्द में रहे हुए 'ल' का 'र' होता है। जैसेः-स्थूलम्=थोरं ॥

प्रश्नः—'थूल भद्दो' रूप की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तरः - 'थूल भद्दो' में रहे हुए 'थूल' की प्राप्ति 'स्थूर' से हुई है; न कि 'स्थूल' से; तदनुसार सूत्र संख्या १-२५४ से 'स्थूर' में रहे हुए 'र' को 'ल' की प्राप्ति होगी; और इस प्रकार 'स्थूर' से 'थूल' की प्राप्ति हो जाने पर 'स्थूलम्=थोरं' के समान 'स्थूर' में रहे हुए 'ऊ' को 'ओ' की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं है।

थोरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२४ में की गई है।

स्थूर भद्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थूल भद्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-२५४ से प्रथम 'र' का 'ल'; २-८० से द्वितीय 'र्' का लोप; २-८९ से 'द्' को द्वित्व 'द्द'

की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर थूल भद्दो रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२५५ ॥

लाहल-लांगल-लांगुले वादे र्णः ॥ १-२५६ ॥

एषु आदेर्लस्य णो वा भवति ॥ णाहलो लाहलो ॥ णङ्गलं लङ्गलं ॥ णङ्गूलं । लङ्गूलं ॥

अर्थः—लाहल, लाङ्गल और लाङ्गूल शब्दों में रहे हुए आदि अक्षर 'ल' का विकल्प से 'ण' होता है। जैसे:-लाहलः=णाहलो अथवा लाहलो ॥ लाङ्गलम्=णङ्गलं अथवा लङ्गलं ॥ लाङ्गूलम्=णङ्गूलं अथवा लङ्गूलं ॥

लाहलः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णाहलो और लाहलो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५६ से आदि अक्षर 'ल' का विकल्प से 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *णाहलो* और *लाहलो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

लाङ्गलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णङ्गलं और लङ्गलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५६ से आदि अक्षर 'ल' का विकल्प से 'ण'; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *णङ्गलं* और *लङ्गलं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

लाङ्गूलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णङ्गूलं और लङ्गूलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५६ से आदि अक्षर 'ल' का विकल्प से 'ण'; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *णङ्गूलं* और *लङ्गूलं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। १-२५६ ॥

ललाटे च ॥ १-२५७ ॥

ललाटे च आदेर्लस्य णो भवति ॥ चकार आदेरनुवृत्त्यर्थः ॥ णिडालं । णडालं ॥

अर्थः—ललाट शब्द में आदि में रहे हुए 'ल' का 'ण' होता है। मूल-सूत्र में 'च' अक्षर लिखने का तात्पर्य यह है कि सूत्र-संख्या १-२५६ में 'आदि' शब्द का उल्लेख है; उस 'आदि' शब्द को यहाँ पर भी समझ लेना, तदनुसार 'ललाट' शब्द में जो दो 'लकार' हैं; उनमें से प्रथम 'ल' का ही 'ण' होता है; न

कि द्वितीय 'लकार' का; इस प्रकार 'तात्पर्य-विशेष' को समझाने के लिये ही 'च' अक्षर को मूल सूत्र में स्थान प्रदान किया है। उदाहरण इस प्रकार हैं:-ललाटम्=णिडालं और णडालं ॥

णिडालं और *णडालं* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४७ में की गई है ॥१-२५७॥

शबरे बो मः ॥ १-२५८ ॥

शबरे बस्य मो भवति ॥ समरो ॥

अर्थः शबर शब्द में रहे हुए 'ब' का 'म' होता है। जैसे-शबरः=समरो ॥

शबरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप समरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२५८ से 'ब' का 'म' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समरो* रूप की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२५८ ॥

स्वप्न-नीव्यो र्वा ॥ १-२५९ ॥

अनयोर्वस्य मो वा भवति ॥ सिमिणो सिविणो ॥ नीमी नीवी ॥

अर्थः-स्वप्न और नीवी शब्दों में रहे हुए 'व' का विकल्प से 'म' होता है। जैसे:-स्वप्नः= सिमिणो अथवा सिविणो ॥ नीवी=नीमी अथवा नीवी ॥

सिमिणो और *सिविणो* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है।

नीवी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप नीमी और नीवी होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२५९ से 'व' का विकल्प से 'म' होकर क्रम से *नीमी* और *नीवी* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२५९ ॥

श-षोः सः ॥ १-२६० ॥

शकार षकारयोः सो भवति ॥ श ॥ सद्दो । कुसो । निसंसो । वंसो । सामा । सुद्धं । दस । सोहइ । विसइ ॥ ष ॥ सण्डो । निहसो । कसाओ । घोसइ ॥ उभयोरपि । सेसो । विसेसो ॥

अर्थः-संस्कृत शब्दों में रहे हुए 'शकार' का और 'षकार' का प्राकृत रूपान्तर में 'सकार' हो जाता है। 'श' से संबंधित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-शब्दः=सद्दो । कुशः=कुसो ॥ नृशंसः = निसंसो ॥ वंशः=वंसो ॥ श्यामा=सामा ॥ शुद्धम्=सुद्धं ॥ दश=दस ॥ शोभते=सोहइ ॥ विशति=विसइ ॥ इत्यादि ॥ 'ष' से संबंधित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—षण्डः = सण्डो ॥ निकषः = निहसो ॥ कषायः=कसाओ ॥ घोषयति=घोसइ ॥ इत्यादि ॥ यदि एक ही शब्द में आगे पीछे अथवा साथ साथ में 'शकार' एवं 'षकार'

आ जाय; तो भी उन 'शकार' और 'षकार' के स्थान पर 'सकार' की प्राप्ति हो जाती है। जैसेः— शेषः=सेसो और विशेषः=विसेसो ॥ इत्यादि ॥

शब्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स', २–७९ से 'ब्' का लोप, २–८९ से 'द्' को द्वित्व 'द्द' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सद्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुशः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुसो* रूप सिद्ध हो जाता है। *निसंसो* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–१२८ में की गई है।

वंशः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्यामा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सामा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स', और २–७८ से 'य' का लोप होकर *सामा* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुद्धम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुद्धं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स', ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुद्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दस रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–२१९ में की गई है।

सोहइ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–१८७ में की गई है।

विशति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विसइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'श' का 'स' और ३–१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

षण्ढः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्ढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १–२६० से 'ष' का 'स' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सण्ढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निहसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८६ में की गई है।

कषायः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप कसाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कसाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

घोषयति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप घोसइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से ष का 'स'; ४-२३९ से संस्कृत धात्विक गण-बोधक विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर घोसइ रूप सिद्ध हो जाता है।

शेषः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'शकार' 'षकार' के स्थान पर 'स' और 'स' को प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सेसो रूप सिद्ध हो जाता है।

विशेषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसेसो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से दोनों 'शकार', 'षकार' के स्थान पर 'स' और 'स' की प्राप्ति तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विसेसो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ १-२६० ॥

स्नुषायां ण्हो न वा ॥ १-२६१ ॥

स्नुषा शब्दे षस्य ण्हः णकाराक्रान्तो हो वा भवति ॥ सुण्हा । सुसा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्नुषा' में स्थित 'ष' वर्ण के स्थान पर हलन्त 'ण्' सहित 'ह' अर्थात् 'ण्ह' की विकल्प से प्राप्ति होती है। जैसेः—स्नुषा=सुण्हा अथवा सुसा ॥

स्नुषा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुण्हा और सुसा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७८ से 'न' का लोप; १-२६१ से प्रथम रूप में 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ण्ह' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में १-२६० से 'ष' का 'स' होकर क्रम से *सुण्हा* और *सुसा* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६१ ॥

दश-पाषाणे हः ॥ १-२६२ ॥

दशन् शब्दे पाषाण शब्दे च शषोर्यथादर्शनं हो वा भवति ॥ दह-मुहो दस मुहो ॥ दह-बलो दस बलो । दह-रहो दस रहो । दह दस । एआरह । बारह । तेरह । पाहाणो पासाणो ॥

अर्थः—दशन् शब्द में और पाषाण शब्द में रहे हुए 'श' अथवा 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ह' होता है। ये शब्द दशन् और पाषाण चाहे समास रूप से रहे हुए हों अथवा स्वतंत्र रहे हुए हों; तो भी इनमें स्थित 'श' का अथवा 'ष' का विकल्प से 'ह' हो जाता है। ऐसा तात्पर्य वृत्ति में उल्लिखित 'यथादर्शनं' शब्द से जानना ॥ जैसेः—दश-मुखः=दह-मुहो अथवा दस मुहो ॥ दश-बलः=दह बलो अथवा दस बलो ॥ दशरथः=दहरहो अथवा दसरहो ॥ दश=दह अथवा दस ॥ एकादश=एआरह ॥ द्वादश=बारह ॥ त्रयोदश=तेरह ॥ पाषाणः=पाहाणो पासाणो ॥

दश मुखः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दह-मुहो और दसमुहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६२ से विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स'; १-१८७ से दोनों रूपों में 'ख' का 'ह' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की दोनों रूपों में प्राप्ति होकर क्रम से *दह-मुहो* और *दस मुहो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

दश-बलः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दह बलो और दस बलो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२६२ से प्रथम रूप में विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स' तथा ३-२ से दोनों रूपों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *दह बलो* एवं *दस बलो* रूपों की सिद्ध हो जाती है।

दशरथः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दहरहो और दसरहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६२ से विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स'; १-१८७ से दोनों रूपों में 'थ' का 'ह' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों में होकर क्रम *दहरहो* और *दसरहो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

एआरह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२१९* में की गई है।

बारह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२१९* में की गई है।

तेरह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१६५* में की गई है।

पाषाणः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पाहाणो और पासाणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६२ से विकल्प से 'श' का 'ह' और द्वितीय रूप में १-२६० से 'श' का 'स' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों में होकर क्रम से *पाहाणो* एवं *पासाणो* रूपों की सिद्धि हो जाती है १-२६२॥

दिवसे सः ॥ १-२६३ ॥

दिवसे सस्य हो वा भवति ॥ दिवहो। दिवसो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'दिवस' में रहे हुए 'स' वर्ण के स्थान पर विकल्प से 'ह' होता है। जैसेः— दिवसः=दिवहो अथवा दिवसो ॥

दिवसः संस्कृत रूप है इसके प्राकृत रूप दिवहो और दिवसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६३ से 'स' का विकल्प से 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों में होकर क्रम से *दिघहो* और *दिअसो* रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥ १-२६३ ॥

हो घोनुस्वारात् ॥ १-२६४ ॥

अनुस्वारात् परस्य हस्य घो वा भवति ॥ सिंघो । सीहो ॥ संघारो । संहारो । क्वचिद्-ननुस्वारादपि । दाहः । दाघो ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में अनुस्वार के पश्चात् 'ह' रहा हुआ हो तो उस 'ह' का विकल्प से 'घ' होता है। जैसे:-सिंहः=सिंघो अथवा सीहो ॥ संहारः=संघारो अथवा संहारो ॥ इत्यादि ॥ किसी किसी शब्द में ऐसा भी देखा जाता है कि 'ह' वर्ण के पूर्व में अनुस्वार नहीं है; तो भी उस 'ह' वर्ण का 'घ' हो जाता है। जैसे:-दाहः=दाघो ॥ इत्यादि ॥ *सिंघो* और *सीहो* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

संहारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप संघारो और संहारो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६४ से विकल्प से 'ह' का 'घ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति दोनों रूपों में होकर क्रम से *संघारो* और *संहारो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

दाहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दाघो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६४ की वृत्ति से 'ह' का 'घ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दाघो* रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६० ॥

षट्-शमी-शाव-सुधा-सप्तपर्णेष्वादेश्छः ॥ १-२६५ ॥

एषु आदेर्वर्णस्य छो भवति ॥ छट्ठो । छट्ठी । छप्पओ । छम्मुहो । छमी । छावो । छुहा । छत्तिवण्णो ॥

अर्थः—षट्, शमी, शाव, सुधा और सप्तपर्ण आदि शब्दों में रहे हुए आदि अक्षर का अर्थात् सर्व प्रथम अक्षर का 'छ' होता है। जैसे:—षष्ठः=छट्ठो । षष्ठी=छट्ठी ॥ षट्पदः=छप्पओ । षण्मुखः=छम्मुहो । शमी=छमी । शावः=छावो । सुधा=छुहा और सप्तपर्णः=छत्तिवण्णो इत्यादि ॥

षष्ठः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ'; २-७७ से द्वितीय 'ष्' का लोप; २-८९ से शेष 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

षष्ठी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ'; २-७७ से द्वितीय 'ष' का लोप; २-८९ से शेष 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति होकर *छट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

षट्पदः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छप्पओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ'; २-७७ से 'ट' का लोप; २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छप्पओ* रूप की सिद्धि हो जाती है।

षण्मुखः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छम्मुहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से सर्व प्रथम वर्ण 'ष' का 'छ'; १-२५ से 'ण्' को पूर्व व्यञ्जन पर अनुस्वार की प्राप्ति एवं १-३० से प्राप्त अनुस्वार को परवर्ती 'म' के कारण से 'म्' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ख' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छम्मुहो* रूप की सिद्धि हो जाती है।

शमी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छमी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से 'श' का 'छ' होकर *छमी* रूप सिद्ध हो जाता है।

शावः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छावो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६५ से 'श' का 'छ' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छुहा रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-१७* में की गई है।

छत्तिवण्णो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-४९* में की गई। ॥ १-२६५ ॥

शिरायां वा ॥ १-२६६ ॥

शिरा शब्दे आदेश्छो वा भवति ॥ छिरा सिरा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द शिरा में रहे हुए आदि अक्षर 'श' का विकल्प से 'छ' होता है। जैसेः—शिराः=छिरा अथवा सिरा ॥

शिरा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप छिरा और सिरा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६६ से 'श' का विकल्प से 'छ' और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स' होकर क्रम से *छिरा* और *सिरा* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥ १-२६६ ॥

लुग भाजन-दनुज-राजकुले जः सस्वरस्य न वा ॥ १–२६७ ॥

एषु सस्वरजकारस्य लुग् वा भवति ॥ भाणं भायणं ॥ दणु-वहो । दणुअ-वहो । रा-उलं राय-उलं ॥

अर्थः—'भाजन, दनुज और राजकुल' में रहे हुए 'स्वर सहित जकार का' विकल्प से लोप होता है। जैसेः-भाजनम्=भाणं अथवा भायणं ॥ दनुज-वधः=दणु-वहो अथवा दणुअ-वहो और राजकुलम्=रा-उलं अथवा राय-उलं ॥ इन उदाहरणों के रूपों में से प्रथम रूप में स्वर सहित 'ज' व्यञ्जन का लोप हो गया है।

भाजनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भाणं और भायणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६७ से 'ज' का विकल्प से लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय का 'म्' और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *भाणं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *भायणं* भी सिद्ध हो जाता है।

दनुज-वधः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दणु-वहो और दणुअ-वहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२२८ से न का 'ण'; १-२६७ से विकल्प से 'ज' का लोप; १-१८७ से 'ध' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दणु-वहो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में १-१७७ से 'ज्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *दणुअ-वहो* भी सिद्ध हो जाता है।

राजकुलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रा-उलं और राय-उलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६७ से विकल्प से 'ज' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप रा-उलं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *राय-उलं* भी सिद्ध हो जाता है ॥१-२६७॥

व्याकरण-प्राकारागते कगोः ॥१-२६८॥

एषु को गश्च सस्वरस्य लुग् वा भवति ॥ वारणं वायरणं । पारो पायारो ॥ आओ आगओ ॥

अर्थः—'व्याकरण और 'प्राकार' में रहे हुए स्वर रहित 'क' का अर्थात् सम्पूर्ण 'क' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसे:—व्याकरणम्=वारणं अथवा वायरणं और प्राकार:=पारो अथवा पायारो ॥ इसी प्रकार से 'आगत' में रहे हुए स्वर सहित 'ग' का अर्थात् सम्पूर्ण 'ग' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसे:—आगत:=आओ अथवा आगओ ॥

व्याकरणम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वारणं और वायरणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६८ से स्वर सहित 'क' का अर्थात् संपूर्ण 'क' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वारणं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *वायरणं* भी सिद्ध हो जाता है।

प्राकारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पारो और पायारो होते हैं इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १-२६८ से स्वर सहित 'का' का अर्थात् संपूर्ण 'का' का विकल्प से लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पारो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'आ' को 'या' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पायारो* भी सिद्ध हो जाता है।

आगतः संस्कृत विशेषण है इसके प्राकृत रूप आओ और आगओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सूत्र-संख्या १-२६८ से 'ग' का विकल्प से लोप; १-१७७ से 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आओ* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *आगओ* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२०९ में की गई है ॥१-२६८।

किसलय-कालायस-हृदये यः ॥ १-२६९ ॥

एषु सस्वरयकारस्य लुग् वा भवति ॥ किसलं किसलयं ॥ कालासं कालायसं ॥ महण्णव-समासहिआ । जाला ते सहिअएहिं घेप्पन्ति ॥ निसमणुप्पिअ-हिअस्स हिअयं ॥

अर्थः—'किसलय'; 'कालायस'; और 'हृदय' में स्थित स्वर सहित 'य' का अर्थात् संपूर्ण 'य' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है जैसे:—किसलयम् = किसलं अथवा किसलयं ॥ कालायसम् = कालासं अथवा कालायसं और हृदयम्=हिअं अथवा हिअयं ॥ इत्यादि ॥ ग्रंथकार ने वृत्ति में हृदय रूप को समझाने के लिये काव्यात्मक उदाहरण दिया है; जो कि संस्कृत रूपान्तर के साथ इस प्रकार है:—

(१) महार्णवसमाः सहृदयाः = महण्णव-समासहिआ ॥

(२) यदा ते सहृदयैः गृह्यन्ते=जाला ते सहिअएहिं घेप्पन्ति ॥

(३) निशमनार्पित हृदयस्य हृदयम्=निसमणुप्पिअ-हिअस्स हिअयं ॥

किसलयम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप किसलं और किसलयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १–२६९ से स्वर सहित 'य' का अर्थात् संपूर्ण 'य' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *किसलं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १–२६९ से वैकल्पिक पक्ष में 'य' का लोप नहीं होकर प्रथम रूप के समान ही शेष साधनिका से द्वितीय रूप *किसलयं* भी सिद्ध हो जाता है।

कालायसम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कालासं और कालायसं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १–२६९ से स्वर सहित 'य' का अर्थात् संपूर्ण 'य' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *कालासं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १–२६९ से वैकल्पिक पक्ष में 'य' का लोप नहीं होकर प्रथम रूप के समान ही शेष साधनिका से द्वितीय रूप *कालायसं* भी सिद्ध हो जाता है।

महार्णव-समाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महण्णव–समा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर प्रथम 'आ' के स्थान पर ह्रस्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त होकर लुप्त हुए 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *महण्णव-समा* रूप सिद्ध हो जाता है।

सहृदयाः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सहिआ होता है। इनमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' का 'इ'; १–१७७ से 'द्' का लोप; १–२६९ से स्वर सहित 'य' का विकल्प से लोप; ३–४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३– १२ से प्राप्त होकर लुप्त 'जस' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर "अ', को दीर्घ स्वर "आ', की प्राप्ति होकर *सहिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

यदा संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप जाला होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; ३-६५ से कालवाचक संस्कृत प्रत्यय 'दा' के स्थान पर 'आला' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जाला* रूप सिद्ध हो जाता है।

ते संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। यह रूप मूल सर्वनाम 'तद्'

से बनता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'द्' का लोप; और ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' के स्थान पर 'ए' आदेश की प्राप्ति होकर ते रूप सिद्ध हो जाता है।

सहृदयैः संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सहिअएहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१७७ से ही 'य्' का भी लोप; ३-१५ से लुप्त हुए 'य्' में से शेष बचे हुए 'अ' को (अपने आगे तृतीया विभक्ति के बहु वचन के प्रत्यय होने से) 'ए' की प्राप्ति और ३-७ से संस्कृत भाषा के तृतीया विभक्ति के बहुवचन के प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर आदेश प्राप्त 'ऐस्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'हिं' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सहिअएहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृह्यन्ते कर्मणि वाच्य क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप घेप्पन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२५६ से 'ग्रह्' धातु के स्थान पर 'घेप्प' का आदेश; और इसी सूत्र की वृत्ति से संस्कृत भाषा में कर्मणि वाच्यार्थ बोधक 'य' प्रत्यय का लोप; ४-२३९ से 'घेप्प' धातु में स्थित हलन्त द्वितीय 'प्' को 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घेप्पन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

निशमनार्पित हृदयस्य संस्कृत समासात्मक षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप निसमणुप्पिअ-हिअस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; १-८३ से 'ना' वर्ण में संधि के कारण से स्थित अर्पित के आदि स्वर 'अ' को 'ओ' की प्राप्ति एवं १-८४ से प्राप्त इस 'ओ' स्वर को अपने ह्रस्व स्वरूप 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' की 'इ'; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-२६९ से स्वर सहित संपूर्ण 'य' का लोप और ३-१० से संस्कृत में षष्ठी-विभक्ति बोधक 'स्य' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में स्स प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निसमणुप्पिअ-हिअस्स* रूप की सिद्धि हो जाती है।

हिअयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है ॥ १-२६९ ॥

दुर्गादेव्युदुम्बर-पादपतन-पाद पीठन्तर्दः ॥१-२७० ॥

एषु सस्वरस्य दकारस्य अन्तर्मध्ये वर्तमानस्य लुग् वा भवति ॥ दुग्गा-वी । दुग्गा-एवी । उम्बरो उउम्बरो ॥ पा-वडणं पाय-वडणं । पा-वीढं पाय-वीढं ॥ अन्तरिति किम् । दुर्गा देव्यामादौ मा भूत् ॥

अर्थः—दुर्गा देवी, उदुम्बर, पाद पतन और पाद पीठ के अन्तर्मध्य भाग में रहे हुए स्वर सहित 'द' का अर्थात् पूर्ण व्यञ्जन 'द्' का विकल्प से लोप होता है। 'अन्तर्मध्य-भाग' का तात्पर्य यह है कि विकल्प से लोप होने वाला 'द्' व्यञ्जन न तो आदि स्थान पर होना चाहिये और न अन्त स्थान पर

ही; किन्तु शब्द के आन्तरिक भाग में अथवा मध्य भाग में होना चाहिये। जैसेः—दुर्गा देवी=दुग्गा-वी अथवा दुग्गा-एवी ॥ उदुम्बरः=उम्बरो अथवा उउम्बरो। पाद-पतनम्=पा वडणं अथवा पाय वडणं और पाद-पीठम्=पा-वीढं अथवा पाय वीढं ॥

प्रश्नः—'अन्तर मध्य-भाग' में ही होना चाहिये' तभी स्वर सहित 'द' का विकल्प से लोप होता है। ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—क्योंकि यदि 'द' वर्ण शब्द के आदि में अथवा अन्त में स्थित होगा तो उस 'द' का लोप नहीं होगा। इसीलिये 'अन्तर्मध्य' भाग का उल्लेख किया गया है। जैसेः—दुर्गा-देवी में आदि में 'द' वर्तमान है; इसलिये इस आदि स्थान पर स्थित 'द' का लोप नहीं होता है। जैसेः—दुर्गा-देवी=दुग्गा-वी ॥ इत्यादि ॥

दुर्गा-देवी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दुग्गा-वी और दुग्गा-एवी होता है। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'ग' का द्वित्व 'ग्ग'; और १-२७० से अन्त-मध्यवर्ती स्वर सहित 'दे' का अर्थात् सम्पूर्ण 'दे' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होकर प्रथम रूप *दुग्गा-वी* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप होकर एवं शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *दुग्गा-एवी* भी सिद्ध हो जाता है।

उदुम्बरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उम्बरो अथवा उउम्बरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२७० से अन्तर्मध्य-वर्ती स्वर सहित 'दु' का अर्थात् संपूर्ण 'दु' व्यञ्जन का विकल्प से लोप और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *उम्बरो* और *उउम्बरो* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

पाद-पतनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पा-वडणं और पाय-वडणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२७० से अन्तर्मध्यवर्ती स्वर सहित 'द' का अर्थात् संपूर्ण 'द' व्यञ्जन का विकल्प से लोप और द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द' का लोप एवं १-१८० से लोप हुए 'द' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२३१ से दोनों रूपों में द्वितीय 'प' का 'व'; ४-२१९ से दोनों रूपों में स्थित 'त' का 'ड'; १-२२८ से दोनों रूपों में 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पा-वडणं* और *पाय-वडणं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

पाद-पीठम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पा-वीढं और पाय-वीढं होते हैं इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२७० से अन्तर्मध्यवर्ती स्वर सहित 'द' का विकल्प से लोप; द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२३१ से

दोनों रूपों में द्वितीय 'प' का 'व'; १-१६६ से दोनों रूपों में 'ठ' का 'ढ'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की दोनों रूपों में प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पा-वीढं* और *पाव-वीढं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥१-२७०॥

यावत्तावज्जीविता वर्तमानावट-प्रावरक-देव कुलैव मेवे वः ॥ १-२७१॥

यावदादिषु सस्वर वकारस्यान्तर्वर्तमानस्य लुग् वा भवति ॥ जा जाव । ता ताव । जीअं जीविअं । अत्तमाणो आवत्तमाणो । अडो अवडो । पारओ पावारओ । दे उलं देव उलं एमेव एवमेव ॥ अन्तरित्येव । एवमेवेन्त्यस्य न भवति ॥

अर्थः—यावत्, तावत्, जीवित, आवर्तमान, अवट, प्रावरक, देवकुल और एवमेव शब्दों के मध्य-भाग में (अन्तर-भाग में) स्थित 'स्वर सहित-व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होता है। जैसेः—यावत्=जा अथवा जाव ॥ तावत्=ता अथवा ताव ॥ जीवितम्=जीअं अथवा जीविअं ॥ आवर्तमानः=अत्तमाणो अथवा आवत्तमाणो ॥ अवटः=अडो अथवा अवडो ॥ प्रावारकः=पारओ अथवा पावारओ ॥ देवकुलम्=दे-उलं अथवा देव उलं और एवमेव = एमेव अथवा एवमेव ॥

प्रश्न—'अन्तर्-मध्य-भागी' 'व' का ही लोप होता है; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि 'अन्तर्-मध्य-भागी' नहीं होकर अन्त्य स्थान पर स्थित होगा तो उस 'व' का लोप नहीं होगा। जैसेः—एवमेव में दो वकार हैं; तो इनमें से मध्यवर्ती 'वकार' का ही विकल्प से लोप होगा; न कि अन्त्य 'वकार' का। ऐसा ही अन्य शब्दों के सम्बंध में जान लेना ॥

यावत् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत में जा और जाव रूप होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; १-२७१ से अन्तर्वर्ती 'व' का विकल्प से लोप; और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर क्रम से *जा* और *जाव* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तावत् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप ता और ताव होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तर्वर्ती 'व' का विकल्प से लोप और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर क्रम से *ता* और *ताव* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

जीवितम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जीअं और जीविअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२७१ से अन्तर्वर्ती स्वर सहित 'वि' का अर्थात् संपूर्ण 'वि' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; १-१७७ से दोनों रूपों में 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *जीअं* और *जीविअं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

आवर्तमानः संस्कृत वर्तमान कृदन्त का रूप है। इसके प्राकृत रूप अत्तमाणो और आवत्तमाणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १–८४ से आदि दीर्घ स्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; १–२७१ से अन्तर्वर्ती सस्वर 'व' का विकल्प से लोप; २–७९ से 'र' का लोप; २–८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १–२२८ से 'न' का 'ण' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अत्तमाणो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से सूत्र-संख्या १–२७१ का अभाव जानना और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान होकर द्वितीय रूप *आवत्तमाणो* भी सिद्ध हो जाता है।

अवटः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अडो और अवडो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १–२७१ से अन्तर्वर्ती सस्वर 'व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; १–१९५ से 'ट' का 'ड' और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *अडो* और *अवडो* दोनों की सिद्धि हो जाती है।

प्रावारकः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप पारओ और पावारओ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २–७९ से प्रथम 'र्' का लोप; १–२७१ से अन्तर्वर्ती सस्वर 'वा' का विकल्प से लोप; १–१७७ से दोनों रूपों में 'क्' का लोप और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *पारओ* और *पावारओ* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

देव-कुलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दे-उलं और देव-उलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १–२७१ से अन्तर्वर्ती सस्वर 'व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप; १–१७७ से 'क्' का दोनों रूपों में लोप; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *दे-उलं* और *देव-उलं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

एवमेव संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप एमेव और एवमेव होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १–२७१ से अन्तर्वर्ती (प्रथम) सस्वर 'व' का अर्थात् संपूर्ण 'व' व्यञ्जन का विकल्प से लोप होकर क्रम से *एमेव* और *एवमेव* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥ १–२७१ ॥

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्र–विरचितायां सिद्ध हेम-
चन्द्राभिधान-स्वोपज्ञ शब्दानुशासन वृत्तौ
अष्टमस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

इस प्रकार आचार्य श्री हेमचन्द्र महाराज द्वारा रचित 'सिद्ध हेमचन्द्र नामावली और स्व-कृत टीकावली शब्दानुशासन रूप व्याकरण के आठवें अध्याय रूप प्राकृत-व्याकरण का प्रथम पाद (प्रथम चरण) पूर्ण हुआ ॥

पादान्त मंगलाचरण

यद् दोर्मण्डल कुण्डली कृत धनुर्दण्डेन सिद्धाधिप !
क्रीतं वैरिकुलात् त्वया किल दलत् कुन्दावदातं यशः ॥
भ्रान्त्वा त्रीणि जगन्ति खेद-विवशं तन्मालवीनां व्यधा-
दापाण्डौ स्तनमण्डले च धवले गण्डस्थले च स्थितिम् ॥

अर्थः-हे सिद्धराज ! आपने अपने दोनों भुज-दण्डों द्वारा गोलाकार बनाये हुए धनुष की सहायता से, खिले हुए मोगरे के फूल के समान सुन्दर एवं निर्मल यश को शत्रुओं से (उनको हरा कर) खरीदा है-(एकत्र किया है) उस यश ने तीनों जगत् में परिभ्रमण करके अन्त में थकावट के कारण से विवश होता हुआ मालव देश के राजाओं की पत्नियों के (अंग राग नहीं लगाने के कारण से) फीके पड़े हुए स्तन-मण्डल पर एवं सफेद पड़े हुए गालों पर विश्रांति ग्रहण की है। आचार्य हेमचन्द्र ने मंगलाचरण के साथ महान् प्रतापी सिद्धराज की विजय-स्तुति भी श्रृंगारिक-ढंग से प्रस्तुत कर दी है। यह मंगलाचरण प्रशस्ति-रूप है; इसमें यह ऐतिहासिक तत्त्व बतला दिया है कि सिद्धराज ने मालवे पर चढ़ाई की थी; वहाँ के नरेशों को बुरी तरह से पराजित किया था; एवं इस कारण से राज-रानियों ने श्रृंगार करना और अंग राग लगाना छोड़ दिया था; जिससे उनका शरीर एवं उनके अंगोपांग फीके-फीके प्रतीत होते थे; तथा राज्यभ्रष्टता के कारण से दुःखी होने से उनके मुख-मण्डल भी सफेद पड़ गये थे; यह फीकापन और सफेदी महाराज सिद्धराज के उस यश की मानों प्रति छाया ही थी; जो कि विश्व के तीनों लोक में फैल गया था। काव्य में लालित्य और वक्रोक्ति एवं उक्ति-वैचित्र्य-अलंकार का कितना सुन्दर सामञ्जस्य है ?)

'मूल सूत्र और वृत्ति' पर लिखित प्रथम पाद संबंधी 'प्रियोदय-चन्द्रिका' नामक हिन्दी व्याख्या एवं शब्द-साधनिका भी समाप्त ॥

शुष्क-स्कन्दे वा ॥ २-५ ॥

अनयोः ष्क स्क-योः खो वा भवति ॥ सुक्खं सुक्कं । खन्दो कन्दो ॥

अर्थः—'शुष्क' और 'स्कन्द' में रहे हुए 'ष्क' के स्थान पर एवं 'स्क' के स्थान पर विकल्प से 'ख' होता है। जैसेः—शुष्कम्=सुक्खं अथवा सुक्कं और स्कन्दः=खन्दो अथवा कन्दो ॥

शुष्कम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुक्खं और सुक्कं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-५ से 'ष्क' के स्थान पर विकल्प से 'ख'; २-८९ से प्राप्त 'ख' का द्वित्व 'खख'; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' का 'क्'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप सुक्खं सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप सुक्कं भी सिद्ध हो जाता है।

स्कन्दः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप खन्दो और कन्दो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५ से 'स्क' के स्थान पर विकल्प से 'ख' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *खन्दो* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप कन्दो में सूत्र-संख्या २-७७ से 'स्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *कन्दो* भी सिद्ध हो जाता है। २-५।

क्ष्वेटकादौ ॥ २-६ ॥

क्ष्वेटकादिषु संयुक्तस्य खो भवति ॥ खेडओ ॥ क्ष्वेटक शब्दो विष-पर्यायः । क्ष्वोटकः । खोडओ ॥ स्फोटकः । खोडओ । स्फेटकः । खेडओ ॥ स्फेटिकः । खेडिओ ॥

अर्थः—विष-अर्थ वाचक क्ष्वेटक शब्द में एवं क्ष्वोटक, स्फोटक, स्फेटक और स्फेटिक शब्दों में आदि स्थान पर रहे हुए संयुक्त अक्षरों का अर्थात् 'क्ष्व्', तथा 'स्फ' का 'ख' होता है। जैसेः—क्ष्वेटकः=खेडओ; क्ष्वोटकः=खोडओ; स्फोटकः=खोडओ; स्फेटकः=खेडओ और स्फेटिकः=खेडिओ ॥

क्ष्वेटकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खेडओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-६ से 'क्ष्व' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खेडओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्ष्वेटकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खोडओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-६ से 'क्ष्व्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **खोडओ** रूप सिद्ध हो जाता है।

स्फोटकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खोडओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-६ से 'स्फ्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **खोडओ** रूप सिद्ध हो जाता है।

स्फेटकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खेडओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-६ से 'स्फ्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट' का 'ड'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति की होकर **खेडओ** रूप सिद्ध हो जाता है।

स्फेटिकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खेडिओ होता है। इसमें 'स्फेटकः' के समान ही साधनिका-सूत्रों की प्राप्ति होकर **खेडिओ** रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-६ ॥

स्थाणावहरे ॥ २-७ ॥

स्थाणौ संयुक्तस्य खो भवति हरश्चेद् वाच्यो न भवति ॥ खाणू ॥ अहर इति किम्। थाणुणो रेहा ॥

अर्थः—स्थाणु शब्द के अनेक अर्थ होते हैं:—ठूंठा वृक्ष खम्भा, पर्वत और महादेव आदि जिस समय में स्थाणु शब्द का तात्पर्य 'महादेव' नहीं होकर अन्य अर्थ वाचक हो; तो उस समय में प्राकृत रूपान्तर में आदि संयुक्त अक्षर 'स्थ्' का 'ख्' होता है।

प्रश्नः—'महादेव-अर्थ वाचक 'स्थाणु' शब्द हो तो उस समय में 'स्थाणु' शब्द में स्थित संयुक्त 'स्थ्' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति क्यों नहीं होती है? अर्थात् मूल-सूत्र में 'अहर यानें महादेव-वाचक नहीं हो तो';—ऐसा क्यों उल्लेख किया गया है?

उत्तरः—यदि 'स्थाणु' शब्द का अर्थ महादेव होगा; तो उस समय में 'स्थाणु' का प्राकृत रूपान्तर 'थाणु' ही होगा; न कि 'खाणु'। ऐसा परम्परा-सिद्ध रूप निश्चित है; इस बात को बतलाने के लिये ही मूल-सूत्र में 'अहर' यानें 'महादेव—अर्थ में नहीं' ऐसा उल्लेख करना पड़ा है। जैसे:-स्थाणुः=(ठूठा वृक्ष)=खाणू ॥ स्थाणोः रेखा=(महादेवजी का चिह्न)=थाणुणो रेहा ॥ इस प्रकार 'खाणु' में और 'थाणु' में जो अन्तर है; वह ध्यान में रखना जाना चाहिये ॥

स्थाणुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खाणू होता है। इसमें सूत्र—संख्या २-७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' का 'ख' और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *खाणू* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थाणोः संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप थाणुणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; ३-२३ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *थाणुणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रेखा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रेहा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होकर *रेहा* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-७॥

स्तम्भे स्तो वा ॥ २-८॥

स्तम्भ शब्दे स्तस्य खो वा भवति ॥ खम्भो ॥ थम्भो। काष्ठादिमयः ॥

अर्थः—'स्तम्भ' शब्द में स्थित 'स्त' का विकल्प से 'ख' होता है। जैसे:—स्तम्भः=खम्भो अथवा थम्भो॥ स्तम्भ अर्थात् लकड़ी आदि का निर्मित पदार्थ विशेष॥

स्तम्भः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप खम्भो और थम्भो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८ से 'स्त' का विकल्प से 'ख' और द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-९ से 'स्त' का 'थ' तथा ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *खम्भो* और *थम्भो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

थ-ठाव स्पन्दे ॥ २-९ ॥

स्पन्दाभाववृत्तौ स्तम्भे स्तस्य थठौ भवतः ॥ थम्भो। ठम्भो॥ स्तम्भ्यते। थम्भिज्जइ ठम्भिज्जइ॥

अर्थः—"स्पन्दाभाव" अर्थात् हलन-चलन क्रिया से रहित-जड़ी भूत अवस्था की स्थिति में "स्तम्भ" शब्द प्रयुक्त हुआ हो तो उस "स्तम्भ" शब्द में स्थित "स्त" का 'थ' भी होता है और "ठ" भी होता है; यों स्तम्भ के प्राकृत रूपान्तर में दो रूप होते हैं। जैसे:-स्तम्भः=थम्भो अथवा ठम्भो॥ स्तम्भ्यते=(उससे स्तम्भ के समान स्थिर हुआ जाता है)=थम्भिज्जइ अथवा ठम्भिज्जइ॥

थम्भो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-८ में की गई है।

स्तम्भः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप ठम्भो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-९ से विकल्प से "स्त" का "ठ" और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ठम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तम्भ्यते संस्कृत कर्मणि क्रियापद का रूप है। इसके प्राकृत रूप थम्भिज्जइ और ठम्भिज्जइ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-९ से 'स्त' का विकल्प से 'थ'; ३-१६० से संस्कृत कर्मणिप्रयोग में प्राप्त 'य' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *थम्भिज्जइ* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में उसी सूत्र-संख्या २-९ से 'स्त' का विकल्प से 'ठ' और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *ठम्भिज्जइ* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-९ ॥

रक्ते गो वा ॥ २-१० ॥

रक्त शब्दे संयुक्तस्य गो वा भवति ॥ रग्गो रत्तो ॥

अर्थः—रक्त शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्त' के स्थान पर विकल्प से 'ग' होता है। जैसेः—रक्तः=रग्गो अथवा रत्तो ॥ रक्तः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रग्गो और रत्तो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१० से 'क्त' के स्थान पर विकल्प से 'ग' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप रग्गो सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७७ से 'क्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और शेष सिद्धि प्रथम रूप के समान ही होकर रत्तो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१० ॥

शुल्के ङ्गो वा ॥ २-११ ॥

शुल्क शब्दे संयुक्तस्य ङ्गो वा भवति ॥ सुङ्गं सुक्कं ॥

अर्थः—'शुल्क' शब्द में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ल्क' के स्थान पर विकल्प से 'ङ्ग' की प्राप्ति होती है और इससे शुल्क के प्राकृत-रूपान्तर में दो रूप होते हैं। जो कि इस प्रकार हैः—शुल्कम्=सुङ्गं और सुक्कं ॥

शुल्कम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सुङ्गं और सुक्कं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-११ से 'ल्क' के स्थान पर विकल्प से 'ङ्ग' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप 'सुङ्गं' सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप सुक्कं में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप सुक्कं भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-११ ॥

कृत्ति-चत्वरे चः ॥ २-१२ ॥

अनयोः संयुक्तस्य चो भवति ॥ किच्ची । चच्चरं ॥

अर्थः— कृत्ति शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' स्थान पर 'च' की प्राप्ति और 'चत्वर' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर भी 'च' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कृत्तिः=किच्ची और चत्वरम्=चच्चरं ॥

कृत्तिः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर किच्ची होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१२ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च'; ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *किच्ची* रूप सिद्ध हो जाता है।

चत्वरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चच्चरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१२ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *चच्चरं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१२ ॥

त्योऽचैत्ये ॥ २-१३ ॥

चैत्यवर्जिते त्यस्य चो भवति ॥ सच्चं । पच्चओ ॥ अचैत्य इति किम् । चइत्तं ॥

अर्थ-चैत्य शब्द को छोड़कर यदि अन्य किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' रहा हुआ हो तो उस संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' के स्थान पर 'च' होता है। जैसे:—सत्यम्=सच्चं । प्रत्ययः=पच्चओ इत्यादि ॥

प्रश्नः—'चैत्य में स्थित 'त्य' के स्थान पर 'च' का निषेध क्यों किया गया है ?

उत्तरः—क्योंकि 'चैत्य' शब्द का प्राकृत रूपान्तर चइत्तं उपलब्ध है-परम्परा से प्रसिद्ध है; अतः चैत्य में स्थित 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे:—चैत्यम्=चइत्तं ।

सत्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सच्चं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सच्चं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रत्ययः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर पच्चओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१३ से 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति, १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पच्चओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

चइसो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५१ में की गई है। २-१३ ॥

प्रत्यूषे षश्च हो वा ॥२-१४॥

प्रत्यूषे त्यस्य चो भवति, तत्संनियोगे च षस्य हो वा भवति ॥ पच्चूहो। पच्चूसो ॥

अर्थः—'प्रत्यूष' शब्द में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' का 'च' होता है। इस प्रकार 'च' की प्राप्ति होने पर अन्तिम 'ष' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसेः—प्रत्यूषः=पच्चूहो अथवा पच्चूसो ॥

प्रत्यूषः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पच्चूहो और पच्चूसो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१४ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्य' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति; २-१४ से 'ष' का प्रथम रूप में विकल्प से 'ह' और द्वितीय रूप में वैकल्पिक पक्ष होने से १-२६० से 'ष' का 'स' एवं ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *पच्चूहो* और *पच्चूसो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। २-१४॥

त्व-थ्व-द्व-ध्वां च-छ-ज-झाः क्वचित् ॥२-१५॥

एषां यथासंख्यमेते क्वचित् भवन्ति ॥ भुक्त्वा। भोच्चा ॥ ज्ञात्वा। णच्चा ॥ श्रुत्वा। सोच्चा ॥ पृथ्वी। पिच्छी ॥ विद्वान्। विज्जो ॥ बुद्ध्वा। बुज्झा ॥

भोच्चा सयलं पिच्छिं विज्जं बुज्झा अणण्णय-ग्गामि।
चइऊण तवं काउं सन्ती पत्तो सिवं परमं ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में 'त्व' रहा हुआ हो तो कभी-कभी इस संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' होता है, 'थ्व' के स्थान पर 'छ' होता है; 'द्व' के स्थान पर 'ज' होता है और 'ध्व' के स्थान पर 'झ' होता है। मूल सूत्र में 'क्वचित्' लिखा हुआ है, जिसका तात्पर्य यही होता है कि 'त्व' 'थ्व' 'द्व' और 'ध्व' के स्थान पर क्रम से च, छ, ज और झ की प्राप्ति कभी कभी हो जाती है। जैसेः—'त्व' के उदाहरणः—भुक्त्वा=भोच्चा ॥ ज्ञात्वा=णच्चा। श्रुत्वा=सोच्चा ॥ 'थ्व' का उदाहरणः पृथ्वी=पिच्छी ॥ 'द्व' का उदाहरणः—विद्वान्=विज्जो ॥ 'ध्व' का उदाहरणः—बुद्ध्वा=बुज्झा ॥ इत्यादि ॥ गाथा का हिन्दी अर्थ इस प्रकार हैः—दूसरों को प्राप्त हुई हैं-ऐसी-(ऋद्धिवाले) हे शांतिनाथ! (आपने) सम्पूर्ण पृथ्वी का (राज्य) भोग करके; (सम्यक्) ज्ञान प्राप्त करके (एवं) तपस्या करने के लिये (राज्य को) छोड़ करके अंत में परम कल्याण रूप (मोक्ष-स्थान) को प्राप्त किया है। (अर्थात् आप सिद्ध स्थान को पधार गये हैं) ॥

भुक्त्वा कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भोच्चा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-११६ से 'उ'

के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; २-७७ से 'क्' का लोप; २-१५ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'च्' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति होकर *ओच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्ञात्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप णच्चा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-८४ से आदि 'आ' को ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति; २-४२ से 'ज्ञ' को 'ण' की प्राप्ति; २-१५ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति होकर *णच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सोच्चा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स'; १-११६ से 'उ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; २-१५ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्व' के स्थान पर 'च' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति होकर *सोच्चा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पिच्छी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

विद्वान् संस्कृत प्रथमान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्जो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' को ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-१५ से 'द्व' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति, २-८९ प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुद्ध्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप है बुज्झा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-१५ से 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' का 'ज्' होकर *बुज्झा* रूप सिद्ध हो जाता है।

भोच्चा रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

सकलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सयलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सयलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वीम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिच्छिं होता है। पिच्छि रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२८ में की गई है। विशेष इस रूप में सूत्र संख्या ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पिच्छिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्याम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्जं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-३६ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२४ से 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज'

की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत के समान ही 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विज्जं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुज्झा रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

अनन्यक-गामि संस्कृत तद्धित संबोधन रूप है। इसका प्राकृत रूप अणण्णय-ग्गामि होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२२८ से दोनों 'न' के स्थान पर दो 'ण' की क्रम से प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से द्वितीय 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; २-९७ से 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त में ह्रस्व इकारान्त की प्राप्ति होकर *अणण्ण-ग्गामि* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्यक्त्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप चइऊण होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-८६ से 'त्यक्' संस्कृत धातु के स्थान पर 'चय्' आदेश की प्राप्ति; ४-२३९ से धात्विक विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; ३-१५७ से लोप हुए 'य्' में से शेष बचे हुए धात्विक विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *चइऊण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पः संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप तवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तवं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्तुम् संस्कृत हेत्वर्थ कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप काउं होता है। मूल संस्कृत धातु 'कृ' है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' का 'अ'; ४-२१४ से प्राप्त 'अ' को 'आ' की प्राप्ति; १-१७७ से संस्कृत हेत्वर्थ कृदन्त में प्राप्त 'तुम' प्रत्यय के 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर काउं रूप सिद्ध हो जाता है। अथवा ४-२१४ से 'अ' को 'आ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; और १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *काउं* रूप सिद्ध होता है।

शान्तिः संस्कृत प्रथमान्त रूप है इसका प्राकृत रूप सन्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *सन्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्राप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से द्वितीय 'प्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सरस्वतिप्रदेन भण्डारार

शिवम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सिवं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सिवं* रूप सिद्ध हो जाता है। *परमम्* संस्कृत द्वितीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप परमं होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२३ से अन्त्य 'म्' का अनुस्वार होकर *परमं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१५ ॥

वृश्चिके श्चेञ्चुर्वा ॥ २-१६ ॥

वृश्चिके श्चेः सस्वरस्य स्थाने ञ्चुरादेशो वा भवति ॥ छापवादः ॥ विञ्चुओ विंचुओ । पक्षे । विञ्छिओ ॥

अर्थः-वृश्चिक शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन सहित और उस में स्वर रहे हुए के साथ 'श्चि' के स्थान पर अर्थात् संपूर्ण 'श्चि' के स्थान पर विकल्प से 'ञ्चु' का आदेश होता है। सूत्र-संख्या २-२१ में ऐसा विधान है कि 'श्च' के स्थान पर 'छ' होता है। जब कि इसमें 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश बतलाया गया है; अतः इस सूत्र को सूत्र-संख्या २-२१ का अपवाद समझना चाहिये ॥ उदाहरण इस प्रकार है:—

वृश्चिकः = विञ्चुओ या विंचुओ ॥ वैकल्पिक पक्ष होने से विञ्छिओ भी होता है ॥

वृश्चिकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विञ्चुओ, विंचुओ और विञ्छिओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *विञ्चुओ* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१६ से 'श्चि' के स्थान पर 'ञ्चु' का आदेश; १-२५ से आदेश रूप से प्राप्त 'ञ्चु' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का अनुस्वार; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विंचुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप विञ्छिओ में सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-२१ से 'श्च' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; १-२६ से आदेश रूप से प्राप्त 'छ' के पूर्व में अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार को परवर्ती 'छ' होने के कारण से छवर्ग के पंचमाक्षर रूप हलन्त 'ञ्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर "ओ" प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विञ्छिओ* रूप सिध्द हो जाता है।

छोऽक्ष्यादौ ॥२-१७॥

अक्ष्यादिषु संयुक्तस्य छो भवति । खस्यापवादः ॥ अच्छि । उच्छू । लच्छी । कच्छो ।

छीअं । छीरं । सरिच्छो । वच्छो । मच्छिआ । छेत्तं । छुहा । दच्छो । कुच्छी । वच्छं । छुण्णो । कच्छा । छारो । कुच्छेअयं । छुरो । उच्छा । छयं । सारिच्छं ।। अक्षि । इक्षु । लक्ष्मी । कक्ष । क्षुत । क्षीर । सदृक्ष । वृक्ष । मक्षिका । क्षेत्र । क्षुध् । दक्ष । कुक्षि । वक्षस् । क्षुण्ण । कक्षा । क्षार । कौक्षेयक । क्षुर । उक्षन् । क्षत । सादृक्ष्य ।। क्वचित् स्थगित शब्देऽपि । छइअं ।। आर्षे । इक्खू । खीरं । सारिक्खमित्याद्यपि दृश्यते ।।

अर्थः—इस सूत्र में उल्लिखित अक्षि आदि शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' का 'छ' होता है। सूत्र-संख्या २–३ में कहा गया है कि 'क्ष' का 'ख' होता है। किन्तु इस सूत्र में कहा जा रहा है कि संयुक्त 'क्ष' का 'छ' होता है। अतः इस सूत्र को सूत्र-संख्या २-३ का अपवाद माना जाय। 'क्ष' के स्थान पर प्राप्त 'छ' सम्बन्धी उदाहरण इस प्रकार हैं:—अक्षिम्=अच्छि। इक्षुः = उच्छू। लक्ष्मीः=लच्छी। कक्षः=कच्छो। क्षुतम् = छीअं। क्षीरम्=छीरं। सदृक्षः=सरिच्छो। वृक्षः=वच्छो। मक्षिका = मच्छिआ। क्षेत्रम्=छेत्तं। क्षुधा = छुहा। दक्षः = दच्छो। कुक्षिः=कुच्छी। वक्षस=वच्छं। क्षुण्णः=छुण्णो। कक्षा = कच्छा। क्षारः = छारो। कौक्षेयकम् = कुच्छेअयं। क्षुरः = छुरो। उक्षा = उच्छा। क्षतम् = छयं। सादृक्ष्यम् =सारिच्छं।। कभी कभी 'स्थगित' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। जैसेः–स्थगितम् = छइअं।। आर्ष प्राकृत में इक्षुः का इक्खु भी पाया जाता है। क्षीरम् का खीरं भी देखा जाता है और सादृक्ष्यम् का सारिक्खम् रूप भी आर्ष प्राकृत में होता है। इस प्रकार के रूपान्तर स्वरूप वाले अन्य शब्द भी आर्ष-प्राकृत में देखे जाते हैं।

अच्छि रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–३५ में की गई है।

उच्छू रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–९५ में की गई है।

लक्ष्मीः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लच्छी होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-७८ से 'म्' का लोप; २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ्छ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति; और १-११ से अन्त्य विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप होकर *लच्छी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कच्छो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छीअं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११२ में की गई है।

क्षीरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छीरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर छीरं रूप सिद्ध हो जाता है।

सरिच्छो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४४ में की गई है।

वृक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मक्षिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मच्छिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ प्राप्त; 'छ्' को द्वित्व छ्छ् की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *मच्छिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षेत्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छेत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-७९ से 'त्र' में 'स्थित' 'र्' का लोप; २-८९ से 'शेष' 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर छेत्तं रूप सिद्ध हो जाता है।

छुहा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७ में की गई है।

दक्षः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दच्छो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर दच्छो रूप सिद्ध हो जाता है।

कुच्छी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

वक्षः=वक्षस् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वच्छं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व छ्छ की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त, पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वच्छं रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षुण्णः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छुण्णो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में

'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छुण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कक्षा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कच्छा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ् छ्' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को 'च्' की प्राप्ति होकर *कच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षारः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत छारो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छारो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुच्छेअयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६१ में की गई है।

क्षुरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छुरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छुरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उक्षाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उच्छा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ् छ्' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' को च् की प्राप्ति होकर *उच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षतम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सादृश्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सारिच्छं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१४२ से 'दृ' के स्थान पर 'रि' का आदेश; २-१७ से 'श्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ् छ्' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' को 'च्' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सारिच्छं* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्थगितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छइअं भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७ से की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'छ' का आदेश; १-१७७ से 'ग्' का और 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म् का अनुस्वार होकर *छइअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इक्षुः संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत में इक्खू रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर इक्खू रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षीरम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप खीरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर खीरं रूप सिद्ध हो जाता है।

सादृश्यम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप सारिक्खं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४२ से 'दृ' के स्थान पर 'रि' आदेश की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख' को 'क' की प्राप्ति; २-७८ से 'य' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सारिक्खं रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१७॥

क्षमायां कौ ॥ २-१८ ॥

कौ पृथिव्यां वर्तमाने क्षमा शब्दे संयुक्तस्य छो भवति ॥ छमा पृथिवी ॥ लाक्षणिकस्यापि क्ष्मादेशस्य भवति । क्ष्मा । छमा ॥ काविति किम् । खमा क्षान्तिः ॥

अर्थः-यदि 'क्षमा' शब्द का अर्थ पृथिवी हो तो 'क्षमा' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। मूल-सूत्र में जो 'कु' लिखा हुआ है; उसका अर्थ 'पृथिवी' होता है। उदाहरण इस प्रकार है:-क्षमा=छमा अर्थात् पृथिवी॥ पृथिवी में सहन-शीलता का गुण होता है। इसी सहन-शीलता वाचक गुण को संस्कृत-भाषा में 'क्ष्म' भी कहते हैं; तदनुसार जैसा गुण जिसमें होता है; उस गुण के अनुसार ही उसकी संज्ञा संस्थापित करना 'लाक्षणिक-तात्पर्य' कहलाता है। अतः पृथिवी में सहन-शीलता का गुण होने से पृथिवी की एक संज्ञा 'क्ष्मा' भी है। जो कि लाक्षणिक आदेश रूप है। इस लाक्षणिक-आदेश रूप शब्द 'क्ष्मा' में रहे हुए हलन्त संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्' के स्थान पर 'छ' होता है। जैसे:-क्ष्मा=छमा ॥

प्रश्नः—मूल-सूत्रकार ने सूत्र में 'कौ' ऐसा क्यों लिखा है?

उत्तरः—चूंकि 'क्षमा' शब्द के संस्कृत भाषा में दो अर्थ होते हैं; एक तो पृथिवी अर्थ होता है और दूसरा क्षान्ति अर्थात् सहन-शीलता। अतः जिस समय में 'क्षमा' शब्द का अर्थ 'पृथिवी' होता है; तो

उस समय में प्राकृत-रूपान्तर में 'क्षमा' में स्थित 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होगी; और जब 'क्षमा' शब्द का अर्थ सहन-शीलता यानि क्षान्ति होता है; तो उस समय में 'क्षमा' शब्द में रहे हुए 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति होगी। इस तात्पर्य-विशेष को बतलाने के लिए ही सूत्र-कार ने मूल-सूत्र में 'कौ' शब्द को जोड़ा है—अथवा लिखा है। जैसे:—क्षमा = (क्षान्तिः)=खमा अर्थात् सहन-शीलता ॥

क्ष्मा (पृथिवी) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छमा होता है इसमें सूत्र-संख्या-२-१८ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होकर *छमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्ष्मा (पृथिवी) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८ से हलन्त और संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्' के स्थान पर हलन्त छ्' की प्राप्ति; २-१०१ से प्राप्त हलन्त 'छ्' में 'अ' स्वर की प्राप्ति होकर *छमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षमा-(क्षान्ति) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-३ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति होकर *खमा* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१८ ॥

ऋक्षे वा ॥ २-१९ ॥

ऋक्ष शब्दे संयुक्तस्य छो वा भवति ॥ रिच्छं । रिक्खं । रिच्छो । रिक्खो ॥ कथं छूढं क्षिप्तं । वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ (२-१२७) इति भविष्यति ॥

अर्थः-ऋक्ष शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' का विकल्प से 'छ' होता है। जैसे:-ऋक्षम्=रिच्छं अथवा रिक्खं ॥ ऋक्षः=रिच्छो अथवा रिक्खो ॥

प्रश्नः—'क्षिप्तम्' विशेषण में रहे हुए स्वर सहित संयुक्त व्यञ्जन 'क्षि' के स्थान पर 'छू' कैसे हो जाता है ? एवं 'क्षिप्तम्' का 'छूढं' कैसे बन जाता है ?

उत्तरः—सूत्र-संख्या २-१२७ में कहा गया है कि 'वृक्ष' के स्थान पर 'रुक्ख' आदेश होता है और 'क्षिप्त' के स्थान पर 'छूढ' आदेश होता है। ऐसा उक्त सूत्र में आगे कहा जायगा ॥

ऋक्षम्:-संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रिच्छं और रिक्खं होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-१४० से 'ऋ' की 'रि' प्रथम रूप में २-१९ से 'क्ष' के स्थान पर विकल्प से 'छ'; २-८९ से प्राप्त 'छ' को द्वित्व 'छ् छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ' को 'च्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *रिच्छं* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख् ख' की; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *रिक्खं* सिद्ध हो जाता है।

रिक्खो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४० में की गई है।

ऋक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रिक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४० से 'ऋ' की 'रि'; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रिक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षिप्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छूढं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से संपूर्ण 'क्षिप्त' के स्थान पर 'छूढ' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छूढं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वृक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रुक्खो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से 'वृक्ष' के स्थान पर 'रुक्ख' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रुक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छूढो रूप की सिद्धि इसी सूत्र से ऊपर कर दी गई है। अन्तर इतना सा है कि ऊपर नपुंसकात्मक विशेषण है और यहाँ पर पुल्लिंगात्मक विशेषण है। अतः सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छूढो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९ ॥

क्षण उत्सवे ॥ २-२० ॥

क्षण शब्दे उत्सवाभिधायिनि संयुक्तस्य छो भवति ॥ छणो ॥ उत्सव इतिकिम् । खणो ।

अर्थः—क्षण शब्द का अर्थ जब 'उत्सव' हो तो उस समय में क्षण में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' का 'छ' होता है। जैसेः—क्षणः = (उत्सव) = छणो ॥

प्रश्नः—मूल-सूत्र में 'उत्सव' ऐसा उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तरः—क्षण शब्द के संस्कृत में दो अर्थ होते हैं। उत्सव और काल-वाचक सूक्ष्म समय विशेष। अतः जब 'क्षण' शब्द का अर्थ उत्सव हो तो उस समय में 'क्ष' का 'छ' होता है एवं जब 'क्षण' शब्द का अर्थ सूक्ष्म काल वाचक समय विशेष हो तो उस समय में 'क्षण' में रहे हुए 'क्ष' का 'ख' होता है। जैसेः—'क्षणः' (समय विशेष)=खणो ॥ इस प्रकार की विशेषता बतलाने के लिये ही मूल-सूत्र में 'उत्सव' शब्द जोड़ा गया है।

क्षणः (उत्सव) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२० से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षणः (काल वाचक) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खणो* रूप सिद्ध हो जाता है। २-२० ॥

ह्रस्वात् थ्य-श्च-त्स-प्सामनिश्चले ॥२-२१॥

ह्रस्वात् परेषां थ्य श्च त्स प्सां छो भवति निश्चले तु न भवति ॥ थ्य । पच्छं । पच्छा । मिच्छा ॥ श्च । पच्छिमं । अच्छेरं । पच्छा ॥ त्स । उच्छाहो । मच्छलो । मच्छरो । संवच्छलो । संवच्छरो । चिइच्छइ ॥ प्स । लिच्छइ । जुगुच्छइ । अच्छरा । ह्रस्वादिति किम् । ऊसारिओ । अनिश्चल इति किम् । निच्चलो । आर्षे तथ्ये चो पि । तच्चं ॥

अर्थः—यदि किसी शब्द में ह्रस्व स्वर के बाद में 'थ्य; श्च; त्स; अथवा प्स में से कोई एक आ जाय; तो इनके स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। किन्तु यह नियम 'निश्चल' शब्द में रहे हुए 'श्च' के लिये नहीं है। यह ध्यान में रहे ॥ 'थ्य' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—पथ्यम्=पच्छं ॥ पथ्या=पच्छा ॥ मिथ्या=मिच्छा इत्यादि ॥ 'श्च' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—पश्चिमम्=पच्छिमं। आश्चर्यम्=अच्छेरं ॥ पश्चात्=पच्छा ॥ 'त्स' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—उत्साहो=उच्छाहो। मत्सरः=मच्छलो अथवा मच्छरो ॥ संवत्सरः=संवच्छलो अथवा संवच्छरो ॥ चिकित्सति=चिइच्छइ ॥ 'प्स' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—लिप्सते=लिच्छइ ॥ जुगुप्सति=जुगुच्छइ ॥ अप्सरा=अच्छरा ॥ इत्यादि ॥

प्रश्नः—'ह्रस्व स्वर' के पश्चात् ही रहे हुए हों तो 'थ्य', 'श्च' 'त्स' और 'प्स' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति होती है। ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तरः—यदि 'थ्य, श्च, त्स और प्स' दीर्घ स्वर के पश्चात् रहे हुए हों तो इनके स्थान पर 'छ' की प्राप्ति नहीं होती है। अतः 'ह्रस्व स्वर' का उल्लेख करना पड़ा। जैसे:—उत्सारितः=ऊसारिओ। इस उदाहरण में प्राकृत रूप में 'ऊ' दीर्घ स्वर है; अतः इसके परवर्ती 'त्स' का 'छ' नहीं हुआ है। यदि प्राकृत रूप में ह्रस्व स्वर होता तो 'त्स' का 'छ' हो जाता।

प्रश्नः—'निश्चल' शब्द में ह्रस्व स्वर 'इ' के पश्चात् ही 'श्च' रहा हुआ है; तो फिर 'श्च' के स्थान पर प्राप्तव्य 'छ' का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तरः—परम्परागत प्राकृत साहित्य में 'निश्चलः' संस्कृत शब्द का प्राकृत रूप 'निच्चलो' ही उप-

=सेज्जा। 'र्य' के उदाहरण:-भार्या=भज्जा। सूत्र-संख्या २-१०७ से भार्या का भरिआ रूप भी होता है। कार्यम्=कज्जं। वर्यम्=वज्जं। पर्यायः=पज्जाओ। पर्याप्तम्=पज्जत्तं और मर्यादा=मज्जाया॥इत्यादि॥

मद्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मज्जं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' का द्वित्व 'ज्ज'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर मज्जं रूप सिद्ध हो जाता है।

अवद्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवज्जं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अवज्जं रूप सिद्ध हो जाता है।

वेज्जो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४८ में की गई है।

द्युतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर जुई रूप सिद्ध हो जाता है।

द्योतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर जोओ रूप सिद्ध हो जाता है।

जय्यः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप जज्जो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'य्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर जज्जो रूप सिद्ध हो जाता है।

सेज्जा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५७ में की गई है।

भार्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भज्जा होता है। इस में सूत्र-संख्या १-८४ से 'भा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' को 'अ' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर भज्जा रूप सिद्ध हो जाता है।

भार्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत में वैकल्पिक रूप भारिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के 'र्' में 'इ' की प्राप्ति, और १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *भारिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कज्जं और कज्जं दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र- संख्या १-१७७ में की गई है।

पर्यायः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पज्जाओ रूप सिद्ध हो जाता है।

पर्याप्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जत्तं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थानपर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घस्वर 'आ' के स्थानपर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से द्वितीय हलंत 'प्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पज्जत्तं रूप सिद्ध हो जाता है।

मर्यादा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मज्जाया होता है। इस में सूत्र-संख्या २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; १-१७७से 'द्' का लोप; और १-१८० से लोप हुए 'द' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति होकर *मज्जाया* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२४॥

अभिमन्यौ ज-ञ्जौ वा ॥ २-२५ ॥

अभिमन्यौ संयुक्तस्य जो ञ्जश्च वा भवति ॥ अहिमज्जू । अहिमञ्जू । पक्षे अहिमन्नू ॥ अभिग्रहणादिह न भवति । मन्नू ॥

अर्थः—'अभिमन्यु' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ज' और 'ञ्ज' की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'अभिमन्यु' संस्कृत शब्द के प्राकृत रूप तीन हो जाते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:—अभिमन्युः=अहिमज्जू अथवा अहिमञ्जू अथवा अहिमन्नू ॥ मूल-सूत्र में 'अभिमन्यु' लिखा हुआ है; अतः जिस समय में केवल 'मन्यु' शब्द होगा; अर्थात् 'अभि' उपसर्ग नहीं होगा; तब 'मन्यु' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर सूत्र-संख्या २-२५ के अनुसार क्रम से 'ज' अथवा 'ञ्ज' की प्राप्ति नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि 'मन्यु' शब्द के साथ में 'अभि' उपसर्ग होने पर ही संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर 'ज' अथवा 'ञ्ज' की प्राप्ति होती है; अन्यथा नहीं। जैसे:—मन्युः=मन्नू ॥

अभिमन्युः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत में तीन रूप होते हैं:— अहिमज्जू, अहिमञ्जू और अहिमन्नू। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-२५ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अहिमज्जू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-२५ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'ञ्ज' की प्राप्ति, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्रथम रूप के समान ही साधनिका की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अहिमञ्जू* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप *अहिमन्नू* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४३ में की गई है।

मन्युः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मन्नू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न्' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *मन्नू* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२५ ॥

साध्वस-ध्य-ह्यां झः ॥२-२६॥

साध्वसे संयुक्तस्य ध्य-ह्ययोश्च झो भवति ॥ सज्झसं ॥ ध्य । वज्झए । झाणं । उवज्झाओ । सज्झाओ सज्झं विज्झो ॥ ह्य । सज्झो मज्झं ॥ गुज्झं । णज्झइ ॥

अर्थः—'साध्वस' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति होती है। जैसे:-साध्वसम्=सज्झसं ॥ इसी प्रकार जिन शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' होता है अथवा 'ह्य' होता है; तो इन संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर और 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति होती है। जैसे:-'ध्य' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—वध्यते=वज्झए। ध्यानम्=झाणं। उपाध्यायः=उवज्झाओ। स्वाध्यायः=सज्झाओ। साध्यम्=सज्झं और विन्ध्यः=विज्झो ॥ 'ह्य' के उदाहरण इस प्रकार हैं:—सह्यः=सज्झो। मह्यं=मज्झं। गुह्यम्=गुज्झं और नह्यति=णज्झइ इत्यादि ॥

साध्वसम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ् झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सज्झसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वध्यते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप वज्झए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व झ झ' की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति और ३-१३६ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वज्झए* रूप सिद्ध हो जाता है।

ध्यानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप झाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *झाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उवज्झाओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७३* में की गई है।

स्वाध्यायः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से से अथवा २-७६ से 'व्' का लोप; १-८४ से प्रथम दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'झ' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'य' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सज्झाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

साध्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से प्रथम दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति २-८६ से प्राप्त 'झ्' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'झ्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्ययकी प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सज्झं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विंध्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विञ्झो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; १-३० से अनुस्वार को 'झ' वर्ण आगे होने से 'ञ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विञ्झो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सह्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्झो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व झ झ की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'झ' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सज्झो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मह्यम् संस्कृत सर्वनाम अस्मद् का चतुर्थ्यन्त रूप है। इसका रूप मज्झं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मज्झं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुह्यम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप गुज्झं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गुज्झं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नह्यति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप णज्झइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णज्झइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ध्वजे वा ॥ २-२७ ॥

ध्वज शब्दे संयुक्तस्य झो वा भवति ॥ झओ धओ ॥

अर्थः—'ध्वज' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर विकल्प से 'झ' होता है। जैसे:—ध्वजः=झओ अथवा धओ ॥

ध्वजः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप झओ और धओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-२७ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर विकल्प से 'झ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ज्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *झओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप धओ में २-७९ से 'व्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *धओ* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२७ ॥

इन्धौ झा ॥ २-२८ ॥

इन्धौ धातौ संयुक्तस्य झा इत्यादेशो भवति ॥ समिज्झाइ । विज्झाइ ॥

अर्थः—'इन्ध' धातु में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्ध्' के स्थान पर 'झा' का आदेश होता है।

जैसे:—समिन्धते=समिज्झाइ ।। विन्धते=विज्झाइ ।।

समिन्धते अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप समिज्झाइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्ध' के स्थान पर 'झ' आदेश की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति और ३-१३९ के वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समिज्झाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विन्धते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विज्झाइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्ध' के स्थान पर 'झ' आदेश की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विज्झाइ* रूप सिद्ध हो जाता है। ।। २-२८ ।।

वृत्त-प्रवृत्त-मृत्तिका-पत्तन-कदर्थिते टः ।। २-२९ ।।

एषु संयुक्तस्य टो भवति ।। वट्टो । पयट्टो । मट्टिआ । पट्टणं । कवट्टिओ ।।

अर्थः—वृत्त, प्रवृत्त, मृत्तिका, पत्तन और कदर्थित शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर और 'र्थ' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति होती है। जैसे:-वृत्तः=वट्टो । प्रवृत्तः=पयट्टो । मृत्तिका=मट्टिआ । पत्तनम्=पट्टणं और कदर्थितः=कवट्टिओ ।।

वृत्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वट्टो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवृत्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पयट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पयट्टो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृत्तिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मट्टिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से

प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *नट्टिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पत्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पट्टणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२९ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पट्टणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कवट्टिओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२१४ में की गई है। ॥२-२९॥

र्तस्याधूर्तादौ ॥ २-३० ॥

र्तस्य टो भवति धूर्तादीन् वर्जयित्वा ॥ केवट्टो। वट्टी। जट्टो। पयट्टइ ॥ वट्टुलं। राय वट्टयं। नट्टई। संवट्टिअं॥ अधूर्तादाविति किम्। धुत्तो। कित्ती। वत्ता। आवत्तणं। निवत्तणं। पवत्तणं। संवत्तणं। आवत्तओ। निवत्तओ। निव्वत्तओ। पवत्तओ। संवत्तओ। वत्तिआ। वत्तिओ। कत्तिओ। उक्कत्तिओ। कत्तरी। मुत्ती। मुत्तो। मुहुत्तो ॥ बहुलाधिकाराद् वट्टा ॥ धूर्त। कीर्ति। वार्ता। आवर्तन। निवर्तन। प्रवर्तन। संवर्तन। आवर्तक। निवर्तक। निर्वर्तक। प्रवर्तक। संवर्तक। वर्तिका। वार्तिक। कार्तिक। उत्कर्तित। कर्तरि। मूर्ति। मूर्त। मुहूर्त इत्यादि ॥

अर्थः—धूर्त आदि कुछ एक शब्दों को छोड़कर यदि अन्य किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' रहा हुआ हो तो इस संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कैवर्तः=केवट्टो। वर्तिः=वट्टी। जर्तः=जट्टो। प्रवर्तते=पयट्टइ। वर्तुलम्=वट्टुलं। राज-वर्त्तकम्=राय-वट्टयं। नर्तकी=नट्टई। संवर्तितम्=संवट्टिअं।

प्रश्नः—'धूर्त' आदि शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' की उपस्थिति होते हुए भी इस संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर प्राप्त होने योग्य 'ट' का निषेध क्यों किया गया है? अर्थात् 'धूर्त' आदि शब्दों में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' प्राप्ति का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तरः—क्यों कि धूर्त आदि अनेक शब्दों में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर परम्परा से अन्य विकार-आदेश-आगम-लोप आदि की उपलब्धि पाई जाती है; अतः ऐसे शब्दों की स्थिति इस सूत्र-संख्या २-३० से पृथक् ही रक्खी गई है। जैसे:-धूर्तः=धुत्तो। कीर्तिः=कित्ती। वार्ता=वत्ता। आवर्तनम्=आवत्तणं। निवर्तनम्=निवत्तणं। प्रवर्तनम्=पवत्तणं। संवर्तनम्=संवत्तणं। आवर्तकः=आवत्तओ। निवर्तकः=निवत्तओ। निर्वर्तकः=निव्वत्तओ। प्रवर्तकः=पवत्तओ। संवर्तकः=संवत्तओ। वर्तिका=वत्तिआ। वार्तिकः=वत्तिओ। कार्तिकः=कत्तिओ। उत्कर्तितः=उक्कत्तिओ। कर्तरिः=कत्तरी (अथवा कर्तरीः=कत्तरी)। मूर्तिः=मुत्ती। मूर्तः=मुत्तो। और मुहूर्तः=मुहुत्तो॥ इत्यादि अनेक

शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के होने पर भी उनमें सूत्र-संख्या २-३० के विधान के अनुसार 'ट' की प्राप्ति नहीं होती है। 'बहुलाधिकार' से किसी किसी शब्द में दोनों विधियाँ पाई जाती हैं। जैसे 'वार्ता' का 'वट्टा' और 'वत्ता' दोनों रूप उपलब्ध हैं। यों अन्य शब्दों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये ॥

कैवर्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप केवट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर केवट्टो रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर वट्टी रूप सिद्ध हो जाता है।

जर्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जट्टो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर जट्टो रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवर्तते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पयट्टइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ प्रथम 'र्' का लोप; १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पयट्टइ रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्तुलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टुलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वट्टुलं रूप सिद्ध हो जाता है।

राज-वार्तिकम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रायवट्टयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-८४ से 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; १-८८ से 'र्ति' के स्थान पर पूर्वोनुसार प्राप्त 'ट्टि' में स्थित 'इ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष

रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *राय-वट्टयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नर्तकी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नट्टई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप होकर नट्टई रूप सिद्ध हो जाता है।

संवर्तितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संवट्टिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संवट्टिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

धुत्तो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

कीर्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कित्ती होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से 'की' में स्थित दीर्घस्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घस्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *कित्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्ता संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वत्ता होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'वा' में स्थित 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप और २-८९ से लोप हुए 'र्' में से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *वत्ता* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'प' में स्थित 'र्' का और 'त' में स्थित 'र्' का–दोनों का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-२२८ से

'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवर्तनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संवत्तणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *संवत्तणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आवर्तकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आवत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निवर्तकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निवत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्वर्तकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निव्वत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'व' पर स्थित 'र्' का तथा 'त' पर स्थित 'र्' का–दोनों का–लोप; २-८६ से 'व' का द्वित्व तथा 'त' का भी द्वित्व;–दोनों को द्वित्व की प्राप्ति; १-७७ से 'क्' लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निव्वत्तओ* रूप की सिद्धि हो जाती है।

प्रवर्तकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पवत्तओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'प' में स्थित 'र्' का और 'त' पर स्थित 'र्' का–दोनों 'र्' का–लोप; २-८६ से 'त' का द्वित्व 'त्त'; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संवर्तकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संवत्तओ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *संवत्तओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्तिका संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप वत्तिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'क्' का लोप हो कर *वत्तिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्त्तिकः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वत्तिओ होता है। इस में सूत्र-संख्या १-८४ से 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप, २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कार्त्तिकः संस्कृत है। इसका प्राकृत रूप कत्तिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्कर्तितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उक्कत्तिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से प्रथम हलन्त 'त्' का लोप; २-८९ से 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' में से शेष बचे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-१७७ से अंतिम 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उक्कत्तिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्तरी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कत्तरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र' का लोप और २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *कत्तरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्त्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *मुत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्त्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुहूर्त्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुहुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'हू' में स्थित दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुहुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वार्ता संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वट्टा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-३० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर

'ट' का आदेश और २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति होकर वट्टा रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-३०॥

वृन्ते ण्टः ॥२-३१॥

वृन्ते संयुक्तस्य ण्टो भवति ॥ वेण्टं । ताल वेण्टं ॥

अर्थः—वृन्त शब्द में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'न्त' के स्थान पर 'ण्ट' की प्राप्ति होती है। जैसे:—वृन्तम्=वेण्टं और ताल-वृन्तम्=ताल-वेण्टं ॥

वेण्टं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३९ में की गई है।

ताल-वेण्टं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६७ में की गई है। ॥२-३१॥

ठो स्थि-विसंस्थुले ॥ २—३२ ॥

अनयोः संयुक्तस्य ठो भवति ॥ अट्ठी । विसंठुलं ॥

अर्थः—अस्थि और विसंस्थुल शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—अस्थिः=अट्ठी और विसंस्थुलम्=विसंठुलं ॥

अस्थिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३२ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ' के स्थान पर ठ की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *अट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

विसंस्थुलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विसंठुलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३२ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्थ्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विसंठुलं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-३२॥

स्त्यान-चतुर्थार्थे वा ॥२-३३॥

एषु संयुक्तस्य ठो वा भवति ॥ ठीणं थीणं । चउट्ठो । अट्ठो प्रयोजनम् । अत्थो धनम् ॥

अर्थः—'स्त्यान' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त्य' के स्थान पर विकल्प से 'ठ' की प्राप्ति होती है; इसी प्रकार से 'चतुर्थ' एवं 'अर्थ' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्थ' के स्थान पर भी विकल्प से 'ठ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—स्त्यानम्=ठीणं अथवा थीणं ॥ चतुर्थः=चउट्ठो अथवा चउत्थो ॥

अर्थः—अट्ठो अथवा अत्थो ॥ संस्कृत शब्द 'अर्थ' के दो अर्थ होते हैं। पहला अर्थ 'प्रयोजन' होता है और दूसरा अर्थ 'धन होता है। तदनुसार 'प्रयोजन' अर्थ में प्रयुक्त संस्कृत रूप 'अर्थ' का प्राकृत रूप अट्ठो होता है और 'धन' अर्थ में प्रयुक्त संस्कृत रूप 'अर्थ' का प्राकृत रूप 'अत्थो' होता है। यह ध्यान में रखना चाहिये।

ठीणं और *थीणं* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७४ में की गई है।

चउट्ठो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७१ में की गई है।

अर्थः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (प्रयोजन अर्थ में) अट्ठो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३३ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्थ' के स्थान पर विकल्प से 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व ठ्ठ की प्राप्ति; २-९० प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्थः—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (धन अर्थ में) अत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासंदष्टे ॥ २-३४ ॥

उष्ट्रादिवर्जिते ष्टस्य ठो भवति ॥ लट्ठी। मुट्ठी। दिट्ठी। सिट्ठी। पुट्ठो। कट्ठं। सुरट्ठा। इट्ठो। अणिट्ठं। अनुष्ट्रेष्टासंदष्ट इति किम्। उट्टो। इट्टा चुण्णं व्व। संदट्ठो॥

अर्थः—संस्कृत शब्द उष्ट्र, इष्टा और संदष्ट के अतिरिक्त यदि किसी अन्य संस्कृत शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' रहा हुआ हो तो उस संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—लष्टिः= लट्ठी। मुष्टिः—मुट्ठी। दृष्टिः—दिट्ठी। सृष्टिः=सिट्ठी। पृष्टः=पुट्ठो। कष्टम्=कट्ठं। सुराष्ट्राः= सुरट्ठा। इष्टः= इट्ठो और अनिष्टम्= अणिट्ठं॥

प्रश्नः-'उष्ट्र, इष्टा और संदष्ट' में संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' होने पर भी सूत्र-संख्या २-३४ के अनुसार 'ष्ट' के स्थान पर प्राप्तव्य 'ठ' का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तरः—क्योंकि 'उष्ट्र', 'इष्टा' और 'संदष्ट' के प्राकृत रूप प्राकृत साहित्य में अन्य स्वरूप वाले पाये जाते हैं; एवं उनके इन स्वरूपों की सिद्धि अन्य सूत्रों से होती है; अतः सूत्र-संख्या २-३४ से प्राप्तव्य 'ठ' की प्राप्ति का इन रूपों के लिये निषेध किया गया है। जैसे:—उष्ट्रः= उट्टो। इष्टा-चूर्णम् इव = इट्टा-चुण्णं व्व॥ और संदष्टः= संदट्ठो॥

लट्ठी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४७ में की गई है।

मुष्टिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति हो कर *मुट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिट्ठी और *सिट्ठी* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

पृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पुट्ठो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुट्ठो* रूप सिद्ध जाता है।

कष्टम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कट्ठं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुराष्ट्राः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप सुरट्ठा होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'रा' में स्थित दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त होकर लुप्त हुए 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घस्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सुरट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

इष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप इट्ठो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त ठ को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *इट्ठो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अनिष्टम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप अणिट्ठं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उष्ट्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उट्ठो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'ष' का लोप; २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर उट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है।

इष्टा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इट्टा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप और २-८६ से 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति होकर इट्टा रूप सिद्ध हो जाता है।

चूर्णम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चुण्णं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घस्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार होकर चुण्णं रूप सिद्ध हो जाता है।

'इव' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई।

संदृष्टः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप संदट्ठो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८६ से 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर संदट्ठो रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-३४॥

गर्ते डः ॥ २-३५ ॥

गर्त शब्दे संयुक्तस्य डो भवति। टापवादः॥ गड्डो। गड्डा॥

अर्थः- 'गर्त' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती है। सूत्र-संख्या २-३० में विधान किया गया है कि 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति होती है; किन्तु इस सूत्र में 'गर्त' शब्द के संबंध में यह विशेष नियम निर्धारित किया गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'र्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति नहीं होकर 'ड' की प्राप्ति होती है; अतः इस नियम को सूत्र-संख्या २-३० के विधान के लिये अपवाद रूप नियम समझा जाय। उदाहरण इस प्रकार है:-गर्तः = गड्डो॥ गर्ता = गड्डा॥

गड्डो और गड्डा रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है॥ २-३५॥

संमर्द-वितर्दि-विच्छर्द-च्छर्दि-कपर्द-मर्दिते-र्दस्य ॥ २-३६ ॥

एषु र्दस्य डत्वं भवति॥ संमड्डो। विअड्डी। विच्छड्डो। छड्डइ। छड्डी। कवड्डो। मड्डिओ संमड्डिओ॥

अर्थः- 'संमर्द', वितर्दि, विच्छर्द, च्छर्दि, कपर्द और मर्दित शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति होती है। जैसेः- संमर्दः = संमड्डो। वितर्दिः = विअड्डी। विच्छर्दः =

विच्छड्डो। छर्दिः=छड्डी। कपर्दः=कवड्डो। मर्दितः=मड्डिअो और संमर्दितः=संमड्डिअो॥

संमर्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप संमड्डो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थानपर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **संमड्डो** रूप सिद्ध हो जाता है।

वितर्दिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विअड्डी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त' का लोप; २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घस्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *विअड्डी* रूप सिद्ध हो जाता है।

विच्छर्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विच्छड्डो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विच्छड्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुञ्चति—(छर्दते ?) संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप छड्डइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-९१ से 'मुञ्च्' धातु के स्थान पर 'छड्ड' का आदेश; (अथवा छर्द् में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर २-३६ से 'ड' की प्राप्ति और २-८९ से प्राप्त 'ड' को 'द्वित्व' 'ड्ड' की प्राप्ति); ४-२३९ से प्राप्त एवं हलन्त 'छड्ड' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' (अथवा 'ते')-के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर छड्डइ रूप सिद्ध हो जाता है।

छर्दिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप छड्डी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर छड्डी रूप सिद्ध हो जाता है।

कपर्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कवड्डो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कवड्डो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मर्दितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप मड्डिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; १-१७७

से 'न्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मड्डिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

संमर्दितः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप *संमड्डिओ* होता है। इसकी सिद्धि उपरोक्त रूप 'मर्दितः = मड्डिओ' के समान ही जानना ॥ २-३६ ॥

गर्दभे वा ॥ २-३७ ॥

गर्दभे र्दस्य डो वा भवति । गड्डहो । गद्दहो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'गर्दभ' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर विकल्प से 'ड' की प्राप्ति होती है। गर्दभः = गड्डहो और गद्दहो ॥

गर्दभः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गड्डहो और गद्दहो होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-३७ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्द' के स्थान पर विकल्प से 'ड' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *गड्डहो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *गद्दहो* भी सिद्ध हो जाता है। २-३७ ॥

कन्दरिका-भिन्दिपाले ण्डः ॥ २-३८ ॥

अनयोः संयुक्तस्य ण्डो भवति ॥ कण्डलिआ । भिण्डिवालो ॥

अर्थः—'कन्दरिका' और 'भिन्दिपाल' शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कन्दरिका = कण्डलिआ और भिन्दिपालः = भिण्डिवालो ॥

कन्दरिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कण्डलिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' की प्राप्ति; १-२५४ से 'र' का 'ल' और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *कण्डलिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भिन्दिपालः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप भिण्डिवालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३८ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' का 'व' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिण्डिवालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तब्धे ठ-ढौ ॥२-३९॥

स्तब्धे संयुक्तयो यथाक्रमं ठढौ भवतः ॥ ठड्ढो

अर्थः-'स्तब्ध' शब्द में दो संयुक्त व्यञ्जन हैं, एक 'स्त' है और दूसरा 'ब्ध' है। इनमें से प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति होती है और दूसरे संयुक्त व्यञ्जन 'ब्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति होती है जैसे:—स्तब्धः = ठड्ढो ॥

स्तब्धः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप ठड्ढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३६ से प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-३६ से द्वितीय संयुक्त व्यञ्जन 'ब्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व 'ढ ढ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर ठड्ढो रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-३९ ॥

दग्ध-विदग्ध-वृद्धि-वृद्धे ढः ॥२-४०

एषु संयुक्तस्य ढो भवति ॥ दड्ढो। विअड्ढो। वुड्ढी। वुड्ढो ॥ क्वचिन्न भवति। विद्ध-कइ-निरूविअं ॥

अर्थः— संस्कृत शब्द दग्ध और विदग्ध में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ग्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से संस्कृत-शब्द वृद्धि और वृद्ध में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर भी 'ढ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—दग्धः = दड्ढो। विदग्धः = विअड्ढो। वृद्धिः = वुड्ढी। वृद्धः = वुड्ढो ॥ कभी कभी संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे:-वृद्ध- कवि- निरूपितम्=विद्ध-कइ निरूविअं। यहां पर 'वृद्ध' शब्द का 'वुड्ढ' नहीं होकर 'विद्ध' हुआ है। यों अन्य शब्दों के संबंध में भी जान लेना चाहिये ॥

दड्ढो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२१७ में की गई है।

विदग्धः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप विअड्ढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; २-४० से संयुक्त व्यञ्जन 'ग्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व 'ढढ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर विअड्ढो रूप सिद्ध हो जाता है।

वुड्ढी और वुड्ढो रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३१ में की गई है।

विद्ध रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२८ में की गई है।

कवि संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप कइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का

लोप होकर कइ रूप सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर 'कइ' रूप समास-गत होने से विभक्ति प्रत्यय का लोप हो गया है।

निरुपितम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप निरूविअं होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निरुविअं* रूप सिद्ध हो जाता है। २-४०।

श्रद्धर्द्धि-मूर्धार्धेन्ते वा ॥ २-४१ ॥

एषु अन्ते वर्तमानस्य संयुक्तस्य ढो वा भवति ॥ सड्ढा। सद्धा। इड्ढी रिद्धी। मुण्ढा। मुद्धा। अड्ढं अद्धं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द श्रद्धा, ऋद्धि, मूर्धा और अर्ध में अन्त में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर अथवा 'र्ध' के स्थान पर, विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति होती है। तदनुसार संस्कृत रूपांतर से प्राप्त प्राकृत रूपान्तर में इनके दो दो रूप हो जाते हैं। जोकि इस प्रकार हैं:-श्रद्धा=सड्ढा अथवा सद्धा॥ऋद्धिः= इड्ढी अथवा रिद्धी॥ मूर्धा= मुण्ढा अथवा मुद्धा और अर्धम्= अड्ढं अथवा अद्धं।

श्रद्धा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सड्ढा और सद्धा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स'; २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ढ' का द्वित्व 'ढ्ढ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ्' को 'ड्' की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप सड्ढा सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप की सिद्धि सूत्र- संख्या १-१२ में की गई है।

ऋद्धिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप इड्ढी और रिद्धी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१३१ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'द्ध' के स्थान पर विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व ढ्ढ की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य ह्रस्वस्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *इड्ढी* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप *रिद्धी* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है।

मूर्धा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मुण्ढा और मुद्धा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; १-२६ से प्रथम स्वर 'उ' के पश्चात् आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध' के स्थान पर विकल्प से 'ढ' की प्राप्ति और १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार के आगे 'ढ' होने से ढ वर्ग के पञ्चमाक्षर रूप

'ण्' की प्राप्ति होकर *मुण्ढा* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप मुद्धा में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को प्राप्ति २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से शेष 'ध' को द्वित्व 'धध' की प्राप्ति और २-६० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति होकर *मुद्धा* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अड्ढं और अद्धं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-४१ से अन्त्य संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ढ' को द्वित्व 'ढ ढ' की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'ढ' को 'ड्' को प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *अड्ढं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८६ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध ध' की प्राप्ति; २-६० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *अद्धं* भी सिद्ध हो जाता है। २-४१ ॥

म्नज्ञो र्णः ॥ २-४२ ॥

अनयो र्णः भवति ॥ म्न । निण्णं । पज्जुण्णो ॥ ज्ञ । णाणं । सण्णा । पण्णा । विण्णाणं ॥

अर्थः—जिन शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' अथवा 'ज्ञ' होता है; उन संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर अथवा 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होती है। जैसे:-'म्न' के उदाहरण:-निम्नम्=निण्णं। प्रद्युम्नः=पज्जुण्णो। 'ज्ञ' के उदाहरण इस प्रकार हैं:- ज्ञानम्=णाणं। संज्ञा=सण्णा। प्रज्ञा=पण्णा और विज्ञानम् विण्णाणं ॥

निम्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निण्णं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति, २-८६ से प्राप्त 'ण' का द्वित्व 'ण्ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *निण्णं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रद्युम्नः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पज्जुण्णो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पज्जुण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्ञानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप णाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संज्ञा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्णा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-३० से अनुस्वार को आगे 'ण' का सद्भाव होने से टवर्ग के पंचमाक्षर रूप हलन्त 'ण' की प्राप्ति होकर *सण्णा* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रज्ञा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पण्णा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-४२ से संयुक्त-व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; और २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति होकर पण्णा रूप सिद्ध हो जाता है। *विज्ञानम्* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विण्णाणं होता है इस में सूत्र- संख्या २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विण्णाणं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-४२ ॥

पञ्चाशत्-पञ्चदश- दत्ते ॥ २-४३ ॥

एषु संयुक्तस्य णो भवति ॥ पण्णासा । पण्णरह । दिण्णं ॥

अर्थः—पञ्चाशत्, पञ्चदश और दत्त शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ञ्च' के स्थान अथवा 'त्त' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होती है। जैसेः—पञ्चाशत्=पण्णासा ॥ पञ्चदश=पण्णरह और दत्तम्=दिण्णं ॥

पञ्चाशत् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पण्णासा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ञ्च' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; १-१५ से प्राप्त 'स' में 'आ' स्वर की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *पण्णासा* रूप सिद्ध हो जाता है।

पञ्चदश संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पण्णरह होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ञ्च' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; १-२१९ से 'द' के स्थान 'र' की प्राप्ति और १-२६२ से श के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति हो कर पण्णरह रूप सिद्ध हो जाता है।

दिण्णं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४६ में की गई है। २-४३।

मन्यौ न्तो वा ॥ २-४४ ॥

मन्यु शब्दे संयुक्तस्य न्तो वा भवति ॥ मन्तू मन्नू ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'मन्यु' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'न्य' के स्थान पर विकल्प से 'न्त' की प्राप्ति होती है। जैसेः—मन्युः = मन्तू अथवा मन्नू ॥

मन्युः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप मन्तू और मन्नू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-४४ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्य्' के स्थान पर विकल्प से 'न्त्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व स्वर उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप मन्तू सिद्ध हो जाता है।

मन्नू की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२५ में की गई है। २-४४ ॥

स्तस्य थो समस्त-स्तम्बे ॥ २-४५ ॥

समस्त स्तम्ब वर्जित स्तस्य थो भवति। हत्थो। थुई। थोत्तं। थोअं। पत्थरो पसत्थो। अत्थि। सत्थि॥ असमस्त स्तम्ब इति किम्। समत्तो। तम्बो॥

अर्थः— समस्त और स्तम्ब शब्दों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत शब्दों में यदि 'स्त' संयुक्त व्यञ्जन रहा हुआ है; तो इस संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति होती है। जैसेः—हस्तः=हत्थो ॥ स्तुतिः=थुई ॥ स्तोत्रम्=थोत्तं। स्तोकम्=थोअं ॥ प्रस्तरः = पत्थरो ॥ प्रशस्तः = पसत्थो ॥ अस्ति=अत्थि ॥ स्वस्ति=सत्थि ॥

प्रश्नः— यदि अन्य शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति हो जाती है; तो फिर 'समस्त' और 'स्तम्ब' शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तरः—क्यों कि 'समस्त' और 'स्तम्ब' शब्दों का रूप प्राकृत में 'समत्तो' और 'तम्बो' उपलब्ध; हैं; अतः ऐसी स्थिति में 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति कैसे हो सकती है? उदाहरण इस प्रकार हैं:— समाप्तः= समत्तो और स्तम्बः=तम्बो ॥

हस्तः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *हत्थो* होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में ओ प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *हत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तुतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थुई होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर थुई रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तोत्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थोत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थोत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तोकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप थोअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त—नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थोअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रस्तरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पत्थरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पत्थरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रशस्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप पसत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त-पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पसत्थो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्ति संस्कृत क्रिया-पद रूप है। इसका प्राकृत रूप अत्थि होता है। इस में सूत्र-संख्या २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति होकर *अत्थि* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वस्तिः संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सत्थि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ्' को द्वित्व 'थ्थ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *सत्थि* रूप सिद्ध हो जाता है।

समाप्तः संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप समत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *समत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्तम्भः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तम्बो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से 'स' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तम्बो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-४५ ॥

स्तवे वा ॥ २-४६ ॥

स्तव शब्दे स्तस्य थो वा भवति ॥ थवो तवो ॥

अर्थः—'स्तव' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यंजन 'स्त' के स्थान पर विकल्प से 'थ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—स्तवः=थवो अथवा तवो ॥

स्तवः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप थवो और तवो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-४६ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर विकल्प से 'थ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *थवो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही हो कर *तवो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-४६॥

पर्यस्ते थ-टौ ॥ २-४७ ॥

पर्यस्ते स्तस्य पर्यायेण थटौ भवतः ॥ पल्लत्थो पल्लट्टो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'पर्यस्त' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर कभी 'थ' होता है और कभी 'ट' होता है। यों पर्यस्त के प्राकृत रूपान्तर दो प्रकार के होते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:—पर्यस्तः=पल्लत्थो और पल्लट्टो ॥

पर्यस्तः संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप पल्लत्थो और पल्लट्टो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६८ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; २-४७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर पर्याय रूप से 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप *पल्लत्थो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप पल्लट्टो में सूत्र-संख्या २-६८ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; २-४७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर पर्याय रूप से 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *पल्लट्टो* भी सिद्ध हो जाता है ॥ २-४७ ॥

वोत्साहे थो हश्च रः ॥ २-४८ ॥

उत्साह शब्दे संयुक्तस्य थो वा भवति तत्संनियोगे च हस्य रः ॥ उत्थारो उच्छाहो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'उत्साह' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर विकल्प से 'थ' की प्राप्ति होती है। पूर्व 'थ' की प्राप्ति होने पर ही अन्तिम व्यञ्जन 'ह' के स्थान पर भी 'र' की प्राप्ति हो जाती है। पक्षान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति नहीं होने की दशा में अन्तिम व्यञ्जन 'ह' के स्थान पर भी 'र' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे:-उत्साहः=उत्थारो और पक्षान्तर में उच्छाहो। यों रूप-भिन्नता का स्वरूप समझ लेना चाहिये ॥

उत्साहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उत्थारो और उच्छाहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-४८ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; २-४८ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्स' के स्थान पर प्राप्त 'थ' का संनियोग होने से अन्तिम व्यञ्जन 'ह' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *उत्थारो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *उच्छाहो* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११४ में की गई है ॥२-४८॥

आश्लिष्टे ल-धौ ॥२-४९॥

आश्लिष्टे संयुक्तयोर्यथासंख्यं ल ध इत्येतौ भवतः ॥आलिद्धो ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'आश्लिष्ट' में रहे हुए प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'श्ल' के स्थान पर 'ल' होता है और द्वितीय संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ध' होता है। यों दोनों संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर यथा-क्रम से 'ल' की और 'ध' की प्राप्ति होती है। जैसे:—आश्लिष्टः=आलिद्धो ॥

आश्लिष्टः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप आलिद्धो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४९ से प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'श्ल' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; २-४९ से ही द्वितीय संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ध' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आलिद्धो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-४९॥

चिन्हे न्धो वा ॥२-५०॥

चिन्हे संयुक्तस्य न्धो वा भवति ॥ ण्हापवादः ॥ पक्षे सो पि ॥ चिन्धं इन्धं चिण्हं ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'चिह्न' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर विकल्प से 'न्ध' की प्राप्ति होती है। सूत्र-संख्या २-७५ में यह बतलाया गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' की प्राप्ति होती है। तदनुसार सूत्र-संख्या २-७५ की तुलना में सूत्र-संख्या २-५० को अपवाद रूप सूत्र माना जाय; ऐसा वृत्ति में उल्लेख किया गया है। वैकल्पिक पक्ष होने से तथा अपवाद रूप स्थिति की उपस्थिति होने से 'चिह्न' के प्राकृत रूप तीन प्रकार के हो जाते हैं; जो कि इस प्रकार हैं—चिह्नम्=चिन्धं अथवा इन्धं चिण्हं ॥

चिन्हम्: संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप चिन्धं, इन्धं और चिण्हं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २५० से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर विकल्प से 'न्ध' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *चिन्धं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *इन्धं* की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

तृतीय रूप *चिण्हं* में सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *चिण्हं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-५०॥

भस्मात्मनोः पो वा ॥२-५१॥

अनयोः संयुक्तस्य पो वा भवति ॥ भप्पो भस्सो । अप्पा अप्पाणो । पक्षे अत्ता ॥

अर्थ—संस्कृत शब्द 'भस्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर विकल्प से 'प' की प्राप्ति होती है। जैसे:—(भस्मन् के प्रथमान्त रूप) भस्मा=भप्पो अथवा भस्सो ॥ इसी प्रकार से संस्कृत शब्द 'आत्मा' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर भी विकल्प से 'प' की प्राप्ति होती है। जैसे—(आत्मन् के प्रथमान्त रूप) आत्मा=अप्पा अथवा अप्पाणो। वैकल्पिक पक्ष होने से रूपान्तर में 'अत्ता' भी होता है।

भस्मन् संस्कृत मूल रूप है। इसके प्राकृत रूप भप्पो और भस्सो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर विकल्प से 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप; १-३२ से 'भस्म' शब्द को पुल्लिंगत्व की प्राप्ति होने से ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भप्पो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'म्' का लोप; २-८९ से शेष 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *भस्सो* भी सिद्ध हो जाता है।

आत्मन् संस्कृत मूल शब्द है। इसके प्राकृत रूप अप्पा, अप्पाणो और अत्ता होते हैं। इनमें से

प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर विकल्प से 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-४९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नकारान्त पुल्लिंग में अन्त्य 'न' का लोप हो जाने पर एवं प्राप्त 'सि' प्रत्यय के स्थान पर शेष अन्तिम व्यञ्जन 'प' में वैकल्पिक रूप से 'आ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अप्पा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप अप्पाणो में 'अप्प' पर्यन्त तो प्रथम रूप के समान ही सूत्र-साधनिका की प्राप्ति; और शेष 'आणो' में सूत्र-संख्या २-५६ से वैकल्पिक रूप से 'आण' आदेश की प्राप्ति एवं ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अप्पाणो* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप 'अत्ता' में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'म्' का लोप; २-८९ से 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; और ३-४९ से (नकारान्त पुल्लिंग शब्दों में स्थित अन्त्य 'न्' का लोप होकर) प्रथमा विभक्ति में प्राप्त प्रत्यय 'सि' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *अत्ता* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-५१॥

ड्म-क्मोः ॥ २-५२ ॥

ड्मक्मोः पो भवति ॥ कुड्मलम् । कुम्पलं । रुक्मिणी । रुप्पिणी ॥ क्वचित् च्मोपि ॥ रुक्मी रुप्पी ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दोंमें संयुक्त व्यञ्जन 'ड्म' अथवा 'क्म' रहा हुआ होता है; तो ऐसे शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में इन संयुक्त व्यञ्जन 'ड्म' अथवा 'क्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति होती है। जैसे:—'ड्म' का उदाहरण—कुड्मलम्=कुम्पलं ॥ 'क्म' का उदाहरण—रुक्मिणी=रुप्पिणी इत्यादि ॥ कभी कभी क्म के स्थान पर 'च्म' की प्राप्ति भी हो जाती है। जैसे:—रुक्मी=रुच्मी अथवा रुप्पी ॥

कुड्मलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुम्पलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ड्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; १-२६ से प्रथम आदि स्वर 'उ' पर अनुस्वार रूप आगम की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार को आगे 'प' वर्ग की स्थिति होने से पवर्ग के पञ्चमाक्षर रूप हलन्त 'म्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कुम्पलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

रुक्मिणी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रुप्पिणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५२ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; और २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति होकर *रुप्पिणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

रुक्मी संस्कृत विशेषण है। इसके प्राकृत रूप रुच्मी और रुप्पी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५२ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'क्म' के स्थान पर 'च्म' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *रुच्मी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-५२ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति और २-८६ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति होकर *रुप्पी* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-५२॥

ष्प-स्पयोः फः ॥ २-५३ ॥

ष्प-स्पयोः फो भवति ॥ पुष्पम् । पुप्फं ॥ शष्पम् । सप्फं ॥ निष्पेषः । निप्फेसो ॥ निष्पावः । निप्फावो ॥ स्पन्दनम् । फन्दणं ॥ प्रतिस्पर्धिन् । पाडिप्फद्धी ॥ बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः । बुहप्फई बुहप्पई ॥ क्वचिन्न भवति ॥ निप्पहो । णिप्पुंसणं । परोप्परम् ॥

अर्थ—जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' अथवा 'स्प' होता है; तो प्राकृत रूपान्तर में इन संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। जैसे-पुष्पम्=पुप्फं ॥ शष्पम्=सप्फं ॥ निष्पेषः=निप्फेसो ॥ निष्पावः=निप्फावो ॥ स्पन्दनम्=फन्दणं और प्रतिस्पर्धिन्=पाडिप्फद्धी ॥ 'बहुलं' सूत्र के अधिकार से किसी किसी शब्द में 'ष्प' अथवा 'स्प' के होने पर भी इन संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति विकल्प से होती है। जैसे-बृहस्पतिः=बुहप्फई अथवा बहुप्पई ॥ किसी किसी शब्द में तो संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' और 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे-निष्प्रभः= निप्पहो ॥ निष्पुंसनम्=णिप्पुंसणं ॥ परस्परम्=परोप्परं ॥ इत्यादि ॥

पुप्फं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *1-236* में की गई है।

शष्पम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सप्फं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व फ्फ की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सप्फं रूप सिध्द हो जाता है।

निष्पेषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्फेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्फेसो* रूप सिध्द हो जाता है।

निष्पावः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्फावो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व फ्फ की प्राप्ति २-९० से प्राप्त

पूर्व 'फ' को 'प्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्फावो* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्पन्दनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप फन्दणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; १-२२८ से द्वितीय 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर फन्दणं रूप सिद्ध हो जाता है।

पाडिप्फद्धी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-४४* में की गई है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बुहप्फई और बुहप्पई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फफ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ' को 'प्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप बुहप्फई सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-७७ से 'स्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति और शेष साधनिका का प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप बुहप्पई भी सिद्ध हो जाता है।

निष्प्रभः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निप्पहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१८७ से 'भ' का 'ह' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निप्पहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

निष्पुंसनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप णिप्पुंसणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-२२८ से दोनों 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णिप्पुंसणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

परोप्परं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६२* में की गई है ॥२-५३॥

भीष्मे ष्मः ॥ २-५४ ॥

भीष्मे ष्मस्य फो भवति ॥ भिप्फो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'भीष्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—भीष्मः=भिप्फो ॥

भीष्मः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भिप्फो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-५४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिप्फो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-५४॥

श्लेष्मणि वा ॥ २-५५ ॥

श्लेष्म शब्दे ष्मस्य फो वा भवति ॥ सेफो सिलिम्हो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'श्लेष्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर विकल्प से 'फ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—श्लेष्मा=सेफो अथवा सिलिम्हो ॥

श्लेष्मा संस्कृत (श्लेष्मन्) का प्रथमान्त रूप है। इसके प्राकृत रूप सेफो और सिलिम्हो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; १-२६० से शेष 'श्' को 'स्' की प्राप्ति; २-५५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर विकल्प से 'फ' की प्राप्ति; १-११ से मूल शब्द में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप; १-३२ से मूल शब्द 'नकारान्त' होने से मूल शब्द को पुल्लिगत्व की प्राप्ति और तदनुसार ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में प्राप्त अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सेफो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से 'श्ले' में स्थित दीर्घ स्वर 'ए' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होने से 'श्लि' हुआ; २-१०६ से हलन्त व्यञ्जन 'श्' में 'इ' आगम रूप स्वर की प्राप्ति होने से 'शिलि' रूप हुआ; १-२६० से 'श' का 'स' होने से 'सिलि' की प्राप्ति; २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति; और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सिलिम्हो* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-५५॥

ताम्राम्रे म्बः ॥ २-५६ ॥

अनयोः संयुक्तस्य मयुक्तो बो भवति ॥ तम्बं । अम्बं ॥ अम्बिर तम्बिर इति देश्यौ ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'ताम्र' और 'आम्र' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'म्र' के स्थान पर 'म्ब' की प्राप्ति होती है। जैसे ताम्रम्=तम्बं और आम्रम्=अम्बं ॥ देशज बोली में अथवा ग्रामीण बोली में ताम्र का तम्बिर और आम्र का अम्बिर भी होता है।

तम्बं और अम्बं रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है। अम्बिर और तम्बिर रूप देशज हैं; तदनुसार देशज शब्दों की साधनिका प्राकृत भाषा के नियमों के अनुसार नहीं की जा सकती है। ॥ २-५६ ॥

ह्वो भो वा ॥ २-५७ ॥

ह्वस्य भो वा भवति ॥ जिब्भा जीहा ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत शब्द में 'ह्व' हो तो इस संयुक्त व्यञ्जन 'ह्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति होती है। जैसेः—जिह्वा = जिब्भा अथवा जीहा ॥

जिह्वा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जिब्भा और जीहा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५७ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'भ' को द्वित्व 'भ् भ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *जिब्भा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-९२ से ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति और २-७९ से 'व्' का लोप होकर *जीहा* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-५७ ॥

वा विह्वले वौ वश्च ॥ २-५८ ॥

विह्वले ह्वस्य भो वा भवति । तत्संनियोगे च विशब्दे वस्य वा भो भवति ॥ भिब्भलो विब्भलो विहलो ॥

अर्थः—संस्कृत विह्वल शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ह्व' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति विकल्प से होती है। इसी प्रकार से जिस रूप में 'ह्व' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति होगी; तब आदि वर्ण 'वि' में स्थित 'व्' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति होती है। जैसे—विह्वलः = भिब्भलो अथवा विब्भलो और विहलो।

विह्वलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप भिब्भलो; विब्भलो और विहलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५८ से संयुक्त 'ह्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'भ' को द्वित्व 'भ् भ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त, पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति; २-५८ की वृत्ति से आदि में स्थित 'वि' के 'व्' को आगे 'भ' की उपस्थिति होने के कारण से विकल्प से 'भ्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *भिब्भलो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में २-५८ की वृत्ति से वैकल्पिक पक्ष होने के कारण आदि वर्ण 'वि' को 'भ' की

प्राप्ति नहीं होकर 'वि' ही कायम रहकर और शेष साधनिका प्रथम रूप के सामान ही होकर द्वितीय रूप *विब्भलो* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से द्वितीय 'व्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विहलो* रूप भी सिद्ध हो जाता है ॥२-५८॥

वोर्ध्वे ॥२-५९॥

ऊर्ध्वे शब्दे संयुक्तस्य भो भवति ॥ उब्भं उद्धं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'ऊर्ध्व' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर विकल्प से 'भ' की प्राप्ति होती है। जैसे-ऊर्ध्वम्=उब्भं अथवा उद्धं ॥

ऊर्ध्वम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप उब्भं और उद्धं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से आदि में स्थित दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-५९ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्व' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'भ' को द्वित्व 'भभ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब' की प्राप्ति; २-७९ से रेफ रूप 'र्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप उब्भं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' और 'व' दोनों का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप उद्धं भी सिद्ध हो जाता है।

कश्मीरे म्भो वा ॥२-६०॥

कश्मीर शब्दे संयुक्तस्य म्भो वा भवति ॥ कम्भारा कम्हारा ।

अर्थः—संस्कृत शब्द 'कश्मीर' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' के स्थान पर विकल्प से 'म्भ' की प्राप्ति होती है। जैसे-कश्मीरा=कम्भारा अथवा कम्हारा ॥

कश्मीराः—संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कम्भारा और कम्हारा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६० से संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' के स्थान पर विकल्प से 'म्भ' की प्राप्ति; १-१०० से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर लोप; और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्तिम ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कम्भारा* सिद्ध हो जाता है।

कम्ह रा की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०० में की गई है ॥२-६०॥

न्मो मः ॥२-६१॥

न्मस्य मो भवति ॥ अधोलोपापवादः ॥ जम्मो । वम्महो । मम्मणं ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'न्म' होता है; तो ऐसे संस्कृत शब्दों के प्राकृत-रूपान्तर में उस संयुक्त व्यञ्जन 'न्म' के स्थान पर 'म' की प्राप्ति होती है। सूत्र-संख्या २-७८ में बतलाया गया है कि अधो रूप से स्थित अर्थात् वर्ण में परवर्ती रूप से संलग्न हलन्त 'न्' का लोप होता है। जैसे-लग्नः=लग्गो। इस उदाहरण में 'ग' वर्ण में परवर्ती रूप से संलग्न हलन्त 'न्' का लोप हुआ है; जबकि इस सूत्र-संख्या २-६१ में बतलाते हैं कि यदि हलन्त 'न्' परवर्ती नहीं होकर पूर्व वर्ती होता हुआ 'म' के साथ में संलग्न हो; तो ऐसे पूर्ववर्ती हलन्त 'न्' का भी (केवल 'म' वर्ण के साथ में होने पर ही) लोप हो जाया करता है। तदनुसार इस सूत्र संख्या २-६१ को आगे आने वाले सूत्र संख्या २-७८ का अपवाद रूप सूत्र माना जाय। जैसा कि ग्रंथकार 'अधोलोपापवादः' शब्द द्वारा कहते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं:—जन्मन्=जम्मो ॥ मन्मथः = वम्महो और मन्मनम् = मम्मणं ॥ इत्यादि ॥

जम्मो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११ में की गई है।

वम्महो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२४२ में की गई है।

मन्मनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मम्मणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-६१ से संयुक्त व्यञ्जन 'न्म' के स्थान पर 'म' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' को अनुस्वार की प्राप्ति होकर *मम्मणं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-६१ ॥

ग्मो वा ॥२-६२॥

ग्मस्य मो वा भवति ॥ युग्मम् । जुम्मं जुग्गं ॥ तिग्मम् । तिम्मं तिग्गं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द में यदि 'ग्म' रहा हुआ हो तो उसके प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'ग्म' के स्थान पर विकल्प से 'म' की प्राप्ति होती है। जैसे—युग्मम्=जुम्मं अथवा जुग्गं और तिग्मम्=तिम्मं अथवा तिग्गं ॥ इत्यादि ॥

युग्मम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप जुम्मं और जुग्गं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; २-६२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ग्म' के स्थान पर विकल्प से 'म' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त

नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *जुम्मं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' का 'ज'; २-७८ से 'म्' का लोप; २-८६ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *जुग्गं* भी सिद्ध हो जाता है।

तिग्मम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप तिम्मं और तिग्गं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६२ से संयुक्त व्यञ्जन 'ग्म' के स्थान पर विकल्प से 'म' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *तिम्मं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'म्' का लोप; २-८६ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *तिग्गं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-६२॥

ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य-शौण्डीर्ये र्यो रः ॥२-६३॥

एषुर्यस्य रो भवति। जापवादः ॥ बम्हचेरं ॥ चौर्य समत्वात् बम्हचरिअं। तूरं। सुन्देरं। सोंडीरं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द ब्रह्मचर्य, तूर्य, सौन्दर्य और शौण्डीर्य में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है। सूत्र संख्या २-२४ में कहा गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति होती है; जबकि इस सूत्र-संख्या २-६३ में विधान किया गया है कि ब्रह्मचर्य आदि इन चार शब्दों में स्थित 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है; जैसे | ब्रह्मचर्यम्=बम्हचेरं। तूर्यम् = तूरं। सौन्दर्यम् = सुन्देरं और शौण्डीर्यम्=सोण्डीरं ॥ सूत्र-संख्या २-१०७ के विधान से अर्थात् 'चौर्य-सम' आदि के उल्लेख से ब्रह्मचर्यम्' का वैकल्पिक रूप से 'बम्हचरिअं' भी एक प्राकृत रूपान्तर होता है।

बम्हचेरं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५९ में की गई है।

ब्रह्मचर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बम्हचरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से आदि अथवा प्रथम 'र्' का लोप; २-७४ से 'ह्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति; २-१०७ से 'र्य' में स्थित 'र्' में 'इ' रूप आगम की प्राप्ति; १-१७७ से 'य' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बम्हचरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तूर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तूरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-६३ से संयुक्त

व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तूरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुन्देरं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५७ में की गई है।

शौण्डीर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सोण्डीरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; १-१५९ से दीर्घ स्वर 'औ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ओ' की प्राप्ति; २-६३ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोण्डीरं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-६३॥

धैर्ये वा ॥ २-६४ ॥

धैर्ये र्यस्य रो वा भवति ॥ धीरं धिज्जं ॥ सूरो सुज्जो इति तु सूर-सूर्य-प्रकृति-भेदात् ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द 'धैर्य' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर विकल्प से 'र' की प्राप्ति होती है। जैसे-धैर्यम्=धीरं अथवा धिज्जं ॥ संस्कृत शब्द 'सूर्य' के प्राकृत रूपान्तर 'सूरो' और 'सुज्जो' यों दोनों रूप नहीं माने जाय। किन्तु एक ही रूप 'सुज्जो' ही माना जाय॥ क्योंकि प्राकृत रूपान्तर 'सूरो' का संस्कृत रूप 'सूरः' होता है और 'सूर्यः' का 'सुज्जो॥ यों शब्द-भेद से अथवा प्रकृति-भेद से सूरो और सुज्जो रूप होते हैं; यह ध्यान में रखना चाहिये ॥

धैर्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूपान्तर धीरं और धिज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *धीरं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५५ में की गई है।

द्वितीय रूप धिज्जं में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर (अर्थात् 'ऐ' का पूर्व रूप=अ + इ)='इ' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *धिज्जं* भी सिद्ध हो जाता है।

सूरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर सूरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सूरो रूप सिद्ध हो जाता है।

सूर्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुज्जो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-८९

से प्राप्त; 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय होकर *सुज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है ।।२-६४।।

एतः पर्यन्ते ।।२-६५।।

पर्यन्ते एकारात् परस्य र्यस्य रो भवति ।। पेरन्तो ।। एत इति किम् । पज्जन्तो ।।

अर्थः—संस्कृत-शब्द पर्यन्त में सूत्र-संख्या १-५८ से 'प' वर्ण में 'ए' की प्राप्ति होने पर संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है । जैसेः—पर्यन्तः=पेरन्तो ।।

प्रश्नः—पर्यन्त शब्द में स्थित 'प' वर्ण में 'ए' की प्राप्ति होने पर ही संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है-ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि पर्यन्त शब्द में स्थित 'प' वर्ण में 'ए' की प्राप्ति नहीं होती है, तो संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति नहीं होकर 'ज्ज' की प्राप्ति होती है । अतः संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति तभी होती है; जबकि प्रथम वर्ण 'प' में 'ए' की प्राप्ति हो; अन्यथा नहीं । ऐसा स्वरूप विशेष समझाने के लिये ही 'एतः' का विधान करना पड़ा है । पक्षान्तर का उदाहरण इस प्रकार है:—पर्यन्तः=पज्जन्तोः ।।

पेरन्तो और *पज्जन्तो* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५८ में की गई है ।।२-६५।।

आश्चर्ये ।। २–६६ ।।

आश्चर्ये एतः परस्य र्यस्य रो भवति ।। अच्छेरं ।। एत इत्येव । अच्छरिअं ।।

अर्थः— संस्कृत शब्द 'आश्चर्य' में स्थित 'श्च' व्यञ्जन में रहे हुए 'अ' स्वर को 'ए' की प्राप्ति होने पर संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है । जैसेः—आश्चर्यम्=अच्छेरं ।।

प्रश्नः—श्च व्यञ्जन में स्थित 'अ' स्वर को 'ए' की प्राप्ति होने पर ही 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि 'श्च' के 'अ' को 'ए' की प्राप्ति नहीं होती है तो 'र्य' के स्थान पर 'र' की प्राप्ति नहीं होकर 'रिअ' की प्राप्ति होती है । जैसेः—आश्चर्यम्=अच्छरिअं ।।

अच्छेरं और *अच्छरिअं* दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है ।।२-६६।।

अतो रिआर-रिज्ज-रीअं ।।२–६७।।

आश्चर्ये अकारात् परस्य र्यस्य रिअ अर रिज्ज रीअ इत्येते आदेशा भवन्ति ।। अच्छरिअं अच्छअरं अच्छरिज्जं अच्छरीअं ।। अत इति किम् । अच्छेरं ।।

अर्थः—संस्कृत शब्द 'आश्चर्य' में स्थित 'श्च' के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'च्छ' में रहे हुए 'अ' को यथा-स्थिति प्राप्त होने पर अर्थात् 'अ' स्वर का 'अ' स्वर ही रहने पर संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर क्रम से चार आदेशों की प्राप्ति होती है। वे क्रमिक आदेश इस प्रकार हैं:—'रिअ'; 'अर' 'रिज्ज'; और रीअ ॥ इनके क्रमिक उदाहरण इस प्रकार हैं:-आश्चर्यम्=अच्छरिअं अथवा अच्छअरं अथवा अच्छरिज्जं और अच्छरीअं ॥

प्रश्न—'श्च' के स्थान पर प्राप्त होने वाले 'च्छ' में स्थित 'अ' स्वर को यथा-स्थिति प्राप्त होने पर अर्थात् 'अ' का 'अ' ही रहने पर 'र्य' के स्थान पर इन उपरोक्त चार आदेशों की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि उपरोक्त 'च्छ' में स्थित 'अ' को 'ए' की प्राप्ति हो जाती है; तो संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर ऊपर वर्णित एवं क्रम से प्राप्त होने वाले चार आदेशों की प्राप्ति नहीं होगी। यों प्रमाणित होता है कि चार आदेशों की क्रमिक प्राप्ति 'अ' की यथा स्थिति बनी रहने पर ही होती है; अन्यथा नहीं। पक्षान्तर में वर्णित 'च्छ' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर 'ए' स्वर की प्राप्ति हो जाती है; तो संस्कृत शब्द आश्चर्यम् का एक अन्य ही प्राकृत रूपान्तर हो जाता है। जो कि इस प्रकार है:— *आश्चर्यम्*=अच्छेरं ॥

अच्छरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है।

अच्छअरं, अच्छरिज्जं, अच्छरीअं, और *अच्छेरं* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५८ में की गई है ॥ २-६७ ॥

पर्यस्त-पर्याण-सौकुमार्ये ल्लः ॥२-६८॥

एषु र्यस्य ल्लो भवति ॥ पर्यस्तं पल्लट्टं पल्लत्थं । पल्लाणं । सोअमल्लं ॥ पल्लङ्को इति च पल्यंक शब्दस्य यलोपे द्वित्वे च ॥ पलिअङ्को इत्यपि । चौर्य समत्वात् ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'पर्यस्त' 'पर्याण' और 'सौकुमार्य' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होती है। जैसे:-पर्यस्तम्=पल्लट्टं अथवा पल्लत्थं ॥ पर्याणम्=पल्लाणं ॥ सौकुमार्यम्=सोअमल्लं ॥ संस्कृत शब्द पल्यङ्क का प्राकृत रूप पल्लङ्को होता है। इसमें संयुक्त व्यञ्जन 'ल्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति नहीं हुई है। किन्तु सूत्र-संख्या २-७८ के अनुसार 'य्' का लोप और २-८९ के अनुसार शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर पल्लङ्को रूप बनता है। सूत्रान्तर की साधनिका से पल्यङ्कः का द्वितीय रूप *पलिअङ्को* भी होता है। 'चौर्य समत्वात्' से सूत्र संख्या २-१०७ का तात्पर्य है। जिसके विधान के अनुसार संस्कृत रूप 'पल्यङ्क' के प्राकृत रूपान्तर में हलन्त 'ल्' व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' स्वर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति के प्रति सूत्र संख्या का ध्यान रखना चाहिये। ऐसा ग्रंथकार का आदेश है।

पर्यस्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूपान्तर पल्लट्टं और पल्लत्थं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-६८ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; २-४७ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ट' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ट' को द्वित्व 'ट्ट' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *पल्लट्टं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *पल्लत्थं* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४७ में की गई है। अन्तर इतना सा है कि वहां पर 'पल्लत्थो' रूप पुल्लिंग में दिया गया है। एवं यहां पर पल्लत्थं रूप नपुंसक लिंग में दिया गया है। इसका कारण यह है कि यह शब्द विशेषण है; और विशेषण-वाचक शब्द तीनों लिंगों में प्रयुक्त हुआ करते हैं। *पल्लाणं* रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२५२ में की गई है।

सोअमल्लं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०७ में की गई है।

पर्यंकः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पल्लंको और पलिअंको भी होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *पल्लंको* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (पर्यंकः)=पलिअंको में सूत्र-संख्या २-१०७ से हलन्त व्यञ्जन 'ल्' में 'य' वर्ण आगे रहने से आगम रूप 'इ' स्वर की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पलिअंको* भी सिद्ध हो जाता है। ॥ २-६८ ॥

बृहस्पति-वनस्पत्योः सो वा ॥ २-६९ ॥

अनयोः संयुक्तस्य सो वा भवति ॥ बहस्सई बहप्फई ॥ भयस्सई ॥ भयप्फई। वणस्सई वणप्फई ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द बृहस्पति और वनस्पति में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर विकल्प से 'स' की प्राप्ति हुआ करती है। 'विकल्प' से कहने का तात्पर्य यह है कि सूत्र संख्या २-५३ में ऐसा विधान कर दिया गया है कि संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति होती है। किन्तु यहाँ पर पुनः उसी संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति का उल्लेख करते हैं; अतः 'वदतो वचन-व्याघात' के दोष से सुरक्षित रहने के लिये मूल-सूत्र में विकल्प अर्थ वाचक 'वा' शब्द का कथन करना पड़ा है। यह ध्यान में रखना चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं:— बृहस्पतिः=बहस्सई अथवा बहप्फई और भयस्सई अथवा भयप्फई॥ वनस्पतिः=वणस्सई अथवा वणप्फई॥

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बहस्सई और बहप्फई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-६९ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप **बहस्सई** सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप **बहप्फई** की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३८ में की गई है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भयस्सई और भयप्फई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१३७ से प्राप्त 'बह' के स्थान पर विकल्प से 'भय' की प्राप्ति; २-६९ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'स' की विकल्प से प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप ***भयस्सई*** सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (बृहस्पतिः=) भयप्फई में सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१३७ से प्राप्त 'बह' के स्थान पर विकल्प से 'भय' की प्राप्ति; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप ***भयप्फई*** भी सिद्ध हो जाता है।

वनस्पतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वणस्सई और वणप्फई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-६९ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर विकल्प से 'स' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप ***वणस्सई*** सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (वनस्पतिः=) वणप्फई में सूत्र-संख्या-१-२२८ से 'न' का 'ण'; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप ***वणप्फई*** सिद्ध हो जाता है॥ २-६९॥

बाष्पे हो श्रुणि ॥ २-७० ॥

बाष्प शब्दे संयुक्तस्य हो भवति अश्रुण्यभिधेये ॥ बाहो नेत्र-जलम् ॥ अश्रुणीति किम् ॥ बप्फो ऊष्मा ॥

अर्थः—यदि संस्कृत शब्द 'बाष्प' का अर्थ आंसू वाचक हो तो ऐसी स्थिति में 'बाष्प' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसेः—बाष्पः=बाहो अर्थात् आंखों का पानी आंसू ॥

प्रश्नः—अश्रु वाचक स्थिति में ही 'बाष्प' शब्द में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है; अन्यथा नहीं; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—संस्कृत शब्द 'बाष्प' के दो अर्थ होते हैं; प्रथम तो आंसू और द्वितीय भाप। तदनुसार अर्थ-भिन्नता से रूप-भिन्नता भी हो जाती है। अतएव 'बाष्प' शब्द के आंसू अर्थ में प्राकृत रूप बाहो होता है और भाफ अर्थ में प्राकृत रूप बप्फो होता है। यों रूप-भिन्नता समझाने के लिये ही संयुक्त-व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'ह' होता है ऐसा स्पष्ट उल्लेख करना पड़ा है। यों तात्पर्य-विशेष को समझ लेना चाहिये। *बाष्पः* (आँसू) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बाहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७० से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बाहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बाष्पः (भाफ) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बप्फो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बप्फो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-७० ॥

कार्षापणे ॥ २-७१ ॥

कार्षापणे संयुक्तस्य हो भवति ॥ काहावणो । कथं कहावणो । ह्रस्वः संयोगे (१-८४) इति पूर्वमेव ह्रस्वत्वे पश्चादादेशे । कर्षापण शब्दस्य वा भविष्यति ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'कार्षापण' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। जैसेः—कार्षापणः = काहावणो ॥

प्रश्नः—प्राकृत रूप 'कहावणो' की प्राप्ति किस शब्द से होती है ?

उत्तरः—संस्कृत शब्द 'कार्षापण' में सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति होने से 'कहावणो' रूप बन जाता है। इसी प्रकार से 'काहावणो' रूप माना जाय तो प्राप्त ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर पुनः 'आ' स्वर रूप आदेश की प्राप्ति हो जायगी;

और काहावणो रूप सिद्ध हो जायगा ॥ अथवा मूल शब्द 'कर्षापण' माना जाय तो इस का प्राकृत रूपान्तर 'कहावणो' हो जायगा; यों 'कार्षापणः' से 'काहावणो' और कर्षापणः' से 'कहावणो' रूपों की स्वयमेव सिद्धि हो जायगी।

कार्षापणः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप काहावणो और कहावणो होते हैं; इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७१ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *काहावणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (कर्षापणः) कहावणो में सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *कहावणो* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-७१॥

दुःख-दक्षिण-तीर्थे वा ॥२-७२॥

एषु संयुक्तस्य हो वा भवति ॥ दुहं दुक्खं। पर-दुक्खे दुक्खिआ विरला। दाहिणो दक्खिणो। तूहं तित्थं ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द 'दुःख'; 'दक्षिण' और तीर्थ में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ख'; 'क्ष' और 'र्थ' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार हैं:-दुःखम्=दुहं अथवा दुक्खं ॥ पर-दुःखे दुःखिताः विरलाः=पर-दुक्खे दुक्खिआ विरला ॥ इस उदाहरण में संयुक्त व्यञ्जन ':ख' के स्थान पर वैकल्पिक-स्थिति की दृष्टि से 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति नहीं करके जिव्हा-मूलीय चिन्ह का लोप सूत्र-संख्या २-७७ से कर दिया गया है। शेष उदाहरण इस प्रकार हैं:—दक्षिणः=दाहिणो अथवा दक्खिणो ॥ तीर्थम् = तूहं अथवा तित्थं ॥

दुःखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दुहं और दुक्खं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७२ से संयुक्त व्यञ्जन-(जिव्हा मूलीय चिन्ह सहित) 'ख' के स्थान पर विकल्प से 'ह' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप दुहं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (दुःखम्=) दुक्खं में सूत्र-संख्या २-७७ से जिव्हा मूलीय चिह्न ':क्' का लोप; २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही हो कर द्वितीय रूप दुक्खं भी सिद्ध हो जाता है।

पर-दुःखे संस्कृत सप्तम्यन्तरूप है। इसका प्राकृत रूप पर-दुक्खे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से जिव्हा मूलीय चिह्न ':क्' का लोप; २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त

पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-११ से मूल रूप 'दुक्ख' में सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर पर-दुक्खे रूप सिद्ध हो जाता है।

दुःखिताः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप दुक्खिआ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से जिव्हा मूलीय चिह्न 'ःक्' का लोप; २-८९ से 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से लुप्त 'त्' में से शेष रहे हुए (मूल रूप अकारांत होने से) ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर दुक्खिआ रूप सिद्ध हो जाता है।

विरलाः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विरला होता है। यह मूल शब्द 'विरल' होने से अकारांत है। इस में सूत्र-संख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में पुल्लिंग अकारान्त में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' को प्राप्ति हो कर *विरला* रूप सिद्ध हो जाता है।

दाहिणो और दक्खिणो रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४५ में की गई है।

तूहं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०४ में की गई है।

तित्थं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है। ॥ २-७२ ॥

कूष्माण्ड्यां ष्मो लस्तु ण्डो वा ॥२-७३॥

कूष्माण्ड्यां ष्मा इत्येतस्य हो भवति। ण्ड इत्यस्य तु वा लो भवति॥ कोहली कोहण्डी॥

अर्थः—संस्कृत शब्द कूष्माण्डी में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'ष्मा' के स्थान पर 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति होती है तथा द्वितीय संयुक्त व्यञ्जन 'ण्ड' के स्थान पर विकल्प से 'ल' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कूष्माण्डी = कोहली अथवा कोहण्डी॥ वैकल्पिक पक्ष होने से प्रथम रूप में 'ण्ड' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति हुई है और द्वितीय रूप में 'ण्ड' का 'ण्ड' ही रहा हुआ है। यों स्वरूप भेद जान लेना चाहिये॥

कोहली और कोहण्डी रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२४ में की गई है। ॥ २-७३ ॥

पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः ॥ २-७४ ॥

पक्ष्म शब्द संबन्धिनः संयुक्तस्य श्मष्मस्मह्मां च मकाराक्रान्तो हकार आदेशो भवति ॥ पक्ष्मन् । पम्हाइं । पम्हल-लोअणा ॥ श्म । कुश्मानः । कुम्हाणो ॥ कश्मीराः । कम्हारा ॥ ष्म। ग्रीष्मः । गिम्हो । ऊष्मा । उम्हा ॥ स्म । अस्मादृशः । अम्हारिसो । विस्मयः । विम्हओ ॥ ह्म । ब्रह्मा । बम्हा ॥ सुह्माः । सुम्हा ॥ बम्हणो । बम्हचेरं ॥

क्वचित् म्भोपि दृश्यते। बम्भणो। बम्भचेरं सिम्भो। क्वचिन्न भवति। रश्मिः। रस्सी। स्मरः। सरो॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'पक्ष्म' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्म' के स्थान पर हलन्त 'म्' सहित 'ह' का अर्थात् 'म्ह' का आदेश होता है। जैसे:—पक्ष्माणि=पम्हाइं॥ इसी प्रकारसे यदि किसी संस्कृत शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' 'ष्म'; 'स्म' अथवा 'ह्म' रहा हुआ हो तो ऐसे संयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में हलन्त व्यञ्जन 'म्' सहित 'ह' का अर्थात् 'म्ह' का आदेश हुआ करता है। 'क्ष्म' का उदाहरण.—पक्ष्मल-लोचना=पम्हल-लोअणा॥ 'श्म' के उदाहरणः—कुश्मानः=कुम्हाणो॥ कश्मीराः=कम्हारा॥ 'ष्म' के उदाहरण: ग्रीष्मः=गिम्हो॥ ऊष्मा=उम्हा॥ 'स्म' के उदाहरणः—अस्मादृशः=अम्हारिसो॥ विस्मयः=विम्हओ॥ 'ह्म' के उदाहरणः—ब्रह्माः=बम्हा॥ सुह्माः=सुम्हा॥ ब्राह्मणः=बम्हणो॥ ब्रह्मचर्यम्=बम्हचेरं॥ इत्यादि॥ किसी किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' अथवा 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' की प्राप्ति नहीं होकर 'म्भ' की प्राप्ति होती हुई भी देखी जाती है। जैसेः—ब्राह्मणः=बम्भणो॥ ब्रह्मचर्यम्=बम्भचेरं॥ श्लेष्मा=सिम्भो॥ किसी किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' अथवा 'स्म' के स्थान पर न तो 'म्ह' की प्राप्ति ही होती है और न 'म्भ' की प्राप्ति ही होती है। उदाहरण इस प्रकार है:— रश्मिः=रस्सी और स्मरः=सरो॥ यों अन्यत्र भी जान लेना चाहिये॥

पक्ष्माणि संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप पम्हाइं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति; और ३-२६ से प्रथमा अथवा द्वितीया विभक्ति के बहु वचन में नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'णि' के स्थान पर प्राकृत में 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *पम्हाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पक्ष्मल-लोचना संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप पम्हल-लोअणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'च्' का लोप और १-२२८ से 'न' का 'ण' होकर *पम्हल-लोअणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुश्मानः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप कुम्हाणो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'श्म' के स्थान पर 'म्ह' का आदेश; १-२२८ से न का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कुम्हाणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कम्हारा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०० में की गई है।

ग्रीष्मः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गिम्हो होता है। इस में सूत्र संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त-पुल्लिग में

'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गिम्हो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

उष्मा संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप उम्हा होता है । इस में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; और २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति हो कर *उम्हा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

अम्हारिसो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६७ में की गई है ।

विस्मयः संस्कृत विशेषण रूप है । इस का प्राकृत रूप विम्हओ होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विम्हओ* रूप सिद्ध हो जाता है ।

ब्रह्मा संस्कृत रूप है । इस का प्राकृत रूप बम्हा होता है । इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति होकर *बम्हा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

सुह्माः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप सुम्हा होता है ।

इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' स्वर को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सुम्हा* रूप सिद्ध हो जाता है ।

बम्हणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६७ में की गई है ।

बम्हचेरं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५९ में की गई है ।

ब्राह्मणः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप (बम्हणो के अतिरिक्त) बम्भणो भी होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७४ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्भ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बम्भणो* रूप की सिद्धि हो जाती है ।

ब्रह्मचर्यम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप (बम्हचेरं के अतिरिक्त) बम्भचेरं भी होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७४ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्म' के स्थान पर 'म्भ' आदेश की प्राप्ति; १-५९ से 'च' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर 'ए' स्वर की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्'

प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बम्भचेरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लेष्मा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिम्भो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-८४ से दीर्घ स्वर (अ + इ)='ए' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७४ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्म' के स्थान पर 'म्भ' आदेश की प्राप्ति; १-११ से संस्कृत मूल शब्द 'श्लेष्मन्' में स्थित अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'न्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में (प्राप्त रूप सिम्भ में)-'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिम्भो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रस्सी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३५ में की गई है।

स्मरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'म्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सरो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-७४॥

सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः ॥२-७५॥

सूक्ष्म शब्द संबन्धिनः संयुक्तस्य श्नष्णस्नह्नह्णक्ष्णां च णकाराक्रान्तो हकार आदेशो भवति ॥ सूक्ष्मं । सण्हं ॥ श्न । पण्हो । सिण्हो ॥ ष्ण । विण्हू । जिण्हू । कण्हो । उण्हीसं ॥ स्न । जोण्हा । ण्हाओ । पण्हुओ ॥ ह्न । वण्ही । जण्हू ॥ ह्ण । पुव्वण्हो । अवरण्हो ॥ क्ष्ण । सण्हं । तिण्हं ॥ विप्रकर्षे तु कृष्ण कृत्स्न शब्दयोः कसणो । कसिणो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'सूक्ष्म' में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्म' के स्थान पर 'ण्' सहित 'ह' का अर्थात् 'ण्ह' का आदेश होता है। जैसे:—सूक्ष्मम्=सण्हं ॥ इसी प्रकार से जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'श्न', 'ष्ण', 'स्न'; 'ह्न', 'ह्ण', अथवा 'क्ष्ण' रहे हुए होते हैं; तो ऐसे संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान पर 'ण्' सहित 'ह' का अर्थात् 'ण्ह' का आदेश होता है। जैसे—'श्न' के उदाहरण:—प्रश्नः=पण्हो। शिश्नः=सिण्हो ॥ 'ष्ण' के उदाहरण:—विष्णुः=विण्हू । जिष्णुः=जिण्हू । कृष्णः=कण्हो । उष्णीषम्=उण्हीसं ॥ 'स्न' के उदाहरण:—ज्योत्स्ना=जोण्हा । स्नातः=ण्हाओ । प्रस्नुतः=पण्हुओ ॥ 'ह्न' के उदाहरण:—वह्निः=वण्ही । जह्नुः=जण्हू ॥ 'ह्ण' के उदाहरण:-पूर्वाह्णः=पुव्वण्हो । अपराह्णः=अवरण्हो ॥ 'क्ष्ण' के उदाहरण-श्लक्ष्णम्=सण्हं । तीक्ष्णम्=तिण्हं ॥

संस्कृत-भाषा में कुछ शब्द ऐसे भी हैं; जिनमें संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' अथवा 'स्न' रहा हुआ हो; तो भी प्राकृत रूपान्तर में ऐसे संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' अथवा 'स्न' के स्थान पर इस सूत्र-संख्या २-७५ से प्राप्तव्य 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति नहीं होती है। इस का कारण प्राकृत रूप का उच्चारण करते समय 'विप्रकर्ष' स्थिति है। व्याकरण में 'विप्रकर्ष' स्थिति उसे कहते हैं; जब कि शब्दों का उच्चारण करते समय अक्षरों के मध्य में 'अ' अथवा 'इ' अथवा 'उ' स्वरों में से किसी एक स्वर का 'आगम' हो जाता

हो; एवं ऐसे आगम रूप स्वर की प्राप्ति हो जाने से बोला जाने वाला वह शब्द अपेक्षाकृत कुछ अधिक लम्बा हो जाता है; इससे उस शब्द रूप के निर्माण मे ही कई एक विशेषताएं प्राप्त हो जाती हैं; तदनुसार उसकी साधनिका में भी अधिकृत-सूत्रों के स्थान पर अन्य ही सूत्र कार्य करने लग जाते हैं। 'विप्रकर्ष' पारिभाषिक शब्द के एकार्थक शब्द 'स्वर भक्ति' अथवा 'विश्लेष' भी है। इस प्रकार उच्चारण की दीर्घता से-खिंचाव से-ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इसीलिये संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' अथवा 'स्न' के स्थान पर कभी कभी 'ण्ह' की प्राप्ति नहीं होती है। उदाहरण इस प्रकार है:—कृष्णः=कसणो और कृत्स्नः=कसिणो ॥ ऐसी स्थिति के उदाहरण अन्यत्र भी जान लेना चाहिये ॥

सण्ह रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११८ में की गई है।

पण्हो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

शिश्नः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिण्हो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से प्रथम 'श' का 'स'; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'श्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सिण्हो रूप सिद्ध हो जाता है।

विण्हू रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८५ में की गई है।

जिष्णुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जिण्हू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्णु' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर जिण्हू रूप सिद्ध हो जाता है।

कृष्णः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कण्हो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर **कण्हो** रूप सिद्ध हो जाता है।

उष्णीषम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उण्हीसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' का आदेश; १-२६० से 'ष' का 'स'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर **उण्हीसं** रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्योत्स्ना संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जोण्हा होता है।

इस में सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-७७ से 'त्' का लोप; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति हो कर **जोण्हा** रूप सिद्ध हो जाता है।

स्नातः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप ण्हाओ होता है।

इसमें सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से त का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *ण्हाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रस्नुतः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप पण्हुओ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्न' के स्थानपर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पण्हुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

वह्निः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वण्ही होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *वण्ही* रूप सिद्ध हो जाता है।

जह्नुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जण्हू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *जण्हू* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुव्वण्हो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६७ में की गई है।

अपराह्णः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप अवरण्हो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' का 'व'; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवरण्हो* रूप की सिद्धि हो जाती है।

श्लक्ष्णम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सण्हं होता है। इस में सूत्र संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तीक्ष्णम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिण्हं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तिण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृष्णः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कसणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-११० से हलन्त 'ष्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कसणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्स्नः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कसिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७७ से 'त्' का लोप; २-१०४ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कसिणो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-७५॥

ह्लो ल्हः ॥ २-७६ ॥

ह्लः स्थाने लकाराक्रान्तो हकारो भवति ॥ कल्हारं । पल्हाओ ॥

अर्थः—जिस संस्कृत शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' रहा हुआ होता है; तो प्राकृत रूपान्तर में उस संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' के स्थान पर हलन्त 'ल्' सहित 'ह' अर्थात् 'ल्ह' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे:— कह्लारम् = कल्हारं और प्रह्लादः = पल्हाओ ॥

कह्लारम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कल्हारं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' के स्थान पर 'ल्ह' आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कल्हारं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रह्लादः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पल्हाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्ल' के स्थान पर 'ल्ह' आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पल्हाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-७६॥

क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-ᳲक-ᳲपामूर्ध्वं लुक् ॥२-७७॥

एषां संयुक्त वर्ण संबन्धिनामूर्ध्वं स्थितानां लुग् भवति ॥ क् । भुत्तं । सित्थं ॥ ग् । दुद्धं । मुद्धं ॥ ट् । षट्पदः । छप्पओ ॥ कट्फलम् । कप्फलं ॥ ड् । खड्गः । खग्गो ॥ षड्जः । सज्जो ॥ त् । उप्पलं । उप्पाओ ॥ द् । मद्गुः । मग्गू । मोग्गरो ॥ प् । सुत्तो । गुत्तो ॥ श । लण्हं । णिच्चलो । चुअइ ॥ ष् । गोट्ठी । छट्ठो । निट्ठुरो ॥ स् । खलिओ । नेहो ॥ ᳲ क् । दुᳲखम् । दुक्खं ॥ ᳲ प् । अंतᳲपातः । अंतप्पाओ ॥

अर्थः-किसी संस्कृत शब्द में यदि हलन्त रूप से 'क्, ग्, ट्, ड्, त्, द्, प्, श्, ष्, स्, जिह्वामूलीय ≍क्, और उपध्मानीय ≍ प्' में से कोई भी वर्ण अन्य किसी वर्ण के साथ में पहले रहा हुआ हो तो ऐसे पूर्वस्थ और हलन्त वर्ण का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे:-'क्' के लोप के उदाहरण- भुक्तम्=भुत्तं और सिक्थम्=सित्थं ॥ 'ग्' के लोप के उदाहरणः—दुग्धम्=दुद्धं और मुग्धम्=मुद्धं ॥ 'ट्' के लोप के उदाहरणः-षट्पदः=छप्पओ और कट्फलम्=कप्फलं ॥ 'ड्' के लोप के उदाहरणः-खड्गः= खग्गो और षड्जः=सज्जो ॥ 'त्' के लोप के उदाहरणः-उत्पलम्=उप्पलं और उत्पातः=उप्पाओ ॥ 'द्' के लोप के उदाहरणः-मद्गुः=मग्गू और मुद्गरः=मोग्गरो ॥ 'प्' के लोप के उदाहरणः-सुप्तः=सुत्तो और गुप्तः= गुत्तो ॥ 'श्' के लोप के उदाहरणः-श्लक्ष्णम्=लण्हं; निश्चलः=णिच्चलो और श्चुतति= चुअइ ॥ 'ष्' के लोप के उदाहरणः-गोष्ठी=गोट्ठी; षष्ठः= छट्ठो और निष्ठुरः=निट्ठुरो ॥ 'स्' के लोप के उदाहरणः— स्खलितः=खलिओ और स्नेहः=नेहो ॥ '≍क्' के लोप का उदाहरणः-दु≍खम्=दुक्खं और '≍प्' के लोप का उदाहरणः-अंत≍पातः=अंतप्पाओ ॥ इत्यादि अन्य उदाहरणों में भी उपरोक्त हलन्त एवं पूर्व स्थ वर्णों के लोप होने के स्वरूप को समझ लेना चाहिये ॥

भुक्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भुत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'क्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिक्थम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सित्थं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'क्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'थ' को द्वित्व थ्थ की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सित्थं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुग्धम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दुद्धं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ और हलन्त 'ग्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दुद्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुग्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप मुद्धं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ और हलन्त 'ग्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार हो कर *मुद्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

छप्पओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६५ में की गई है।

कट्फलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कप्फलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'ट्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'फ' को द्वित्व 'फ फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कप्फलं रूप सिद्ध हो जाता है।

खग्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३४ में की गई है।

षड्जः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सज्जो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' का 'स'; २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'ड्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सज्जो रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्पलम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप उप्पलं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'त्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर उप्पलम् रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्पातः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप उप्पाओ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'त्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर उप्पाओ रूप सिद्ध हो जाता है।

मद्गुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मग्गू होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'द्' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' वर्ण को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर मग्गू रूप सिद्ध हो जाता है।

मोग्गरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११६ में की गई है।

सुप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप सुत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'प' वर्ण का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' वर्ण को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सुत्तो रूप सिद्ध हो जाता है।

गुप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गुत्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'प्' वर्ण का लोप; २–८९ से शेष रहे हुए 'त' वर्ण को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३–२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गुत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लक्ष्णम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लण्हं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श' का लोप; २–७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ककारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *लण्हं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्चलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप णिच्चलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श्' वर्ण का लोप; २–८९ से शेष रहे हुए 'च' वर्ण को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णिच्चलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्चुतते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप चुअइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'श्' वर्ण का लोप; १-१७७ से प्रथम 'त्' का लोप और ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *चुअइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गोष्ठी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गोट्ठी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'ष्' वर्ण का लोप; २–८९ से शेष रहे हुए 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति और २–९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति होकर *गोट्ठी* रूप सिद्ध हो जाता है।

छट्ठो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६४ में की गई है।

निट्ठुरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–२५४ में की गई है।

स्खलितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खलिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'स्' वर्ण का लोप; १–१७७ से 'त' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खलिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्नेहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नेहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त 'स्' वर्ण का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर नेहो रूप सिद्ध हो जाता है।

दुक्खं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७२ में की गई है ।

अंत:ऽपात: संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप अंतप्पाओ होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से पूर्वस्थ एवं हलन्त उपध्मानीय वर्ण चिह्न ऽ का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' वर्ण को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अंतप्पाओ रूप की सिद्धि हो जाती है ।२-७७

अधो मनयाम् ॥ २–७८ ॥

मनयां संयुक्तस्याधो वर्तमानानां लुग् भवति ॥ म । जुग्गं । रस्सी । सरो । सेरं ॥ न । नग्गो ॥ लग्गो । य । सामा । कुड्डं । वाहो ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत शब्द में 'म', 'न' अथवा 'य' हलन्त व्यञ्जन वर्ण के आगे संयुक्त रूप से रहे हुए हों तो इनका लोप हो जाता है । जैसे—'म' वर्ण के लोप के उदाहरणः—युग्मम्=जुग्गं ॥ रश्मिः=रस्सी ॥ स्मरः=सरो और स्मेरम्=सेरं ॥ 'न' वर्ण के लोप के उदाहरणः—नग्नः=नग्गो और लग्नः=लग्गो । ॥ 'य' वर्ण के लोप के उदाहरणः—श्यामा=सामा । कुड्यम्=कुड्डं और व्याधः=वाहो ॥

जुग्गं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६२ में की गई है ।

रस्सी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है ।

सरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७४ में की गई है ।

स्मेरम् संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप सेरं होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'म्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर सेरं रूप सिद्ध हो जाता है ।

नग्नः संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप नग्गो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से द्वितीय 'न्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

लग्नः-संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप लग्गो होता है । इसमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'न्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लग्गो* रूप सिद्ध हो हो जाता है । *सामा* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६० में की गई है ।

कुड्यम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप कुड्डं होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का

लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कुड्डं रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याध: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वाहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वाहो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-७८॥

सर्वत्र ल-ब-रामवन्द्रे ॥ २-७९ ॥

वन्द्र शब्दादन्यत्र लबरां सर्वत्र संयुक्तस्योर्ध्वमधश्च स्थितानां लुग् भवति। ऊर्ध्वं॥ ल। उल्का। उक्का॥ वल्कलम्। वक्कलं॥ ब। शब्द:। सद्दो॥ अब्द:। अद्दो॥ लुब्धक:। लोद्धओ॥ र। अर्क:। अक्को॥ वर्ग:। वग्गो॥ अध:। श्लक्ष्णम्। सण्हं॥ विक्लव:। विक्कवो॥ पक्वम्। पक्कं पिक्कं॥ ध्वस्त:। धत्थो॥ चक्रम्। चक्कं॥ ग्रह:। गहो॥ रात्रि:। रत्ती॥ अत्र द्व इत्यादि संयुक्तानामुभयप्राप्तौ यथा दर्शनं लोप:॥ क्वचिदूर्ध्वम्। उद्विग्न:। उव्विग्गो॥ द्विगुण:। बि-उणो॥ द्वितीय:। बीओ॥ कल्मषम्। कम्मसं॥ सर्वम्। सव्वं॥ शुल्वम्। सुव्वं॥ क्वचित्त्वध:। काव्यम्। कव्वं॥ कुल्या। कुल्ला॥ माल्यम्। मल्लं॥ द्विप:। दिओ॥ द्विजाति:। दुआई। क्वचित्पर्यायेण। द्वारम्। बारं। दारं॥ उद्विग्न:। उव्विग्गो। उव्विण्णो॥ अवन्द्र इति किम्। वन्द्रं। संस्कृत समोयं प्राकृत शब्द:। अत्रोत्तरेण विकल्पोपि न भवति निषेध सामर्थ्यात्॥

अर्थ:—संस्कृत शब्द 'वन्द्र' को छोड़कर के अन्य किसी संस्कृत शब्द में 'ल्', 'ब्'- (अथवा व्) और र्' संयुक्त रूप से-हलन्त रूप से- अन्यवर्ण के पूर्व में अथवा पश्चात् अथवा ऊपर, कहीं पर भी रहे हुए हों तो इन का लोप हो जाया करता है। वर्ण के पूर्व में स्थित हलन्त 'ल्' 'ब्' और 'र्' के लोप होने के उदाहरण इस प्रकार है:—सर्व प्रथम 'ल' के उदाहरण:—उल्का=उक्का और वल्कलम्=वक्कलं॥ 'ब्' के लोप के उदाहरण:—शब्द:=सद्दो और लुब्धक:=लोद्धओ॥ 'र्' के लोप के उदाहरण अर्क:=अक्को और वर्ग:=वग्गो॥ वर्ण के पश्चात् स्थित संयुक्त एवं हलन्त 'ल्' 'ब्' और 'र्' के लोप होने के उदाहरण इस प्रकार है:- सर्व प्रथम 'ल्' के उदाहरण: श्लक्ष्णम्= सण्हं; विक्लव:=विक्कवो॥ व् के लोप के उदाहरण: पक्वम्= पक्कं अथवा पिक्कं॥ ध्वस्त:= धत्थो॥ 'र्' के लोप के उदाहरण: चक्रम्= चक्कं; ग्रह:= गहो और रात्रि:=रत्ती॥

जिन संस्कृत-शब्दों में ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाता हो कि उनमें रहे हुए दो हलन्त व्यञ्जनों के लोप होने का एक साथ ही संयोग पैदा हो जाता हो तो ऐसी स्थिति में 'उदाहरण में' जिसका लोप होना

बतलाया गया हो- दिखलाया गया हो- उस हलन्त व्यञ्जन का लोप किया जाना चाहिये। ऐसी स्थिति में कभी कभी व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए संयुक्त हलन्त व्यञ्जन का लोप हो जाता है। कभी कभी व्यञ्जन के पश्चात् रहे हुए संयुक्त हलन्त व्यञ्जन का लोप होता है। कभी कभी उन लोप होने वाले दोनों व्यञ्जनों का लोप क्रमसे एवं पर्याय से भी होता है; यों पर्याय से- क्रमसे- लोप होने के कारण से उन संस्कृत-शब्दों के प्राकृत में दो दो रूप हो जाया करते हैं। उपरोक्त विवेचन के उदाहरण इस प्रकार हैं:- लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' के लोप के उदाहरण:— उद्विग्नः=उव्विग्गो द्विगुणः = बि-उणो ॥ द्वितीयः बीओ। लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ल्' के लोप का उदाहरण:— कल्मषम्=कम्मसं। इसी प्रकार से 'र्' के लोप का उदाहरण:—सर्वम् = सव्वं ॥ पुनः 'ल्' का उदाहरण:—शुल्बम् = सुव्वं ॥ लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से पश्चात् स्थित हलन्त व्यञ्जन के लोप होने के उदाहरण इस प्रकार है; 'य' के लोप होने के उदाहरण:-काव्यम्=कव्वं ॥ कुल्या = कुल्ला और माल्यम् = मल्लं ॥ व् के लोप होने के उदाहरण:-द्विपः = दिओ और द्विजातिः = दुआई ॥ लोप होने वाले दो व्यञ्जनों में से दोनों व्यञ्जनों का जिन शब्दों में पर्याय से लोप होता है; ऐसे उदाहरण इस प्रकार है:—द्वारम् = बारं अथवा दारं। इस उदाहरण में लोप होने योग्य 'द्' और 'व्' दोनों व्यञ्जनों को पर्याय से- क्रम से- दोनों प्राकृत रूपों में लुप्त होते हुए दिखलाये गये हैं इसी प्रकार से एक उदाहरण और दिया जाता है: --उद्विग्नः = उव्विग्गो और उव्विग्णो ॥ इस उदाहरण में लोप होने योग्य 'ग्' और 'न्' दोनों व्यञ्जनों को पर्याय से --क्रम से—दोनों प्राकृत रूपों में लुप्त होते हुए दिखलाये गये हैं। यों अन्य उदाहरणों में भी लोप होने योग्य दोनों व्यञ्जनों की लोप-स्थिति समझ लेना चाहिये।

प्रश्नः—'चन्द्र' में स्थित संयुक्त और हलन्त 'द्' एवं 'र्' के लोप-होने का निषेध क्यों किया गया है?

उत्तरः—संस्कृत शब्द 'चन्द्र' जैसा है; वैसा ही रूप प्राकृत में भी होता है; किसी भी प्रकार का वर्ण-विकार, लोप, आगम, आदेश अथवा द्वित्व आदि कुछ भी परिवर्तन प्राकृत-रूप में जब नहीं होता है; तो ऐसी स्थिति में 'जैसा-संस्कृत में वैसा प्राकृत में' होने से उसमें स्थित 'द्' अथवा 'र्' के लोप का निषेध किया गया है; और वृत्तिमें यह स्पष्टी करण कर दिया गया है कि— यह प्राकृत शब्द 'चन्द्र' संस्कृत शब्द 'चन्द्रम्' के समान ही होता है।

'चन्द्रम्' शब्द के संबन्ध में यदि अन्य प्रश्न भी किया जाय तो भी, उत्तर दिया जाय; ऐसा दूसरा कोई रूप पाया नहीं जाता है; क्यों कि मूल-सूत्र में ही निषेध कर दिया गया है कि 'चन्द्रम्' में स्थित हलन्त एवं संयुक्त 'द्' तथा 'र्' का लोप नहीं होता है इस प्रकार निषेध-आज्ञा की प्रवृत्ति कर देने से-(निषेध-सामर्थ्य के उपस्थित होने से)-किसी भी प्रकार का कोई भी वर्ण-विकार संबंधी नियम 'चन्द्रम्' के संबंध में लागू नहीं पड़ता है।

उल्का: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उक्का होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल' का लोप और २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति होकर उक्का रूप सिद्ध हो जाता है।

वल्कलम् संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूप वक्कलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर वक्कलं रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्दो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६० में की गई है।

अब्दः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अद्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ब्' का लोप; २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर अद्दो रूप सिद्ध हो जाता है।

लोद्धओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११६ में की गई है।

अक्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

वग्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

सण्हं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-७५ में की गई है।

विक्लवः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विक्कवो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'क्' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर विक्कवो रूप सिद्ध हो जाता है।

पक्कं और पिक्कं दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४७ में की गई है।

ध्वस्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धत्थो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से व् का लोप; २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर धत्थो रूप सिद्ध हो जाता है।

चक्रम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चक्कं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर चक्कं रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्रहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गहो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रात्रिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त्' को द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *रत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्विग्नः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उव्विग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से शेष 'व्' को द्वित्व 'व्व्' की प्राप्ति; २-७८ से 'न' का लोप; २-८९ से शेष 'ग्' को द्वित्व 'ग्ग्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उव्विग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्विगुणः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वि-उणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वि-उणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

बीओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५ में की गई है।

कल्मषम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कम्मसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' को 'स' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कम्मसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सव्वं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

शुल्वम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुव्वं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स्'; २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

काव्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कव्वं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कव्वं* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुल्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुल्ला होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप और २-८९ से शेष 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति होकर *कुल्ला* रूप सिद्ध हो जाता है।

माल्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९४ में की गई है।

दुआइ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९४ में की गई है।

बारं और दारं दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७९ में की गई है।

उद्विग्नः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उव्विग्गो और उव्विण्णो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप उव्विग्गो की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है। द्वितीय रूप में सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से शेष 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; २-७७ से 'ग्' का लोप; २-८९ से शेष 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; १-२२८ से दोनों 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उव्विण्णो* रूप सिद्ध हो जाता है।

चन्द्र' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४२ में की गई है ॥२-७९॥

द्रे रो न वा ॥२-८०॥

द्रशब्दे रेफस्य वा लुग् भवति ॥ चन्दो चन्द्रो। रुदो रुद्रो। भद्दं भद्रं। समुद्दो समुद्रो ॥ ह्रदशब्दस्य स्थितिपरिवृत्तौ द्रह इति रूपम्। तत्र द्रहो दहो। केचिद् रलोपं नेच्छन्ति। द्रह शब्दमपि कश्चित् संस्कृतं मन्यते ॥ वोद्रहादयस्तु तरुणपुरुषादिवाचका नित्यं रेफसंयुक्ता देश्या एव। सिक्खन्तु वोद्रहीओ। वोद्रह-द्रहम्मि पडिआ ॥

अर्थः— जिन संस्कृत शब्दों में 'द्र' होता है; उनके प्राकृत-रूपान्तर में 'द्र' में स्थित रेफ रूप 'र्' का विकल्प से लोप होता है। जैसेः—चन्द्रः = चन्दो अथवा चन्द्रो ॥ रुद्रः = रुदो अथवा रुद्रो ॥ भद्रम् = भद्दं अथवा भद्रं ॥ समुद्रः = समुद्दो अथवा समुद्रो ॥ संस्कृत शब्द 'ह्रद' के स्थान पर वर्णों का परस्पर में व्यत्यय अर्थात् अदला बदली होकर प्राकृत रूप 'द्रह' बन जाता है। इस वर्ण-व्यत्यय से उत्पन्न होने वाली अवस्था को 'स्थिति-परिवृत्ति' भी कहते हैं। इसलिये संस्कृत रूप 'ह्रदः' के प्राकृत रूप द्रहो अथवा दहो दोनों होते हैं। कोई कोई प्राकृत व्याकरण के आचार्य 'द्रह' में स्थित रेफ रूप 'र्' का लोप होना नहीं मानते हैं; उनके मतानुसार संस्कृत रूप 'ह्रदः' का प्राकृत रूप केवल 'द्रहो' ही होगा; द्वितीय रूप 'दहो' नहीं बनेगा।

कोई कोई आचार्य 'द्रह' शब्द को प्राकृत नहीं मानते हुए संस्कृत-शब्द के रूप में ही स्वीकार करते हैं। इनके मत से 'द्रहो' और 'दहो' दोनों रूप प्राकृत में होंगे। 'बोद्रह' शब्द देशज-भाषा का है और यह 'तरुण-पुरुष' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस में स्थित रेफ 'रूप' 'र्' का कभी भी लोप नहीं होता है। 'बोद्रह' पुल्लिंग है और 'बोद्रही' स्त्रीलिंग बन जाता है। उदाहरण इस प्रकार है:—शिक्षन्ताम् तरुण्यः= सिक्खन्तु- बोद्रहीओ अर्थात् नवयुवती स्त्रियाँ शिक्षाग्रहण करे। तरुण-हृदे पतिता = बोद्रह-द्रहम्मि पडिआ अर्थात् वह (नवयुवती) तरुण पुरुष रूपी तालाब में गिर पड़ी। (तरुण पुरुष के प्रेम में आसक्त हो गई)। यहाँ पर 'बोद्रह' शब्द का उल्लेख इस लिये करना पड़ा कि यह देशज है; न संस्कृत भाषा का है और न प्राकृत भाषाका है तथा इसमें स्थित रेफ रूप 'र्' का लोप भी कभी नहीं होता है। अतः सूत्र-संख्या २-८० के संबन्ध से अथवा विधान से यह शब्द मुक्त है; इसी तात्पर्य को समझाने के लिये इस शब्द की चर्चा सूत्र की वृत्ति में की गई है; जो कि ध्यान में रखने योग्य है॥

चन्दो और चन्द्रो दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३० में की गई है।

रुद्रः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप रुद्दो और रुद्रो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८० से रेफ रूप द्वितीय 'र्' का विकल्प से लोप; २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप रुद्दो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (रुद्रः=) रुद्रो में सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप रुद्रो भी सिद्ध हो जाता है।

भद्रम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप भद्दं और भद्रं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८० से रेफ रूप 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार हो कर प्रथम रूप भद्दं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (भद्रम् =) भद्रं की साधनिका प्रथम रूप के समान ही सूत्र-संख्या ३-२५ और १-२३ के विधानानुसार जान लेना चाहिये।

समुद्रः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप समुद्दो और समुद्रो होते हैं। इस में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८० से रेफ रूप 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर समुद्दो रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (समुद्रः =) समुद्रो की साधनिका सूत्र-संख्या ३-२ के विधानानुसार जान लेना चाहिये।

द्रहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप द्रहो और दहो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-८० से रेफ रूप 'र्' का विकल्प से लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रमसे द्रहो और दहो दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

शिक्षन्ताम् संस्कृत विधिलिंगात्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सिक्खन्तु होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख् ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ३-१७६ से संस्कृत विधि-लिंगात्मक प्रत्यय 'न्ताम्' के स्थान पर प्रथम पुरुष के बहुवचन में प्राकृत में 'न्तु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिक्खन्तु* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरुण्यः संस्कृत रूप है। इसके स्थान पर देशज-भाषा में परम्परा से रूढ़ शब्द 'बोद्रहीओ' प्रयुक्त होता आया है। इसका पुल्लिग रूप 'बोद्रह' होता है। इस में सूत्र-संख्या ३-३१ से पुल्लिग से स्त्रीलिंग रूप बनाने में प्राप्त 'ई' प्रत्यय से 'बोद्रही' रूप की प्राप्ति और ३-२७ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में ईकारान्त स्त्री लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बोद्रहीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरुण संस्कृत शब्द है। इसका देशज भाषा में रूढ़ रूप 'बोद्रह' होता है। यहां पर समासात्मक वाक्य में आया हुआ है; अतः इस में स्थित विभक्ति-प्रत्यय का लोप हो गया है।

रूप है। इसका प्राकृत रूप द्रहम्मि होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१२० से 'ह' और द का परस्पर में व्यत्यय; और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *द्रहम्मि* रूप सिद्ध हो जाता है।

पतिता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१९ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; और १-१७७ से द्वितीय 'त' का लोप होकर *पडिआ* रूप सिद्ध हो जाता है। २-८० ॥

धात्र्याम् ॥ २-८१ ॥

धात्री शब्दे रस्य लुग् वा भवति ॥ धत्ती। ह्रस्वात् प्रागेव रलोपे धाई। पक्षे। धारी ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'धात्री' में रहे हुए 'र्' का प्राकृत रूपान्तर में विकल्प से लोप होता है। धात्री=धत्ती अथवा धारी ॥ आदि दीर्घ स्वर 'आ' के ह्रस्व नहीं होने की हालत में और साथ में 'र्' का लोप होने पर संस्कृत रूप 'धात्री' का प्राकृत में तीसरा रूप धाई भी होता है। यों संस्कृत रूप धात्री के प्राकृत में तीन रूप हो जाते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:—धत्ती, धाई और धारी ॥

धात्री संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप धत्ती, धाई और धारी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-८१ से 'र्' का (वैकल्पिक रूप से) लोप; और २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *धत्ती* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (धात्री =) धाई में सूत्र-संख्या २-८१ से (वैकल्पिक रूप से) 'र्' का लोप और १-७७ से 'त्' का लोप होकर द्वितीय रूप *धाई* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप (धात्री=) धारी में सूत्र-संख्या १-७७ से 'त्' का लोप होकर तृतीय रूप *धारी* भी सिद्ध हो जाता है। २-८१॥

तीक्ष्णे णः ॥ २-८२ ॥

तीक्ष्ण शब्दे णस्य लुग् वा भवति ॥ तिक्खं । तिण्हं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द तीक्ष्ण में रहे हुए 'ण' का प्राकृत रूपान्तर में विकल्प से लोप हुआ करता है। जैसेः—तीक्ष्णम्=तिक्खं अथवा तिण्हं ॥

तीक्ष्णम् संस्कृत विशेषण रूप है। इस के प्राकृत रूप तिक्खं और तिण्हं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-८२ से 'ण' का लोप; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वर होकर प्रथम रूप *तिक्खं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप तिण्हं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७५ में की गई है। २-८२ ॥

ज्ञो ञः ॥ २-८३ ॥

ज्ञः संबन्धिनो ञस्य लुग् वा भवति ॥ जाणं णाणं । सव्वज्जो सव्वण्णू । अप्पज्जो अप्पण्णू । दइवज्जो दइवण्णू । इङ्गिअज्जो । इङ्गिअण्णू । मणोज्जं । मणोण्णं । अहिज्जो अहिण्णू । पज्जा पण्णा । अज्जा आणा । संजा सण्णा ॥ क्वचिन्न भवति विण्णाणं ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' होता है; तब प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित 'ञ' व्यञ्जन का विकल्प से लोप हो जाता है। जैसेः-ज्ञानम्=जाणं अथवा णाणं। सर्वज्ञः=सव्वज्जो अथवा सव्वण्णू ॥ आत्मज्ञः=अप्पज्जो अथवा अप्पण्णू ॥ दैवज्ञः=दइवज्जो अथवा दइवण्णू। इङ्गितज्ञः=इङ्गिअज्जो अथवा इङ्गिअण्णू ॥ मनोज्ञम्=मणोज्जं अथवा मणोण्णं। अभिज्ञः=अहिज्जो अथवा अहिण्णू। प्रज्ञा=पज्जा अथवा पण्णा। आज्ञा=अज्जा अथवा आणा ॥ संज्ञा= संजा

સરસ્વતિબ્હેન મફીલાલ

अथवा रुएणा ॥ किसी किसी शब्द में स्थित 'ज्ञ' व्यञ्जन में सम्मिलित 'ञ' व्यञ्जन का लोप नहीं होता है। जैसे:-विज्ञानं=विण्णाणं। इस उदाहरण में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' की परिणति अन्य नियमानुसार 'ण' में हो गई है। किन्तु सूत्र-संख्या २-८३ के अनुसार लोप अवस्था नहीं प्राप्त हुई है ॥

ज्ञानम् संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत-रूप जाणं और णाणं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' व्यञ्जन का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३—२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *जाणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप णाणं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४२ में की गई है।

सव्वज्जो और सव्वण्णू दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५६ में की है।

आत्मज्ञः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अप्पज्जो और अप्पण्णू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' का लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अप्पज्जो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (आत्मज्ञः =) अप्पण्णू में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; १-५६ से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अप्पण्णू* भी सिद्ध हो जाता है।

दैवज्ञः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दइवज्जो और दइवण्णू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' आदेश की प्राप्ति; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दइवज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयरूप- (दैवज्ञः=) दइवण्णू में सूत्र-संख्या १-१५१ से 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' आदेश की प्राप्ति; २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; १-५६ से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के

एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *इङ्गिअण्णू* सिद्ध हो जाता है।

इंगितज्ञः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप इंगिअज्जो और इङ्गिअण्णू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप, २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *इङ्गिअज्जो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (इङ्गितज्ञः=) इङ्गिअण्णू में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त' का लोप; २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति १-५६ से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; और ३—१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *इंगिअण्णू* सिद्ध हो जाता है।

मनोज्ञम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मणोज्जं और मणोण्णं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *मणोज्जं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मनोज्ञम्=) मणोण्णं में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *मणोण्णं* भी सिद्ध हो जाता है।

अहिज्जो और अहिण्णू रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-५६ में की गई है।

प्रज्ञा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पज्जा और पण्णा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९ से 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पज्जा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *पण्णा* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४२ में की गई है। *आज्ञा* संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अज्जा और आणा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप; २-८९

में 'ज्ञ' में स्थित 'ञ्' के लोप होने के पश्चात् शेष 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अज्जा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (आज्ञा =) आणा में सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *आणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

संज्ञा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप संजा और सण्णा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ज्ञ' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ञ्' का लोप होकर प्रथम रूप *संजा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *सण्णा* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४२ में की गई है। विण्णाणं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४२ में की गई है। २—८३॥

मध्याह्ने हः ॥ २—८४ ॥

मध्याह्ने हस्य लुग् वा भवति ॥ मज्झन्नो मज्झण्हो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द मध्याह्न' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में विकल्प से 'ह्' का लोप होकर 'न' शेष रहता है। जैसेः—मध्याह्नः = मज्झन्नो अथवा मज्झण्हो॥ वैकल्पिक पक्ष होने से प्रथम रूप में 'ह्न' के स्थान पर 'न' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' की प्राप्ति हुई है।

मध्याह्नः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मज्झन्नो और मज्झण्हो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-२६ से संयुक्त व्यञ्जन 'ध्य' के स्थान पर 'झ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'झ' को द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'झ्' को 'ज्' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति २-८४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' में से 'ह्' का विकल्प से लोप; २-८९ से शेष 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप *मज्झन्नो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप (मध्याह्नः =) मज्झण्हो में 'मज्झ' तक की साधनिका प्रथम रूप के समान ही; तथा आगे सूत्र-संख्या २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्न' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *मज्झण्हो* भी सिद्ध हो जाता है। २—८४॥

दशार्हे ॥ २—८५ ॥

पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम्। दशार्हे हस्य लुग् भवति ॥ दसारो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'दशार्ह' में स्थित 'दश' और 'अर्ह' शब्दों का पृथक्-पृथक् अर्थ नहीं करते हुए तथा इसको एक ही अर्थ—वाचक शब्द मानते हुए इस का 'बहुव्रीहि- समास' में विशेष अर्थ स्वीकार किया जाय; तो 'दशार्ह' में स्थित 'ह' व्यञ्जन का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे:— दशार्हः= दसारो अर्थात् यादव-विशेष।

दशार्हः संस्कृत शब्द है। इसका प्राकृत रूपान्तर दसारो होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-८५ से 'ह्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दसारो* रूप सिद्ध हो जाता है। २-८५॥

आदेः श्मश्रु-श्मशाने ॥ २-८६ ॥

अनयोरादेर्लुग् भवति ॥ मासू मंसू मस्सू । मसाणं ॥ आर्षे श्मशान-शब्दस्य सीआणं सुसाणमित्यपि भवति ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'श्मश्रु' और 'श्मशान' में आदि में स्थित 'श्' व्यञ्जन का प्राकृत रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे:—श्मश्रुः = मासू अथवा मंसू अथवा मस्सू॥ श्मशानम्=मसाणं॥ आर्ष-प्राकृत में 'श्मशान' शब्द के दो अन्य रूप और भी पाये जाते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:—श्मशानम् = सीआणं और सुसाणं॥

श्मश्रुः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मासू, मंसू और मस्सू होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८६ से आदि में स्थित 'श्' व्यञ्जन का लोप; १-४३ से 'म' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'र्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'श्' को 'स' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मासू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मंसू* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है।

तृतीय रूप—(श्मश्रुः=) मस्सू में सूत्र-संख्या २-८६ से आदि में स्थित 'श्' व्यञ्जन का लोप; २—७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'र्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'श्' को 'स्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स्' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर तृतीय रूप *मस्सू* भी सिद्ध हो जाता है।

श्मशानम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप मसाणं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-८६ से आदि में स्थित 'श्' व्यञ्जन का लोप; १-२६० से द्वितीय 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५

से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में आकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मसाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्ष-प्राकृत में '*श्मशानम्*' के *सीआणं* और *सुसाणं* रूप होते हैं; इनकी साधनिका प्राकृत-नियमों के अनुसार नहीं होती है इसी लिये ये आर्ष-रूप कहलाते हैं। २-८६ ॥

श्चो हरिश्चन्द्रे ॥ २-८७ ॥

हरिश्चन्द्रशब्दे श्च इत्यस्य लुग् भवति ॥ हरिअन्दो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'हरिश्चन्द्र' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'श्च्' का प्राकृत-रूपान्तर में लोप हो जाता है। जैसे:—हरिश्चन्द्रः = हरिअन्दो ॥

हरिश्चन्द्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरिअन्दो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-८७ से संयुक्त व्यञ्जन 'श्च्' का लोप; २-८० से 'द्र' में स्थित रेफ रूप 'र्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हरिअन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रात्रौ वा ॥ २-८८ ॥

रात्रिशब्दे संयुक्तस्य लुग् वा भवति ॥ राई रत्ती ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'रात्रि' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'त्र्' का विकल्प से प्राकृत रूपान्तर में लोप होता है। जैसे:—रात्रिः=राई अथवा रत्ती ॥

रात्रिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप राई और रत्ती होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-८८ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्र्' का विकल्प से लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *राई* सिद्ध हो जाता है। द्वितीय रूप—(रात्रिः=) *रत्ती* की सिद्धि सूत्र-संख्या-२-७९ में की गई है ॥ २-८८ ॥

अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् ॥ २-८९ ॥

पदस्यानादौ वर्तमानस्य शेषस्यादेशस्य च द्वित्वं भवति ॥ शेष । कप्पतरु । भुत्तं । दुद्धं । नग्गो । उक्का । अक्को । मुक्खो ॥ आदेश । डक्को । जक्खो । रग्गो । किच्ची । रुप्पी ॥ क्वचिन्न भवति । कसिणो ॥ अनादाविति किम् । खलिअं । थेरो । खम्भो । द्वयोस्तु । द्वित्व-मस्त्येवेऽऽति न भवति । विञ्चुओ । भिण्डिवालो ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत शब्द का कोई वर्ण नियमानुसार प्राकृत-रूपान्तर में लुप्त होता है; तदनुसार उस लुप्त होने वाले वर्ण के पश्चात् जो वर्ण शेष रहता है; अथवा लुप्त होने वाले उस वर्ण के स्थान पर नियमानुसार जो कोई दूसरा वर्ण आदेश रूप से प्राप्त होता है; एवं यह शेष वर्ण अथवा आदेश रूप से प्राप्त वर्ण यदि उस शब्द के आदि- (प्रारंभ) में स्थित न हो तो उस शेष वर्ण का अथवा आदेश रूप से प्राप्त वर्ण का द्वित्व वर्ण हो जाता है। लुप्त होने के पश्चात् शेष-अनादि-वर्ण के द्वित्व होने के उदाहरण इस प्रकार हैं:—कल्पतरुः = कप्पतरू । भुक्तम् = भुत्तं । दुग्धम् = दुद्धं । नग्नः = नग्गो । उल्का = उक्का । अर्कः = अक्को । मूर्खः = मुक्खो ॥ आदेश रूप से प्राप्त होने वाले वर्ण के द्वित्व होने के उदाहरण इस प्रकार है:—दष्टः = डक्को । यक्षः = जक्खो । रक्तः = रग्गो । कृत्तिः = किच्ची । रुक्मी = रुप्पी ॥ कभी कभी लोप होने के पश्चात् शेष रहने वाले वर्ण का द्वित्व होना नहीं पाया जाता है। जैसे:-कृत्स्नः = कसिणो यहां पर 'त्' के लोप होने के पश्चात शेष 'स्' का द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्यत्र भी जानना।

प्रश्नः—'अनादि में स्थित हो तभी उस शेष वर्ण का अथवा आदेश-प्राप्त वर्ण का द्वित्व होता है' ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—क्योंकि यदि वह शेष वर्ण अथवा आदेश प्राप्त वर्ण शब्द के प्रारंभ में ही स्थित होगा तो उसका द्वित्व नहीं होगा; इस विषयक उदाहरण इस प्रकार है:-स्खलितम् = खलिअं । स्थविरः = थेरो । स्तम्भः = खम्भो ॥ इन उदाहरणों में शेष वर्ण अथवा आदेश-प्राप्त वर्ण शब्दों के प्रारंभ में ही रहे हुए हैं; अतः इनमें द्वित्व की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिये। जिन शब्दों में शेष वर्ण अथवा आदेश प्राप्त वर्ण पहले से ही दो वर्ण रूप से स्थित हैं; उनमें पुनः द्वित्व की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण इस प्रकार है:—वृश्चिकः = बिञ्चुओ और भिन्दिपालः = भिण्डिवालो ॥ इत्यादि ॥ इन उदाहरणों में क्रम से 'श्च' के स्थान पर दो वर्ण रूप 'ञ्चु' की प्राप्ति हुई है और 'न्द' के स्थान पर दो वर्ण रूप 'ण्ड' की प्राप्ति हुई है; अतः अब इनमें और द्वित्व वर्ण करने की आवश्यकता नहीं है। यों अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिये।

कल्पतरुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कप्पतरू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर कप्पतरू रूप सिद्ध हो जाता है।

भुत्तं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।
दुद्धं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।
नग्गो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७८ में की गई है।
उक्का रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७९ में की गई है।

अक्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

मूर्खः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग मे 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

इक्को रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२ में की गई है।

यक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जक्खो* रूप की सिद्धि हो जाती है।

रग्गो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१० में की गई है।
किच्ची रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१२ में की गई है।
रुप्पी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-५२ में की गई है।
कसिणो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-७५ में की गई है।

स्खलितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खलिअं होता है। इस में सूत्र संख्या २-७७ से हलन्त 'स्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खलिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

थेरो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१६६ में की गई है।
खम्भो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-८ में की गई है।
विञ्चुओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२८ में गई है।
भिण्डिवालो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-३८ में की गई है। ॥ २-८९ ॥

द्वितीय-तुर्ययोरुपरि पूर्वः ॥२-९०॥

द्वितीयतुर्ययोर्द्वित्व प्रसङ्गे उपरि पूर्वौ भवतः ॥ द्वितीयस्योपरि प्रथमश्चतुर्थस्योपरि तृतीयः इत्यर्थः ॥ शेष। वक्खाणं। वग्घो। मुच्छा। निज्झरो। कट्ठं। तित्थं। निद्धणो। गुप्फं। निब्भरो॥ आदेश। जक्खो। घस्यनास्ति ॥ अच्छी। मज्झं। पट्ठी। वुड्ढो। हत्थो।

आलिद्धो । पुप्फं । भिब्भलो ।। तैलादौ (२-६८) द्वित्वे ओक्खलं ।। सेवादौ (२-६६) नक्खा नेहा ।। समासे । कइ-द्धओ कइ-धओ ।। द्वित्व इत्येव । खाओ ।।

अर्थः—किसी भी वर्ग के दूसरे अक्षर को अथवा चतुर्थ अक्षर को द्वित्व होने का प्रसंग प्राप्त हो तो उनके पूर्व में द्वित्व प्राप्त द्वितीय अक्षर के स्थान पर प्रथम अक्षर हो जायगा और द्वित्व प्राप्त चतुर्थ अक्षर के स्थान पर तृतीय अक्षर हो जायगा। विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि-किसी संस्कृत शब्द के प्राकृत में रूपान्तर करने पर नियमानुसार लोप होने वाले वर्ण के पश्चात् शेष रहे हुए वर्ण को अथवा आदेश रूप से प्राप्त होने वाले वर्ण को द्वित्व होने का प्रसंग प्राप्त हो तो द्वित्व होने के पश्चात् प्राप्त द्वित्व वर्णों में यदि वर्ग का द्वितीय अक्षर है; तो द्वित्व प्राप्त वर्ण के पूर्व में स्थित हलन्त द्वितीय अक्षर के स्थान पर उसी वर्ग के प्रथम अक्षर की प्राप्ति होगी और यदि द्वित्व प्राप्त वर्ण वर्ग का चतुर्थ अक्षर है तो उस द्वित्व प्राप्त चतुर्थ अक्षर में से पूर्व में स्थित चतुर्थ अक्षर के स्थान पर उसी वर्ग के तृतीय अक्षर की प्राप्ति होगी। 'शेष' से संबंधित उदाहरण इस प्रकार हैः-व्याख्यानम् = वक्खाणं। व्याघ्रः = वग्घो। मूर्च्छा = मुच्छा। निर्झरः = निज्झरो। कष्टम् = कट्ठं। तीर्थम् = तित्थं। निर्धनः = निद्धणो। गुल्फम् = गुप्फं। निर्भरः = निब्भरो।। इसी प्रकार से 'आदेश' से सम्बंधित उदाहरण इस प्रकार हैः—यक्षः = जक्खो।। दीर्घ 'घ' का उदाहरण नहीं होता है। अक्षिः = अच्छी। मध्यं = मज्झं। दृष्टिः = दिट्ठी।। वृद्धः = वुड्ढो। हस्तः = हत्थो। आश्लिष्टः = आलिद्धो। पुष्पम् = पुप्फं और विह्वलः = भिब्भलो।।

सूत्र संख्या २-६८ से तैल आदि शब्दों में भी द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होती है; उनमें भी इसी सूत्र-विधानानुसार प्राप्त द्वितीय अक्षर के स्थान पर प्रथम अक्षर की प्राप्ति होती है और प्राप्त चतुर्थ अक्षर के स्थान पर तृतीय अक्षर की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार हैः-उदूखलम् ओक्खलं।। इसी प्रकार सूत्र-संख्या २-६६ से सेवा आदि शब्दों में भी द्वित्व वर्ण की प्राप्ति होती है; उन शब्दों में भी यही नियम लागू होता है कि प्राप्त द्वित्व द्वितीय वर्ण के स्थान पर प्रथम वर्ण की प्राप्ति होती है प्राप्त द्वित्व चतुर्थ वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ण की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार हैः-नखाः = नक्खा अथवा नहा।। समास गत शब्द में भी द्वितीय के स्थान पर प्रथम की प्राप्ति और चतुर्थ के स्थान पर तृतीय की प्राप्ति इसी नियम के अनुसार जानना। उदाहरण इस प्रकार हैः कपि-ध्वजः = कइ-द्धओ अथवा कइ-धओ।। उपरोक्त नियम का विधान नियमानुसार द्वित्व रूप से प्राप्त होने वाले वर्णों के संबंध में ही जानना; जिन शब्दों में लोप स्थिति की अथवा आदेश-स्थिति की उपलब्धि (तो) हो; परन्तु यदि ऐसा होने पर भी 'द्विर्भाव' की स्थिति नहीं हो तो इस नियम का विधान ऐसे शब्दों के संबंध में लागू नहीं होगा। जैसेः—ख्यातः = खाओ।। इस उदाहरण में लोप-स्थिति है। परन्तु द्विर्भाव स्थिति नहीं है; अतः सूत्र-संख्या २-६० का विधान इस में लागू नहीं होता है।।

व्याख्यानम् संस्कृतरूप है। इसका प्राकृत रूप वक्खाणं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७८ से दोनों 'य्' कारों का लोप; १-८४ से शेष 'वा' में स्थित दीर्घस्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की

प्राप्ति; २-८९ से 'ख' वर्ण को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा-विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वक्खाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्याघ्रः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वग्घो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-८४ से शेष 'वा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप २-८९ से 'घ' को द्वित्व 'घ्घ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'घ्' को 'ग्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वग्घो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मूर्च्छा—संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मुच्छा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; और १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति होकर *मुच्छा* रूप सिद्ध हो जाता है।

निज्झरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-९८ में की गई है।

कट्ठं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-३४ में की गई है।

तित्थं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८४ में की गई है।

निर्धनः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निद्धणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति; १-२२८ से द्वितीय 'न' को 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निद्धणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गल्फम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गुप्फं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गुप्फं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्भरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निब्भरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'भ' को द्वित्व 'भ्भ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' को 'ब्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निब्भरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जक्खो रूप की सिद्धि सूत्र-संखया २-८९ में की गई है।

अच्छी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३२ में की गई है।

मज्झं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२६ में की गई है।

पट्टी रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२६ में की गई है।

कुट्ठो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३१ में की गई है।

हत्थो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४५ में की गई है।

आलिद्धो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४९ में की गई है।

पुप्फं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२३६ में की गई है।

भिब्भलो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५८ में की गई है।

ओक्खलं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७१ में की गई है।

नखाः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप नक्खा और नहा होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-९९ से 'ख' को द्वित्व 'ख् ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर लोप; और ३-१२ से 'ख' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति हो कर प्रथम रूप *नक्खा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (नखाः =) नहा में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और शेष साधनिका (प्रथमा बहु वचन के रूप में) प्रथम रूप के समान ही होकर *नहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कपि-ध्वजः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कइद्धओ और कइ-धओ होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध् ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' को 'द्' की प्राप्ति; १-१७७ से ज् का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कई-द्धओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (कपि-ध्वजः =) कइ-धओ में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'प्' का लोप; २-७९ से 'व्' का लोप; १-१७७ से ज् का लोप; और ३-२ से प्रथम रूप के समान ही 'ओ' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *कइ-धओ* भी सिद्ध हो जाता है।

ख्यातः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खाओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खाओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-९०॥

दीर्घे वा ॥२-९१॥

दीर्घ शब्दे शेषस्य घस्य उपरि पूर्वो वा भवति ॥ दिग्घो दीहो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'दीर्घ' के प्राकृत-रूपान्तर में नियमानुसार रेफ रूप 'र्' का लोप होने के पश्चात् शेष व्यञ्जन 'घ' के पूर्व में ('घ' के) पूर्व व्यञ्जन 'ग्' की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है जैसे- दीर्घः=दिग्घो अथवा दीहो ॥

दीर्घः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप दिग्घो और दीहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-९१ से 'घ' के पूर्व में 'ग्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दिग्घो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दीर्घः=) दीहो में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथम रूप के समान ही 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *दीहो* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-९१॥

न दीर्घानुस्वारात् ॥२-९२॥

दीर्घानुस्वाराभ्यां लाक्षणिकाभ्यामलाक्षणिकाभ्यां च परयोः शेषादेशयोर्द्वित्वं न भवति ॥ छूढो। नीसासो। फासो ॥ अलाक्षणिक। पार्श्वम्। पासं ॥ शीर्षम्। सीसं ॥ ईश्वरः। ईसरो ॥ द्वेष्यः। वेसो ॥ लास्यम्। लासं ॥ आस्यम्। आसं। प्रेष्यः। पेसो ॥ अवमाल्यम्। ओमालं ॥ आज्ञा। आणा। आज्ञप्तिः। आणत्ती ॥ आज्ञपनं। आणवणं ॥ अनुस्वारात्। त्र्यस्रम्। तंसं अलाक्षणिक। संझा। विंझो। कंसालो ॥

अर्थः—यदि किसी संस्कृत-शब्द के प्राकृत-रूपान्तर में किसी वर्ण में दीर्घ स्वर अथवा अनुस्वार रहा हुआ हो और उस दीर्घ स्वर अथवा अनुस्वार की प्राप्ति चाहे व्याकरण के नियमों से हुई हो अथवा चाहे उस शब्द में ही प्रकृति रूप से ही रही हुई हो और ऐसी स्थिति में यदि इस दीर्घ स्वर अथवा अनुस्वार के आगे नियमानुसार लोप हुए वर्ण के पश्चात् शेष रह जाने वाला वर्ण आया हुआ हो अथवा आदेश रूप से प्राप्त होने वाला वर्ण आया हुआ हो तो उस शेष वर्ण को अथवा आदेश-प्राप्त वर्ण को द्वित्व-भाव की प्राप्ति नहीं होगी। अर्थात् ऐसे वर्णों का द्वित्व नहीं होगा। दीर्घ स्वर संबंधी उदाहरण इस प्रकार हैं:—क्षिप्तः = छूढो। निःश्वासः=नीसासो और स्पर्शः=फासो ॥ इन उदाहरणों में स्वर में दीर्घता व्याकरण के नियमों से हुई है; इसलिये ये उदाहरण लाक्षणिक कोटि के हैं। अब ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं; जो कि अपने प्राकृतिक रूप से ही दीर्घ स्वर वाले हैं; ये उदाहरण अलाक्षणिक कोटि के समझे जाँय। पार्श्वम्=पासं ॥ शीर्षम्=सीसं ॥ ईश्वरः = ईसरो ॥ द्वेष्यः=वेसो ॥ लास्यम्= लासं ॥ आस्यम्=आसं ॥ प्रेष्यः=पेसो ॥ अवमाल्यम्=ओमालं ॥ आज्ञा = आणा ॥ आज्ञप्तिः=आणत्ती ॥ आज्ञपनं=आणवणं ॥

इन उदाहरणों में दीर्घ स्वर के आगे वर्ग-विशेष को लोप स्थिति से शेष वर्ण की स्थिति अथवा आदेश प्राप्त वर्ण की स्थिति होने पर भी उनमें द्विभाव की स्थिति नहीं है।

अनुस्वार संबंधी उदाहरण निम्नोक्त हैं। प्रथम ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं; जिनमें अनुस्वार की प्राप्ति व्याकरण के नियम-विशेष से हुई है; ऐसे उदाहरण लाक्षणिक कोटि के जानना। त्र्यस्रम्=तंसं। इस उदाहरण में लोप स्थिति है; शेषवर्ण 'स' की उपस्थिति अनुस्वार के पश्चात रही हुई है; अतः इस शेष वर्ण 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्य लाक्षणिक उदाहरण भी समझ लेना। अब ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं; जिनमें अनुस्वार की स्थिति प्रकृति रूप से ही उपलब्ध है; ऐसे उदाहरण अलाक्षणिक कोटि के गिने जाते हैं। संध्या = संझा। विंध्यः=विंझो और कांस्यालः = कंसालो ॥ प्रथम दो उदाहरणों में अलाक्षणिक रूप से स्थित अनुस्वार के आगे आदेश रूप से प्राप्त वर्ण 'झ' की उपस्थिति विद्यमान है; परन्तु इस 'झ' वर्ण को पूर्व में अनुस्वार के कारण से द्वित्व 'झ्झ' की प्राप्ति नहीं हुई है। तृतीय उदाहरण में 'य्' का लोप होकर अनुस्वार के आगे शेष वर्ण के रूप में 'स' की उपस्थिति मौजूद है; परन्तु पूर्व में अनुस्वार होने के कारण से इस शेष वर्ण 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति नहीं हुई है। यों अन्यत्र भी जान लेना। इन्हें अलाक्षणिक कोटि के उदाहरण जानना; क्योंकि इनमें अनुस्वार की प्राप्ति व्याकरण गत नियमों से नहीं हुई है; परन्तु प्रकृति से हो स्थित है॥

क्षिप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छूढो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१२७ से संपूर्ण 'क्षिप्त' शब्द के स्थान पर ही 'छूढ' रूप आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छूढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नोसासो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-६३ में की गई है।

स्पर्शः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप फासो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८२ से स्पर्श शब्द के स्थान पर हो 'फास' रूप आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *फासो* रूप सिद्ध हो जाता है

पार्श्वम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पासं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-७६ से रेफ रूप 'र्' का और 'व्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; २-८६ से शेष 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति होनी चाहिये थी; परन्तु २-६२ से इस 'द्विर्भाव-स्थिति का निषेध; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पासं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शीर्षम् संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप रूप सीसं होता है। इस में सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'श' 'ष' का 'स' 'स'; २-७६ से 'र्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सीसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ईसरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–८४ में की गई है।

द्वेष्यः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वेसो होता है। इस में सूत्र-संख्या २—७७ से 'द्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'ष' का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर वेसो रूप सिद्ध हो जाता है।

लास्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लासं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्', का अनुस्वार होकर *लासं* रूप सिद्ध हो जाता है।

आस्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रेष्यः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-७८ से "य्" का लोप; १-२६० से 'ष, का 'स' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ओमालं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–३८ में की गई है।

आणा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २–८३ में की गई है।

आज्ञप्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आणत्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २–७७ से 'प्' का लोप; २–८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३–१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *आणत्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

आज्ञपनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आणवणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २–४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति १–२३१ से 'प' का 'व'; १–२२८ से 'न' का 'ण'; ३–२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १–२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आणवणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तंसं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–२६ में की गई है।

संभा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–६ में की गई है।

विंझो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–२५ में की गई है।

कांस्याल: संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कंसालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से 'का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कंसालो* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-९२॥

र-होः ॥ २-९३ ॥

रेफहकारयोर्द्वित्वं न भवति ॥ रेफः शेषो नास्ति ॥ आदेश । सुन्देरं । बम्हचेरं । पेरन्तं ॥ शेषस्य हस्य । विहलो ॥ आदेशस्य । कहावणो ॥

अर्थः—किसी संस्कृत शब्द के प्राकृत रूपान्तर में यदि शेष रूप से अथवा आदेश रूप से 'र' वर्ण की अथवा 'ह' वर्ण की प्राप्ति हो; तो ऐसे 'र' वर्ण को एवं 'ह' वर्ण को द्वित्व की प्राप्ति नहीं होती है। रेफ रूप 'र' वर्ण कभी भी शेष रूप से उपलब्ध नहीं होता है; अतः शेष रूप से संबंधित 'र' वर्ण के उदाहरण नहीं पाये जाते हैं। आदेश रूप से 'र' वर्ण की प्राप्ति होती है; इसलिये इस विषयक उदाहरण इस प्रकार हैं:—सौन्दर्यम् = सुन्देरं ॥ ब्रह्मचर्यम् = बम्हचेरं और पर्यन्तम् = पेरन्तं ॥ इन उदाहरणों में संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' वर्ण की आदेश रूप से प्राप्ति हुई है; इस कारण से 'र' वर्ण को सूत्र संख्या २-८९ से द्विर्भाव की स्थिति होनी चाहिये थी; किन्तु सूत्र संख्या २-९३ से निषेध कर देने से द्विर्भाव की प्राप्ति नहीं हो सकती है। शेष रूप से प्राप्त 'ह' का उदाहरणः—विह्वलः = विहलो ॥ इसमें द्वितीय 'व्' का लोप होकर शेष 'ह' की प्राप्ति हुई है; किन्तु इसमें भी २-९३ से द्विर्भाव की स्थिति नहीं हो सकती है। आदेश रूप से प्राप्त 'ह' का उदाहरणः—कार्षापणः = कहावणो ॥ इस उदाहरण में संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' के स्थान पर सूत्र-संख्या २-७१ से 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति हुई है; तदनुसार सूत्र संख्या २-८९ से 'ह' वर्ण को द्विर्भाव की स्थिति प्राप्त होनी चाहिये थी; परन्तु सूत्र संख्या २-९३ से निषेध कर देने से द्विर्भाव की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यों अन्य उदाहरणों में भी शेष रूप से अथवा आदेश रूप से प्राप्त होने वाले रेफ रूप 'र' और 'ह' के द्विर्भाव नहीं होने की स्थिति को समझ लेना चाहिये॥

सुन्देरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-५७ में की गई है।

बम्हचेरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-५९ में की गई है।

पर्यन्तम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पेरन्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-५८ से 'प' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर 'ए' स्वर की प्राप्ति; २-६५ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'र' रूप आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पेरन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विह्वलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विहलो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से द्वितीय 'व्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के

સરસ્વતિબ્હેન મણીલાલ શાહ

स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विहलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कहावणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७१ में की गई है। ॥ २-६३ ॥

धृष्टद्युम्ने णः ॥२-६४॥

धृष्टद्युम्न शब्दे आदेशस्य णस्य द्वित्वं न भवति ॥ धट्ठज्जुणो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द धृष्टद्युम्नः के प्राकृत रूपान्तर धट्ठज्जुणो में संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' आदेश की प्राप्ति होने पर इस आदेश प्राप्त 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसेः—धृष्टद्युम्नः=धट्ठज्जुणो ॥

धृष्टद्युम्नः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धट्ठज्जुणो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्य' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-८६ से प्राप्त 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज्' की प्राप्ति, २-४२ से संयुक्त व्यञ्जन 'म्न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धट्ठज्जुणो* रूप की सिद्धि हो जाती है। ॥२-६४॥

कर्णिकारे वा ॥ २-६५ ॥

कर्णिकार शब्दे शेषस्य णस्य द्वित्वं वा न भवति ॥ कणिआरो कण्णिआरो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द कर्णिकार के प्राकृत रूपान्तर में प्रथम रेफ रूप 'र्' के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए 'ण' वर्ण को द्वित्व की प्राप्ति विकल्प से होती है। कभी हो जाती है और कभी नहीं होती है। जैसेः—कर्णिकारः=कणिआरो अथवा कण्णिआरो ॥

कर्णिकारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कणिआरो और कण्णिआरो होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *कणिआरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप कण्णिआरो की सिद्धि सूत्र संख्या १-१६८ में की गई है। ॥ २-६५ ॥

दृप्ते ॥ २-६६ ॥

दृप्तशब्दे शेषस्य द्वित्वं न भवति ॥ दरिअ-सीहेण ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'दृप्त' के प्राकृत रूपान्तर में नियमानुसार 'प्' और 'त्' व्यञ्जन का लोप हो जाने के पश्चात् शेष वर्ण को द्विर्भाव की प्राप्ति नहीं होती है। जैसेः—दृप्त-सिंहेन=दरिअ-सीहेण ॥ दरिअ-सीहेण रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१४४ में की गई है। ॥ २-९६ ॥

समासे वा ॥ २-९७ ॥

शेषादेशयोः समासे द्वित्वं वा भवति ॥ नइ-ग्गामो, नइ-गामो । कुसुमप्पयरो कुसुम-पयरो । देव-त्थुई देव-थुई । हर-क्खन्दा हर-खन्दा । आणाल-क्खम्भो आणाल-खम्भो ॥ बहुलाधिकारादशेषादेशयोरपि । स-प्पिवासो स-पिवासो । बद्ध-प्फलो बद्ध-फलो । मलय-सिहर-क्खण्डं मलय-सिहर-खण्डं । पम्मुक्कं पमुक्कं । अद्दंसणं अदंसणं । पडिक्कूलं पडिकूलं । तेल्लोक्कं तेलोक्कं इत्यादि ॥

अर्थः—संस्कृत समासगत शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में नियमानुसार वर्णों के लोप होने के पश्चात् शेष रहे हुए अथवा आदेश रूप से प्राप्त हुए वर्णों को द्विर्भाव की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। अर्थात् समासगत शब्दों में शेष रूप से अथवा आदेश रूप से रहे हुए वर्णों की द्वित्व-स्थिति विकल्प से हुआ करती है। उदाहरण इस प्रकार हैः—नदी-ग्रामः=नइ-ग्गामो अथवा नइ-गामो ॥ कुसुम-प्रकरः=कुसुम-प्पयरो अथवा कुसुम-पयरो ॥ देव-स्तुतिः=देव-त्थुई अथवा देव-थुई ॥ हर-स्कंदौ=हर-क्खन्दा अथवा हर-खन्दा ॥ आलान-स्तम्भः=आणाल-क्खम्भो अथवा आणाल-खम्भो ॥ "बहुलम्" सूत्र के अधिकार से समासगत प्राकृत शब्दों में शेष रूप से अथवा आदेश रूप से नहीं प्राप्त हुए वर्णों को भी अर्थात् शब्द में प्रकृति रूप से रहे हुए वर्णों को भी विकल्प से द्वित्व स्थिति प्राप्त हुआ करती है। तात्पर्य यह है कि समासगत-शब्दों में शेष रूप स्थिति से रहित अथवा आदेश रूपस्थिति से रहित वर्णों को भी द्विर्भाव की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। उदाहरण इस प्रकार हैः—स पिपासः=सप्पिवासो अथवा स-पिवासो ॥ बद्ध-फलः=बद्धप्फलो अथवा बद्ध-फलो ॥ मलय-शिखर-खण्डम्=मलय-सिहर-क्खण्डं अथवा मलय-सिहर-खण्डं ॥ प्रमुक्तम्=पम्मुक्कं अथवा पमुक्कं ॥ अदर्शनम्=अद्दंसणं अथवा अदंसणं ॥ प्रतिकूलम्=पडिकूलं अथवा पडिक्कूलं और त्रैलोक्यम्=तेल्लोक्कं अथवा तेलोक्कं इत्यादि ॥ इन उदाहरणों में द्वि-भाव स्थिति विकल्प से पाई जाती है; यों अन्य उदाहरणों में भी जान लेना चाहिये ॥

नदी-ग्रामः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नइ-ग्गामो और नइ-गामो होते हैं। इन में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति; २-९७ से 'ग' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ग्ग' को प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नइ-ग्गामो* और *नइ-गामो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

कुसुम-प्रकरः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कुसुमप्पयरो और कुसुम-पयरो होते हैं। इनमें

सूत्र संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-६७ से शेष 'प' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *कुसुम-प्पयरो* और *कुसुम-पयरो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाते हैं।

देव-स्तुतिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप देव त्थुई और देव-थुई होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-४५ से 'स्त्' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-६७ से प्राप्त 'थ्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'थ्थ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' को 'त्' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर क्रम से *देवत्थुई* और *देव-थुई* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

हर-स्कंदौ द्विवचनान्त संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हर क्खन्दा और हर-खन्दा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-४ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्क' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-६७ से प्राप्त 'ख' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; ३-१३० से संस्कृत शब्दांत द्विवचन के स्थान पर बहुवचन की प्राप्ति होने से सूत्र संख्या ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से पूर्व में प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य व्यञ्जन 'द' में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर क्रम से *हर-क्खन्दा* और *हर-खन्दा* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

आलान-स्तम्भः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आणाल-क्खम्भो और आणाल-खम्भो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-११७ से 'ल' और 'न' का परस्पर में व्यत्यय अर्थात् उलट-पुलट रूप से पारस्परिक स्थान परिवर्तन; १-२२८ से 'न' का 'ण'; २-८ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त' के स्थान पर 'ख' का आदेश; २-६७ से प्राप्त 'ख' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख' को 'क' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *आणाल-क्खम्भो* और *आणाल-खम्भो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

स-पिपासः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सप्पिवासो और सपिवासो होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-९७ से प्रथम 'प' वर्ण को विकल्प से द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-२३१ से द्वितीय 'प' वर्ण के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रमसे *सप्पिवासो* और *सपिवासो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

बद्ध-फलः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बद्ध-प्फलो और बद्ध-फलो होते हैं। इन में सूत्र

संख्या २-६७ से 'फ' वर्ण को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' को 'प्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *वक्ष-प्फलो* और *वक्ष-फलो* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

मलय-शिखर-खण्डम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मलय सिहर-क्खण्डं और मलय-सिहर-खण्डं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; ४-१८७ से प्रथम 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-९७ से द्वितीय 'ख' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व "ख्ख" की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त द्वित्व में से पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *मलय-सिहर-क्खण्डं* और *मलय-सिहर खण्डं* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रमुक्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप पम्मुक्कं और पमुक्कं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-९७ से 'म्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; २-२ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्त' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *पम्मुक्कं* और *पमुक्कं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

अदर्शनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अद्दंसणं और अदंसणं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-९७ से 'द' वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त द्वित्व 'द्द' अथवा 'द' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' का 'स'; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अद्दंसणं* और *अदंसणं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

प्रतिकूलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप पडिक्कूलं और पडिकूलं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-९७ से 'क' वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पडिक्कूलं* और *पडिकूलं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

त्रैलोक्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप तेल्लोक्कं और तेलोक्कं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या-२-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति; २-९७ से 'ल' वर्ण के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५

से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप तेल्लोक्कं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप तेलोक्कं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१४८ में की गई है ॥२-९७॥

तैलादौ ॥ २-९८ ॥

तैलादिषु अनादौ यथादर्शनमन्त्यस्यानन्त्यस्य च व्यञ्जनस्य द्वित्वं भवति ॥ तेल्लं। मण्डुक्को। वेइल्लं। उज्जू। विड्डा। बहुत्तं ॥ अनन्त्यस्य। सोत्तं। पेम्मं। जुव्वणं ॥ आर्षे। पडिसोओ। विस्सोअसिआ ॥ तैल। मण्डूक। विचकिल। ऋजु। व्रीडा। प्रभूत। स्रोतम्। प्रेमन्। यौवन। इत्यादि ॥

अर्थः—संस्कृत भाषा में तैल आदि अनेक शब्द ऐसे हैं; जिनके प्राकृत रूपान्तर में कभी कभी तो अन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है और कभी कभी अनन्त्य अर्थात् मध्यस्थ व्यञ्जनों में से किसी एक व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है। अन्त्य और अनन्त्य के संबंध में कोई निश्चत नियम नहीं है। अतः जिस व्यञ्जन का द्वित्व देखो; उसका विधान इस सूत्र के अनुसार होता है; ऐसा जान लेना चाहिये। इसमें यह एक निश्चित विधान है कि आदि व्यञ्जन का द्वित्व कभी भी नहीं होता है। इसीलिये वृत्ति में "अनादौ" पद दिया गया है। द्विर्भाव-स्थिति केवल अन्त्य व्यञ्जन की अथवा अनन्त्य याने मध्यस्थ व्यञ्जन की ही होती है। इसके लिये वृत्ति में "यथा-दर्शनम्" "अन्त्यस्य" और "अनन्त्यस्य" पद दिये गये हैं; यह ध्यान में रहना चाहिये। जिन शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व होता है; उन में से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—तैलम्=तेल्लं ॥ मण्डूकः=मण्डुक्को ॥ विचकिलम्=वेइल्लं ॥ ऋजुः=उज्जू ॥ व्रीडा=विड्डा ॥ प्रभूतम्=बहुत्तं ॥ जिन शब्दों के अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व होता है; उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—स्रोतम्=सोत्तं ॥ प्रेमन्=पेम्मं ॥ और यौवनम्=जुव्वणं ॥ इत्यादि ॥ आर्ष-प्राकृत में "प्रतिस्रोतः" का "पडिसोओ" होता है; और "विस्रोतसिका" का "विस्सोअसिआ" रूप होता है। इन उदाहरणों में यह बतलाया गया है कि इन में अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व नहीं हुआ है; जैसा कि ऊपर के कुछ उदाहरणों में द्वित्व हुआ है। अतः यह अन्तर ध्यान में रहे।

तैलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तेल्लं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति; २-९८ से 'ल' व्यञ्जन के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तेल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मण्डूकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मण्डुक्को होता है। इसमें सूत्र संख्या २-९८ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मण्डुक्को* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेइल्लं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१६६ में की गई है।

उज्जू रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३१ में की गई है।

व्रीडा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विड्डा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति और २-९८ से अन्त्य व्यञ्जन 'ड' को द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति होकर *विड्डा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वहुत्तं रूप सूत्र संख्या १-२३३ में की गई है।

स्रोतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सोत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-९८ से अनन्त्य व्यञ्जन 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; १-११ से विसर्ग रूप अन्त्य व्यञ्जन का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रेमन् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पेम्मं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-९८ से अन्त्य व्यञ्जन 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पेम्मं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जुव्वणं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५९ में की गई है।

प्रतिस्रोतः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पडिसोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से दोनों 'र्' का लोप; १-२०६ से प्रथम 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पडिसोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विस्रोतसिका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विस्सोअसिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष प्रथम 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप होकर *विस्सोअसिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।।२-९८।।

सेवादौ वा ॥ २-९९ ॥

सेवादिषु अनादौ यथादर्शनमन्त्यस्यानन्त्यस्य च द्वित्वं वा भवति ॥ सेव्वा सेवा ॥ नेड्डं नीडं। नक्खा नहा। निहित्तो निहिओ। वाहित्तो वाहिओ। माउक्कं माउअं। एक्को एओ। कोउहल्लं कोउहलं। वाउल्लो वाउलो। थुल्लो थोरो। हुत्तं हूअं। दइव्वं दइवं। तुण्हिक्को तुण्हिओ। मुक्को मूओ। खण्णु खाणू। थिण्णं थीणं॥ अनन्त्यस्य। अम्हक्केरं अम्हकेरं।

तं च्चेअ तं चेअ । सो च्चिअ सो चिअ ॥ सेवा । नीड । नख । निहित । व्याहृत । मृदुक । एक । कुतूहल । व्याकुल । स्थूल । हूत । दैव । तूष्णीक । मूक । स्थाणु । स्त्यान । अस्मदीय चेअ । चिअ । इत्यादि ॥

अर्थः—संस्कृत-भाषा में सेवा आदि अनेक शब्द ऐसे हैं; जिनके प्राकृत रूपान्तर में कभी कभी तो अन्त्य व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व हो जाता है और कभी कभी अनन्त्य अर्थात् मध्यस्थ व्यञ्जनों में से किसी एक व्यञ्जन का द्वित्व हो जाता है । अन्त्य अथवा अनन्त्य व्यञ्जन के वैकल्पिक रूप से द्वित्व होने में कोई निश्चित नियम नहीं है अतः जिस व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व देखो; उसका विधान इस सूत्र के अनुसार होता है; ऐसा जान लेना चाहिये । इसमें यह एक निश्चित विधान है कि आदि व्यञ्जन का द्वित्व कभी भी नहीं होता है । इसीलिये वृत्ति में "अनादौ" पद दिया गया है । वैकल्पिक रूप से द्विर्भाव-स्थिति केवल अन्त्य व्यञ्जन को अथवा अनन्त्य याने मध्यस्थ व्यञ्जन की ही होती है । इसके लिये वृत्ति में "यथा-दर्शनम्", "अन्त्यस्य" और "अनन्त्यस्य" के साथ साथ "वा" पद भी संयोजित कर दिया गया है । ऐसी यह विशेषता ध्यान में रहनी चाहिये जिन शब्दों के अन्त्य व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व होता है; उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैः—सेवा=सेव्वा अथवा सेवा ॥ नीडम्=नेड्डं अथवा नीडं ॥ नखाः=नक्खा अथवा नहा ॥ निहितः=निहित्तो अथवा निहिओ ॥ व्याहृतः=वाहित्तो अथवा वाहिओ ॥ मृदुकम्=माउक्कं अथवा माउअं ॥ एकः=एक्को अथवा एओ ॥ कुतूहलम्=कोउहल्लं अथवा कोउहलं ॥ व्याकुलः=वाउल्लो अथवा वाउलो ॥ स्थूलः=थुल्लो अथवा थोरो । हूतम्=हुत्तं अथवा हूअं दैवं=दइव्वं अथवा दइवं ॥ तूष्णीकः=तुण्हिक्को अथवा तुण्हिओ ॥ मूकः=मुक्को अथवा मूओ ॥ स्थाणुः=खण्णू अथवा थाणू और स्त्यानम्=थिण्णं अथवा थीणं ॥ इत्यादि ॥ जिन शब्दों के अनन्त्य व्यञ्जन का वैकल्पिक रूप से द्वित्व होता है; उन में से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैः—अस्मदीयम्=अम्हक्केरं अथवा अम्हकेरं ॥ तत् एव=तं च्चेअ अथवा तं चेअ ॥ स एव=सो च्चिअ अथवा सो चिअ । इत्यादि ॥ सूत्र संख्या २-९८ और २-९९ में इतना अन्तर है कि पूर्व सूत्र में शब्दों के अन्त्य अथवा अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व नित्य होता है; जबकि उत्तर सूत्र में शब्दों के अन्त्य अथवा अनन्त्य व्यञ्जन का द्वित्व वैकल्पिक रूप से ही होता है । इसीलिये 'तैलादौ' सूत्र से 'सेवादौ वा' सूत्र में 'वा' अव्यय अधिक जोड़ा गया है । इस प्रकार यह अन्तर और ऐसी विशेषता दोनों ही ध्यान में रहना चाहिये ।

सेवा संस्कृत रूप है । इस के प्राकृत रूप सेव्वा और सेवा होते हैं । इन में सूत्र-संख्या २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'व' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व की प्राप्ति होकर क्रम से सेव्वा और सेवा दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

नीडम् संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप नेड्डं और नीडं होते हैं । इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१०६ से 'ई' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-९९ से 'ड' व्यञ्जन को वैकल्पिक रूप से द्वित्व

'डु' की प्राप्ति;३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप नेड्डुम् सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप नीडं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०६ में की गई है।

नक्खा और नहा दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६० में की गई है।

निहितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप निहित्तो और निहिओ होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या-२-६६ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर द्वित्व 'त्त' की वैकल्पिक रूप से प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *निहित्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (निहितः =) निहिओ में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *निहिओ* भी सिद्ध हो जाता है।

व्याहृतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप वाहित्तो और वाहिओ होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-६६ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व त्त की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *वाहित्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(व्याहृतः =) *वाहिओ* की साधनिका में प्रथम रूप के समान ही सूत्रों का व्यवहार होता है। अन्तर इतना सा है कि सूत्र-संख्या २-६६ के स्थान पर सूत्र संख्या १-१७७ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' का लोप हो जाता है। शेष क्रिया प्रथम रूप वत् ही जानना॥

मृदुकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इस के प्राकृत रूप माउक्कं और माउअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *माउक्कं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२७ में की गई है।

द्वितीय रूप-(मृदुकम् =) माउअं में सूत्र-संख्या १-१२७ से 'ऋ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' और 'क्' दोनों व्यञ्जनों का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार हो कर द्वितीय रूप *माउअं* भी सिद्ध हो जाता है।

एकः संस्कृत संख्या वाचक विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप एक्को और एओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-६६ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप एवं दोनों ही रूपों में ३-२ से प्रथमा विभक्ति

के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से एक्को और एओ दोनों रूप की सिद्धि हो जाती है।

कुतूहलम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप कोउहल्लं और कोउहलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप कोउहल्लं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११७ में की गई है।

द्वितीय रूप-(कुतूहलम् =) कोउहलं में सूत्र-संख्या-१-११६ से प्रथम ह्रस्व स्वर 'उ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-११७ से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक-लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप कोउहलं भी सिद्ध हो जाता है।

व्याकुलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप वाउल्लो और वाउलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *वाउल्लो* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२१ में की गई है।

द्वितीय रूप-(व्याकुलः=) वाउलो में सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *वाउलो* भी सिद्ध हो जाता है।

स्थूलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप थुल्लो और थोरो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'ल' की वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *थुल्लो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(स्थूलः =) थोरो में सूत्र संख्या २-७७ से 'स्' का लोप; १-१२४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; १-२५५ से 'ल' के स्थान पर 'र' रूप आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *थोरो* भी सिद्ध हो जाता है।

हूतम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप हुत्तं और हूअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप एवं दोनों ही रूपों में सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से हुत्तं और हूअं दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दहव्वं और *दइयं* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-१५३ में की गई है।

तूष्णीकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप *तुण्हिक्को* और *तुण्हिओ* होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७५ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' रूप आदेश की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' को प्राप्ति; २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप एवं दोनों ही रूपों में ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *तुण्हिक्को* और *तुण्हिओ* दोनों ही रूप सिद्ध हो जाते हैं।

मूकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मुक्को और मूओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' को प्राप्ति; २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन 'क' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और द्वितीय रूप में सूत्र संख्या १-१७७ से 'क' का लोप एवं दोनों ही रूपों में ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *मुक्को* और *मूओ* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

स्थाणुः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप खण्णू और खाणू होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७ से संयुक्त व्यञ्जन "स्थ" के स्थान पर 'ख' रूप आदेश की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ "आ" के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-९९ से अन्त्य व्यञ्जन ण' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व "ण्ण" को प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिंग में "सि" प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *खण्णू* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *खाणू* की सिद्धि सूत्र संख्या २-७ में को गई है।

थिण्णं और *थीणं* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-७४ में की गई है।

अस्मदीयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप अम्हक्केरं और अम्हकेरं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७४ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' रूप आदेश की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-१४७ से संस्कृत 'इदमर्थक' प्रत्यय 'इय' के स्थान पर प्राकृत में 'केर' प्रत्यय की प्राप्ति; २-९९ से अनन्त्य व्यञ्जन 'क' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *अम्हक्केरं* और *अम्हकेरं* दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तं च्चेअ और *तं चेअ* रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

सो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९७ में की गई है। *च्चिअ* रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है।

एव संस्कृत अव्यय है। इसके स्थान पर चिअ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१८४ से 'एव' के स्थान पर आदेश रूप से चिअ की प्राप्ति होकर *चिअ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-९९ ॥

शार्ङ्गे ङात्पूर्वोऽत् ॥ २-१०० ॥

शार्ङ्गे ङात् पूर्वो अकारो भवति ॥ सारङ्गम् ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'शार्ङ्ग' के प्राकृत-रूपान्तर में 'ङ्' वर्ण के पूर्व में (अर्थात् हलन्त 'र्' व्यञ्जन में) 'अ' रूप आगम की प्राप्ति होती है। जैसेः—शार्ङ्गम्=सारङ्गं ॥

शार्ङ्गम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सारङ्गं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' का 'स'; २-१०० से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सारंगम्* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१०० ॥

क्ष्मा-श्लाघा-रत्नेऽन्त्यव्यञ्जनात् ॥ २-१०१ ॥

एषु संयुक्तस्य यदन्त्यव्यञ्जनं तस्मात् पूर्वोद् भवति ॥ छमा । सलाहा । रयणं ॥ आर्षे सूक्ष्मेऽपि ॥ सुहमं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'क्ष्मा, श्लाघा और रत्न' के प्राकृत रूपान्तर में इन शब्दों में स्थित संयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य व्यंजन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है। जैसेः—क्ष्मा=छमा; श्लाघा=सलाहा और रत्नम्=रयणं ॥ आर्ष-प्राकृत में 'सूक्ष्म' शब्द के रूप में भी संयुक्त व्यक्त व्यञ्जन 'क्ष्म' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्ष' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है। जैसेः—सूक्ष्मम्=सुहमं ॥

छमा रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१८ में की गई है।

श्लाघा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सलाहा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०१ से हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से प्राप्त 'श' का 'स'; और १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति होकर *सलाहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

रत्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप रयणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०१ से हलन्त 'त्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से शेष रहे हुए एवं आगम रूप से प्राप्त हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूक्ष्मम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप सुहमं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-१०१ की वृत्ति से हलन्त व्यञ्जन 'ष्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति और आर्ष-रूप होने से (सूत्राभावात्) प्राप्त 'ष' के स्थान पर 'ह' रूप आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर आर्ष-प्राकृत रूप सुहमं सिद्ध हो जाता है। ॥२-१०१॥

स्नेहाग्न्योर्वा ॥ २-१०२ ॥

अनयोः संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्वोकारो वा भवति ॥ सणेहो । नेहो । अगणी । अग्गी ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्नेह' और 'अग्नि' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य (में स्थित) व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन में प्राकृत-रूपान्तर में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति विकल्प से हुआ करती है। जैसे:—स्नेहः = सणेहो अथवा नेहो और अग्निः = अगणी अथवा अग्गी ॥

स्नेहः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सणेहो और नेहो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या—२-१०२ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सणेहो रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप नेहो की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७७ में की गई है।

अग्निः संस्कृत रूप है। इस के प्राकृत रूप अगणी और अग्गी होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०२ से हलन्त व्यञ्जन 'ग्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान 'ण' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *अगणी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (अग्निः =) अग्गी में सूत्र-संख्या २-७८ से 'न' का लोप; २-८९ से शेष 'ग' को द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *अग्गी* भी सिद्ध हो जाता है। २-१०२ ॥

प्लक्षे लात् ॥२-१०३॥

प्लक्ष शब्दे संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनाल्लात् पूर्वोद् भवति ॥ पलक्खो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'प्लक्ष' में सभी व्यञ्जन संयुक्त स्थिति वाले हैं। अतः यह स्पष्टीकरण कर दिया गया है कि प्रथम संयुक्त व्यञ्जन 'प्ल' में स्थित 'ल' व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति प्राकृत-रूपान्तर में होती है। जैसे-प्लक्षः=पलक्खो ॥

प्लक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पलक्खो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०३ से हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पलक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१०३ ॥

र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न-क्रिया-दिष्ट्यास्वित् ॥ २-१०४ ॥

एषु संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्व इकारो भवति ॥ र्ह ॥ अरिहइ । अरिहा । गरिहा । बरिहो ॥ श्री । सिरी । ह्री । हिरी ॥ ह्रीतः । हिरीओ ॥ अह्रीकः । अहिरीओ ॥ कृत्स्नः । कसिणो ॥ क्रिया । किरिआ ॥ आर्षे तु । हयं नाणं किया-हीणं ॥ दिष्ट्या । दिट्ठिआ ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में 'र्ह' रहा हुआ है; ऐसे शब्दों में तथा 'श्री, ह्री, कृत्स्न, क्रिया, और दिष्ट्या 'शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जनों के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे—'र्ह' से संबंधित शब्दों के उदाहरण:—अर्हति=अरिहइ ॥ अर्हाः=अरिहा ॥ गर्हा=गरिहा । बर्हः=बरिहो ॥ इत्यादि ॥ श्री=सिरी ॥ ह्री=हिरी ॥ ह्रीतः=हिरीओ ॥ अह्रीकः=अहिरीओ ॥ कृत्स्नः=कसिणो ॥ क्रिया=किरिआ ॥ आर्ष-प्राकृत में क्रिया का रूप 'किया' भी देखा जाता है। जैसे:—हतम् ज्ञानम् क्रिया-हीनम् = हयं नाणं किया-हीणं ॥ दिष्ट्या = दिट्ठिआ ॥ इत्यादि ॥

अर्हति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप अरिहइ होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *अरिहइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अर्हाः संस्कृत विशेषण रूप है। इस का प्राकृत रूप अरिहा होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारांत पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त और लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति हो कर *अरिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्हा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गरिहा होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्हा' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति हो कर *गरिहा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बर्हः संस्कृत रूप है। इस का प्राकृत रूप बरिहो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ह' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *बरिहो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्री संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिरी होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन श्री में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' का 'स्' होकर *सिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ह्रीः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हिरी होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्री' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'ह्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और ३-२८ से दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति; तदनुसार वैकल्पिक पक्ष होकर प्राप्त 'आ' प्रत्यय का अभाव होकर *हिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

ह्रीतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हिरीओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह्री' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'ह्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हिरीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अह्रीकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अहिरीओ होता है। इसकी साधनिका में 'हिरीओ' उपरोक्त रूप में प्रयुक्त सूत्र ही लगकर *अहिरीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कसिणो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७५ में की गई है।

क्रिया संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किरिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०४ से संयुक्त व्यञ्जन 'क्रि' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'य' का लोप होकर *किरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

हयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२०९ में की गई है।

ज्ञानम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; प्राकृत व्याकरण में व्यत्यय का नियम साधारणतः है; अतः तदनुसार प्राप्त 'ण' का और शेष 'न' का परस्पर में व्यत्यय; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

किया-हीणम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप किया-हीणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२२८ से 'न' का 'ण'; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किया-हीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिष्ट्या संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप दिट्ठिआ होता है इस में सूत्र-संख्या-२-१३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' को 'ट्' की प्राप्ति; २-१०४ से प्राप्त 'ट्ठ' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *दिट्ठिआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१०४ ॥

र्श-र्ष-तप्त-वज्रे वा ॥ २-१०५ ॥

र्शर्षयोस्तप्तवज्रयोश्च संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्व इकारो वा भवति ॥ र्श । आयरिसो आयंसो । सुदरिसणो सुदंसणो । दरिसणं दंसणं ॥ र्ष । वरिसं वासं । वरिसा वासा । वरिस-सयं वास-सयं ॥ व्यवस्थित-विभाषया क्वचिन्नित्यम् । परामरिसो । हरिसो । अमरिसो ॥ तप्त । तविओ तत्तो ॥ वज्रम् = वइरं वज्जं ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में 'र्श' और 'र्ष' हो; ऐसे शब्दों में इन 'र्श' और 'र्ष' संयुक्त व्यञ्जनों में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से 'तप्त' और 'वज्र' में स्थित संयुक्त व्यञ्जन के अन्त्य व्यञ्जन के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'प्' अथवा 'ज्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। 'र्श' के उदाहरण; जैसे:— आदर्शः= आयरिसो अथवा आयंसो ॥ सुदर्शनः=सुदरिसणो अथवा सुदंसणो ॥ दर्शनम्=दरिसणं अथवा दंसणं ॥ 'र्ष' के उदाहरण; जैसे:—वर्षम्=वरिसं अथवा वासं ॥ वर्षा=वरिसा अथवा वासा ॥ वर्ष-शतम्= वरिस-सयं अथवा वास-सयं ॥ इत्यादि ॥ व्यवस्थित-विभाषा से अर्थात् नियमानुसार किसी किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन 'र्ष' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति नित्य रूप से भी होती है। जैसे:—परामर्षः=परामरिसो ॥ हर्षः=हरिसो और अमर्षः=अमरिसो ॥ सूत्रस्थ शेष उदाहरण इस प्रकार है:—तप्तः=तविओ अथवा तत्तो ॥ वज्रम्=वइरं अथवा वज्जं ॥

आदर्शः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप आयरिसो और आयंसो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'द्' में शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; २-१०५ से हलन्त 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आयरिसो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप—(आदर्शः =) आयंसो में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से लोप हुए द्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२६ से प्राप्त 'य' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति और ३-२ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *आयंसो* भी सिद्ध हो जाता है।

सुदर्शनः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुदरिसणो और सुदंसणो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सुदरिसणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(सुदर्शनः =) सुदंसणो में सूत्र-संख्या १-२६ से 'द' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *सुदंसणो* भी सिद्ध हो जाता है।

दर्शनम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप दरिसणं और दंसणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' को 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *दरिसणं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दर्शनम् =) दंसणं में सूत्र-संख्या १-२६ से 'द' व्यञ्जन पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *दंसणं* की भी सिद्धि हो जाती है।

वर्षम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वरिसं और वासं होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वरिसं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-[वर्षम् =] वासं में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'व' में स्थित 'अ' स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *वासं* भी सिद्ध हो जाता है।

वर्षा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वरिसा और वासा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति होकर *वरिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

वासा रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४३ में की गई है।

वर्ष-शतम् = संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वरिस-सयं और वास-सयं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२६० से द्वितीय 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति: १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वरिस-सयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(वर्ष-शतम् =) वास-सयं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-४३ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *वास-सयं* भी सिद्ध हो जाता है।

परामर्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप परामरिसो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०५ से द्वितीय हलन्त 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *परामरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हर्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हरिसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से ष के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *हरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अमर्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अमरिसो होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *अमरिसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप तविओ और तत्तो होते हैं। इन में से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२३१ से प्राप्त 'पि' में स्थित 'प्' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा-विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *तविओ* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप- (तप्तः=) तत्तो में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'प्' का लोप; २-८९ से शेष द्वितीय 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ प्रत्यय की प्राप्ति हो कर द्वितीय रूप *तत्तो* भी सिद्ध हो जाता है।

वज्रम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वइरं और वज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०५ से हलन्त व्यञ्जन 'ज्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'जि' में स्थित 'ज्' व्यञ्जन का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *वइरं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *वज्जं* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है। ॥२-१०५॥

लात् ॥ २-१०६ ॥

संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनाल्लात्पूर्व इद् भवति ॥ किलिन्नं। किलिट्ठं। सिलिट्ठं। पिलुट्ठं पिलोसो। सिलिम्हो। सिलेसो। सुक्किलं। सुइलं। सिलोओ। किलेसो। अम्बिलं। गिलाइ। गिलाणं। मिलाइ। मिलाणं। किलम्मइ। किलन्तं ॥ क्वचिन्न भवति॥ कमो। पवो। विप्पवो। सुक्क-पक्खो॥ उत्प्लावयति। उप्पावेइ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में ऐसा संयुक्त व्यञ्जन रहा हुआ हो; जिसमें 'ल' वर्ण अवश्य ही हो तो ऐसे उस 'ल' वर्ण सहित संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति प्राकृत रूपान्तर में होती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—क्लिन्नम्=किलिन्नं॥ क्लिष्टम्=किलिट्ठं। श्लिष्टम्=सिलिट्ठं। प्लुष्टम्=पिलुट्ठं। प्लोषः=पिलोसो। श्लेष्मा=सिलिम्हो॥ श्लेषः=सिलेसो॥ शुक्लम्=सुक्किलं॥ शुक्लम्=सुइलं॥ श्लोकः=सिलोओ। क्लेशः=किलेसो॥ आम्लम्=अम्बिलं॥ ग्लायति=गिलाइ॥ ग्लानम्=गिलाणं॥ म्लायति=मिलाइ॥ म्लानम्=मिलाणं॥ क्लाम्यति=किलम्मइ॥ क्लान्तम्=किलन्तं॥ किसी-किसी शब्द में संयुक्त व्यञ्जन वाले 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसे:—क्लमः=कमो॥ प्लवः=पवो॥ विप्लवः=विप्पवो॥ शुक्ल-पक्षः=सुक्क-पक्खो॥ और उत्प्लावयति=उप्पावेइ॥ इत्यादि॥ इन उदाहरणों में 'ल' का लोप हो गया है; परन्तु 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति नहीं हुई है। यों सर्व-स्थिति को ध्यान रखना चाहिये॥

क्लिन्नम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप किलिन्नं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त- नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार हो कर *किलिन्नं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लिष्टम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप किलिट्ठं होता है। इस में सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्तव्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-३४ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति ३—२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किलिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्लिष्टम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सिलिट्ठं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; और शेष साधनिका उपरोक्त 'किलिट्ठं' के समान ही प्राप्त होकर *सिलिट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्लुष्टम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पिलुट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और शेष साधनिका उपरोक्त 'किलिट्ठं' के समान ही प्राप्त होकर *पिलुट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्लोषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पिलोसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर स की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति हो कर *पिलोसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सिलिम्हो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५५ में की गई है।

श्लेषः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रुप सिलेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-२६० से द्वितीय 'ष' के स्थान पर भी 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिलेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुक्लम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप सुक्किलं और सुइलं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २ १०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित

हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'कि' में स्थित 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *सुक्किलं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(शुक्लम् =) सुइलं में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'कि' में स्थित व्यञ्जन 'क्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सुइलं* भी सिद्ध हो जाता है।

श्लोकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिलोओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिलोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लेशः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप किलेसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किलेसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आम्लम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अम्बिलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५६ (?) हलन्त 'म्' में हलन्त 'ब्' रूप आगम की प्राप्ति; २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित एवं आगम रूप से प्राप्त 'ब्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अम्बिलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्लायति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप गिलाइ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ग्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; १-१० से लोप हुए 'य्' में शेष रहे हुए स्वर 'अ' का लोप; ३-१३९ से वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गिलाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ग्लानम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गिलाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ग्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान

'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिलाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

म्लायति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मिलाइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'म्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; १-१० से लोप हुए 'य्' में से शेष रहे हुए स्वर 'अ' का लोप; ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मिलाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

म्लानम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मिलाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'म्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मिलाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लाम्यति संस्कृत क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप किलम्मइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल्' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-८४ से 'ला' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से शेष 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *किलम्मइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लान्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप किलन्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०६ से 'ल' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'क' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-८४ से 'ला' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *किलन्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लमः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कमो* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्लवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पवो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विप्लवः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विप्पवो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में

अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिप्पवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुक्ल-पक्षः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुक्क-पक्खो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-७९ से 'ल्' का लोप; २-८९ से शेष 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुक्क-पक्खो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उत्प्लावयति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप उप्पावेइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७७ से 'त्' का लोप; २-७९ से 'ल' का लोप; २-८९ से शेष 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-१४९ से प्रेरणार्थक क्रियापद के रूप में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'वय' के स्थान पर 'वे' का सद्भाव; और ३-१३९ से वर्तमान काल के प्रथम पुरुष के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उप्पावेइ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१०६ ॥

स्याद्-भव्य-चैत्य-चौर्यसमेषु यात् ॥ २-१०७ ॥

स्यादादिषु चौर्य-शब्देन समेषु च संयुक्तस्यात् पूर्व इद् भवति ॥ सिआ । सिआ-वाओ । भविओ । चेइअं ॥ चौर्यसम । चोरिअं । थेरिअं । भारिआ । गम्भीरिअं । गहीरिअं । आयरिओ । सुन्दरिअं । सोरिअं । वीरिअं । वरिअं । सूरिओ । धीरिअं । बम्हचरिअं ॥

अर्थः—स्यात्, भव्य एवं चैत्य शब्दों में और चौर्य के सामान अन्य शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति प्राकृत रूपान्तर में होती है। जैसेः—स्यात् = सिआ ॥ स्याद्वादः=सिआ-वाओ ॥ भव्यः = भविओ। चैत्यम् = चेइअं ॥ 'चौर्य' शब्द के सामान स्थिति वाले शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—चौर्यम् = चोरिअं। स्थैर्यम् = थेरिअं। भार्या = भारिआ। गाम्भीर्यम् = गम्भीरिअं। गाम्भीर्यम् = गहीरिअं। आचार्यः = आयरिओ। सौन्दर्यम् = सुन्दरिअं। शौर्यम् = सोरिअं। वीर्यम् = वीरिअं। वर्यम् = वरिअं। सूर्यः = सूरिओ। धैर्यम् = धीरिअं और ब्रह्मचर्यम् = बम्हचरिअं ॥

स्यात् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *सिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्याद्वादः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सिआ-वाओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-१०७

से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-७७ से प्रथम हलन्त 'द्' का लोप; १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिआ-वाओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भव्यः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भविओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'व्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भविओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

चेइअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५१ में की गई है।

चोरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३५ में की गई है।

स्थैर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप थेरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त 'स्' का लोप; १-१४८ से दीर्घ स्वर 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *थेरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भारिआ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२४ में की गई है।

गाम्भीर्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप गम्भीरिअं और गहीरिअं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *गम्भीरिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(गाम्भीर्यम्=) गहीरिअं में सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से हलन्त व्यञ्जन 'म' का लोप; १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य' का लोप; ३-२५ प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *गहीरिअं* भी सिद्ध हो जाता है।

आयरिओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७३ में की गई है।

सुन्दरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१६० में की गई है।

शौर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सोरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१५९ से 'औ' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सोरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वीर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वीरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर वीरिअं रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूर्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सूरिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सूरिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

धैर्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धीरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१५५ से 'ऐ' के स्थान 'ई' की प्राप्ति; २-१०७ से संयुक्त व्यञ्जन 'य' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर धीरिअं रूप सिद्ध हो जाता है।

बम्हचरिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६३ में की गई है ॥२-१०७॥

स्वप्ने नात् ॥२-१०८॥

स्वप्नशब्दे नकारात् पूर्व इद् भवति ॥ सिविणो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्वप्न' के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'प्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे:-स्वप्नः = सिविणो ॥

स्निग्धे वादितौ ॥२-१०६॥

स्निग्धे संयुक्तस्य नात् पूर्वौ अदितौ वा भवतः ॥ सणिद्धं सिणिद्धं । पक्षे निद्धं ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द 'स्निग्ध के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से कभी आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है अथवा कभी आगम रूप 'इ' की प्राप्ति भी वैकल्पिक रूप से होती है। जैसे:-स्निग्धम्=सणिद्धं अथवा सिणिद्धं; अथवा पक्षान्तर में निद्धं रूप भी होता है।

स्निग्धम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सणिद्धं, सिणिद्धं और निद्धं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१०६ से संयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७७ से 'ग्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *सणिद्धं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(स्निग्धम्=) सिणिद्धं में सूत्र संख्या २-१०६ से संयुक्त व्यञ्जन 'न' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप *सिणिद्धं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(स्निग्धम्=) निद्धं में सूत्र-संख्या ४-७७ से हलन्त 'स्' का लोप और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप निद्धं भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१०६॥

कृष्णे वर्णे वा ॥ २-११० ॥

कृष्णे वर्णे वाचिनि संयुक्तास्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्वौ अदितौ वा भवतः ॥ कसणो कसिणो कण्हो ॥ वर्ण इति किम् ॥ विष्णौ कण्हो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'कृष्ण' का अर्थ जब 'काला' वर्ण वाचक हो तो उस अवस्था में इसके प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'ण' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ष' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है अथवा कभी वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। जैसे:—कृष्णः =(काला वर्णीय)=कसणो अथवा कसिणो ॥ कभी कभी कण्हो भी होता है।

प्रश्नः—मूल सूत्र में 'वर्ण'-(रंग वाचक)-ऐसा शब्द क्यों दिया गया है?

उत्तरः—संस्कृत साहित्य में 'कृष्ण' शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक तो 'काला-रंग'-वाचक अर्थ होता है और दूसरा भगवान् कृष्ण-वासुदेव वाचक अर्थ होता है। इसलिये संस्कृत मूल शब्द 'कृष्ण' में

'ण' व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ष' में आगम रूप 'अ' की अथवा 'इ' की प्राप्ति केवल वर्ण-वाचक-स्थिति में ही होती है; द्वितीय अर्थ-वाचक स्थिति में नहीं। ऐसा विशेष अर्थ बतलाने के लिये ही मूल-सूत्र में 'वर्ण' शब्द जोड़ा गया है। उदाहरण इस प्रकार है:-कृष्णः=(विष्णु-वाचक)=कण्हो होता है। कसणो भी नहीं होता है और कसिणो भी नहीं होता है। यह अन्तर ध्यान में रखने योग्य है।

कसणो, कसिणो और कण्हो; इन तीनों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-७५ में की गई है ॥२-११०॥

उच्चार्हति ॥ २-१११ ॥

अर्हत् शब्दे संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्वौ उत् अदितौ च भवतः ॥ अरुहो अरहो अरिहो। अरुहन्तो अरहन्तो अरिहन्तो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'अर्हत्' के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'ह' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में कभी आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है; कभी आगम रूप 'अ' की प्राप्ति होती है; तो कभी आगम रूप 'इ' की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'अर्हत्' के प्राकृत में तीन रूप हो जाते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं:—अर्हन् = अरुहो, अरहो और अरिहो ॥ दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—अर्हन्तः = अरुहन्तो, अरहन्तो और अरिहन्तो ॥

अर्हन् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अरुहो, अरहो और अरिहो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१११ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र' में क्रम से पक्षान्तर रूप से आगम रूप 'उ'; 'अ' और 'इ' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'न्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *अरुहो; अरहो* और *अरिहो* ये तीनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अर्हन्तः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप अरुहन्तो, अरहन्तो और अरिहन्तो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१११ से संयुक्त व्यञ्जन 'ह' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में क्रम से पक्षान्तर रूप से आगम रूप 'उ'; 'अ' और 'इ' की प्राप्ति; और १-३७ से अन्त्य विसर्ग के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर क्रम से *अरुहन्तो, अरहन्तो* और *अरिहन्तो*; ये तीनों रूप सिद्ध हो जाते हैं ॥२-१११॥

पद्म-छद्म-मूर्ख-द्वारे वा ॥२-११२॥

एषु संयुक्तस्यान्त्यव्यञ्जनात् पूर्व उद् वा भवति ॥ पउमं पोम्मं ॥ छउमं छम्मं। मुरुक्खो मुक्खो। दुवारं। पक्षे। वारं। देरं। दारं ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द पद्म, छद्म, मूर्ख और द्वार में प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'म' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' में, संयुक्त 'ख' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में और संयुक्त

व्यञ्जन 'द्वा' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है:—पद्मम् = पउमं अथवा पोम्मं ॥ छद्मन् = छउमं अथवा छम्मं ॥ मूर्खः = मुरुक्खो अथवा मुक्खो ॥ द्वारम् = दुवारं और पक्षान्तर में द्वारम् के बारं, देरं और दारं रूप भी होते हैं।

पउमं और पोम्मं दोनों रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १–६१ में की गई है।

छद्मम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप छउमं और छम्मं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-११२ से संयुक्त व्यञ्जन 'द्म' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'द्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' की प्राप्ति १-१७७ से प्राप्त 'दु' में से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *छउमं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(छद्मम् =) छम्मं में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त 'द्' का लोप; २-८९ से शेष 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप छम्मं भी सिद्ध हो जाता है।

मूर्खः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मुरुक्खो और मुक्खो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-११२ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ख' में स्थित पूर्व हलन्त व्यञ्जन 'र्' में वैकल्पिक रूप से आगम रूप 'उ' की प्राप्ति; २-८९ से शेष 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *मुरुक्खो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मुक्खो* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-८९ में की गई है।

दुवारं, बारं, देरं और दारं इन चारों रूपों की सिद्धि सूत्र संख्या १-७९ में की गई है ॥२-११२॥

तन्वीतुल्येषु ॥२-११३॥

उकारान्ता ङीप्रत्ययान्तास्तन्वी तुल्याः। तेषु संयुक्तस्यान्त्य व्यञ्जनात् पूर्व उकारो भवति ॥ तणुवी । लहुवी । गरुवी । बहुवी । पुहुवी । मउवी ॥ क्वचिदन्यत्रापि । स्रुघ्नम् । सुरुग्घं ॥ आर्षे । सूक्ष्मम् । सुहुमं ॥

अर्थः-उकारान्त और 'ङी' अर्थात् 'ई' प्रत्ययान्त तन्वी = (तनु + ई = तन्वी) इत्यादि ऐसे शब्दों में रहे हुए संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है:—

तन्वी = (तनु + ई =) तणुवी। लघ्वी = (लघु + ई =) लहुवी। गुर्वी = (गुरु + ई =) गरुवी। बह्वी = (बहु + ई =) बहुवी। पृथ्वी = (पृथु + ई =) पुहुवी। मृद्वी = (मृदु + ई =) मउवी॥ इत्यादि।

कुछ संस्कृत शब्द ऐसे भी हैं; जिनमें 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होने पर भी उनके प्राकृत रूपान्तर में उनमें स्थित संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। जैसे:-स्रुघ्नम् = सुरुग्घं॥ ऐसे उदाहरण 'तन्वी' आदि शब्दों से भिन्न-स्थिति वाले हैं। क्यों कि इनमें 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होने पर भी आगम रूप 'उ' को प्राप्ति संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में होती हुई देखी जाती है। आर्ष-प्राकृत-रूपों में भी संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती हुई देखी जाती है। जैसे-सूक्ष्मम् = (आर्ष-रूप) सुहुमं॥

तन्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तणुवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११३ से संयुक्त व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'न' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति और १-२२८ से प्राप्त 'नु' में स्थित 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर *तणुवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

लघ्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप लहुवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११३ से संयुक्त व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'घ्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति और १-१८७ से प्राप्त 'घु' में स्थित 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति होकर *लहुवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

गुर्वी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गरुवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११३ से संयुक्त व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'र्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति; और १-१०७ से 'गु' में स्थित 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर *गरुवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

बह्वी संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप बहुवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११३ से संयुक्त व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ह्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होकर *बहुवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुहुवी रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३१ में की गई है।

मृद्वी संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मउवी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-११३ से संयुक्त व्यञ्जन 'वी' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'द्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति; और १-१७७ से प्राप्त 'दु' में से 'द्' व्यञ्जन का लोप होकर *मउवी* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्रुघ्नम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुरुग्घं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११३ की वृत्ति से संयुक्त व्यञ्जन "स्र्" में स्थित हलन्त पूर्व व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति; २-७८ से 'न' का लोप; २-८९ से शेष 'घ' को द्वित्व 'घघ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'घ्' के स्थान पर 'ग्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुरुग्घं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुहुमं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११८ में की गई है ॥२-११३॥

॥ एक स्वरे श्वः-स्वे ॥२-११४॥

एक स्वरे पदे यौ श्वस् स्व इत्येतौ तयोरन्त्य व्यञ्जनात् पूर्व उद् भवति ॥ श्वः कृतम् । सुवे कयं ॥ स्वे जनाः ॥ सुवे जणा ॥ एक स्वर इति किम् । स्व-जनः । स-यणो ॥

अर्थः—जब 'श्वस्' और 'स्व' शब्द एक स्वर वाले ही हों; अर्थात् इन दोनों में से कोई भी समास रूप में अथवा अन्य किसी रूप में स्थित न हों; और इनकी स्थिति एक स्वर वाली ही हो तो इनमें स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'व' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श' अथवा 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार हैं:—श्वः कृतम्=सुवे कयं ॥ स्वे जनाः=सुवे जणा ॥

प्रश्नः-'एक स्वर वाला' ही हो; तभी इनमें आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होती है; ऐसा क्यों कहा गया है ?

उत्तरः—यदि श्वः और स्व शब्द में समास आदि में रहने के कारण से एक से अधिक स्वरों की उपस्थिति होगी तो इनमें स्थित संयुक्त व्यञ्जन 'व' के पूर्व में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'श्' अथवा 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे:-स्व-जनः=स-यणो ॥ इस उदाहरण में 'स्व' शब्द 'जन' के साथ संयुक्त होकर एक पद रूप बन गया है; और इससे इसमें तीन स्वरों की प्राप्ति जैसी स्थिति बन गई है; अतः 'स्व' में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति का भी अभाव हो गया है। यों अन्यत्र भी जान लेना एवं एक स्वर से प्राप्त होने वाली स्थिति का भी ध्यान रख लेना चाहिये।

श्वः (=श्वस्) संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सुवे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११४ से संयुक्त व्यञ्जन 'व' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'श्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति; १-२६० से प्राप्त 'शु' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-५७ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप होकर सुवे रूप सिद्ध हो जाता है।

कयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२६ में की गई है।

स्वे संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुवे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११४ से संयुक्त व्यञ्जन 'वे' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'स्' में आगम रूप 'उ' की प्राप्ति होकर सुवे रूप सिद्ध हो जाता है।

जनाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में और अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त और लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *जणा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्व-जनः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप स-यणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' को 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *स-यणो* रूप सिद्ध हो जाता है।२-११४।

ज्यायामीत् ॥२-११५॥

ज्याशब्दे अन्त्य व्यञ्जनात् पूर्व ईद् भवति ॥ जीआ ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'ज्या' के प्राकृत रूपान्तर में संयुक्त व्यञ्जन 'या' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ज्' में आगम रूप 'ई' की प्राप्ति होती है। जैसेः—ज्या = जीआ ॥

ज्या संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जीआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११५ से संयुक्त व्यञ्जन 'या' के पूर्व में स्थित हलन्त व्यञ्जन 'ज्' में आगम रूप 'ई' की प्राप्ति और २-७८ से 'य्' का लोप होकर *जीआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-११५॥

करेणू-वाराणस्योर-णो र्व्यत्ययः ॥२-११६॥

अनयो रेफणकारयोर्व्यत्ययः स्थितिपरिवृत्तिर्भवति ॥ ॥ कणेरू । वाणारसी । स्त्रीलिङ्ग निर्देशात् पुंसि न भवति । एसो करेणु ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'करेणु' और 'वाराणसी' में स्थित 'र' वर्ण और 'ण' का प्राकृत-रूपान्तर में परस्पर में व्यत्यय अर्थात् अदला-बदली हो जाती है। 'ण' के स्थान पर 'र' और 'र' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार की वर्णों सम्बन्धी परस्पर में होने वाली अदला-बदली को संस्कृत भाषा में व्यत्यय कहते हैं। ऐसे व्यत्यय का दूसरा नाम स्थित 'परिवृत्ति' भी है। उदाहरण इस प्रकार है-करेणुः = कणेरू ॥ वाराणसी = वाणारसी। इन दोनों उदाहरणों में 'ण' और 'र' का परस्पर में व्यत्यय हुआ है। 'करेणु' संस्कृत शब्द के 'हाथी अथवा हथिनी' यों दोनों लिंग वाचक अर्थ होता है; तदनुसार 'र' और 'ण' वर्णों का परस्पर में व्यत्यय केवल स्त्रीलिंग वाचक अर्थ में ही होता है। पुल्लिंग-वाचक अर्थ ग्रहण करने पर इन 'ण' और 'र' वर्णों का परस्पर में व्यत्यय नहीं होगा। जैसेः—एषः करेणुः = एसो करेणू = यह हाथी ॥

करेणुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप—(स्त्रीलिंग में) कणेरू होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११६ से 'र' वर्ण का और 'ण' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *कणेरू* रूप सिद्ध हो जाता है।

वाराणसी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वाणारसी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११६ से

'र' वर्ण का और 'ण' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय होकर *वाणारसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

एषः संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८५ से मूल संस्कृत एतद् सर्वनाम के स्थान पर एस रूप का आदेश प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'एसो' रूप सिद्ध हो जाता है। एषः=एसो की साधनिका निम्न प्रकार से भी हो सकती है। सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और १-३७ से 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति होकर *एसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

करेणुः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप—(पुल्लिग में)—करेणू होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में उकारान्त पुल्लिग में 'सि प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर करेणू रूप सिद्ध हो जाता है॥२-११६॥

आलाने लनोः ॥ २–११७ ॥

आलान शब्दे लनोर्व्यत्ययो भवति ॥ आणालो । आणाल-क्खम्भो ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द आलान के प्राकृत-रूपान्तर में 'ल' वर्ण का और 'न' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसेः-आलानः=आणालो ॥ आलान-स्तम्भः=आणाल-क्खम्भो ॥

आलानः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप आणालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-११७ से 'ल' वर्ण को और 'न' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आणालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आणाल-क्खम्भो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९७ में की गई है॥२-११७॥

अचलपुरे च-लोः ॥२-११८॥

अचलपुर शब्दे चकार लकारयो र्व्यत्ययो भवति ॥ अलचपुरं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द अचलपुर के प्राकृत-रूपान्तर में 'च' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसेः-अचलपुरम्=अलचपुरं ॥

अचलपुरम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूपान्तर अलचपुरं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-११८ से 'च' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अलचपुरं रूप सिद्ध हो जाता है॥

महाराष्ट्रे ह-रोः ॥२-११९॥

महाराष्ट्र शब्दे हरोर्व्यत्ययो भवति ॥ मरहट्ठं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द महाराष्ट्र के प्राकृत-रूपान्तर में 'ह' वर्ण का और 'र' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसे:-महाराष्ट्रम्=मरहट्ठं ॥

मरहट्ठं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६६ में की गई है ॥२-११६॥

ह्रदे ह-दोः ॥२-१२०॥

ह्रद शब्दे हकार दकारयोर्व्यत्ययो भवति ॥ द्रहो ॥ आर्षे । हरए महपुण्डरिए ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द ह्रद के प्राकृत रूपान्तर में 'ह' वर्ण का और 'द' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय हो जाता है। जैसे-ह्रदः=द्रहो ॥ आर्ष-प्राकृत में ह्रदः का रूप हरए भी होता है। जैसे-ह्रदः महापुण्डरीकः=हरए महपुण्डरिए ॥

द्रहो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या -८० में की गई है।

हरए आर्ष-प्राकृत रूप है। अतः साधनिका का अभाव है। महापुण्डरीकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महपुण्डरिए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-४ से 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१०१ से 'ई' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ४-२८७ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति तथा १-१० से लोप हुए 'क्' में से शेष रहे हुए 'अ' का आगे 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति हो जाने से लोप होकर *महपुण्डरिए* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१२०॥

हरिताले र-लोर्न वा ॥२-१२१॥

हरिताल शब्दे रकारलकारयो र्व्यत्ययो वा भवति । हलिआरो हरिआलो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द हरिताल के प्राकृत रूपान्तर में 'र' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में व्यत्यय वैकल्पिक रूप से होता है। जैसे:-हरितालः हलिआरो अथवा हरिआलो ॥

हरितालः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हलिआरो और हरिआलो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२१ से 'र' और 'ल' का परस्पर में व्यत्यय; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *हलिआरो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(हरितालः=) हरिआलो में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *हरिआलो* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२१॥

लघुके ल–होः ॥ २–१२२ ॥

लघुक शब्दे घस्य हत्वे कृते लहोर्व्यत्ययो वा भवति ॥ हलुअं । लहुअं ॥ घस्य व्यत्यये कृते पदादित्वात् हो न प्राप्नोतीति हकरणम् ॥

अर्थः— संस्कृत शब्द 'लघुक' में स्थित 'घ' व्यञ्जन के स्थान पर सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ह' आदेश की प्राप्ति करने पर इस शब्द के प्राकृत रूपान्तर में प्राप्त 'ह' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय होता है। जैसे:—लघुकम्=हलुअं अथवा लहुअं ॥ सूत्र-संख्या १-१८७ में ऐसा विधान है कि ख, घ, थ, ध और भ वर्ण शब्द के आदि में स्थित न हों तो इन वर्णों के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति होती है। तदनुसार 'लघुक' में स्थित 'घ' के स्थान पर प्राप्त होने वाला 'ह' शब्द के आदि स्थान पर आगया है; एवं इस विधान के अनुसार 'घ' के स्थान पर इस आदि 'ह' की प्राप्ति नहीं होनी चाहिये थी। परन्तु यहां 'ह' की प्राप्ति व्यत्यय नियम से हुई है; अतः सूत्र-संख्या १-१८७ से अबाधित होता हुआ और इस अधिकृत विधान से व्यत्यय की स्थिति को प्राप्त करता हुआ 'ह' आदि में स्थित रहे तो भी नियम विरूद्ध नहीं है।

लघुकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप हलुअं और लहुअं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' आदेश की प्राप्ति; २-१२२ से प्राप्त 'ह' वर्ण का और 'ल' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से हलुअं और लहुअं दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥२-१२२॥

ललाटे ल–डोः ॥१–१२३॥

ललाट शब्दे लकार डकारयो व्यत्ययो भवति वा ॥ णडालं । णलाडं । ललाटे च [१-२५७] इति आदेर्लस्य णविधानादिह द्वितीयो लः स्थानी ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'ललाट' के प्राकृत रूपान्तर में सूत्र-संख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर प्राप्त 'ड' वर्ण का और द्वितीय 'ल' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय होता है। जैसे:—ललाटम् 'णडालं' अथवा णलाडं ॥ मूल संस्कृत शब्द ललाट में दो लकार हैं; इनमें से प्रथम 'ल' कार के स्थान पर सूत्र-संख्या १-२५७ से 'ण' की प्राप्ति हो जाती है। अतः सूत्र-संख्या २-१२३ में जिन 'ल' वर्ण की और 'ड' वर्ण की परस्पर में व्यत्यय स्थिति में बतलाई है; उनमें 'ल' कार द्वितीय के सम्बंध में विधान है-ऐसा समझना चाहिये ॥

ललाटम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप णडालं और णलाडं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप णडालं की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४७ में की गई है। द्वितीय रूप-(ललाटम्=) णलाडं में सूत्र-संख्या १-२५७

से प्रथम 'ल' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप णलाडं भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२३॥

ह्ये ह्योः ॥२-१२४॥

ह्यशब्दे हकारयकारयोर्व्यत्ययो वा भवति ॥ गुह्यम् । गुय्हं गुज्झं ॥ सह्यः । सय्हो सज्झो

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में 'ह्य' व्यञ्जन रहे हुए हों तो ऐसे संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपान्तर में 'ह' वर्ण का और 'य' वर्ण का परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय हो जाता है। जैसेः—गुह्यम् = गुय्हं अथवा गुज्झं और सह्यः = सय्हो अथवा सज्झो ॥ इत्यादि अन्य शब्दों के संबंध में भी यही स्थिति जानना ॥

गुह्यम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप गुय्हं और गुज्झं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२४ से 'ह' वर्ण की और 'य' वर्ण की परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप गुय्हं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *गुज्झं* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२६ में की गई है।

सह्यः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सय्हो और सज्झो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२४ से 'ह' वर्ण की और 'य' वर्ण की परस्पर में वैकल्पिक रूप से व्यत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सय्हो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *सज्झो* की सिद्धि सूत्र-संख्या २-२६ में की गई है ॥२-१२४॥

स्तोकस्य थोक्क-थोव-थेवाः ॥२-१२५॥

स्तोक शब्दस्य एते त्रय आदेशा भवन्ति वा ॥ थोक्कं थोवं थेवं । पक्षे । थोअं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द स्तोक के प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से तीन आदेश इस प्रकार से होते हैं। स्तोकम्=थोक्कं, थोवं और थेवं ॥ वैकल्पिक-स्थिति होने से प्राकृत-व्याकरण के सूत्रों के विधानानुसार स्तोकम् का प्राकृत रूप थोअं भी होता है।

स्तोकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप चार होते हैं। जो कि इस प्रकार हैं:-थोक्कं, थोवं, थेवं और थोअं। इनमें से प्रथम तीन रूपों की प्राप्ति सूत्र-संख्या २-१२५ के विधानानुसार आदेश

रूप से होती है; आदेश-प्राप्त-रूप में साधनिका का अभाव होता है। ये तीनों रूप प्रथमान्त हैं; अतः इनमें सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर ये प्रथम तीनों रूप थोक्कं, थोवं और थेवं सिद्ध हो जाते हैं।

चतुर्थ रूप थोअं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-४५ में की गई है।

दुहितृ-भगिन्योर्धूआ-बहिण्यौ ॥२-१२६॥

अनयोरेतावादेशौ वा भवतः ॥ धूआ दुहिआ । बहिणी भइणी ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द दुहितृ-(प्रथमान्त रूप दुहिता) के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश रूप से 'धूआ' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से संस्कृत शब्द भगिनी के स्थान पर भी वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश-रूप से 'बहिणी' की प्राप्ति होती है। जैसेः—दुहिता=धूआ अथवा दुहिआ और भगिनी=बहिणी अथवा भइणी ॥

दुहिता संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप धूआ और दुहिआ होते हैं। प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२६ से संपूर्ण संस्कृत शब्द दुहिता के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'धूआ' रूप आदेश की प्राप्ति; अतः साधनिका का अभाव होकर प्रथम रूप धूआ सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(दुहिता=) दुहिआ में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप होकर द्वितीय रूप दुहिआ की सिद्धि हो जाती है।

भगिनी संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बहिणी और भइणी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२६ से संपूर्ण संस्कृत शब्द भगिनी के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'बहिणी' रूप आदेश की प्राप्ति; अतः साधनिका का अभाव होकर प्रथम रूप बहिणी सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(भगिनी=) भइणी में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप भइणी भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२६॥

वृक्ष-क्षिप्तयो रुक्ख-छूढौ २-१२७॥

वृक्ष-क्षिप्तयोर्यथासंख्यं रुक्ख-छूढ इत्यादेशौ वा भवतः । रुक्खो वच्छो । छूढं खित्तं । उच्छूढं । उक्खित्तं ॥

अर्थः-संस्कृत शब्द वृक्ष के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश रूप से 'रुक्ख' की प्राप्ति होती है। जैसेः—वृक्षः=रुक्खो अथवा वच्छो ॥ इसी प्रकार से संस्कृत शब्द क्षिप्त के स्थान

पर भी वैकल्पिक रूप से प्राकृत-भाषा में आदेश-रूप से 'छूढ' की प्राप्ति होती है। जैसे:-क्षिप्तम् = 'छूढं' अथवा खित्तं ॥

दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—उत्क्षिप्तम् = उच्छूढं अथवा उक्खित्तं ॥

वृक्षः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप रुक्खो और वच्छो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२७ से 'वृक्ष' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'रुक्ख' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप रुक्खो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप वच्छो की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१७ में की गई है।

क्षिप्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप छूढं और खित्तं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप छूढं की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१९ में की गई है।

द्वितीय रूप-(क्षिप्तम्=) खित्तं में सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप खित्तं भी सिद्ध हो जाता है।

उत्क्षिप्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उच्छूढं और उक्खित्तं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१२७ से संस्कृत शब्दांश 'क्षिप्त' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से आदेश रूप से 'छूढ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छूढ' में स्थित 'छ' वर्ण को द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप उच्छूढं सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(उत्क्षिप्तम्=) उक्खित्तं में सूत्र-संख्या २-७७ से प्रथम हलन्त 'त्' और हलन्त 'प्' का लोप; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति; पुनः २-८९ से लोप हुए 'प्' में से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप उक्खित्तं भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१२७॥

वनिताया विलया ॥२-१२८॥

वनिता शब्दस्य विलया इत्यादेशो वा भवति ॥ विलया वणिआ ॥ विलयेति संस्कृतेपीति केचित् ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'वनिता' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'विलया' ऐसा आदेश होता है। जैसेः—वनिता = (वैकल्पिक-आदेश)-विलया और (व्याकरण-सम्मत)-वणिआ ॥ कोई कोई वैयाकरण-आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि संस्कृत-भाषा में 'वनिता' अर्थ वाचक 'विलया' शब्द उपलब्ध है और उसी 'विलया' शब्द का ही प्राकृत-रूपान्तर विलया होता है। ऐसी मान्यता किन्हीं किन्हीं आचार्य की जानना ॥

वनिता संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप विलया और वणिआ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सूत्र-संख्या २-१२८ से आदेश रूप से *विलया* होता है।

द्वितीय रूप-(वनिता=) वणिआ में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *वणिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विलया संस्कृत रूप (किसी २ आचार्य के मत से-) है; इसका प्राकृत रूप भी *विलया* ही होता है।

गौणस्येषत्कूरः ॥२-१२९॥

ईषच्छब्दस्य गौणस्य कूर इत्यादेशो वा भवति ॥ चिंचव्व कूर-पिक्का । पक्षे ईसि ॥

अर्थः—वाक्यांश में गौण रूप से रहे हुए संस्कृत अव्यय रूप 'ईषत्' शब्द के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'कूर' आदेश की प्राप्ति वैकल्पिक रूप से होती है। जैसे—चिंचा इव ईषत्-पक्वा=चिंचव्व कूर-पिक्का अर्थात् चिंचा—(वस्तु-विशेष) के समान थोड़ीसी पकी हुई ॥ इस उदाहरण में 'ईषत्' के स्थान पर 'कूर' आदेश की प्राप्ति हुई है। पक्षान्तर में 'ईषत्' का प्राकृत-रूप ईसि होता है। 'ईषत्-पक्वा में दो शब्द हैं; प्रथम शब्द गौण रूप से रहा हुआ है और दूसरा शब्द मुख्य रूप से स्थित है। इस सूत्र में यह उल्लेख कर दिया गया है कि 'कूर' रूप आदेश की प्राप्ति 'ईषत्' शब्द के गौण रहने की स्थिति में होने पर ही होती है। यदि 'ईषत्' शब्द गौण नहीं होकर मुख्य रूप से स्थित होगा तो इसका-रूपान्तर 'ईसि' होगा; न कि 'कूर' आदेश; यह पारस्परिक-विशेषता ध्यान में रहनी चाहिये।

चिंचा देशज भाषा का शब्द है। इसका प्राकृत-रूपान्तर चिंच होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति होकर *चिंच* रूप सिद्ध हो जाता है।

'व्व' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

ईषत्-पक्वा संस्कृत वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप कूर-पिक्का होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१२९ से 'ईषत्' अव्यय के स्थान पर गौण रूप से रहने के कारण से 'कूर' रूप आदेश की प्राप्ति; १-४७ से 'प' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से 'व्' का लोप और २-८९ से शेष द्वितीय 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति होकर कूर-*पिक्का* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्त्रिया इत्थी ॥२-१३०॥

स्त्री शब्दस्य इत्थी इत्यादेशो वा भवति ॥ इत्थी थी ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'स्त्री' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'इत्थी' रूप आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे:-स्त्री=इत्थी अथवा थी ॥

स्त्री संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप इत्थी और थी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप की प्राप्ति सूत्र-संख्या २-१३० से 'स्त्री' शब्द के स्थान पर आदेश रूप से होकर प्रथम रूप *इत्थी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(स्त्री =) 'थी' में सूत्र-संख्या २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; और २-७९ से 'त्र्' में स्थित 'र्' का लोप होकर द्वितीय रूप *थी* सिद्ध हो जाता है ॥२-१३०॥

धृतेर्दिहिः ॥२-१३१॥

धृति शब्दस्य दिहिरित्यादेशो वा भवति ॥ दिही धिई ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'धृति' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'दिहि' रूप आदेश होता है। जैसे:-धृतिः=दिही अथवा धिई ॥

दिही रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२०९ में की गई है।

धिई रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२८ में की गई है ॥२-१३१॥

मार्जारस्य मञ्जर-वञ्जरौ ॥२-१३२॥

मार्जार शब्दस्य मञ्जर वञ्जर इत्यादेशौ वा भवतः ॥ मञ्जरो वञ्जरो । पक्षे मज्जारो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'मार्जार' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से दो आदेश 'मञ्जरो और वञ्जरो' होते हैं। जैसे-मार्जारः=मञ्जरो अथवा वञ्जरो ॥ पक्षान्तर में व्याकरण-सूत्र-सम्मत तीसरा रूप 'मज्जारो' होता है।

मार्जारः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप *मञ्जरो, वञ्जरो* और *मज्जारो* होते हैं। इनमें से प्रथम दो रूप सूत्र-संख्या २-१३२ से आदेश रूप से और होते हैं। तृतीय रूप-मज्जारो की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२६ में की गई है ॥२-१३२॥

वैडूर्यस्य वेरुलिअं ॥२-१३३॥

वैडूर्य शब्दस्य वेरुलिअ इत्यादेशो वा भवति ॥ वेरुलिअं ॥ वेडुज्जं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'वैडूर्य' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'वेरुलिय' आदेश

होता है। जैसे:-वैडूर्यम् = (आदेश रूप) वेरुलिअं और पक्षान्तर में—(व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप)— वेडुज्जं ॥

वैडूर्यम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप वेरुलिअं और वेडुज्जं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप सूत्र-संख्या २-१३३ से आदेश प्राप्त रूप है।

द्वितीय रूप-(वैडूर्यम्=) वेडुज्जं में सूत्र-संख्या-१-१४८ से दीर्घ 'ऐ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'ए' की प्राप्ति तथा १-८४ से दीर्घ 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' रूप आदेश की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप वेडुज्जं सिद्ध हो जाता है ॥२-१३३॥

एण्हिं एत्ताहे इदानीमः ॥२-१३४॥

अस्य एतावादेशौ वा भवतः ॥ एण्हि एत्ताहे । इआणिं ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'इदानीम्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'एण्हि' और 'एत्ताहे' ऐसे दो रूपों को आदेश प्राप्ति होती है। जैसे:-इदानीम्=(आदेश-प्राप्त रूप)-एण्हि और एत्ताहे तथा पक्षान्तर में-(व्याकरण-सूत्र-सम्मत-रूप) इआणिं ॥

एण्हि रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है।

इदानीम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका आदेश प्राप्त रूप एत्ताहे सूत्र-संख्या २-१३४ से होता है।

इआणिं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १- ६ में की गई है ॥२-१३४॥

पूर्वस्य पुरिमः ॥२-१३५॥

पूर्वस्य स्थाने पुरिम इत्यादेशो वा भवति । पुरिमं पुव्वं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'पूर्व' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'पुरिम' ऐसे रूप की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे—पूर्वम्=(आदेश प्राप्त रूप)—पुरिमं और पक्षान्तर में—(व्याकरण-सूत्र-सम्मत-रूप)-पुव्वं ॥

पूर्वम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पुरिमं और पुव्वं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप पुरिमं सूत्र-संख्या २-१३५ से आदेश प्राप्त रूप है।

द्वितीय-रूप-(पूर्वम्) = पुव्वं में सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से 'र्' के लोप होने के बाद 'शेष' 'व' को द्वित्व 'व्व' की

प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप पुव्वं सिद्ध हो जाता है। ॥२-१३५॥

त्रस्तस्य हित्थ-तट्ठौ ॥२-१३६॥

त्रस्त शब्दस्य हित्थतट्ठ इत्यादेशौ वा भवतः ॥ हित्थं । तट्ठं तत्थं ॥

अर्थः— संस्कृत शब्द 'त्रस्त' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'हित्थ' और 'तट्ठ' ऐसे दो रूपों की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे:-त्रस्तम्=(आदेश-प्राप्त रूप)-हित्थं और तट्ठं तथा पक्षान्तर में-(व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप)-तत्थं ॥

त्रस्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप हित्थं, तट्ठं और तत्थं होते हैं। इनमें प्रथम दो रूप *हित्थं* और *तट्ठं* सूत्र-संख्या २-१३६ से आदेश-प्राप्त रूप हैं।

तृतीय रूप—(त्रस्तम्=) तत्थं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र' में रहे हुए 'र्' का लोप; २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' को द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तृतीय रूप *तत्थं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१३६॥

बृहस्पतौ बहोभयः ॥२-१३७॥

बृहस्पति शब्दे बह इत्यस्यावयवस्य भय इत्यादेशो वा भवति ॥ भयस्सई भयप्फई ॥ पक्षे । बहस्सई । बहप्फई बहप्पई ॥ वा बृहस्पतौ (१-१३८) इति इकारे उकारे च बिहस्सई । बिहप्फई । बिहप्पई । बुहस्सई । बुहप्फई । बुहप्पई ।

अर्थः—संस्कृत शब्द 'बृहस्पति' में स्थित 'बह' शब्दावयव के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से 'भय' ऐसे आदेश-रूप की प्राप्ति होती है। जैसे:—बृहस्पतिः=भयस्सई, भयप्फई और भयप्पई ॥ पक्षान्तर में ये तीन रूप होते हैं:—बहस्सई, बहप्फई और बहप्पई ॥ सूत्र-संख्या १-१३८ से 'बृहस्पति' शब्द में रहे हुए 'ऋ' स्वर के स्थान पर वैकल्पिक रूप से कभी 'इ' स्वर की प्राप्ति होती है; तो कभी 'उ' स्वर की प्राप्ति होती है; तदनुसार बृहस्पति शब्द के छह प्राकृत रूप और हो जाते हैं; जो कि क्रम से इस प्रकार हैं:—बिहस्सई, बिहप्फई, बिहप्पई, बुहस्सई बुहप्फई और बुहप्पई ॥

भयस्सई और भयप्फई रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-६९ में की गई है। ये दोनों रूप बारह रूपों में से क्रमशः प्रथम और द्वितीय रूप हैं।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका-(बारह रूपों में से तीसरा) प्राकृत-रूप भयप्पई होता है।

इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१३७ से प्राप्त 'बह' शब्दावयव के स्थान पर आदेश रूप से 'भय' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *भयप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है; इसका प्राकृत रूप-(बारह रूपों में से छठा) बहप्पई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति और शेष साधनिका 'भयप्पई' के समान ही होकर *बहप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहस्सई और बहप्फई रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५९ में की गई है। ये दोनों रूप बारह रूपों में से क्रमशः चौथा और पाँचवा रूप है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप-(बारह रूपों में से सातवां) बिहस्सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इ' की प्राप्ति; २-६९ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्प' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'स' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; और शेष साधनिका उपरोक्त 'भयप्पई' रूप के समान होकर *बिहस्सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिहप्फई आठवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३८ में की गई है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बारह रूपों में से नववाँ) बिहप्पई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इ' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'भयप्पई' रूप के समान होकर *बिहप्पई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहस्पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (बारह रूपों में से दसवाँ)-बुहस्सई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१३८ से 'ऋ' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'उ' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त बिहस्सई रूप के समान ही होकर *बुहस्सई* रूप सिद्ध हो जाता है।

बुहप्फई ग्यारहवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१३८ में की गई है।

बुहप्पई बारहवें रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-५३ में की गई है ॥२-१३७॥

मलिनोभय-शुक्ति-छुप्तारब्ध-पदातेर्मइलावह-सिप्पि-छिक्काढत्त-पाइक्कं ॥२-१३८॥

मलिनादीनां यथासंख्यं मइलादय आदेशा वा भवन्ति ॥ मलिनम्। मइलं मलिणं ॥ उभयं। अवहं। उवहमित्यपि केचित्। अवहोआसं। उभयबलं ॥ आर्षे। उभयोकालं ॥ शुक्तिः। सिप्पी सुत्ती ॥ छुप्तः। छिक्को छुत्तो ॥ आरब्धः। आढत्तो आरद्धो ॥ पदातिः। पाइक्को पयाई ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द "मलिन, उभय, शुक्ति, छुप्त, आरब्ध और पदाति" के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में वैकल्पिक रूप से क्रम से इस प्रकार आदेश रूप होते हैं; 'मइल, अवह, सिप्पि, छिक्क, आढत्त और पाइक्क ।। आदेश प्राप्त रूप और व्याकरण-सूत्र-सम्मत रूप क्रम से इस प्रकार हैं:—मलिनम् = मइलं अथवा मलिणं ।। उभयं = अवहं अथवा उभयं ।। कोई कोई वैयाकरणाचार्य "उभयं" का प्राकृत रूप "उवहं" भी मानते हैं। जैसे—उभयावकाशम् = अवहोआसं पक्षान्तर में "उभय" का उदाहरण "उभयबलं" भी होता है। आर्ष—प्राकृत में भी "उभय" का उदाहरण "उभयोकालं" जानना। शुक्ति = सिप्पी अथवा सुत्ती ।। छुप्तः = छिक्को अथवा छुत्तो ।। आरब्धः = आढत्तो अथवा आरद्धो ।। और पदातिः = पाइक्को अथवा पयाई ।

मलिनम्:—संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मइलं और मलिणं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१३८ से 'मलिन' के स्थान पर 'मइल' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म् प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मइलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(मलिनम् =) मलिणं में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप 'मइलं' के समान ही होकर द्वितीय रूप *मलिणं* भी सिद्ध हो जाता है।

उभयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप उभयं अवहं और उवहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *उभयं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(उभयम्=) अवहं में सूत्र संख्या २-१३८ से 'उभय' के स्थान पर 'अवह' का आदेश; और शेष साधनिका प्रथम रूप वत् होकर द्वितीय रूप *अवहं* भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(अभयम्=) उवहं में सूत्र संख्या २-१३८ की वृत्ति से 'उभय' के स्थान पर 'उवह' रूप की आदेश-प्राप्ति; और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर तृतीय रूप उवहं भी सिद्ध हो जाता है। उभयावकाशं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अवहोआसं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१३८ से 'उभय' के स्थान पर 'अवह' रूप की आदेश प्राप्ति; १-१७२ से 'अव' उपसर्ग के स्थान पर 'ओ' स्वर की प्राप्ति; १-१० से आदेश प्राप्त रूप 'अवह' में स्थित 'ह' के 'अ' का आगे 'ओ' स्वर की प्राप्ति होने से लोप; १-५ से हलन्त शेष 'ह' में पार्श्वस्थ 'ओ' की संधि; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अवहो-आसं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उभय-बलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उभयबलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उभय बलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उभय कालम् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप उभयोकालं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३८ की वृत्ति से उभय-काल के स्थान पर 'उभयो काल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय का प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उभयो कालं* रूप सिद्ध हो जाता है।

शुक्तिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप सिप्पी और सुत्ती हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१३८ से शुक्ति' के स्थान पर 'सिप्पि' रूप की आदेश-प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' की दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *सिप्पी* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(शुक्तिः=)-सुत्ती में सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-७७ से 'क्ति' में रहे हुए हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *सुत्ती* सिद्ध हो जाता है।

लुप्तः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप छिक्को और लुत्तो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१३८ से 'लुप्त' के स्थान पर 'छिक्क' का आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *छिक्को* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(लुप्तः=) लुत्तो में सूत्र-संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'प्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *लुत्तो* सिद्ध हो जाता है।

आरब्धः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप आढत्तो और आरद्धो होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१३८ से 'आरब्ध' के स्थान पर 'आढत्त' रूप की आदेश-प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *आढत्तो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(आरब्धः=) आरद्धो में सूत्र संख्या २-७९ से हलन्त व्यञ्जन 'ब्' का लोप; २-८९ से शेष 'ध' को द्वित्व 'ध्ध' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ध्' के स्थान पर 'द्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *आरद्धो* सिद्ध हो जाता है।

पदातिः संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पाइक्को और पयाई होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-१३८ से 'पदाति' के स्थान पर 'पाइक्क' रूप की आदेश-प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पाइक्को* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(पदातिः=) पयाई में सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'त्' दोनों व्यञ्जनों का लोप; १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'आ' को 'या' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त-पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *पयाई* सिद्ध हो जाता है ॥ २-१३८ ॥

दंष्ट्राया दाढा ॥ २-१३९ ॥

पृथग्योगाद्वेति निवृत्तम्। दंष्ट्रा शब्दस्य दाढा इत्यादेशो भवति ॥ दाढा । अयं संस्कृते पि ॥

अर्थः—उपरोक्त सूत्रों में आदेश-प्राप्ति वैकल्पिक रूप से होती है; किन्तु इस सूत्र से आरम्भ करके आगे के सूत्रों में वैकल्पिक रूप से आदेश-प्राप्ति का अभाव है; अर्थात् इन आगे के सूत्रों में आदेश प्राप्ति निश्चित रूप से है; अतः उपरोक्त सूत्रों से इन सूत्रों की पारस्परिक-विशेषता को अपर नाम ऐसे 'पृथक् योग' को ध्यान में रखते हुए 'वा' स्थिति की-वैकल्पिक स्थिति की-निवृत्ति जानना इसका अभाव जानना। संस्कृत शब्द 'दंष्ट्रा' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'दाढा' ऐसी आदेश-प्राप्ति होती है। संस्कृत साहित्य में 'दंष्ट्रा' के स्थान पर 'दाढा' शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है।

दंष्ट्रा संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दाढा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१३९ से 'दंष्ट्रा' के स्थान पर 'दाढा' आदेश होकर *दाढा* रूप सिद्ध हो जाता है। २-१३९ ॥

बहिसो बाहिं-बाहिरौ ॥२-१४०॥

बहिः शब्दस्य बाहिं बाहिर इत्यादेशौ भवतः ॥ बाहिं बाहिरं ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'बहिस्' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'बाहिं' और 'बाहिरं' रूप आदेशों की प्राप्ति होती है। जैसे:—बहिस्=बाहिं और बाहिरं।

बहिस् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप बाहिं और बाहिरं होते हैं। इन दोनों रूपों में सूत्र संख्या २-१४० से 'बहिस्' के स्थान पर 'बाहिं' और 'बाहिरं' आदेश होकर दोनों रूप *'बाहिं'* और *'बाहिरं'* सिद्ध हो जाते हैं ॥ २-१४० ॥

अधसो हेट्ठं ॥ २-१४१ ॥

अधस् शब्दस्य हेट्ठं इत्ययमादेशो भवति ॥ हेट्ठं ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'अधः' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'हेट्ठं' रूप की आदेश प्राप्ति होती है। जैसे:—अधस्=हेट्ठं।

अधस् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप हेट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१४१ से 'अधस्' के स्थान पर 'हेट्ठं' आदेश होकर हेट्ठं रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-१४१॥

मातृ-पितुः स्वसुः सिआ-छौ ॥ २-१४२ ॥

मातृ-पितृभ्याम् परस्य स्वसृशब्दस्य सिआ छा इत्यादेशौ भवतः ॥ माउसिआ । माउ-च्छा । पिउ-सिआ । पिउ च्छा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'मातृ' अथवा 'पितृ' के पश्चात् समास रूप से 'स्वसृ' शब्द जुड़ा हुआ हो तो ऐसे शब्दों के प्राकृत-रूपान्तर में 'स्वसृ' शब्द के स्थान पर 'सिआ' अथवा 'छा' इन दो आदेशों की प्राप्ति होती है। जैसे:—मातृ-ष्वसा=माउ-सिआ अथवा माउ-च्छा॥ पितृ-ष्वसा=पिउ-सिआ अथवा पिउ-च्छा॥

मातृ-ष्वसा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप माउ-सिआ और माउ-च्छा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप '*माउ-सिआ*' की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३४ में की गई है।

द्वितीय रूप (मातृ-ष्वसा =) माउ-च्छा में सूत्र संख्या १-१३४ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' स्वर की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'तु' में से 'त्' व्यञ्जन का लोप; २-१४२ से 'ष्वसा' के स्थान पर 'छा' आदेश की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' के स्थान पर द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' होकर द्वितीय रूप-*माउ-च्छा* भी सिद्ध हो जाता है।

पितृ-ष्वसा संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पिउ-सिआ और पिउ-च्छा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप *पिउ-सिआ* की सिद्धि सूत्र संख्या १-१३४ में की गई है।

द्वितीय रूप-(पितृ-ष्वसा =) पिउ-च्छा में सूत्र संख्या १-१३४ से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' स्वर की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'तु' में से 'त्' व्यञ्जन का लोप; २-१४२ से 'ष्वसा' के स्थान पर 'छा' आदेश की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' के स्थान पर द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; और २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप-*पिउ-च्छा* भी सिद्ध हो जाता है॥२-१४२॥

तिर्यचस्तिरिच्छिः ॥२-१४३॥

तिर्यच् शब्दस्य तिरिच्छिरित्यादेशो भवति ॥ तिरिच्छि पेच्छइ ॥ आर्षे तिरिआ इत्यादेशो पि । तिरिआ ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'तिर्यच्' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'तिरिच्छि' ऐसा आदेश होता

है। जैसे:—तिर्यक् प्रेक्षते=तिरिच्छि पेच्छइ। आर्ष प्राकृत में 'तिर्यच्' के स्थान पर 'तिरिआ' ऐसे आदेश की भी प्राप्ति होती है। जैसे:—तिर्यक्=तिरिआ ॥

तिर्यक् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिरिच्छि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४३ से 'तिर्यक्' के स्थान पर 'तिरिच्छि' की आदेश-प्राप्ति होकर *तिरिच्छि* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रेक्षते संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पेच्छइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'छ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ' के स्थान पर द्वित्व 'छ्छ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पेच्छइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तिर्यक् संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप तिरिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४३ से 'तिर्यक्' के स्थान पर 'तिरिआ' आदेश की प्राप्ति होकर *तिरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१४३॥

गृहस्य घरोपतौ ॥२-१४४॥

गृहशब्दस्य घर इत्यादेशो भवति पति शब्दश्चेत् परो न भवति ॥ घरो । घर-सामी । राय-हरं ॥ अपताविति किम् । गह-वई ॥

अर्थ:—संस्कृत शब्द 'गृह' के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में 'घर' ऐसा आदेश होता है। परन्तु इसमें यह शर्त रही हुई है कि 'गृह' शब्द के आगे 'पति' शब्द नहीं होना चाहिये। यदि 'गृह' शब्द के आगे 'पति' शब्द स्थित होगा तो 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश की प्राप्ति नहीं होगी। उदाहरण इस प्रकार है:—गृहः=घरो ॥ गृह-स्वामी=घर-सामी ॥ राज-गृहम्=राय-हरं ॥

प्रश्न:—'गृह' शब्द के आगे 'पति' शब्द नहीं होना चाहिये; ऐसा क्यों कहा गया है?

उत्तर:—यदि संस्कृत शब्द 'गृह' के आगे 'पति' शब्द स्थित होगा तो 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश की प्राप्ति नहीं होकर अन्य सूत्रों के आधार से 'गह' रूप की प्राप्ति होगी। जैसे:-गृह-पतिः=गह-वई ॥

गृहः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृह-स्वामी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप घर-सामी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश और २-७९ से 'व्' का लोप होकर *घर-सामी* रूप सिद्ध हो जाता है।

राज-गृहम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राय-हरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; २-१४४ से 'गृह' के स्थान पर 'घर' आदेश; १-१८७ से प्राप्त 'घर' में स्थित 'घ' के स्थान पर 'ह' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *राय-हरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृह-पतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गहवई होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ 'ई' की प्राप्ति होकर *गह-वई* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१४४॥

शीलाद्यर्थस्येरः ॥२-१४५॥

शीलधर्मसाध्वर्थे विहितस्य प्रत्ययस्य इर इत्यादेशो भवति ॥ हसन-शीलः हसिरो । रोविरो । लज्जिरो । जम्पिरो । वेविरो । भमिरो ऊससिरो ॥ केचित् तृन एव इरमाहुस्तेषां नमिरगमिरादयो न सिध्यन्ति । तृनोत्रादिना बाधितत्वात् ॥

अर्थः—जिन संस्कृत शब्दों में 'शील' अथवा 'धर्म' अथवा 'साधु' वाचक प्रत्यय रहा हुआ हो तो इन प्रत्ययों के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'इर' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे:—हसनशीलः अर्थात् 'हसितृ' के संस्कृत रूप 'हसिता' का प्राकृत रूप 'हसिरो' होता है। रोदितृ=रोदिता=रोविरो। लज्जितृ=लज्जिता=लज्जिरो। जल्पितृ जल्पिता=जंपिरो। वेपितृ=वेपिता=वेविरो। भमितृ भ्रमिता=भमिरो। उच्छ्वसितृ=उच्छ्वसिता=ऊससिरो॥ कोई-कोई व्याकरणाचार्य ऐसा मानते हैं कि 'शील', 'धर्म' और 'साधु' वाचक वृत्ति को बतलाने वाले प्रत्ययों के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं होती है; किन्तु केवल 'तृन्' प्रत्यय के स्थान पर ही 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। उनके सिद्धान्त से 'नमिर' 'गमिर' आदि रूपों की सिद्धि नहीं हो सकेगी। क्योंकि यहाँ पर 'तृन्' प्रत्यय का अभाव है; फिर भी 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति हो गई है। इस प्रकार यहाँ पर 'बाधा-स्थिति' उत्पन्न हो गई है। अतः 'शील' 'धर्म' और 'साधु' वाचक प्रत्ययों के स्थान पर भी 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति प्राकृत-रूपान्तर में उसी प्रकार से होती है; जिस प्रकार से कि-'तृन्' प्रत्यय के स्थान पर 'इर' प्रत्यय आता है।

हसिता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हसिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हसिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रोदिता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रोविरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२२६

से 'द्' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रोविरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप लज्जिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लज्जिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जल्पिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप जम्पिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; २-७९ से 'ल' का लोप; १-२६ से 'ज' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से आगम रूप से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर आगे 'प' वर्ण होने से पञ्चमान्त वर्ण 'म्' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जम्पिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेपिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप वेविरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वेविरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप भमिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर' आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

उच्छ्वसिता संस्कृत विशेषण है। इसका प्रकात रूप ऊससिरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १- १४ से 'उ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति; मूल संस्कृत शब्द उत्+श्वास का उच्छ्वास होता है; तदनुसार मूल शब्द में स्थित 'त्' का सूत्र संख्या २-७७ से लोप; २-७९ से 'व' का लोप, १-८४ से लोप हुए 'व्' में से शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' का 'स'; २-१४५ से संस्कृत प्रत्यय 'तृन्' के स्थान पर प्राप्त 'इता' की जगह पर 'इर आदेश की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर **ऊससिरो** रूप सिद्ध हो जाता है।

गमन शीलः संस्कृत विशेषण है। इसका प्रकृत रूप गमिरो होता है। मूल संस्कृत धातु 'गम्' है;

इसमें सूत्र संख्या २-१४५ से 'शील' के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

नमनशीलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नमिरो होता है। मूल संस्कृत-धातु 'नम्' है। इसमें सूत्र संख्या २-१४५ से 'शील' के स्थान पर 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नमिरो* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१४५ ॥

क्त्वस्तुमत्तूण-तुआणाः ॥ २-१४६ ॥

क्त्वा प्रत्ययस्य तुम् अत् तूण तुआण इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ तुम् । दट्ठुं । मोत्तुं ॥ अत् । भमिअ । रमिअ ॥ तूण । घेत्तूण । काऊण ॥ तुआण । भेत्तुआण । सोउआण ॥ वन्दित्तु इत्यनुस्वार लोपात् ॥ वन्दित्ता इति सिद्ध-संस्कृतस्यैव वलोपेन ॥ कट्टु इति तु आर्षे ॥

अर्थः—अव्ययी रूप भूत कृदन्त के अर्थ में संस्कृत भाषा में धातुओं में 'क्त्वा' प्रत्यय का योग होता है; इसी अर्थ में अर्थात् भूत कृदन्त के तात्पर्य में प्राकृत-भाषा में 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्, अत्, तूण, और तुआण' ये चार आदेश होते हैं। इनमें से कोई सा भी एक प्रत्यय प्राकृत-धातु में संयोजित करने पर भूत कृदन्त का रूप बन जाता है। जैसे-'तुम्' प्रत्यय के उदाहरणः—दृष्ट्वा=दट्ठुं=देख करके। मुक्त्वा=मोत्तुं=छोड़कर के। 'अत्' प्रत्यय के उदाहरणः-भ्रमित्वा=भमिअ। रमित्वा=रमिअ॥ 'तूण' प्रत्यय के उदाहरणः—गृहीत्वा=घेत्तूण। कृत्वा=काऊण ॥ 'तुआण' प्रत्यय के उदाहरणः—भित्त्वा=भेत्तुआण। श्रुत्वा=सोउआण ॥

प्राकृत रूप, 'वन्दित्तु' भूत कृदन्त अर्थक ही है। इसमें अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' रूप अनुस्वार का लोप होकर संस्कृत रूप 'वन्दित्वा' का ही प्राकृत रूप वन्दित्तु बना है। अन्य प्राकृत रूप 'वन्दित्ता' भी सिद्ध हुए संस्कृत रूप के समान ही 'वन्दित्वा' रूप में से 'व्' व्यञ्जन का लोप करने से प्राप्त हुआ है। संस्कृत रूप 'कृत्वा' का आर्ष-प्राकृत में 'कट्टु' ऐसा रूप होता है।

दृष्ट्वा-संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप दट्ठुं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; ४-२१३ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ट्ठ' की प्राप्ति; और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'तुम्' प्रत्यय में स्थित 'त' व्यञ्जन का लोप; १-१० से प्राप्त 'ट्ठ' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'तुम्' में से शेष 'उम्' का 'उ' स्वर होने से लोप; १-५ से 'ट्ठ्' में 'उम्' की संधि होने से 'ट्ठुम्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर *दट्ठुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भुक्त्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भोत्तुं होता है; इसमें सूत्र-संख्या ४-२३७ से 'उ' स्वर को 'ओ' स्वर की गुण-प्राप्ति; २-७७ से 'क्' का लोप और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुम्' प्रत्यय की आदेश-प्राप्ति; और १-२३ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर *भोत्तुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

भ्रमित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भमिअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; ३-१५७ से 'म' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'अत्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *भमिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

रमित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रमिअ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त 'रम्' धातु में म्' में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति; ३-१५७ से प्राप्त 'म' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'अत्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप होकर *रमिअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गृहीत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप घेत्तूण होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१० से 'गृह्' धातु के स्थान पर 'घेत्' आदेश। और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तूण' की प्राप्ति होकर *घेत्तूण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप काऊण होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२१४ से 'कृ' धातु में स्थित 'ऋ' के स्थान पर 'आ' आदेश; २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति और १-१७७ से प्राप्त 'तूण' प्रत्यय में से 'त्' का लोप होकर *काऊण* रूप सिद्ध हो जाता है।

भित्त्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भेत्तुआण होता है। मूल संस्कृत धातु 'भिद्' है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३७ से 'इ' के स्थान पर गुण रूप 'ए' की प्राप्ति; और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुआण' प्रत्यय प्राप्ति होकर *भेत्तुआण* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सोउआण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-२६० से शेष 'श' का 'स'; ४-२३७ से 'सु' में रहे हुए 'उ' के स्थान पर गुण-रूप 'ओ' की प्राप्ति; और २-१४६ से संस्कृत कृदन्त के 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'तुआण' प्रत्यय की प्राप्ति तथा १-१७७ से प्राप्त 'तुआण' प्रत्यय में से 'त्' व्यञ्जन का लोप होकर *सोउआण* रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्दित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वन्दित्तु होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४६ से संस्कृत कृदन्त प्रत्यय 'क्त्वा' के स्थान पर 'तुम्' आदेश; १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का लोप और २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *वन्दित्तु* रूप सिद्ध हो जाता है।

वन्दित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वन्दित्ता होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व्' का लोप और २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति होकर *वन्दित्ता* रूप सिद्ध हो जाता है।

कृत्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका आर्ष प्राकृत में कट्टु रूप होता है। आर्ष रूपों में साधनिका का प्रायः अभाव होता है ॥२-१४६॥

इदमर्थस्य केरः ॥२-१४७॥

इदमर्थस्य प्रत्ययस्य केर इत्यादेशो भवति ॥ युष्मदीयः तुम्हकेरो ॥ अस्मदीयः । अम्हकेरो ॥ न च भवति । मईअ-पक्खे । पाणिणीआ ॥

अर्थः— 'इससे सम्बन्धित' के अर्थ में अर्थात् 'इदम् अर्थ' के तद्धित प्रत्यय के रूप में प्राकृत में 'केर' आदेश होता है। जैसेः-युष्मदीयः = तुम्हकेरो और अस्मदीयः = अम्हकेरो ॥ किसी किसी स्थान पर 'केर' प्रत्यय की प्राप्ति नहीं भी होती है। जैसेः-मदीय-पक्षे = मईअ-पक्खे और पाणिनीया = पाणिणीआ ऐसे रूप भी होते हैं।

तुम्हकेरो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२४६* में की गई है।

अस्मदीयः संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप अम्हकेरो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१०६ से 'अस्मत्' के स्थान पर 'अम्ह' आदेश; २-१४७ से 'इदम्'-अर्थ वाले संस्कृत प्रत्यय 'इय' के स्थान पर 'केर' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अम्हकेरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मदीय-पक्षे संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मईअ-पक्खे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'द्' और 'य्' दोनों का लोप; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' को 'क्' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मईअ-पक्खे* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाणिनीयाः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पाणिणीआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से य् का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *पाणिणीआ* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१४७॥

पर-राजभ्यां क्क-डिक्कौ च ॥ २-१४८ ॥

पर राजन् इत्येताभ्यां परस्येदमर्थस्य प्रत्ययस्य यथासंख्यं संयुक्तौ क्को-डित् इक्क श्चादेशौ

भवतः। चकारात्-केरश्च ॥ परकीयम्। पारक्कं। परक्कं। पारकेरं ॥ राजकीयम्। राइक्कं। रायकेरं।

अर्थः—संस्कृत शब्द 'पर' और 'राजन्' के अन्त में 'इदमर्थ' प्रत्यय जुड़ा हुआ हो तो प्राकृत में 'इदमर्थ' प्रत्यय के स्थान 'पर' में 'क्क' आदेश और 'राजन्' में 'इक्क' आदेश होता है; तथा मूल सूत्र में 'च' लिखा हुआ है; अतः वैकल्पिक रूप से 'केर' प्रत्यय की भी प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है:-परकीयम्=पारक्कं; परक्कं अथवा पारकेरं ॥ राजकीयम्=राइक्कं अथवा रायकेरं ॥

पारक्कं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-४४* में की गई है।

परकीयम् संस्कृत विशेषण है। इसका प्राकृत रूप परक्कं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१४८ से 'कीय' के स्थान पर 'क्क' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *परक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पारकेरं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-४४* में की गई है।

राजकीयम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप राइक्कं और रायकेरं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; २-१४८ से संस्कृत प्रत्यय 'कीय' के स्थान पर 'इक्क' का आदेश; १-१० से लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' के आगे 'इक्क' की 'इ' होने से लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *राइक्कं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप—(राजकीयम्=) रायकेरं में सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० के लोप हुए 'ज्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; २-१४८ से संस्कृत प्रत्यय 'कीय' के स्थान पर 'केर' का आदेश; और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप रायकेरं भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१४८॥

युष्मदस्मदोञ-एच्चयः ॥ २-१४९ ॥

आभ्यां परस्येदमर्थस्याञ एच्चय इत्यादेशो भवति ॥ युष्माकमिदं यौष्माकम्। तुम्हेच्चयं। एवम् अम्हेच्चयं ॥

अर्थः—संस्कृत सर्वनाम युष्मत् और अस्मत् में 'इदमर्थ' के वाचक प्रत्यय 'अञ' के स्थान पर प्राकृत में 'एच्चय' का आदेश होता है। जैसे—'युष्माकम्-इदम्=यौष्माकम्' का प्राकृत रूप 'तुम्हेच्चयं' होता है। इसी प्रकार से 'अस्मदीयम्' का अम्हेच्चयं होता है।

यौष्माकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तुम्हेच्चयं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-९१ से युष्मत् के स्थान पर 'तुम्ह' का आदेश; २-१४९ से 'इदमर्थ' वाचक प्रत्यय 'अञ्' के स्थान पर 'एच्चय' का आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर तुम्हेच्चयं रूप सिद्ध हो जाता है।

अस्मदीयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अम्हेच्चयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१०६ से 'अस्मत्' के स्थान पर 'अम्ह' आदेश; २-१४९ से संस्कृत 'इय' प्रत्यय के स्थान पर 'एच्चय' आदेश; १-१० से प्राप्त 'अम्ह' में स्थित 'ह' के 'अ' का आगे 'एच्चय' का 'ए' होने से लोप; १-५ से प्राप्त 'अम्ह्' और एच्चय की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अम्हेच्चयं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१४९॥

वतेर्व्वः ॥२-१५०॥

वतेः प्रत्ययस्य द्विरुक्तो वो भवति ॥ महुरव्व पाडलिउत्ते पासाया ।

अर्थः—संस्कृत 'वत्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-रूपान्तर में द्विरुक्त अर्थात् द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति होती है। जैसेः-मथुरावत् पाटलिपुत्रे प्रासादाः=महुरव्व पाडलिउत्ते पासाया ॥

मथुरावत् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप महुरव्व होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'थ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति और २-१५० से 'वत्' प्रत्यय के स्थान पर द्विरुक्त 'व्व' की प्राप्ति होकर महुरव्व रूप सिद्ध हो जाता है।

पाटलिपुत्रे संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पाडलिउत्ते होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'प्' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष 'त्' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पाडलिउत्ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रासादाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पासाया होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'द्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में प्राप्त 'जस्' प्रत्यय का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *पासाया* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५०॥

सर्वांगादीनस्येकः ॥२-१५१॥

सर्वाङ्गात् सर्वादेः पथ्यङ्ग' [हे० ७-१] इत्यादिना विहितस्येनस्य स्थाने इक इत्यादेशो भवति ॥ सर्वाङ्गीणः । सव्वङ्गिओ ॥

अर्थः—'सर्वादेः पथ्यङ्ग'' इस सूत्र से-(जो कि हेमचन्द्र संस्कृत व्याकरण के सातवें अध्याय का सूत्र है —'सर्वाङ्ग' शब्द में प्राप्त होने वाले संस्कृत प्रत्यय 'ईन' के स्थान पर प्राकृत में 'इक' ऐसा आदेश होता है। जैसे:–सर्वाङ्गीणः=सव्वङ्गिओ ॥

सर्वांगीणः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सव्वङ्गिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७६ से 'र्' का लोप; २-८९ से शेष रहे हुए 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१५१ से संस्कृत प्रत्यय 'ईन' के स्थान पर प्राकृत में 'इक' आदेश; १-१७७ से आदेश प्राप्त 'इक' में स्थित 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय प्राप्ति होकर *सव्वंगिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५१॥

पथो णस्येकट् ॥२-१५२॥

नित्यंणः पन्थश्च (हे० ६-४) इति यः पथो णो विहितस्य इकट् भवति ॥ पान्थः । पहिओ ॥

अर्थः—हेमचन्द्र व्याकरण के अध्याय संख्या छह के सूत्र-संख्या चार से संस्कृत शब्द 'पथ' में नित्य 'ण' की प्राप्ति होती है; उस प्राप्त 'ण' के स्थान पर प्राकृत रूपान्तर में 'इक' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे—पान्थः=पहिओ ॥

पान्थः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पहिओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१५२ से 'न' के स्थान पर 'इक' आदेश; १-१८७ से 'थ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; १-१७७ से आदेश प्राप्त 'इक' के क' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पहिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५२॥

ईयस्यात्मनो णयः ॥२-१५३॥

आत्मनः परस्य ईयस्य णय इत्यादेशो भवति ॥ आत्मीयम् अप्पणयं ।

अर्थः—'आत्मा' शब्द में यदि 'ईय' प्रत्यय रहा हुआ हो तो प्राकृत रूपान्तर में इस 'ईय' प्रत्यय के स्थान पर 'णय' आदेश की प्राप्ति होती है। जैसे—आत्मीयम्=अप्पणयं ॥

आत्मीयम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; २-१५३ से संस्कृत प्रत्यय 'ईय' के स्थान पर 'णय' आदेश; ३-२५ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अप्पणयं* रूप सिद्ध हो जाता है। २-१५३॥

त्वस्य डिमा-त्तणौ वा ॥ २-१५४ ॥

त्व प्रत्ययस्य डिमा त्तण इत्यादेशौ वा भवतः ॥ पीणिमा । पुप्फिमा । पीणत्तणं । पुप्फत्तणं । पक्षे । पीणत्तं । पुप्फत्तं ॥ इम्नः पृथ्वादिषु नियतत्वात् तदन्य प्रत्ययान्तेषु अस्य विधिः ॥ पीनता इत्यस्य प्राकृते पीणया इति भवति । पीणदा इति तु भाषान्तरे । ते नेह तलो दा न क्रियते ॥

अर्थः—संस्कृत में प्राप्त होने वाले 'त्व' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में वैकल्पिक रूप से 'इमा' और 'त्तण' प्रत्यय का आदेश हुआ करता है। जैसे—पीनत्वम्=पीणिमा अथवा पीणत्तणं और वैकल्पिक पक्ष में पीणत्तं भी होता है। पुष्पत्वम्=पुप्फिमा अथवा पुप्फत्तणं और वैकल्पिक पक्ष में पुप्फत्तं भी होता है। संस्कृत भाषा में पृथु आदि कुछ शब्द ऐसे हैं; जिनमें 'त्व' प्रत्यय के स्थान पर इसी अर्थ को बतलाने वाले 'इमन्' प्रत्यय की प्राप्ति हुआ करती है। उनका प्राकृत रूपान्तर अन्य सूत्रानुसार हुआ करता है। संस्कृत शब्द 'पीनता' का प्राकृत रूपान्तर 'पीणया' होता है। किसी अन्य भाषा में 'पीनता' का रूपान्तर 'पीणदा' भी होता है। तदनुसार 'ता' प्रत्यय के स्थान पर 'दा' आदेश नहीं किया जा सकता है। अतः पीणदा रूप को प्राकृत रूप नहीं समझा जाना चाहिये।

पीनत्वम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप पीणिमा, पीणत्तणं और पीणत्तं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१५४ से संस्कृत प्रत्यय 'त्वम्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'इमा' आदेश की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *पीणिमा* की सिद्धि हो जाती है।

द्वितीय रूप-(पीनत्वम्=) पीणत्तणं में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१५४ से संस्कृत प्रत्यय 'त्व' के स्थान पर 'त्तण' आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *पीणत्तणं* द्वितीय रूप भी सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(पीनत्वम्=) पीणत्तं में सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और शेष साधनिका द्वितीय रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *पीणत्तं* भी सिद्ध हो जाता है।

पुष्पत्वम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पुप्फिमा, पुप्फत्तणं और पुप्फत्तं होते हैं। इनमें से

प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-५३ से 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' के स्थान पर 'प्' की प्राप्ति; २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर 'इमा' आदेश १-१० से 'फ' में रहे हुए 'अ' का आगे 'इ' रहने से लोप; १-५ से 'फ्' की आगे रही हुई 'इ' के साथ संधि; और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'म्' का लोप होकर प्रथम रूप *पुप्फिमा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(पुष्पत्वम्=) पुप्फत्तणं में 'पुप्फ' तक प्रथम रूप के समान ही साधनिका; २-१५४ से 'त्व' के स्थान पर 'त्तणं' आदेश; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *पुप्फत्तणं* सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप-(पुष्पत्वम्=) पुप्फत्तं में 'पुप्फ' तक प्रथम रूप के समान ही साधनिका; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से शेष 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; और शेष साधनिका द्वितीय रूप के समान ही होकर तृतीय रूप *पुप्फत्तं* सिद्ध हो जाता है।

पीनता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पीणया होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और १-१८० से शेष 'आ' को 'या' की प्राप्ति होकर *पीणया* रूप सिद्ध हो जाता है।

पीणदा रूप देशज-भाषा का है; अतः इसकी साधनिका की आवश्यकता नहीं है।।२-१५४।।

अनङ्कोठात्तैलस्य डेल्लः ।।२-१५५।।

अङ्कोठ वर्जिताच्छब्दात्परस्य तैल प्रत्ययस्य डेल्ल इत्यादेशो भवति ।। सुरहि-जलेण कडु-एल्लं ।। अनङ्कोठादिति किम् । अङ्कोल्ल तेल्लं ।।

अर्थः—'अङ्कोठ' शब्द को छोड़कर अन्य किसी संस्कृत शब्द में 'तैल' प्रत्यय लगा हुआ हो तो प्राकृत रूपान्तर में इस 'तैल' प्रत्यय के स्थान पर 'डेल्ल' अर्थात् 'एल्ल' आदेश हुआ करता है। जैसेः— सुरभि-जलेन कटु-तैलम्=सुरहि-जलेण कडुएल्लं।

प्रश्नः—'अङ्कोठ' शब्द के साथ में 'तैल' प्रत्यय रहने पर इस 'तैल' प्रत्यय के स्थान पर 'एल्ल' आदेश क्यों नहीं होता है?

उत्तरः—प्राकृत भाषा में परम्परागत रूप से 'अङ्कोठ' शब्द के साथ 'तैल' प्रत्यय होने पर 'तैल' के स्थान पर 'एल्ल' आदेश का अभाव पाया जाता है; अतः इस रूप को सूत्र-संख्या २-१५५ के विधान क्षेत्र से पृथक् ही रखा गया है। उदाहरण इस प्रकार हैः-अङ्कोठ तैलम्=अङ्कोल्ल तेल्लं।।

सुरभि-जलेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सुरहि-जलेण होता है। इसमें सूत्र-

संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा'='आ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व स्थित 'ल' के 'अ' को 'ए' की प्राप्ति होकर *सुरहि-जलेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कटुतैलम् संस्कृत विशेष रूप है। इसका प्राकृत रूप कडुएल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-१५५ से संस्कृत प्रत्यय 'तैल' के स्थान पर प्राकृत में 'एल्ल' आदेश ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कडुएल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

अंकोठ तैलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अङ्कोल्ल-तेल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२०० से 'ठ' के स्थान पर द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; १-१४८ से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति २-९८ से 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अंकोल्ल-तेल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५५॥

यत्तदेतदोतोरित्तिअ एतल्लुक् च ॥२-१५६॥

एभ्यः परस्य डावादेरतोः परिमाणार्थस्य इत्तिअ इत्यादेशो भवति ॥ एतदो लुक् च ॥ यावत् । जित्तिअं ॥ तावत् । तित्तिअं ॥ एतावत् । इत्तिअं ॥

अर्थः—संस्कृत सर्वनाम 'यत्', 'तत्' और 'एतत्' में संलग्न परिमाण वाचक प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में 'इत्तिअ' आदेश होता है। 'एतत्' से निर्मित 'एतावत्' के स्थान पर तो केवल 'इत्तिअ' रूप ही होता है अर्थात् 'एतावत्' का लोप होकर केवल 'इत्तिअ' रूप ही आदेशवत प्राप्त होता है। उदाहरण इस प्रकार है:—यावत्=जित्तिअं; तावत्=तित्तिअं और एतावत्=इत्तिअं ॥

यावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जित्तिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-१५६ से 'आवत्' प्रत्यय के स्थान पर 'इत्तिअ' आदेश; १-५ से प्राप्त 'ज्' के साथ 'इ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जित्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप तित्तिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५६ से 'आवत्' प्रत्यय के स्थान पर 'इत्तिअ' आदेश; १-५ से प्रथम 'त्' के साथ 'इ' की संधि; और शेष साधनिका उपरोक्त 'जित्तिअं' रूप के समान ही होकर *तित्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

एतावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप इत्तिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५६ से 'एतावत्' का लोप और 'इत्तिअ' आदेश की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त 'जित्तिअं' रूप के समान ही होकर *इत्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५६॥

इदं किमश्च डेत्तिअ-डेत्तिल-डेद्दहाः ॥२-१५७॥

इदं किं भ्यां यत्तदेतद्भ्यश्च परस्यातो डवितोर्वा डित एत्तिअ एत्तिल एद्दह इत्यादेशा भवन्ति एतल्लुक च ॥ इयत् । एत्तिअं । एत्तिलं । एद्दहं ॥ कियत् । केत्तिअं । केत्तिलं । केद्दहं ॥ यावत् । जेत्तिअं । जेत्तिलं । जेद्दहं ॥ तावत् । तेत्तिअं । तेत्तिलं । तेद्दहं ॥ एतावत् । एत्तिअं । एत्तिलं । एद्दहं ॥

अर्थः—संस्कृत सर्वनाम शब्द 'इदम्', 'किम्', 'यत्', 'तत्', और 'एतत्' में संलग्न परिमाण वाचक प्रत्यय 'अतु=अत्' अथवा 'डावतु=(ड् की इत्संज्ञा होकर शेष) आवतु=आवत्' के स्थान पर प्राकृत में 'एत्तिअ' अथवा 'एत्तिल' अथवा एद्दह आदेश होते हैं। 'एतत्' से निर्मित 'एतावत्' का लोप होकर इसके स्थान पर केवल 'एत्तिअं' अथवा 'एत्तिलं' अथवा एद्दहं रूपों की आदेश रूप से प्राप्ति होती है। उपरोक्त सर्वनामों के उदाहरण इस प्रकार हैं:-इयत्=एत्तिअं,एत्तिलं अथवा एद्दहं। कियत्=केत्तिअं, केत्तिलं और केद्दहं। यावत्=जेत्तिअं, जेत्तिलं और जेद्दहं। तावत्=तेत्तिअं, तेत्तिलं और तेद्दहं। एतावत्=एत्तिअं, एत्तिलं और एद्दहं।

इयत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप एत्तिअं, एत्तिलं और एद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१५७ की वृत्ति से 'इय्' का लोप; २-१५७ से शेष 'अत्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'एत्तिअ, एत्तिल और एद्दह' प्रत्ययों की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *एत्तिअं, एत्तिलं* और *एद्दहं* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

कियत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप केत्तिअं, केत्तिलं और केद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१५७ की वृत्ति से 'इय्' का लोप; २-१५७ से शेष 'अत्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'एत्तिअ, एत्तिल और एद्दह' प्रत्ययों की प्राप्ति; १-५ से शेष 'क्' के साथ प्राप्त प्रत्ययों की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से *केत्तिअं, केत्तिलं* और *केद्दहं* रूपों की सिद्धि हो जाती है।

यावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप जेत्तिअं, जेत्तिलं और जेद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-१५७ से संस्कृत प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप एत्तिअ, एत्तिल और एद्दह प्रत्ययों की प्राप्ति; १-५ से प्राप्त 'ज्' के साथ

प्राप्त प्रत्ययों की संधि और शेष साधनिका उपरोक्त 'केत्तिअं' आदि रूपों के समान ही होकर क्रम से जेत्तिअं, जेत्तिलं और जेद्दहं रूपों की सिद्धि हो जाती है।

एतावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप एत्तिअं, एत्तिलं और एद्दहं होते है। इनमें सूत्र-संख्या २-१५७ से मूल रूप 'एतत्' का लोप; २-१५७ से संस्कृत प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'एत्तिअ, एत्तिल और एद्दह' प्रत्ययों की प्राप्ति; और शेष साधनिका उपरोक्त केत्तिअं आदि रूपों के समान ही होकर क्रम से एत्तिअं, एत्तिलं और एद्दहं रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तावत् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप तेत्तिअं, तेत्तिलं और तेद्दहं होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल रूप 'तत्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; २-१५७ से संस्कृत प्रत्यय 'आवत्' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'एत्तिअ, 'एत्तिल' और एद्दह प्रत्ययों की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त केत्तिअं आदि रूपों के समान ही होकर क्रम से तेत्तिअं, तेत्तिलं और तेद्दहं रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥२-१५७॥

कृत्वसो हुत्तं ॥२-१५८॥

वारे कृत्वस् (हैं० ७-२) इति यः कृत्वस् विहितस्तस्य हुत्तमित्यादेशो भवति ॥ सयहुत्तं। सहस्सहुत्तं ॥ कथं प्रियाभिमुखं पियहुत्तं। अभिमुखार्थेन हुत्त शब्देन भविष्यति ॥

अर्थः—संस्कृत-भाषा में 'वार' अर्थ मे 'कृत्वः' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। उसी 'कृत्वः' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-भाषा में 'हुत्तं' आदेश की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है:—शतकृत्वः= सयहुत्तं और सहस्रकृत्वः=सहस्सहुत्तं इत्यादि।

प्रश्नः—संस्कृत रूप 'प्रियाभिमुखं' का प्राकृत रूपान्तर 'पियहुत्तं' होता है। इसमें प्रश्न यह है कि 'अभिमुखं' के स्थान पर 'हुत्तं' की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तरः—यहां पर 'हुत्तं' प्रत्यय की प्राप्ति 'कृत्वः' अर्थ में नहीं हुई है; किन्तु 'अभिमुख' अर्थ में ही 'हुत्तं' शब्द आया हुआ है। इस प्रकार यहां पर यह विशेषता समझ लेनी चाहिये।

शतकृत्वः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सयहुत्तं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; २-१५८ से 'वार-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'कृत्व' के स्थान पर प्राकृत में 'हुत्तं' आदेश; और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग अर्थात 'स्' का लोप होकर सयहुत्तं रूप सिद्ध हो जाता है।

सहस्र-कृत्यः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सहस्सहुत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; शेष साधनिका उपरोक्त सय-हुत्तं के समान ही होकर सहस्सहुत्तं रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रियाभिमुखम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पियहुत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१५८ की वृत्ति से 'अभिमुख' के स्थान पर 'हुत्त' आदेश की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पियहुत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।।२-१५८।।

आल्विल्लोल्लाल-वन्त-मन्तेत्तेर-मणा मतोः ॥२-१५९॥

आलु इत्यादयो नव आदेशा मतोः स्थाने यथाप्रयोगं भवन्ति ॥ आलु । नेहालू । दयालू । ईसालू । लज्जालुआ ॥ इल्ल । सोहिल्लो । छाइल्लो । जामइल्लो । उल्ल । विआरुल्लो । मंसुल्लो । दप्पुल्लो ॥ आल । सद्दालो । जडालो । फडालो । रसालो । जोण्हालो ॥ वन्त । धणवन्तो । भत्तिवन्तो ॥ मन्त । हणुमन्तो । सिरिमन्तो । पुण्णमन्तो ॥ इत्त । कव्वइत्तो । माणइत्तो ॥ इर । गव्विरो । रेहिरो ॥ मण । धणमणो ॥ केचिन्मादेशमपीच्छन्ति । हणुमा ॥ मतोरिति किम् । धणी । अत्थिओ ॥

अर्थः—'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'मत्' और 'वत्' के स्थान पर प्राकृत भाषा में नव आदेश होते हैं; जो कि क्रम से इस प्रकार हैं:—आलु, इल्ल, उल्ल, आल, वन्त, मन्त, इत्त, इर और मण। *आलु* से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार हैं:—स्नेहवान् = नेहालू। दयावान् = दयालू। ईर्ष्यावान् = ईसालू। लज्जावत्या = लज्जालुआ॥ इल्ल से सम्बंधित उदाहरणः—शोभावान्=सोहिल्लो। छायावान्=छाइल्लो। यामवान् = जामइल्लो। उल्ल से सम्बंधित उदाहरणः-विकारवान् = विआरुल्लो। श्मश्रुवान् =मंसुल्लो। दर्पवान् = दप्पुल्लो॥ *आल* से संबंधित उदाहरणः—शब्दवान् = सद्दालो। जटावान् = जडालो। फटावान्=फडालो। रसवान्=रसालो। ज्योत्स्नावान्= जोण्हालो। *वन्त* से सम्बंधित उदाहरणः—धनवान् = धणवन्तो। भक्तिमान् = भत्तिवन्तो। *मन्त* से संबंधित उदाहरणः-हनुमान् = हनुमन्तो। श्रीमान् = सिरिमन्तो। पुण्यवान् = पुण्णमन्तो। इत्त से सम्बंधित उदाहरणः—काव्यवान् = कव्वइत्तो। मानवान्=माणइत्तो॥ इर से संबंधित उदाहरणः—गर्ववान् = गव्विरो। रेखावान् = रेहिरो॥ *मण* से संबंधित उदाहरणः—धनवान् = धणमणो इत्यादि। कोई कोई आचार्य 'मत्' और 'वत्' के स्थान पर 'मा' आदेश की प्राप्ति का भी उल्लेख करते हैं; जैसेः—हनुमान् = हणुमा॥

प्रश्नः—'वाला-अर्थक' मत् और वत् का ही उल्लेख क्यों किया गया है?

उत्तर:—संस्कृत में 'वाला' अर्थ में 'मत्' एवं 'वत्' के अतिरिक्त अन्य प्रत्ययों की भी प्राप्ति हुआ करती है। जैसे–धनवाला = धनी और अर्थ वाला = अर्थिक; इसलिये आचार्य श्री का मन्तव्य यह है कि उपरोक्त प्राकृत भाषा में 'वाला' अर्थ को बतलाने वाले जो नव-आदेश कहे गये हैं; वे केवल संस्कृत प्रत्यय 'मत्' अथवा 'वत्' के स्थान पर ही आदेश रूप से प्राप्त हुआ करते हैं; न कि अन्य 'वाला' अर्थक प्रत्ययों के स्थान पर आते हैं। इसलिये मुख्यत: 'मत्' और 'वत्' का उल्लेख किया गया है। प्राप्त 'वाला' अर्थक अन्य संस्कृत-प्रत्ययों का प्राकृत-विधान अन्य सूत्रानुसार होता है। जैसे:—धनी = धणी और अर्थिकः = अत्थिओ इत्यादि ॥

स्नेहमान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप नेहालू होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'स्' का लोप; २-१५९ से 'वाला–अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर 'आलु' आदेश; १-५ से 'ह' में स्थित 'अ' के साथ 'आलु' प्रत्यय के 'आ' की संधि और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व उकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *नेहालू* रूप सिद्ध हो जाता है।

दयालू रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

ईर्ष्यावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप 'ईसालू' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर 'आलु' आदेश और शेष साधनिका 'नेहालू' के समान ही होकर *ईसालू* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जावत्या संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप 'लज्जालुआ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय 'वती' के स्थान पर 'आलु' आदेश; १-५ से 'ज्जा' में स्थित 'आ' के साथ 'आलु' प्रत्यय के 'आ' की संधि और ३-२९ से संस्कृत तृतीया विभक्ति के एक वचन में स्त्रीलिंग में 'टा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत-भाषा में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *लज्जालुआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शोभावान संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सोहिल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १–१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' आदेश; १–१० से प्राप्त 'हा' में स्थित 'आ' के आगे स्थित 'इल्ल' की 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'ह्' में आगे स्थित 'इल्ल' की 'इ' की संधि और ३–२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सोहिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

छायावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप छाइल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-१७७ से 'य्' का लोप; २-१५९ से 'वाला अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल'

आदेश १-१० से लोप हुए 'य' में से शेष 'आ' का आगे स्थित 'इल्ल' की 'इ' होने से लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *छाइल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

यामवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जामइल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; २-१५६ से 'वाला-अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जामइल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकारवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विआरुल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; २-१५६ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत-प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' आदेश; १-१० से 'र' में स्थित 'अ' का आगे स्थित 'उल्ल' का 'उ' होने से लोप; १-५ से 'र्' में 'उ' की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विआरुल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्मश्रुवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मंसुल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-७७ से हलन्त व्यञ्जन प्रथम 'श्' का लोप; १-२६ से 'म' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; २-७९ से 'श्रु' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से लोप, हुए 'र' के पश्चात् शेष रहे हुए 'शु' के 'श्' को 'स्' की प्राप्ति; २-१५९ से वाला-अर्थक संस्कृत-प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' आदेश; १-१० से 'सु' में स्थित 'उ' का आगे स्थित 'उल्ल' का 'उ' होने से लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मंसुल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

दर्पवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दप्पुल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष बचे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' आदेश; १-१० से 'प' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'उल्ल' प्रत्यय का 'उ' होने से लोप; १-५ से हलन्त व्यञ्जन द्वितीय 'प्' में आगे रहे हुए 'उल्ल' प्रत्यय के 'उ' की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दप्पुल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

शब्दवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सद्दालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; २-७९ से हलन्त व्यञ्जन 'ब्' का लोप; २-८९ से 'द' को द्वित्व 'द्द' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश; १-५ से 'द्द' में स्थित 'अ' स्वर के साथ प्राप्त 'आल' प्रत्यय में स्थित 'आ' स्वर की संधि और ३-२ से प्रथमा

विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सद्दालो रूप सिद्ध हो जाता है।

जटावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जडालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश; १-५ से प्राप्त 'डा' में स्थित 'आ' स्वर के साथ प्राप्त 'आल' प्रत्यय में स्थित 'आ' स्वर की संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जडालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

फटावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप फडालो होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त 'जडालो' रूप के समान ही होकर *फडालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रसवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रसालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश, १-५ से 'स' में स्थित 'अ' स्वर के साथ आगे प्राप्त 'आल' प्रत्यय में स्थित 'आ' स्वर की दीर्घात्मक संधि; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रसालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्योत्स्नावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जोण्हालो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-७७ से 'त्' का लोप; २-७५ से 'स्न्' के स्थान पर 'ण्ह' आदेश; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान' के स्थान पर प्राकृत में 'आल' आदेश; १-५ से प्राप्त 'ण्हा' में स्थित 'आ' स्वर के साथ आगे आये हुए 'आल' प्रत्यय में स्थित 'आ' स्वर की दीर्घात्मक संधि और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जोण्हालो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धणवन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'वन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धणवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भक्तिमान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भत्तिवन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'क्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ति' में स्थित 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर प्राकृत में 'वन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भत्तिवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हणुमन्तो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१२१ में की गई है।

श्रीमान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सिरिमन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१०४ से 'श्री' में स्थित 'श्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से प्राप्त 'शि' में स्थित 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-४ से दीर्घ 'री' में स्थित 'ई' के स्थान पर ह्रस्व 'इ' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिरिमन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुण्यवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पुण्णमन्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ण' को द्वित्व 'ण्ण' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मन्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुण्णमन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

काव्यवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कव्वइत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर प्रथम 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इत्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *कव्वइत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मानवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप माणइत्तो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'इत्त' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माणइत्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्ववान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गव्विरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान' के स्थान पर प्राकृत में 'इर' आदेश; १-१० से प्राप्त 'व्व' में रहे हुए 'अ' का आगे प्राप्त 'इर' प्रत्यय में स्थित 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'व्व्' में आगे स्थित 'इर' प्रत्यय के 'इ' की संधि; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गव्विरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

रेखावान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप रेहिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत

में 'इर' आदेश; १-१० से प्राप्त 'ह' में रहे हुए 'आ' का आगे प्राप्त 'इर' प्रत्यय में स्थित 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'ह्' में आगे स्थित 'इर' प्रत्यय के 'इ' की संधि; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रेहिरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनवान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धणमणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१५९ से 'वाला-अर्थक' संस्कृत प्रत्यय 'वान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मण' आदेश और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धणमणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

हनुमान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हणुमा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और २-१५९ की वृत्ति से संस्कृत 'वाला-अर्थक' प्रत्यय 'मान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मा' आदेश की प्राप्ति होकर *हणुमा* रूप सिद्ध हो जाता है।

धनी संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' का 'ण' होकर *धणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

आर्थिक संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अत्थिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'थ्' को द्वित्व थ्थ् की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त हुए 'प्रथम' 'थ' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति; १-७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अत्थिओ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१५९॥

त्तो दो तसो वा ॥२-१६०॥

तसः प्रत्ययस्य स्थाने त्तो दो इत्यादेशौ वा भवतः। सव्वत्तो सव्वदो। एकत्तो एकदो। अन्नत्तो अन्नदो। कत्तो कदो। जत्तो जदो। तत्तो तदो। इत्तो इदो॥ पक्षे सव्वओ इत्यादि।

अर्थः—संस्कृत में-'अमुक से' अर्थ में प्राप्त होने वाले 'तः' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'त्तो' और 'दो' ऐसे ये दो आदेश वैकल्पिक रूप से प्राप्त हुआ करते हैं। जैसेः—सर्वतः=सव्वत्तो अथवा सव्वदो। वैकल्पिक पक्ष में 'सव्वओ' भी होता है। एकतः=एकत्तो अथवा एकदो। अन्यतः=अन्नत्तो अथवा अन्नदो। कुतः=कत्तो अथवा कदो। यतः=जत्तो अथवा जदो। ततः=तत्तो अथवा तदो। इतः=इत्तो अथवा इदो। इत्यादि।

सर्वतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप सव्वत्तो, सव्वदो और सव्वओ होते हैं। इनमें से प्रथम दो रूपों में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात शेष बचे हुए

'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति और २-१६० संस्कृत प्रत्यय 'तः' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *सव्वत्तो* और *सव्वदो* यों प्रथम दो रूपों की सिद्धि हो जाती है।

तृतीय रूप *सव्वओ* की सिद्धि सूत्र-संख्या १-३७ में की गई है।

एकतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप एकत्तो और एकदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'तः' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *एकत्तो* और *एकदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

अन्यतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्नत्तो और अन्नदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या-२-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'तः' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *अन्नत्तो* और *अन्नदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

कुतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप कत्तो और कदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७१ से 'कु' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति; और २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'तः' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *कत्तो* और *कदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

यतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप जत्तो और जदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और २-१६० से संस्कृत प्रत्यय तः के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और दो आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *जत्तो* और *जदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

ततः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप तत्तो और तदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६० से संस्कृत प्रत्यय तः के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *तत्तो* और *तदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है।

इतः संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप इत्तो और इदो होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६० से संस्कृत प्रत्यय 'तः' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से 'त्तो' और 'दो' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *इत्तो* और *इदो* यों दोनों रूपों की सिद्धि हो जाती है। ॥२-१६०॥

त्रपो हि-ह-त्थाः ॥२-१६१॥

त्रप् प्रत्ययस्य एते भवन्ति ॥ यत्र । जहि । जह । जत्थ । तत्र । तहि । तह । तत्थ ॥ कुत्र । कहि । कह । कत्थ । अन्यत्र । अन्नहि । अन्नह । अन्नत्थ ॥

अर्थः—संस्कृत में स्थान वाचक 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'हि', 'ह' और 'त्थ' यों तीन आदेश क्रम से होते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं:-यत्र=जहि अथवा जह अथवा जत्थ ॥ तत्र=तहि अथवा

तह अथवा तत्थ ।। कुत्र = कहि अथवा कह अथवा कत्थ और अन्यत्र = अन्नहि अथवा अन्नह अथवा अन्नत्थ ।।

यत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप जहि, जह और जत्थ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति और २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत में 'हि', 'ह' और 'त्थ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से तीनों रूप *जहि*, *जह* और *जत्थ* सिद्ध हो जाते हैं।

तत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप तहि, तह और तत्थ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत 'हि', 'ह' और 'त्थ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से तीनों रूप *तहि*, *तह* और *तत्थ* सिद्ध हो जाते हैं।

कुत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप कहि, कह और कत्थ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या ३-७१ से 'कु' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति और २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत में 'हि' 'ह' और 'त्थ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से तीनों रूप *कहि*, *कह* और *कत्थ* सिद्ध हो जाते हैं।

अन्यत्र संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप अन्नहि, अन्नह और अन्नत्थ होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति और २-१६१ से 'त्र' प्रत्यय के स्थान पर क्रम से प्राकृत में 'हि', 'ह' और 'त्थ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से तीनों रूप *अन्नहि*, *अन्नह* और *अन्नत्थ* सिद्ध हो जाते हैं ।।२-१६१।।

वैकाद्दः सि सिअं इआ ।।२-१६२।।

एक शब्दात् परस्य दा प्रत्ययस्य सि सिअं इआ इत्यादेशा वा भवन्ति ।। एकदा । एक्कसि । एक्कसिअं । एक्कइआ । पक्षे । एगया ।।

अर्थः—संस्कृत शब्द 'एक' के पश्चात् रहे हुए 'दा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में क्रम से तथा वैकल्पिक रूप से 'सि' अथवा सिअं अथवा 'इआ' आदेशों की प्राप्ति हुआ करती है। जैसेः—एकदा= एक्कसि अथवा एक्कसिअं अथवा एक्कइआ। वैकल्पिक पक्ष होने से पक्षान्तर में एगया भी होता है।

एकदा संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप एकदा, एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कइआ और एगया होते हैं। इनमें से प्रथम रूप 'एकदा' संस्कृत रूपवत् होने से इसको साधनिका की आवश्यकता नहीं है। अन्य द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रूपों में सूत्र-संख्या २-९८ से 'क' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और २-१६२ से संस्कृत प्रत्यय 'दा' के स्थान पर प्राकृत में क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से 'सि', 'सिअं' और 'इआ' आदेशों की प्राप्ति होकर क्रम से *एक्कसि*, *एक्कसिअं* और *एक्कइआ* रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पंचम रूप-(एकदा=) एगया में सूत्र-संख्या १-१७७ की वृत्ति से अथवा ४-३९६ से 'क' के स्थान

पर 'ग' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप और १-१८० से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति होकर *एत्था* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१६२॥

डिल्ल-डुल्लौ भवे ॥२-१६३॥

भवेर्थे नाम्नः परौ इल्ल उल्ल इत्येतौ डितौ प्रत्ययौ भवतः ॥ गामिल्लिआ । पुरिल्लं । हेट्ठिल्लं । उवरिल्लं । अप्पुल्लं ॥ आल्वालावपीच्छन्त्यन्ये ॥

अर्थः—भव-अर्थ में अर्थात् 'अमुक में विद्यमान' इस अर्थ में प्राकृत-संज्ञा-शब्द में 'इल्ल' और 'उल्ल' प्रत्ययों की प्राप्ति हुआ करती है। जैसे:—ग्रामे भवा=ग्रामेयका=गामिल्लिआ; पुराभवं=पुरिल्लं; अधो-भवं = अधस्तनम् = हेट्ठिल्लं; उपरि-भवं = उपरितनम् = उवरिल्लं और आत्मनि-भवं = आत्मीयम् = अप्पुल्लं ॥ कोई कोई व्याकरणाचार्य 'अमुक में विद्यमान' अर्थ में 'आलु' और 'आल' प्रत्यय भी मानते हैं।

ग्रामेयका संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप गामिल्लिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव' वाचक प्रत्यय 'इय' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' की प्राप्ति; ३-३१ से प्राप्त पुल्लिंग रूप 'गामिल्ल' में स्त्रीलिंग 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से 'ल्ल' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होने से लोप; १-८४ से प्राप्त दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति और १-१७७ से 'क्' का लोप होकर *गामिल्लिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुराभवम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरिल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव' वाचक प्रत्यय 'भव' के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' की प्राप्ति; १-१० से 'रा' में स्थित 'आ' स्वर का आगे 'इल्ल' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में 'इल्ल' के 'इ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *पुरिल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अधस्तनम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हेट्ठिल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४१ से 'अधस्' के स्थान पर 'हेट्ठ' आदेश; २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव' वाचक प्रत्यय 'तन' के स्थान पर 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से 'ट्ठ' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'इल्ल' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से हलन्त व्यञ्जन 'ट्ठ्' में 'इल्ल' के 'इ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हेट्ठिल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उपरितनम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उवरिल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव' वाचक प्रत्यय 'तन' के स्थान पर 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से 'रि' में स्थित 'इ' स्वर का आगे 'इल्ल' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से हलन्त व्यञ्जन 'र्' में 'इल्ल' के 'इ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर उवरिल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्मीयम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पुल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-५१ से 'त्म' के स्थान पर द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-१६३ से संस्कृत 'तत्र-भव' वाचक प्रत्यय 'इय' के स्थान पर प्राकृत में 'उल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त 'प्प' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'उल्ल' प्रत्यय का 'उ' होने से लोप; १-५ से हलन्त व्यञ्जन 'प्प' में 'उल्ल' प्रत्यय के 'उ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर अप्पुल्लं रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१६३॥

स्वार्थे कश्च वा ॥२-१६४॥

स्वार्थे कश्चकारादिल्लोल्लौ डितौ प्रत्ययौ वा भवतः ॥ क । कुङ्कुम पिञ्जरयं । चन्दओ । गयणयम्मि । धरणीहर-पक्खुब्भन्तयं । दुहिअए राम-हिअयए । इहयं । आलेट्ठुअं । आश्लेष्टु-मित्यर्थः ॥ द्विरपि भवति । बहुअयं ॥ ककारोच्चारणं पैशाचिक-भाषार्थम् । यथा । वतनके वतनकं समप्पेत्तून ॥ इल्ल । निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण पुरिल्लो । पुरो पुरा वा ॥ उल्ल । मह पिउल्लओ । मुहुल्लं । हत्थुल्ला । पक्षे चन्दो । गयणं । इह । आलेट्ठुं बहु । बहुअं । मुहं । हत्था ॥ कुत्सादि विशिष्टे तु संस्कृतवदेव कप् सिद्धः ॥ यावादिलक्षणः कः प्रतिनियत विषय एवेति वचनम् ॥

अर्थः—'स्वार्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति हुआ करती है और कभी कभी वैकल्पिक रूप से 'स्व-अर्थ' में 'इल्ल' और 'उल्ल' प्रत्ययों की भी प्राप्ति हुआ करती है। 'क' से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार हैं:—कुङ्कुम पिंजरम् = कुङ्कुम पिञ्जरयं; चन्द्रकः = चन्दओ; गगने = गयणयम्मि; धरणी-धर-पक्षोद्भ्रान्तम् = धरणीहर-पक्खुब्भन्तयं; दुःखिते राम हृदये = दुहिअए रामहिअयए; इह = इहयं; आश्लेष्टुम् = आलेट्ठुअं इत्यादि ॥ कभी कभी 'स्व-अर्थ' में दो 'क' की भी प्राप्ति होती हुई देखी जाती है। जैसेः—बहुक-कम् = बहुअयं। यहाँ पर 'क' का उच्चारण पैशाचिक-भाषा की दृष्टि से है। जैसेः-वदने वदनं समर्पित्वा = वतनके वतनकं समप्पेत्तून इत्यादि। 'इल्ल' प्रत्यय से सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार हैं:-निर्जिताशोक पल्लवेन = निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण; पुरो अथवा पुरा = पुरिल्लो; इत्यादि। 'उल्ल' प्रत्यय से संबंधित

उदाहरण इस प्रकार है:—ममपितृकः = मह-पिउल्लओ; मुख (क) म् = मुहुल्लं; हस्ताः = (हस्तकाः) = हत्थुल्ला इत्यादि। पक्षान्तर में चन्दो, गयणं, इह, आलेट्ठु, बहु, बहुअं, मुहं और हत्था रूपों की प्राप्ति भी होती है। कुत्स, अल्पज्ञान आदि अर्थ में प्राप्त होने वाला 'क' संस्कृत-व्याकरण के समान ही होता है। ऐसे विशेष अर्थ में 'क' की सिद्धि संस्कृत के समान ही जानना। 'यावादिलक्षण' रूप से प्राप्त होने वाला 'क' सूत्रानुसार ही प्राप्त होता है और उसका उद्देश्य भी उसी तात्पर्य को बतलाने वाला होता है।

कुङ्कुमपिञ्जर (क) म् = संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कुङ्कुम पिञ्जरयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६४ से 'स्वार्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'क' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कुङ्कुमपिञ्जरयं* रूप सिद्ध होता है।

गगने (= गगनके) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गयणयम्मि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'ग्' का लोप; १-१८० से लोप हुए द्वितीय 'ग्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ए' के स्थान पर प्राकृत में 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गयणयम्मि* रूप सिद्ध हो जाता है।

धरणी धर-पक्षोद्भ्रान्तम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धरणी हर-पक्खुब्भन्तयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से द्वितीय 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की की प्राप्ति १-८४ से दीर्घ स्वर 'ओ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति एवं १-५ से हलन्त 'ख्' के साथ सम्मिलित होकर 'खु' की प्राप्ति; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'द्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए 'भ' को द्वित्व 'भ्भ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति; १-८४ से 'भ्रा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२६ से 'भ' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति; १-३० से प्राप्त अनुस्वार के स्थान पर आगे 'त' वर्ण होने से 'त' वर्ग के पंचमाक्षर रूप 'न्' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *धरणी हर-पक्खुब्भन्तयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

दुः*खिते* (= दुःखितके) संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दुहिअए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' आदेश; १-१७७ से 'त्' का लोप; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में

'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'क्' का लोप और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दुहिअए* रूप सिद्ध हो जाता है।

राम-हृदये (=राम-हृदयके) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप राम-हिअयए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'क्' का लोप और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *राम-हिअयए* रूप सिद्ध हो जाता है।

इहयं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४ में की गई है।

आलेट्ठुअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२४ में की गई है।

बहुम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप बहुअयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६४ की वृत्ति से मूल रूप 'बहु' में दो 'ककारों' की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त दोनों 'क्' का हलन्त रूप से लोप; १-१८० से लोप हुए द्वितीय 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति; और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बहुअयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वने संस्कृत रूप है। इसका पैशाचिक-भाषा में वतनके रूप होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-३०७ से 'द' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वतनके* रूप में सिद्ध हो जाता है।

वदनम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका पैशाचिक-भाषा में वतनकं रूप होता है। 'वतनक' रूप तक की साधनिका उपरोक्त 'वतनके' के 'वतनक' समान ही जानना; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वतनकं* रूप सिद्ध हो जाता है।

समर्पित्वा संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका पैशाचिक भाषा में समप्पेतून रूप होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'प्' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; ३-१५७ से मूल रूप में 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'समप्प' धातु में स्थित अन्त्य 'अ' विकरण प्रत्यय के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; (नोट:—सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त धातु 'समप्प्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति हुई है); २-१४६ से कृदन्त वाचक संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'तूण' प्रत्यय की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'तूण' प्रत्यय में स्थित 'त्' के स्थान पर द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति; और ४-३०६ से प्राकृत भाषा के शब्दों में स्थित 'ण' के स्थान पर पैशाचिक-भाषा में 'न' की प्राप्ति होकर *समप्पेतून* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्जिताशोक-पल्लवेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत-रूप निज्जिआसोअ-पल्लविल्लेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से हलन्त 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ज्' को द्वित्व 'ज्ज'

की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' और 'क्' का लोप; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'डिल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डिल्ल' प्रत्यय में इत्-संज्ञक 'ड्' होने से 'व्' में स्थित अन्त्य 'अ' का लोप एवं १-५ से प्राप्त 'इल्ल' प्रत्यय की 'इ' की प्राप्त हलन्त 'व्' में संधि और ३-६ से संस्कृत तृतीया विभक्ति के एक वचन में प्राप्त 'टा' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति एवं ३-१४ से प्राप्त 'ण' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'ल्ल' के 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *निच्चिअआसोअ-पल्लविल्लेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरः अथवा *पुरा* संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरिल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'डिल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डिल्ल' प्रत्यय में इत्-संज्ञक 'ड्' होने से 'रो' के 'ओ' की अथवा 'रा' के 'आ' की इत्-संज्ञा; १-५ से प्राप्त 'इल्ल' प्रत्यय की 'इ' की प्राप्त हलन्त 'र्' में संधि; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पुरिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

मम-पितृकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मह-पिउल्लओ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-११३ से संस्कृत रूप 'मम' के स्थान पर 'मह' आदेश; १-१७७ से 'त्' का लोप; २-१६४ से संस्कृत-'स्व-अर्थ' द्योतक प्रत्यय 'क' के स्थान पर प्राकृत में 'डुल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डुल्ल' प्रत्यय में 'ड्' इत्-संज्ञक होने से 'तृ' में से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए स्वर-'ऋ' की इत्-संज्ञा; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मह-पिउल्लओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

मुखम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप मुहुल्लं और मुहं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह' आदेश; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में 'डुल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डुल्ल' प्रत्यय में 'ड्' इत्-संज्ञक होने से प्राप्त 'ह' में स्थित 'अ' की इत्-संज्ञा; १-५ से प्राप्त हलन्त 'ह्' में प्राप्त प्रत्यय 'उल्ल' के 'उ' की संधि; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *मुहुल्लं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मुहं* की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१८७* में की गई है।

हस्तौ संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप हत्थुल्ला और हत्था होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-४५ से 'स्त' के स्थान पर 'थ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'थ' के स्थान पर द्वित्व 'थ्थ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ' के स्थान पर 'त' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'डुल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डुल्ल' प्रत्यय में 'ड्' इत्-संज्ञक होने से प्राप्त 'त्थ' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा; १-५ से प्राप्त हलन्त 'त्थ्' में प्राप्त प्रत्यय 'उल्ल' के 'उ' की संधि; ३-१३० से संस्कृत रूप में स्थित द्विवचन के स्थान पर प्राकृत में बहुवचन की प्राप्ति; तदनुसार ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के कारण से 'ल्ल' में स्थित अथवा वैकल्पिक पक्ष होने से 'त्थ' में स्थित 'अ' स्वर के दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर क्रम से *हत्थुल्ला* और *हत्था* दोनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चन्दो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-३० में की गई है।

गगनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप गयणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'ग्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *गयणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इह रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९ में की गई है।

आश्लेष्टुम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप आलेट्ठुं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'श्' का लोप; २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *आलिट्ठुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहु *(के)* संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप बहु और बहुअं होते हैं। प्रथम रूप 'बहु' संस्कृत 'वत्' सिद्ध ही है। द्वितीय-रूप में सूत्र संख्या २-१६४ से स्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'क्' प्रत्यय का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर द्वितीय रूप *बहुअं* भी सिद्ध हो जाता है ॥२-१६४॥

ल्लो नवैकाद्वा ॥ २-१६५ ॥

आभ्यां स्वार्थे संयुक्तो लो वा भवति ॥ नवल्लो । एकल्लो ॥ सेवादित्वात् कस्य द्वित्वे एक्कल्लो । पक्षे । नवो । एक्को । एओ ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'नव' और 'एक' में स्व-अर्थ में प्राकृत-भाषा में वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे:—नवः = नवल्लो अथवा नवो। एकः = एकल्लो अथवा एओ ॥ सूत्र संख्या २-९९ के अनुसार एक शब्द सेवादि-वर्ग वाला होने से इसमें स्थित 'क्' को वैकल्पिक रूप से द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति हो जाती है; तदनुसार 'एकः' के प्राकृत रूप 'स्व-अर्थ' में एक्कल्लो' और 'एक्को' भी होते हैं।

नवः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप (स्वार्थ बोधक प्रत्यय के साथ) नवल्लो और नवो होते हैं इनमें सूत्र संख्या २-१६५ से स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से संयुक्त अर्थात् द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से *नवल्लो* और *नवो* दोनों रूप सिद्ध जाते हैं।

एकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप-(स्वार्थ-बोधक प्रत्यय के साथ)-एकल्लो, एक्कल्लो, एक्को और एओ होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१६५ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से संयुक्त अर्थात् द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर

'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप एक्कल्लो सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(एकः=) एक्कल्लो में सूत्र-संख्या २-९९ से 'क' के स्थान पर द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति और शेष साधनिका प्रथम रूप के समान ही होकर द्वितीय रूप एक्कल्लो सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप एक्को और चतुर्थ रूप एओ की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९९ में की गई है ।। २-१६५ ।।

उपरेः संव्याने ॥२-१६६॥

संव्यानेर्थे वर्तमानादुपरि शब्दात् स्वार्थे ल्लो भवति ॥ अवरिल्लो ॥ संव्यान इति किम् । अवरिं ॥

अर्थः—'ऊपर का कपड़ा' इस अर्थ में यदि 'उपरि' शब्द रहा हुआ हो तो 'स्व-अर्थ' में 'उपरि' शब्द के साथ 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसेः—उपरितनः=अवरिल्लो।

प्रश्नः—'संव्यान=ऊपर का कपड़ा' ऐसा होने पर ही उपरि—'उवरि' के साथ में 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है ऐसा प्रतिबंधात्मक उल्लेख क्यों किया गया है ?

उत्तरः—यदि 'उपरि' शब्द का अर्थ 'ऊपर का कपड़ा' नहीं होकर केवल 'ऊपर' सूचक अर्थ ही होगा तो ऐसी स्थिति में स्व-अर्थ बोधक 'ल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति प्राकृत साहित्य में नहीं देखी जाती है; इसीलिये प्रतिबंधात्मक उल्लेख किया गया है। जैसेः—उपरि=अवरिं ॥

उपरितनः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप-(स्वार्थ-बोधक प्रत्यय के साथ) अवरिल्लो होता है इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; १-१०७ से 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-१६६ से संस्कृत स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय 'तन' के स्थान पर प्राकृत में 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवरिल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

अवरिं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२६* में की गई है ।।२-१६६।।

भ्रुवो मया डमया ॥२-१६७॥

भ्रु शब्दात् स्वार्थे मया डमया इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ भुमया । भमया ॥

अर्थः—'भ्रू' शब्द के प्राकृत रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में कभी 'मया' प्रत्यय आता है और कभी 'डमया' (=अमया)-प्रत्यय आता है। 'मया' प्रत्यय के साथ में 'भ्रू' शब्द में स्थित अन्त्य 'उ' की इत्-संज्ञा नहीं होती है; किन्तु 'डमया' प्रत्यय में आदि में स्थित 'ड्' इत्संज्ञक है; अतः 'डमया' प्रत्यय की प्राप्ति के समय में 'भ्रू' शब्द में स्थित अन्त्य 'ऊ' की इत्संज्ञा हो जाती है। यह अन्तर ध्यान में रखना चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं:— भ्रूः=भुमया अथवा भमया ॥

भमया रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१२१ में की गई है।

भ्रूः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप (स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय के साथ) भमया होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-१६७ से स्व-अर्थ' में प्राप्त प्रत्यय 'डमया' में स्थित 'ड्' इत्संज्ञक होने से प्राप्त 'भू' में स्थित अन्त्य स्वर 'ऊ' की इत्संज्ञा होकर 'अमया' प्रत्यय की प्राप्ति; १-५ से हलन्त 'भ्' में 'डमया' प्रत्यय में से अवशिष्ट 'अमया' के 'अ' की संधि; और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *भमया* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१६७ ॥

शनैसो डिअम् ॥ २-१६८ ॥

शनैस् शब्दात् स्वार्थे डिअम् भवति ॥ सणिअमवगूढो ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'शनैः' के प्राकृत रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में 'डिअम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। 'डिअम्' प्रत्यय में आदि 'ड्' इत्संज्ञक होने से 'शनैः' के 'ऐ' स्वर को इत्संज्ञा होकर 'इअम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे:-शनैः अवगूढः=सणिअम् अवगूढो अथवा सणिअमवगूढो ॥

शनैः (=शनैस्) संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप सणिअम् होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; २-१६८ से 'स्व-अर्थ' में 'डिअम्' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त 'डिअम्' प्रत्यय में 'ड्' इत्संज्ञक होने से 'ऐ' स्वर की इत्संज्ञा अर्थात् लोप; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन विसर्ग रूप 'स्' का लोप; और १-५ से प्राप्त रूप 'सण्' में पूर्वोक्त 'इअम्' की संधि होकर सणिअम् रूप सिद्ध हो जाता है।

अवगूढः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अवगूढो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अवगूढो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१६८ ॥

मनाको न वा डयं च ॥ २-१६९ ॥

मनाक् शब्दात् स्वार्थे डयम् डिअम् च प्रत्ययो वा भवति ॥ मणयं । मणियं । पक्षे । मणा ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय रूप मनाक् शब्द के प्राकृत रूपान्तर में स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से कभी 'डयम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है, कभी 'डिअम्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है और कभी-कभी स्व-अर्थ में किसी भी प्रकार के प्रत्यय की प्राप्ति नहीं भी होती है जैसे:—मनाक् = मणयं अथवा मणियं और वैकल्पिक पक्ष में मणा जानना।

मनाक् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत-रूप (स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय के साथ)-मणयं, मणियं और मणा होते हैं। इनमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति, १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप,

२-१६९ से वैकल्पिक रूप से एवं क्रम से 'स्व-अर्थ' में 'डयम्' और 'डिअम्' प्रत्ययों की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्ययों में 'ड्' इत्संज्ञक होने से प्राप्त रूप 'मणा' में से अन्त्य 'आ' का लोप, १-५ से प्राप्त रूप 'मण्' के साथ प्राप्त प्रत्यय रूप 'अयम्' और 'इअम्' की क्रमिक संधि, १-१८० से द्वितीय रूप 'मणिअम्' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त हलन्त व्यञ्जन 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *मणयं* और *मणियं* सिद्ध हो जाते हैं।

तृतीय रूप-(मनाक्=) मणा में सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'क्' का लोप होकर *मणा* रूप सिद्ध हो जाता है। २-१६९ ॥

मिश्राड्डालिअः ॥२-१७०॥

मिश्र शब्दात् स्वार्थे डालिअः प्रत्ययो वा भवति ॥ मीसालिअं । पक्षे । मीसं ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'मिश्र' के प्राकृत रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'डालिअ' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। 'डालिअ' प्रत्यय में आदि 'ड्' इत्संज्ञक होने से 'मिश्र' में स्थित अन्त्य 'अ' की इत्संज्ञा होकर तत्पश्चात् 'आलिअ' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। उदाहरण इस प्रकार है:—मिश्रम्=मीसालिअं और वैकल्पिक पक्ष होने से मीसं रूप भी होता है।

मिश्रम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत रूप मीसालिअं और मीसं होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-४३ से ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति, १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति, २-१७० से स्व-अर्थ में 'डालिअ=आलिअ' प्रत्यय की प्राप्ति, प्राप्त प्रत्यय में 'ड' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'स' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा, १-५ से प्राप्त रूप 'मीस्' के हलन्त 'स्' के साथ प्राप्त प्रत्यय 'आलिअ' के 'आ' की संधि, ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर प्रथम रूप *मीसालिअं* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप *मीसं* की सिद्धि सूत्र संख्या *१-४३* में की गई है। २-१७० ॥

रो दीर्घात् ॥२-१७१॥

दीर्घ शब्दात् परः स्वार्थे रो वा भवति ॥ दीहरं । दीहं ॥

अर्थः—संस्कृत विशेषणात्मक शब्द 'दीर्घ' के प्राकृत रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'र' प्रत्यय की प्राप्ति होती है। जैसे:—दीर्घम्=दीहरं अथवा दीहं ॥

दीर्घं संस्कृत विशेषण रूप है। इसके प्राकृत-रूप-(स्व-अर्थ-बोधक प्रत्यय के साथ)-दीहरं और दीहं होते हैं। इनमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप, १-१८७ से 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-१७१ से स्व-अर्थ में वैकल्पिक रूप से 'र' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि'

प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *दीहरं* और *दीहं* सिद्ध हो जाते हैं ॥ २-१७१ ॥

त्वादेः सः ॥२-१७२॥

भावे त्व-तल् (हे० ७-१) इत्यादिना विहितात्त्वादेः परः स्वार्थे स एव त्वादि र्वा भवति ॥ मृदुकत्वेन । मउअत्तयाइ ॥ आतिशायिका त्त्वातिशायिकः संस्कृतवदेव सिद्धः । जेट्ठयरो । कणिट्ठयरो ॥

अर्थः—आचार्य हेमचन्द्र कृत संस्कृत-व्याकरण से (हे० ७-१-सूत्र में)—भाव-अर्थ में 'त्व' और 'तल्' प्रत्ययों की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है। प्राकृत-व्याकरण में भी 'भाव अर्थ' में इन्हीं 'त्व' आदि प्रत्ययों की ही प्राप्ति वैकल्पिक रूप से तथा 'स्व-अर्थ-बोधकता' रूप से होती है। जैसेः—मृदुकत्वेन=मउअत्तयाइ ॥ अतिशयता' सूचक प्रत्ययों से निर्मित संस्कृत-शब्दों के प्राकृत-रूपान्तर में उन्हीं 'अतिशयता' सूचक प्रत्ययों की प्राप्ति होती है; जो कि 'अतिशयता-सूचक' अर्थ में संस्कृत में आये हैं। जैसेः—ज्येष्ठतरः=जेट्ठयरो। इस उदाहरण में संस्कृत-रूप में प्राप्त प्रत्यय 'तर' का ही प्राकृत रूपान्तर 'यर' हुआ है। यह 'तर' अथवा 'यर' प्रत्यय आतिशायिक स्थिति का सूचक है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार हैः—कनिष्ठतरः=कणिट्ठयरो। इस उदाहरण में भी प्राप्त प्रत्यय 'तर' अथवा 'यर' तारतम्य रूप से विशेष हीनता सूचक होकर आतिशायिक-स्थिति का द्योतक है। यों अन्य उदाहरणों में भी संस्कृत भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले आतिशायिक स्थिति' के द्योतक प्रत्ययों की स्थिति प्राकृत-रूपान्तर में बनी रहती है।

मृदुकत्वेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप (स्व-अर्थ बोधक प्रत्यय के साथ) मउअत्तयाइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' और 'क्' का लोप; २-७९ से 'व्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'व' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-३१ की वृत्ति से स्त्रीलिंग-वाचक अर्थ में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१८० से प्राप्त स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मउअत्तयाइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ज्येष्ठतरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जेट्ठयरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य' का लोप; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'ष्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ठ' के स्थान पर द्वित्व 'ठ्ठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'ठ' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जेट्ठयरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कनिष्ठतरः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप कणिट्ठयरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति और शेष सम्पूर्ण साधनिका उपरोक्त 'जेट्ठयरो' रूप के समान ही होकर *कणिट्ठयरो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१७२ ॥

विद्युत्पत्र-पीतान्धाल्लः ॥ २-१७३ ॥

एभ्यः स्वार्थे लो वा भवति । विज्जुला । पत्तलं । पीवलं । पीअलं । अन्धलो । पक्षे । विज्जू । पत्तं । पीअं । अन्धो ॥ कथं जमलं ; यमलमिति संस्कृत शब्दात् भविष्यति ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द विद्युत्, पत्र, पीत, और अन्ध के प्राकृत-रूपान्तर में 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति होती है । जैसे:-विद्युत्=विज्जुला अथवा विज्जू; पत्रम्=पत्तलं अथवा पत्तं; पीतम्=पीवलं, पीअलं अथवा पीअं और अन्धः=अन्धलो अथवा अन्धो ।

प्रश्नः—प्राकृत रूप जमलं की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तरः—प्राकृत रूप 'जमलं' में स्थित 'ल' स्वार्थ-बोधक प्रत्यय नहीं है; किन्तु मूल संस्कृत रूप 'यमलम्' का ही यह प्राकृत रूपान्तर है, तदनुसार 'ल' मूल-स्थिति से रहा हुआ है; न कि प्रत्यय रूप से; यह ध्यान में रहे ।

विद्युत् से निर्मित *विज्जुला* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५ में की गई है और *विज्जू* रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१५ में की गई है ।

पत्रम् संस्कृत रूप है । इसके प्राकृत रूप पत्तलं और पत्तं होते हैं । इनमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; २-१७३ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर क्रम से दोनों रूप *पत्तलं* और *पत्तं* सिद्ध हो जाते हैं ।

पीवलं और *पीअलं* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२१३ में की गई है ।
तृतीय रूप *पीअं* की सिद्धि भी सूत्र-संख्या १-२१३ में की गई है ।

अन्धः संस्कृत विशेषण रूप है । इसके प्राकृत रूप अन्धलो और अन्धो होते हैं । इनमें सूत्र-संख्या २-१७३ से 'स्व-अर्थ' में वैकल्पिक रूप से 'ल' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर क्रम से दोनों रूप *अन्धलो* और *अन्धो* सिद्ध हो जाते हैं ।

यमलम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप जमलं होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जमलं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१७३ ॥

गोणादयः ॥२-१७४॥

गोणादयः शब्दा अनुक्त-प्रकृति-प्रत्यय-लोपागम-वर्णविकारा बहुलं निपात्यन्ते ॥

गौः । गोणो । गावी ॥ गावः । गावीओ ॥ बलीवर्दः । बइल्लो ॥ आपः । आऊ ॥ पञ्च पञ्चाशत् । पञ्चावण्णा । पणपन्ना । त्रिपञ्चाशत् । तेवण्णा ॥ त्रिचत्वारिंशत् । तेआलीसा ॥ व्युत्सर्गः । विउसग्गो ॥ व्युत्सर्जनम् । वोसिरणं ॥ बहिर्मैथुनं वा । बहिद्धा ॥ कार्यम् । णामुक्कसिअं ॥ क्वचित् । कत्थइ ॥ उद्वहति । मुव्वहइ ॥ अपस्मारः । वम्हलो ॥ उत्पलम् । कन्दुट्टं धिक्धिक् । छिछि । धिद्धि ॥ धिगस्तु । धिरत्थु ॥ प्रतिस्पर्धा । पडिसिद्धी । पाडिसिद्धी ॥ स्थासकः । चच्चिक्कं ॥ निलयः । निहेलणं । मघवान् । मघोणो । साक्षी । सक्खिणो । जन्म । जम्मणं ॥ महान् । महन्तो । भवान् । भवन्तो ॥ आशीः । आसीसा ॥ क्वचित् हस्य ड्भौ ॥ बृहत्तरम् । बड्डयरं ॥ हिमोरः । भिमोरो ॥ क्षुल्लस्य डः । क्षुल्लकः । खुड्डओ । घोषाणामग्रेतनो गायनः । घायणो ॥ वडः । वढो ॥ ककुदम् । ककुधं ॥ अकाण्डम् । अत्थक्कं ॥ लज्जावती । लज्जालुइणी ॥ कुतूहलम् । कुड्डं ॥ चूतः । मायन्दो । माकन्द शब्दः संस्कृते पीत्यन्ये ॥ विष्णुः । भट्टिओ ॥ श्मशानम् । करसी ॥ असुराः । अगया ॥ खेलम् । खेड्डं ॥ पौष्पं रजः । तिङ्गिच्छि ॥ दिनम् । अल्लं ॥ समर्थः । पक्कलो । पण्डकः । णेलच्छो ॥ कर्पासः । पलही ॥ बली । उज्जल्लो ॥ ताम्बूलम् । झसुरं ॥ पुंश्चली । छिंछई ॥ शाखा । साहुली ॥ इत्यादि ॥ [illegible] इत्याद्यपि भवति ॥ गोला गोआवरी इति तु गोदागोदावरीभ्यां सिद्धम् ॥ भाषा शब्दाश्च । आहित्थ । लल्लक्क । विड्डिर । पच्चड्डिअ । उप्पेहड । मडप्फर । पड्डिच्छिर । अट्टमट्ट । विहडप्फड । अज्जल्ल । हल्लप्फल इत्यादयो महाराष्ट्र विदर्भादिदेशप्रसिद्धा लोकतोऽवगन्तव्याः ॥ क्रिया शब्दाश्च । अवयासइ । फुम्फुल्लइ उप्फालेइ । इत्यादयः । अतएव च कृष्ट-घृष्ट-वाक्य विद्वस् वाचस्पति विष्टर श्रवस्-प्रचेतस्-प्रोक्त-प्रोतादीनाम् क्विबादि प्रत्ययान्तानां च अग्निचित्सोमसुत्सुग्लसुम्लेत्यादीनां पूर्वैः कविभिरप्रयुक्तानां प्रतीतिवैषम्यपरः प्रयोगो न कर्तव्यः शब्दान्तरैरेव तु तदर्थोऽभिधेयः । यथा कृष्टः कुशलः । वाचस्पतिर्गुरुः विष्टरश्रवा हरिरित्यादि ॥ घृष्ट शब्दस्य तु सोपसर्गस्य प्रयोग इष्यत एव । मन्दर-यड परिघट्टं । तद्दिअस-निहट्ठाणङ्ग इत्यादि ॥ आर्षे तु यथादर्शनं सर्वमविरुद्धम् । यथा । घट्ठा । मट्ठा । विउसा । सुअ-लक्खणाणुसारेण । वक्कन्तरेसु अ पुणो इत्यादि ॥

अर्थः—इस सूत्र में कुछ एक ऐसे शब्दों का उल्लेख किया गया है; जिनमें प्राकृत-व्याकरण के अनुसार प्राप्त होने वाली प्रकृति, प्रत्यय, लोप, आगम और वर्ण विकार आदि स्थितियों का अभाव है; और जो केवल संस्कृत भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले शब्दों के स्थान पर प्रायः प्रयुक्त किये जाते हैं। ऐसे शब्दों की स्थिति 'देशज-शब्द-समूह' के अन्तर्गत ही मानी जा सकती है। जैसे:—संस्कृत शब्द 'गौः' के स्थान पर गोणो अथवा गावी का प्रयोग होता है; ऐसे ही संस्कृत-शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले देशज शब्दों की सामान्य-सूची इस प्रकार है:- गावः = गावीओ; बलीवर्दः = बइल्लो; आपः = आऊ; पञ्चपञ्चाशत् = पञ्चावण्णा अथवा पणपन्ना; त्रिपञ्चाशत् =

तेवण्णा; त्रिचत्वारिंशत् = तेआलीसा; व्युत्सर्गः = विउसग्गो; व्युत्सर्जनम् = वोसिरणं; बहिः अथवा मैथुनम् = बहिद्धा; कार्यम् = णामुक्कसिअं; क्वचित् = कत्थइ; उद्वहति = मुव्वहइ; अपस्मारः = वम्हलो; उत्पलम् = कन्दुट्टं; धिक्धिक् = छिछि अथवा धिद्धि; धिगस्तु = धिरत्थु; प्रतिस्पर्धा = पडिसिद्धि अथवा पाडिसिद्धी; स्थासकः = चच्चिक्कं; निलयः = निहेलणं; मघवान् = मघोणं; साक्षी = सक्खिणो; जन्म = जम्मणं; महान् = महन्तो; भवान् = भवन्तो; आशीः = आसीसा। कुछ एक संस्कृत शब्दों में स्थित 'ह' के स्थान पर देशज-शब्दों में कभी 'ड्ड' की प्राप्ति होती हुई देखी जाती है और कभी 'भ' की प्राप्ति होती हुई पाई जाती है। जैसेः-बृहत्तरम् = वड्डयरं और हिमोरः = भिमोरो। कभी कभी संस्कृत शब्द में रहे हुए 'ल्ल' के स्थान पर 'ड्ड' का सद्भाव पाया जाता है; जैसेः-क्षुल्लकः = खुड्डुओ। कभी कभी संस्कृत शब्दों में स्थित 'घोष-अल्प प्राण' प्रयत्न वाले अक्षरों के स्थान पर देशज-शब्दों में 'घोष-महा-प्राण प्रयत्न वाले अक्षरों का अस्तित्व देखा जाता है; अर्थात् वर्गीय तृतीय अक्षर के स्थान पर चतुर्थ अक्षर का सद्भाव पाया जाता है; जैसेः-गायनः = घायणो; वडः = वढो और ककुदम् = ककुधं इत्यादि। अन्य देशज एवं रूढ शब्दों के कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैः-अकाण्डम् = अत्थक्कं; लज्जावती = लज्जालुइणी; कुतूहलम् = कुड्डं; चूतः = मायन्दो; कोई कोई व्याकरणाचार्य देशज शब्द मायन्दो का संस्कृत रूपान्तर माकन्दः भी करते हैं। सर्वथा रूढ देशज शब्द इस प्रकार हैः—विष्णुः = भट्टिओ; श्मशानम् करसी; असुराः = अगया; खेलम् = खेड्डं; पौष्परजः = तिगिच्छि; दिनम् = अल्लं समर्थः = पक्कलो; पण्डकः = णेलच्छो; कर्पासः = पलही; बली = उज्जलो; ताम्बूलम् = झसुरं; पुंश्चली = छिछई; शाखा = साहुली इत्यादि। बहुलम् अर्थात् वैकल्पिक-पक्ष का उल्लेख होने से 'गौः' का 'गउओ' रूप भी होता है; यह स्थिति अन्य शब्द-रूपों के सम्बंध में भी जानना। संस्कृत शब्द 'गोला' से देशज शब्द 'गोला' बनता है और 'गोदावरी' से 'गोआवरी' बनता है। अनेक देशज शब्द ऐसे हैं जो कि महाराष्ट्र प्रान्त और विदर्भ प्रान्त में बोले जाते हैं; प्रांतीय भाषा जनित होने से इनके "संस्कृत-पर्याय-वाचक शब्द" नहीं होते हैं। कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं—आहित्थ लल्लक्क, विड्डिर, पच्चड्डिअ, उप्पेहड, मडप्फर, पड्डिच्छिर, अट्टमट्ट, विहडप्फड, अज्जल्ल, हल्लप्फल्ल इत्यादि; ऐसे शब्दों का अर्थ प्रान्तीय जनता के बोल-चाल के व्यवहार से जाना जा सकता है। कुछक प्रान्तीय रूढ क्रिया शब्दों के अर्थ भी प्रान्तीय जनता के बोल-चाल के व्यवहार से ही जाना जा सकता है। इसी तरह से कृष्ट, घृष्ट, वाक्य विद्वस, वाचस्पति, विष्टर श्रवस्, प्रचेतस्, प्रोक्त और प्रोत इत्यादि शब्दों का; एवं क्विप प्रत्ययान्त शब्दों का जैसे कि-अग्निचित्, सोमसुत्, सुग्ल और सुम्ल इत्यादि ऐसे शब्दों का तथा पूर्ववर्त्ती कवियों ने जिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए; क्योंकि इससे अर्थ-क्लिष्टता तथा प्रतीति विषमता जैसे दोषों की उत्पत्ति होती है। अतएव सरल शब्दों द्वारा अभिधेय-अर्थ को प्रकट करना चाहिए। जैसेः-कृष्ट के स्थान पर 'कुशल'; वाचस्पति के स्थान पर 'गुरु' और विष्टर श्रवा के स्थान पर 'हरि' जैसे सरल शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिये। घृष्ट शब्द के साथ यदि कोई उपसर्ग जुड़ा हुआ हो तो इसका प्रयोग किया जाना वांछनीय ही है। जैसेः—मंदर-तट-परिघृष्टम् = मन्दरयड- परिघट्टं; तद्दिवस-निघृष्टानंगः = तद्दिअस-निहट्ठाणंगो इत्यादि; इन उदाहरणों में 'घृष्ट = घट्ठ अथवा हट्ठ' प्रयुक्त किया गया है, इसका कारण यह है कि 'घृष्ट' के साथ क्रम से 'परि' एवं 'नि' उपसर्ग जुड़ा हुआ है; किन्तु उपसर्ग रहित अवस्था में 'घृष्ट' का प्रयोग कम ही देखा जाता है। आर्ष-प्राकृत में घृष्ट का प्रयोग देखा जाता है;

इसका कारण पूर्व-वर्ती परम्परा के प्रति आदर-भाव ही है। जो कि अविरुद्ध स्थिति वाला ही माना जायगा। जैसे:- घृष्टाः = घट्ठा; मृष्टा = मट्ठा; विद्वांसः = विउसा; श्रुत-लक्षणानुसारेण = सुअ-लक्खणाणुसारेण और वाक्यान्तरेषु च पुनः = वक्कन्तरेसु अ पुणो इत्यादि आर्ष-प्रयोग में अप्रचलित प्रयोगों का प्रयुक्त किया जाना अविरुद्ध स्थिति वाला ही समझा जाना चाहिये।

गौः संस्कृत रूप है। इसके आर्ष-प्राकृत रूप गोणो और गावी होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र-संख्या २-१७४ से 'गौ' के स्थान पर 'गोण' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर प्रथम रूप *गोणो* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(गौः=) गावी में सूत्र-संख्या २-१७४ से 'गौ' के स्थान पर 'गाव' रूप का निपात; ३-३२ से स्त्रीलिंग-अर्थ में प्राप्त निपात रूप 'गाव' में 'ङी' (=दीर्घ स्वर 'ई') की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत् संज्ञक होने से 'गाव' में स्थित अन्त्य 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त रूप 'गाव्' के अन्त्य हलन्त 'व्' में प्राप्त प्रत्यय 'ई' की संधि और १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर द्वितीय रूप *गावी* सिद्ध हो जाता है।

गावः संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका आर्ष प्राकृत रूप गावीओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'गौ' के स्थान पर 'गाव' का निपात; ३-३२ से प्राप्त निपात रूप 'गाव' में स्त्रीलिंग अर्थ में 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से प्राप्त निपात रूप 'गाव' में स्थित अन्त्य 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप; १-५ से प्राप्त रूप 'गाव्' के अन्त्य हलन्त 'व्' में प्राप्त प्रत्यय 'ई' की संधि और ३-२७ से प्रथमा अथवा द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में संस्कृत प्रत्यय 'जस्' अथवा 'शस्' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गावीओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

बलीवर्दः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप बइल्लो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण रूप 'बलीवर्द' के स्थान पर 'बइल्ल' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *बइल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आपः संस्कृत नित्य बहुवचनान्त रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप आऊ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण रूप 'आप' के स्थान पर 'आउ' रूप का निपात; ३-२७ से स्त्रीलिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और वैकल्पिक पक्ष में ३-१७ से ही अन्त्य ह्रस्व स्वर 'उ' को दीर्घ स्वर 'ऊ' की प्राप्ति होकर *आऊ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पञ्चपञ्चाशत् संस्कृत संख्यात्मक विशेषण रूप है। इसके देशज प्राकृत रूप पञ्चावण्णा और पणपन्ना होते हैं। इनमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण रूप 'पञ्चाशत्' के स्थान पर 'पञ्चावण्णा' और 'पणपन्ना' रूपों का क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से निपात होकर दोनों रूप *पंचावण्णा पणपन्ना* सिद्ध हो जाते हैं।

त्रिपञ्चाशत् संस्कृत संख्यात्मक विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप तेवण्णा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप त्रिपञ्चाशत् के स्थान पर देशज प्राकृत में तेवण्णा रूप का निपात होकर *तेवण्णा* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्रिचत्वारिंशत् संस्कृत संख्यात्मक विशेषण रूप है। इसका देशज-प्राकृत रूप तेआलीसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप त्रिचत्वारिंशत् के स्थान पर देशज प्राकृत में तेआलीसा रूप का निपात होकर *तेआलीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्युत्सर्गः संस्कृत रूप है। इसका आर्ष-प्राकृत रूप विउसग्गो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-६ से संधि निषेध होने से संस्कृत-संधि रूप 'व्यु' के स्थान पर असंधि रूप से 'विउ' की प्राप्ति; २-७७ से 'त्' का लोप; २-७९ से रेफ रूप 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ग' के स्थान पर द्वित्व 'ग्ग' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विउसग्गो* रूप सिद्ध हो जाता है।

व्युत्सर्जनम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप वोसिरणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'व्युत्सर्जन' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'वोसिरन' रूप का निपात; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत रूप *वोसिरणं* सिद्ध हो जाता है।

बहिर्मैथुनं संस्कृत अव्यय रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप बहिद्धा होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'बहिर्मैथुनं' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'बहिद्धा' रूप का निपात होकर *बहिद्धा* रूप सिद्ध हो जाता है।

कार्यम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप णामुक्कसिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'कार्य' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'णामुक्कसिअ' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत रूप णामुक्कसिअं सिद्ध हो जाता है।

क्वचित् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप कत्थइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप क्वचित् के स्थान पर देशज प्राकृत में 'कत्थइ' रूप का निपात होकर *कत्थइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्वहति संस्कृत सकर्मक क्रिया रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप मुव्वहइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से आदि वर्ण 'उ' से आगम रूप 'म्' का निपात; २-७७ से हलन्त व्यञ्जन 'द्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'व' को द्वित्व 'व्व' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत रूप *मुव्वहइ* सिद्ध हो जाता है।

अपस्मारः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप वम्हलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'अपस्मार' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'वम्हल' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक

वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत रूप *घम्मुओ* सिद्ध हो जाता है।

उत्पलम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप कन्दुट्टं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'उत्पल' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'कन्दुट्ट' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत रूप *कन्दुट्टं* सिद्ध हो जाता है।

धिक्-धिक् संस्कृत अव्यय रूप है। इसके देशज प्राकृत रूप छि छि और धिद्धि होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत 'धिक् धिक्' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'छि छि' और 'धिद्धि' का क्रम से एवं वैकल्पिक रूप से निपात होकर दोनों रूप *छिछि* और *धिद्धि* सिद्ध हो जाते हैं।

धिगस्तु संस्कृत अव्यय रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप धिरत्थु होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ग' वर्ण के स्थान पर प्राकृत में 'र' वर्ण का निपात; २-४५ से संयुक्त व्यञ्जन 'स्त्' के स्थान पर 'थ्' आदेश; २-८९ से आदेश प्राप्त 'थ्' का द्वित्व 'थ्थ्' और २-९० से प्राप्त पूर्व 'थ्' के स्थान पर 'त्' की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत *धिरत्थु* रूप सिद्ध हो जाता है।

पडिसिद्धी और *पाडिसिद्धी* रूपों की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४४ में की गई है।

स्थासकम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज अथवा आर्ष प्राकृत रूप चच्चिक्कं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'स्थासक' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'चच्चिक्क' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत *चच्चिक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निलय: संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप निहेलणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'निलय' के स्थान पर देशज प्राकृत में निहेलण' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर देशज प्राकृत *निहेलणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

मघवान् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप मघोणो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'मघवान्' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'मघोण' रूप का निपात; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर देशज प्राकृत *मघोणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

साक्षिण: संस्कृत बहुवचनान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सक्खिणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' को द्वित्व 'ख् ख्' की प्राप्ति २-९० प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर क्' की प्राप्ति और ३-२२ से (संस्कृत

मूल शब्द साक्षिन् में स्थित अन्त्य हलन्त 'न्' में प्राप्त) प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सक्खिणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

जन्म संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप जम्मणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-६१ से 'न्म' के स्थान पर 'म' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'म' के स्थान पर द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; २-१७४ से प्राप्त रूप 'जम्म' में अन्त्य स्थान पर 'ण' का आगम रूप निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *जम्मणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

महान् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप महन्तो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-१७४ से प्राप्त रूप 'महन् के अन्त में आगम रूप 'त' का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *महन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवान् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप भवन्तो होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त महान्=महन्तो रूप के समान ही होकर *भवन्तो* रूप सिद्ध हो जाता है।

आशीः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप आसीसा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप; २-१७४ से प्राप्त रूप 'आसी' के अन्त में आगम रूप 'स्' का निपात और २-३१ की वृत्ति से एवं हेम व्याकरण २-४ से स्त्रीलिंग अर्थ में अन्त में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आसीसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बृहत्तरम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप बड्डयरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२३७ से 'ब' के स्थान पर 'ब' की प्राप्ति; २-१७४ से 'ह्' के स्थान पर द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; २-७७ से प्रथम हलन्त 'त्' का लोप; १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *बड्डयरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

हिमोरः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप भिमोरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ह' के स्थान पर 'भ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भिमोरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षुल्लकः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप खुड्डुओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; २-१७४ से द्वित्व 'ल्ल' के स्थान पर द्वित्व 'ड्ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति

होकर *खुड्डुओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

गायनः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप घायणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ग' के के स्थान पर 'घ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *घायणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

वडः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप वढो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ड' के स्थान पर 'ढ' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वढो* रूप सिद्ध हो जाता है।

ककुदम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप ककुधं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'द' के स्थान पर 'ध' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *ककुधं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अकाण्डम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप अत्थक्कं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'अकाण्ड' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'अत्थक्क' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अत्थक्कं* रूप सिद्ध हो जाता है।

लज्जावती संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप लज्जालुइणी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'वाली' अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'वती' के स्थान पर देशज प्राकृत में लुइणी प्रत्यय का निपात होकर *लज्जालुइणी* रूप सिद्ध हो जाता है।

कुतूहलम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप कुड्डं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'कुतूहल' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'कुड्ड' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *कुड्डं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चूतः संस्कृत रूप (आम्रवाचक) है इसका देशज प्राकृत रूप मायन्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण 'मायन्द' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मायन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

माकन्दः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप मायन्दो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मायन्दो* रूप सिद्ध हो जाता है।

विष्णुः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप भट्टिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'विष्णु' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'भट्टिअ' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भट्टिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्मशानम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप करसी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'श्मशानम्' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'करसी' रूप का निपात होकर *करसी* रूप सिद्ध हो जाता है।

असुराः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप अगया' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से सम्पूर्ण संस्कृत शब्द 'असुराः' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'अगया' रूप का निपात होकर *अगया* रूप सिद्ध हो जाता है।

खेलम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप खेड्डं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से 'ल' वर्ण के स्थान पर देशज प्राकृत में द्वित्व 'ड्ड' का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *खेड्डं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पौष्पं-रजः (पुष्प-रजः) संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप तिङ्गिच्छि होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से सम्पूर्ण संस्कृत शब्द 'पौष्पं-रज' के स्थान पर देशज प्राकृत में तिङ्गिच्छि रूप का निपात होकर *तिङ्गिच्छि* रूप सिद्ध हो जाता है।

दिनम् संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप अल्लं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'दिन' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'अल्ल' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म' प्रत्यय का अनुस्वार होकर *अल्लं* रूप सिद्ध हो जाता है।

समर्थः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप पक्कलो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण 'पक्कल' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पक्कलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

पण्डकः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप णेलच्छो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'पण्डक' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'णेलच्छ' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णेलच्छो* रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्पासः संस्कृत रूप है। इसका देशज प्राकृत रूप पलही होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'कर्पास' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'पलही' रूप का निपात और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर दीर्घ 'ई' को यथा रूप दीर्घ 'ई' की स्थिति प्राप्त होकर

पल्लही रूप सिद्ध हो जाता है ।

बली संस्कृत विशेषण रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप उज्जल्लो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत शब्द 'बली' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'उज्जल्ल' रूप का निपात और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उज्जल्लो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

ताम्बूलम् संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप झसुरं होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'ताम्बूल' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'झसुर' रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर म् प्रत्यय प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर झसुरं रूप सिद्ध हो जाता है ।

पुंश्चली संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप छिछई होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'पुंश्चली' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'छिछई' रूप का निपात और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ 'ई' की यथा रूप स्थिति की प्राप्ति होकर *छिछई* रूप सिद्ध हो जाता है ।

शाखा संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप साहुली होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से संपूर्ण संस्कृत रूप 'शाखा' के स्थान पर देशज प्राकृत में 'साहुली' रूप का निपात और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ 'ई' की यथा रूप स्थिति की प्राप्ति होकर *साहुली* रूप सिद्ध हो जाता है ।

गउओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-५४* में की गई है ।

गोला संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप भी गोला ही होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-११ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त स्त्रीलिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थानीय प्रत्यय रूप विसर्ग का-हलन्त व्यञ्जन रूप होने से-लोप होकर *गोला* सिद्ध होता है ।

गोदावरी संस्कृत रूप है । इसका देशज प्राकृत रूप गोआवरी होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ 'ई' की यथा रूप स्थिति की प्राप्ति होकर *गोआवरी* रूप सिद्ध हो जाता है ।

आहित्थ, लल्लक्क, विड्डिर, पच्चड्डिअ, उप्पेहड, मडप्फर, पड्डिच्छिर, अट्टमट्ट, विहडप्फड, और हल्लप्फल्ल इत्यादि शब्द सर्वथा प्रान्तीय होकर रूढ अर्थ वाले हैं; अतः इनके पर्याय-वाची शब्दों का संस्कृत में अभाव है; किन्तु इनकी अर्थ-प्रधानता को लेकर एवं इनके लिये स्थानापन्न शब्दों का निर्माण करके काम चलाऊ साधनिका निम्न प्रकार से है:—

विलितः, कुपितः अथवा *आकुलः* संस्कृत विशेषण रूप है। इनके स्थान पर प्रान्तीय भाषा में 'आहित्थो' रूप का निपात होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *आहित्थो* रूढ़-रूप सिद्ध हो जाता है।

भीष्मः अथवा *भयंकरः* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप ल्ललक्को होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप भीष्म अथवा भयंकर के स्थान पर रूढ़ रूप 'लल्लक्क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर रूढ़ रूप *ल्ललक्को* सिद्ध हो जाता है।

आनकः (वाद्य-विशेष) संस्कृत रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप विड्डिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'आनक' के स्थान पर रूढ़ रूप 'विड्डिर' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर रूढ़ रूप *विड्डिरो* सिद्ध हो जाता है।

क्षरितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप पच्चड्डिओ होता है। इसकी साधनिका भी उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर *पच्चड्डिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्भटः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप उप्पेहडो होता है। इसकी साधनिका भी उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर *उप्पेहडो* रूढ़ रूप सिद्ध हो जाता है।

गर्वः संस्कृत रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप मडप्फरो होता है। इसकी साधनिका भी उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर *मडप्फरो* रूढ़ रूप सिद्ध हो जाता है।

सदृक् संस्कृत रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप पड्डिच्छिरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत शब्द 'सदृक्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में 'पड्डिच्छिर' रूढ़ रूप का निपात; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रूढ़ रूप *पड्डिच्छिरं* सिद्ध हो जाता है।

आलवालम् संस्कृत रूप है। इसका प्रांतीय भाषा रूप अड्डमड्डं होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त पड्डिच्छिरं के समान ही होकर रूढ़ रूप *अड्डमड्डं* सिद्ध हो जाता है।

व्याकुलः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप विहडप्फडो होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त 'विड्डिरो' के समान ही होकर रूढ़ रूप *विहडप्फडो* सिद्ध हो जाता है।

रुद्धः संस्कृत रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप अज्जल्लं होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त पड्डिच्छिरं के समान होकर रूढ़ रूप *अज्जल्लं* सिद्ध हो जाता है।

औत्सुक्यम् संस्कृत रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप हल्लप्फलं होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त 'पड्डिच्छिरं' के समान ही होकर रूढ़ रूप *हल्लप्फलं* सिद्ध हो जाता है।

श्लिष्यति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप अवयासइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'श्लिष्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में रूढ़ रूप 'अवयास' का निपात ४-२३९ से प्राप्त रूप अवयास् में संस्कृत गण वाचक 'य' विकरण प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय प्राप्ति होकर 'रूढ़ अर्थ' वाचक रूप *अवयासइ* सिद्ध हो जाता है।

उत्पाटयति अथवा *कथयति* संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप फुम्फुल्लइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'उत्पाट्' अथवा 'कथ्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में रूढ़ रूप 'फुम्फुल्ल्' का निपात; ४-२३९ से प्राप्त रूप 'फुम्फुल्ल्' में संस्कृत गण वाचक 'अय' विकरण प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमानकाल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'रूढ़-अर्थ' वाचक रूप फुम्फुल्लइ सिद्ध हो जाता है।

उत्पाटयति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्रान्तीय भाषा रूप उप्फालेइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१७४ से मूल संस्कृत रूप 'उत्पाट्' के स्थान पर प्रान्तीय भाषा में रूढ़ रूप उप्फाल्' का निपात; ४-२३९ से प्राप्त रूढ़ रूप 'उप्फाल्' में संस्कृत गण-वाचक 'अय' विकरण प्रत्यय के स्थान पर देशज प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर 'रूढ़-अर्थ' वाचक रूप *उप्फालेइ* सिद्ध हो जाता है।

मन्दर-तट-परिघृष्टम् संस्कृत विशेषणात्मक वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप मन्दर-यड-परिघट्ठं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-१९५ से प्रथम 'ट' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ' को द्वित्व 'ठठ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *मन्दर-यड-परिघट्ठं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तद्दिवस-निघृष्टानंगः संस्कृत विशेषणात्मक वाक्यांश है। इसका प्राकृत रूप तद्दिअस-निहट्टाणंगो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व्' का लोप; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१८७ से प्राप्त 'घ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट' के स्थान पर 'ठ' की प्राप्ति २-८९ से 'ठ' को द्वित्व 'ठ ठ' की प्राप्ति और २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे कवर्गीय 'ग' होने से पंचमाक्षर रूप 'ङ्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुंल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तद्दिअस-निहट्ठाणंगो* रूप सिद्ध होजाता है।

धृष्टाः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धट्ठा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३४ से 'ष्ट्' के स्थान पर 'ठ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ठ्' को द्वित्व 'ठ् ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर इसका लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *धट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृष्टाः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मट्ठा होता है। इसकी साधनिका उपरोक्त धृष्टाः = धट्ठा रूप में प्रयुक्त सूत्रों से होकर *मट्ठा* रूप सिद्ध हो जाता है।

विद्वांसः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विउसा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१७४ से विद्वान् अथवा 'विद्वस्' के स्थान पर 'विउस' रूप का निपात; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिग में 'जस्' प्रत्यय की प्राप्ति होकर इसका लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के कारण से अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *विउसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रुत-लक्षणानुसारेण संस्कृत वाक्यांश रूप है। इसका प्राकृत रूप सुअ-लक्खणाणुसारेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'श्र्' में स्थित 'र्' का लोप; १-२६० से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त हुए 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय रूप 'ण' के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *सुअ-लक्खणाणुसारेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

वाक्यान्तरेषु संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वक्कन्तरेसु होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से प्रथम दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति १-४ से प्राप्त 'क्का' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति अथवा ३-१५ से सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिग में प्राप्त प्रत्यय 'सुप्=सु' के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *वक्कन्तरेसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

'अ' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७७* में की गई है।

पुनः संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप पुणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'डो=ओ' की प्राप्ति; प्राप्त वर्ण 'डो' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्व में स्थित 'न' व्यञ्जन के अन्त्य 'अ' की इत्संज्ञा; एवं १-५ से प्राप्त हलन्त 'ण्' में विसर्ग स्थानीय 'ओ' की संधि होकर *पुणो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१७४॥

अव्ययम् ॥२-१७५॥

अधिकारोऽयम् । इतः परं ये वक्ष्यन्ते आ पाद समाप्ते स्तेऽव्ययसंज्ञा ज्ञातव्याः ॥

अर्थः—यह सूत्र-अधिकार-वाचक है; प्रकारान्तर से यह सूत्र-विवेच्यमान विषय के लिये शीर्षक रूप भी कहा जा सकता है। क्योंकि यहां से नवीन विषय रूप से 'अव्यय-शब्दों' का विवेचन प्रारम्भ किया जाकर इस द्वितीय पाद की समाप्ति तक प्राकृत-साहित्य में उपलब्ध लगभग सभी अव्ययों का वर्णन किया जायगा। अतः पाद-समाप्ति-पर्यन्त जो शब्द कहे जायगें; उन्हें 'अव्यय संज्ञा' वाला जानना।

तं वाक्योपन्यासे ॥२-१७६॥

तमिति वाक्योपन्यासे प्रयोक्तव्यम् ॥ तं तिअस-वन्दि-मोक्खं ॥

अर्थः—'तं' शब्द अव्यय है और यह वाक्य के प्रारंभ में शोभारूप से—अलंकार रूप से प्रयुक्त होता है; ऐसी स्थिति में यह अव्यय किसी भी प्रकार का अर्थ सूचक नहीं होकर केवल अलंकारिक होता है। इसे केवल साहित्यिक परिपाटी ही समझना चाहिए। जैसे:—त्रिदश-बंदिमोक्षम् = तं तिअस-बंदि मोक्खं। इस उदाहरण में संस्कृत रूप में 'तं' वाचक शब्द रूप का अभाव है; किन्तु प्राकृत रूपान्तर में 'त' की उपस्थिति है; यह उपस्थिति शोभा रूप ही है; अलंकारिक ही है; न कि किसी विशेष-तात्पर्य को बतलाती है। यों अन्यत्र भी 'तं' की स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए। 'तं' अव्यय है। इसकी साधनिका की आवश्यकता उपरोक्त कारण से नहीं है।

त्रिदश-बन्दि-मोक्षम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तिअस-बन्दि मोक्खं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'त्र्' में स्थित 'र्' का लोप; १-१७७ से प्रथम 'द्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख्' के स्थान पर द्वित्व 'ख् ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति और ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति एवं १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तिअस-बंदिमोक्खं* रूप सिद्ध हो जाता है। २-१७६।

आम अभ्युपगमे ॥ २-१७७ ॥

आमेत्यभ्युपगमे प्रयोक्तव्यम् ॥ आम बहला वणोली ॥

अर्थः—'स्वीकार करने' अर्थ में अर्थात् 'हाँ' ऐसे स्वीकृति-सूचक अर्थ में प्राकृत साहित्य में 'आम' अव्यय का उच्चारण किया जाता है। जैसे:—आम बहला वनालिः = आम बहला वणोली ! हाँ, (यह) सघन वन-पंक्ति है। 'आम' अव्यय रूप है। रूढ रूप वाला होने से एवं रूढ-अर्थक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

बहला संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भी बहला ही होता है। अतएव साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

वनालिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप वणोली होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-८३ से 'पंक्ति वाचक' अर्थ में रहे हुए 'आलि' शब्द के 'आ' को 'ओ' की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त 'ण' में स्थित 'अ' का, आगे 'ओली' का 'ओ' होने से लोप; १-५ से हलन्त 'ण्' के साथ 'ओली' के 'ओ' की संधि, और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्री लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *वणोली* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१७७॥

णवि वैपरीत्ये ॥२-१७८॥

णवीति वैपरीत्ये प्रयोक्तव्यम् ॥ णवि हा वणे ॥

अर्थः—प्राकृत शब्द 'णवि' अव्यय है और इसका प्रयोग 'विपरीतता' अर्थ को प्रकट करने में किया जाता है। जैसे:-उण्हेहु सीअला णवि कयलि वणा=उष्णा अत्र (तथापि)-(णवि)-शीतला कदली-वने अर्थात् उष्णता की ऋतु होने पर भी (उल्टी) कदली वन में शीतलता है। इसी प्रकार से मूल सूत्र-उदाहरण का अनुवाद इस प्रकार है:-णवि हा वणे=णवि हा ! वने अर्थात् खेद है कि (जहाँ पहुँचना चाहिये था वहाँ नहीं पहुँच कर) उल्टे वन में (पहुँच गये हैं)। यों 'विपरीतता' अर्थ में 'णवि' का प्रयोग समझना चाहिये।

'णवि' प्राकृत-साहित्य का (विपरीतता रूप) अर्थ वाचक अव्यय है। तदनुसार 'साधनिका' की आवश्यकता नहीं है।

'हा' प्राकृत-साहित्य का 'खेद' द्योतक अव्यय रूप है।

वने संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वणे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में संस्कृत-प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति 'ङे' में 'ङ' इत्संज्ञक होने से प्राप्त 'ण' में स्थित अन्त्य 'अ' की इत-संज्ञा और १-५ से प्राप्त हलन्त 'ण्' में प्राप्त 'ए' प्रत्यय की संधि होकर *वणे* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-१७८॥

पुणरुत्तं कृत करणे ॥२-१७९॥

पुणरुत्त मिति कृत करणे प्रयोक्तव्यम् ॥ अइ सुप्पइ पंसुलि णीसहेहिं अङ्गेहिं पुणरुत्तं ॥

अर्थः—'किये हुए को ही करना' अर्थात् बार बार अथवा बारंबार अर्थ में 'पुणरुत्तं' अव्यय का प्राकृत साहित्य में प्रयोग किया जाता है। जैसे:-अइ ! सुप्पइ पंसुलि णीसहेहिं अंगेहिं पुणरुत्तं=अयि पांशुले ! (त्वम्) स्वपिति निःसहैः अंगैः बारंबारं अर्थात् हे कुलटे ! (तू) बार बार सहन कर सके ऐसे अंगों से (ही) सोती है। यहाँ पर 'सोने-शयन करने' की क्रिया बार बार की जा रही है इस अर्थ को बतलाने के लिये 'पुणरुत्तं' अव्यय का प्रयोग किया गया है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:-पेच्छ पुणरुत्तं=(एक बारं दृष्ट्वा भूयोपि) बारंबारं पश्य अर्थात् (एक बार देख कर पुनः) बार बार देखो।

अयि संस्कृत आमंत्रणार्थक अव्यय है। इसका प्राकृत रूप अइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'य्' का लोप होकर *अइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वपिति संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सुप्पइ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-६४ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'व्' का लोप; २-९८ से 'प्' के स्थान पर द्वित्व 'प्प्' की प्राप्ति; ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'इ' के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सुप्पइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

पांशुलि संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप पंसुलि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; ३-३२ से स्त्री लिंग वाचक शब्दों में संस्कृत प्रत्यय 'आ' के स्थान पर प्राकृत में 'ई' प्रत्यय की प्राप्ति होने से 'ला' वर्ण के स्थान पर 'ली' की प्राप्ति; और ३-४२ से आमन्त्रण अर्थ में-संबोधन में दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *पंसुलि* रूप सिद्ध हो जाता है।

निःसहैः=निस्सहैः संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप णीसहेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; १-१३ से विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप; १-९३ से विसर्ग रूप व्यञ्जन का लोप होने से प्राप्त 'णि' में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; ३-७ से तृतीया विभक्ति के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'भिः' के स्थान पर प्राकृत में 'हिं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१५ से प्राप्त प्रत्यय 'हिं' के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *णीसहेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अंगैः संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप अंगेहिं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे के वर्गीय 'ग' वर्ण होने से क वर्गीय पंचमाक्षर रूप 'ङ्' की प्राप्ति; ३-७ से तृतीया विभक्ति के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'भिस्' के स्थान पर प्राकृत में 'हिं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१५ से प्राप्त प्रत्यय 'हिं' के पूर्व में स्थित अन्त्य 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *अङ्गेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'पुणरुत्तं' प्राकृत अव्यय रूप है। रूढ-रूप होने से इसकी साधनिका की आवश्यकता नहीं है ॥२-१७९॥

हन्दि विषाद-विकल्प-पश्चात्ताप-निश्चय-सत्ये ॥२-१८०॥

हन्दि इति विषादादिषु प्रयोक्तव्यम् ॥

हन्दि चलणे णओ सो ण माणिओ हन्दि हुज्ज एत्ताहे। हन्दि न होही भणिरी सा सिज्जइ हन्दि तुह कज्जे ॥ हन्दि। सत्यमित्यर्थः ॥

अर्थः—'हन्दि' प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय है। जब 'विषाद' अर्थात् 'खेद' प्रकट करना हो; अथवा कोई कल्पना करनी हो; अथवा पश्चात्ताप व्यक्त करना हो; अथवा किसी प्रकार का निश्चय

प्रकट करना हो; अथवा किसी प्रकार के "सत्य" की अभिव्यक्ति करनी हो तो "हुन्दि" अव्यय का प्रयोग किया जाता है। प्रयुक्त 'हुन्दि' को देखकर प्रसंगानुसार उपरोक्त भावनाओं में से उपयुक्त 'भावना' सूचक अर्थ को समझ लेना चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं:—

संस्कृत:-हुन्दि-(विषाद-अर्थे)-चरणे नतः स न मानितः;

हुन्दि-(विकल्प-अर्थे)-भविष्यति इदानीम्;

हुन्दि-(पश्चात्ताप-अर्थे)-न भविष्यति भणन-शीला;

साक्षियति हुन्दि-(निश्चय अर्थे-सत्यार्थे वा) तव कार्ये ॥

प्राकृत:-हुन्दि चलणे णओ सो ण माणिओ; हुन्दि हुवइ एत्ताहे ॥

हुन्दि न होही भणिरी; सा सिज्जइ हुन्दि तुह कज्जं ॥

हिन्दी अर्थ:—खेद है कि उस (नायक) ने उस (नायिका) के पैरों में नमस्कार किया; वह झुक गया; तो भी उस (नायिका) ने उसका सन्मान नहीं किया अर्थात् वह (नायिका) नरम नहीं हुई। ज्यों की त्यों रूठी हुई ही रही। इस समय में अब क्या होगा ? यह पश्चात्ताप की बात है कि वह (नायिका) बातचित भी नहीं करेगी एवं निश्चय ही तुम्हारे कार्य में वह नहीं पसीजेगा। 'हुन्दि' अव्यय का अर्थ 'यह सत्य ही है' ऐसा भी होता है।

'हुन्दि' प्राकृत साहित्य का रूढ अर्थक अव्यय है। अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

चरणे संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप चलणे होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२५४ से 'र' के स्थान पर 'ल' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति; 'ङे' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से 'ण' में स्थित अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होकर इसका लोप और १-५ से प्राप्त हलन्त व्यञ्जन 'ण्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर *चलणे* रूप सिद्ध होजाता है।

नतः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप णओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'डो' आदेश प्राप्त; 'डो' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्व में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होकर *णओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'सो' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९७ में की गई है।

न संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'ण' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न' के स्थान पर 'ण' आदेश की प्राप्ति होकर '*ण*' रूप सिद्ध हो जाता है।

मानितः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप माणिओ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-३७ से विसर्ग के स्थान पर 'डो' आदेश; एवं प्राप्त 'डो' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्व में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप होकर *माणिओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

भविष्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हुज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६१ से भवि के स्थान पर 'हु' आदेश; और ३-१७७ से भविष्यत्-काल-वाचक प्रत्यय 'ष्यति' के स्थान पर प्राकृत में 'ज्ज' आदेश की प्राप्ति होकर *हुज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुणाइं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१३४ में की गई है।

न संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'न' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२९ से 'न' का 'ण' वैकल्पिक रूप से होने से 'णत्व' का अभाव होकर *न* रूप सिद्ध हो जाता है।

भविष्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'होही' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६० से भू=भव् के स्थान पर 'हो' आदेश; ३-१७२ से संस्कृत में प्राप्त होने वाले भविष्यत्-काल वाचक विकरण प्रत्यय 'इष्य' के स्थान पर प्राकृत में 'हि' आदेश; ३-१३९ से संस्कृत प्राप्त प्रत्यय 'ति' के स्थान पर 'इ' प्रत्यय का आदेश; और १-५ की वृत्ति से एक ही पद में रहे हुए 'हि' में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के साथ आगे प्राप्त प्रत्यय रूप 'इ' की संधि होने से दोनों के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *होही* रूप सिद्ध हो जाता है।

भणनशीला संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भणिरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१४५ से 'शील-धर्म-साधु अर्थक संस्कृत प्रत्यय 'नशील' के स्थान पर 'इर' आदेश; १-१० से 'ण' में स्थित 'अ' स्वर का आगे प्राप्त प्रत्यय 'इर' की 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'ण्' में प्राप्त प्रत्यय 'इर' की 'इ' की संधि; ३-३१ से प्राप्त पुल्लिग रूप को स्त्रीलिंग वाचक रूप बनाने के लिये 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से 'इर' के अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होकर 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'इर्' में उपरोक्त स्त्रीलिंग वाचक दीर्घ स्वर 'ई' की संधि और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर दीर्घ ईकारान्त रूप ही यथावत् स्थित रहकर *भणिरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

सा सर्व नाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-३३* में की गई है।

स्विद्यति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप सिज्जइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; ४-२२४ से 'द्' के स्थान पर द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तुह सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-८* में की गई है।

कार्य संस्कृत रूप है। इसका रूप कज्जे होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व 'अ' की प्राप्ति; २-२४ से संयुक्त व्यञ्जन 'र्य' के स्थान पर 'ज' की प्राप्ति २-८९ से प्राप्त 'ज' को द्वित्व 'ज्ज' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङे' में 'ङ' इत्संज्ञक होने से पूर्व में स्थित 'ज्ज' अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होकर

लोप और १-५ से प्राप्त हलन्त 'ज्ज्' में आगे स्थित प्रत्यय 'ए' की संधि होकर कज्जे रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-१८० ॥

हन्द च गृहाणार्थे ॥२-१८१॥

हन्द हन्दि च गृहणार्थे प्रयोक्तव्यम् ॥ हन्द पलोएसु इमं । हन्दि । गृहाणेत्यर्थः ॥

अर्थः—'लेओ' इस अर्थ को व्यक्त करने के लिये प्राकृत-साहित्य में 'हन्द' और 'हन्दि' का प्रयोग किया जाता है। जैसेः-हन्द (=गृहाण) प्रलोकय इदम्=हन्द ! पलोएसु इमं अर्थात् लेओ—इसको देखो। हन्दि = गृहाण अर्थात् लेओ। 'हन्द' प्राकृत रूढ अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

प्रलोकय संस्कृत आज्ञार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पलोएसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'क्' का लोप; २-१५८ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१७३ से द्वितीय पुरुष के एक वचन में आज्ञार्थ में अथवा विध्यर्थ में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पलोएसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

इदम् संस्कृत द्वितीयान्त सर्वनाम है। इसका प्राकृत रूप इमं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-७२ से इदम् के स्थान पर 'इम' आदेश; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *इमं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'हन्दि' प्राकृत में रूढ-अर्थक अव्यय होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है ॥२-१८१॥

मिव पिव विव व्व व विअ इवार्थे वा ॥२-१८२॥

एते इवार्थे अव्यय संज्ञकाः प्राकृते वा प्रयुज्यन्ते ॥ कुमुअं मिव । चन्दणं पिव । हंसो विव । साअरो व्व । खीरोओ सेसस्स व निम्मोओ । कमलं विअ । पक्षे । नीलुप्पल-माला इव ॥

अर्थः—'के समान' अथवा 'की तरह' अर्थ में संस्कृत-भाषा में 'इव' अव्यय प्रयुक्त किया जाता है। प्राकृत भाषा में भी 'इव' अव्यय इसी अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। किन्तु वैकल्पिक रूप से 'इव' अव्यय के स्थान पर प्राकृत में छह अव्यय और प्रयुक्त किये जाते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:—१ मिव, २ पिव, ३ विव, ४ व्व, ५ व और ६ विअ। इन छहों में से किसी भी एक का प्रयोग करने पर प्राकृत-साहित्य में 'के समान' अथवा 'की तरह' का अर्थ अभिव्यक्त होता है। क्रम से उदाहरण इस प्रकार हैं:-कुमुदम् इव=कुमुअं मिव=चन्द्र से विकसित होने वाले कमल के समान; चन्दनम् इव = चन्दणं पिव = चन्दन के समान; हंसः इव=हंसो विव = हंस के समान; सागरः इव = साअरोव्व=सागर के समान; क्षीरोदः इव=खीरोओ व = क्षीर समुद्र के समान; शेषस्य निर्मोकः इव=सेसस्स निम्मोओ व = शेषनाग की कंचुली के समान; कमलम् इव=कमलं विअ=कमल के समान और पक्षान्तर में 'नीलोत्पल-माला इव=नीलुप्पल-माला इव अर्थात् नीलोत्पल-कमलों की माला के समान उदाहरण में संस्कृत के समान ही 'इव' अव्यय का प्रयोग उपलब्ध है।

कुमुदम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कुमुअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'द्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कुमुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत सदृशता वाचक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप मिव होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर 'मिव' आदेश वैकल्पिक रूप से होकर *मिव* रूप सिद्ध हो जाता है।

चन्दनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप चन्दणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति और शेष साधनिका उपरोक्त कुमुअं के समान ही होकर *चन्दणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

सं० *इव*='पिव' अव्यय की साधनिका उपरोक्त 'मिव' अव्यय के समान ही होकर *पिव* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

हंसः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप हंसो होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हंसो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सं० *इव*='विव' अव्यय की साधनिका उपरोक्त 'मिव' अव्यय के समान ही होकर *विव* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

सागरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप साअरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'ग्' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *साअरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

सं० *इव*='व्व' अव्यय की साधनिका उपरोक्त 'मिव' अव्यय के समान ही होकर *व्व* अव्यय सिद्ध हो जाता है।

क्षीरोदः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खीरोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'ख्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खीरोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

शेषस्य संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सेसस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों प्रकार के 'श्' और 'ष्' के स्थान पर क्रम से 'स्' की प्राप्ति; ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति होकर *सेसस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत एक रूप 'व' भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर 'व' का आदेश होकर *व* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्मोकः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप निम्मोओ होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'म्' को द्वित्व 'म्म्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निम्मोओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमलम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कमलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'विअ' भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से 'इव' के स्थान पर विअ आदेश होकर *विअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नीलोत्पल माला संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नीलुप्पल-माला होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर रूप 'ओ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर रूप 'उ' की प्राप्ति; २-७७ से 'त्' का लोप और २-८९ से लोप हुए त् के पश्चात् शेष रहे हुए 'प' को द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति होकर *नीलुप्पल-माला* रूप सिद्ध हो जाता है।

इव संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'इव' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८२ से वैकल्पिक पक्ष होने से 'इव' का 'इव' ही यथा रूप रहकर *इव* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१८२॥

जेण तेण लक्षणे ॥२-१८३॥

जेण तेण इत्येतौ लक्षणे प्रयोक्तव्यौ ॥ भमर-रुअं जेण कमल-वणं। भमर रुअं तेण कमल-वणं ॥

अर्थः—किसी एक वस्तु को देखकर अथवा जानकर उससे संबंधित अन्य वस्तु की कल्पना करना अर्थात् 'ज्ञात' द्वारा 'ज्ञेय' की कल्पना करने के अर्थ में प्राकृत साहित्य में 'जेण' और 'तेण' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे:—भ्रमर-रुतं येन (लक्ष्यीकृत्य) कमल वनं और भ्रमर-रुतं तेन (लक्ष्यीकृत्य) कमल-वनम्; अर्थात् भ्रमरों का गुञ्जारव (है) तो (निश्चय ही यहां पर) कमल-वन (है)।

भ्रमर-रुतं संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप भमर-रुअं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भमर-रुअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

येन (लक्ष्यीकृत्य इति अर्थे) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर *जेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

कमल वनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमल-वणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *कमल-वणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तेन (लक्ष्मी कृत्य इति अर्थे) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप तेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति होकर तेण रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१८३॥

णइ चेअ चिअ च्च अवधारणे ॥२-१८४॥

एतेऽवधारणे प्रयोक्तव्याः ॥ गईए णइ। जं चेअ मउलणं लोअणाणं। अणुबद्धं तं चिअ कामिणीणं ॥ सेवादित्वात् द्वित्वमपि। ते च्चिअ धन्ना। ते च्चेअ सुपुरिसा ॥ च्च ॥ स च्च रूवेण। स च्च सीलेण ॥

अर्थः—जब निश्चयार्थ- (ऐसा ही है)-प्रकट करना होता है; तब प्राकृत साहित्य में 'णइ' 'चेअ' 'चिअ' 'च्च' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। उपरोक्त चार अव्ययों में से किसी भी एक अव्यय का प्रयोग करने से 'अव-धारण-अर्थ' अर्थात् निश्चयात्मक अर्थ प्रकट होता है। इन अव्ययों से 'ऐसा ही है' ऐसा अर्थ प्रति-फलित होता है। उदाहरण इस प्रकार है:—गत्या एव=गईए णइ अर्थात् गति से ही; यत् एव मुकुलनं लोचनानाम्=जं चेअ मउलणं लोअणाणं अर्थात् आँखों की जो अर्ध-खिलावट है; अनुबद्धं तत् एव कामिनीभ्यः=अणुबद्धं तं चिअ कामिणीणं अर्थात् स्त्रियों के लिये ही यह अनुबद्ध है इत्यादि। सूत्र-संख्या २-९९ वाले 'सेवादित्वात्' सूत्र से 'चेअ' और 'चिअ' अव्ययों में स्थित 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति भी हो जाया करती है। जैसे:—ते एव धन्याः=ते च्चिअ धन्ना अर्थात् वे धन्य ही हैं; ते एव सुपुरुषाः=ते च्चेअ सुपुरिसा अर्थात् वे सत्पुरुष ही हैं। 'च्च' निश्चय वाचक अव्यय के उदाहरण इस प्रकार है:—स एव च रूपेण=स च्च य रूवेण अर्थात् रूप से ही वह (आदरणीय आदि है); और स एव शीलेन=स च्च सीलेण अर्थात् शील (धर्म) से ही वह (पूज्य आदि) है; इत्यादि।

गत्या संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप गईए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से (मूल रूप में स्थित-गति+आ) 'त्' का लोप और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थानीय रूप 'आ' के स्थान पर 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति एवं ३-२९ से ही प्राप्त प्रत्यय 'ए' के पूर्व में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *गईए* रूप सिद्ध हो जाता है।

एव संस्कृत अवधारणार्थक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णइ' होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'णइ' की प्राप्ति होकर *णइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

जं सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४* में की गई है।

चेअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-७* में की गई है।

मुकुलनम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मउलणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१०७ से प्रथम 'उ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से 'म्' का अनुस्वार होकर *मउलणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोचनानाम् संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप लोअणाणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च्' का लोप; १-२२८ से प्रथम 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'आम' के स्थानीय 'नाम्' प्रत्यय के स्थान पर ३-१२ से प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; 'ण' के पूर्व में स्थित 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति; १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *लोअणाणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अनुबद्धम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अणुबद्धं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणुबद्धं* रूप सिद्ध हो जाता है।

तं सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १–७ में की गई है।

चिअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-९९ में की गई है।

कामिनीभ्यः संस्कृत चतुर्थ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप कामिणीणं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति ३-१३१ से चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का विधान; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *कामिणीणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

ते संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से मूल रूप 'तत्' के द्वितीय 'त्' का लोप; ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर डे आदेश; 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' में रहे हुए 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप; और १-५ से शेष हलन्त 'त्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर *ते* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

धन्याः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप धन्ना होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'न्न' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *धन्ना* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*ते*' सर्वनाम रूप की सिद्धि *इसी सूत्र में ऊपर* की गई है।

'च्चेअ' प्रत्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

सुपुरुषाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुपुरिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१११ से 'र' में स्थित 'उ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व

सरस्वतिमौन ...

में स्थित 'स' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सुपुरिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

एव संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप च्च होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१८४ से 'एव' के स्थान पर 'च्च' आदेश की प्राप्ति होकर 'च्च' रूप सिद्ध हो जाता है।

'सः' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप 'स' होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-८६ से मूल सर्वनाम 'तत्' के स्थान पर 'सो' आदेश और २-३ से 'वैकल्पिक रूप से 'ओ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर 'स' रूप सिद्ध हो जाता है।

'च' संस्कृत संबंध-वाचक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'य' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'च' का लोप और १-१८० से लोप हुए 'च्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति होकर 'य' रूप सिद्ध हो जाता है।

रूपेण संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रूवेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में अथवा पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'व' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *रूवेण* रूप सिद्ध हो जाता है।

'स' और 'च्च' रूपों की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर कर दी गई है।

शीलेण संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सीलेण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर पर 'स्' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में अथवा पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'ल' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *सीलेण* रूप सिद्ध हो जाता है। || २-१८४ ||

बले निर्धारण-निश्चययोः ॥२-१८५॥

बले इति निर्धारणे निश्चये च प्रयोक्तव्यम् ॥ निर्धारणे। बले पुरिसो धणंजओ खत्तिआणं ॥ निश्चये। बले सीहो। सिंह एवायम् ॥

अर्थः—दृढ़तापूर्वक कथन करने में और निश्चय-अर्थ बतलाने में प्राकृत साहित्य में 'बले' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे:—'बले' पुरुषः धनंजयः क्षत्रियाणां = बले पुरिसो धणं-जओ खत्तिआणं अर्थात् क्षत्रियों में वास्तविक पुरुष धनंजय ही है। सिंह एवायम् = बले सीहो अर्थात् यह सिंह ही है। कोई कोई 'निर्धारण' शब्द का अर्थ ऐसा भी करते हैं कि 'समूह में से एक भाग को पृथक् रूप से प्रदर्शित करना'।

'बले' अव्यय रूढ़-अर्थक होने से एवं रूढ़-रूपक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

पुरिसो रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-४२ में की गई है।

धणंजओ रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१७७ में की गई है।

क्षत्रियाणाम् (अथवा क्षत्रियेषु) संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप खत्तिआणं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-७९ से 'त्र' में स्थित 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष बचे हुए 'त्' के स्थान पर द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य्' का लोप; ३-१३४ से सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१२ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति और १-२७ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति होकर *खत्तिआणं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'बले' प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक एवं रूढ-रूपक अव्यय है; अतः साधनिका की अनावश्यकता है।

सीहा रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है। ॥ २-१८५ ॥

किरेर हिर किलार्थे वा ॥२-१८६॥

किर इर हिर इत्येते किलार्थे वा प्रयोक्तव्याः ॥ कल्लं किर खर हिअओ। तस्स इर। पिअ-वयंसो हिर ॥ पक्षे। एवं किल तेण सिविणए भणिआ ॥

अर्थः—संस्कृत में प्रयुज्यमान सम्भावना वाचक अव्यय 'किल' के स्थान पर प्राकृत साहित्य में वैकल्पिक रूप से 'किर' 'इर' 'हिर' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। तदनुसार प्राकृत साहित्य में संस्कृतीय 'किल' अव्यय भी प्रयुक्त होता है और कभी कभी 'किर, इर, और 'हिर' अव्ययों में से किसी भी एक का प्रयोग 'किल' के स्थान पर किया जाता है उदाहरण इस प्रकार है:—कल्ये किल खर-हृदयः=कल्लं किर खर हिअओ अर्थात् संभावना है कि प्रातःकाल में (वह) कठोर हृदय वाला था; तस्य किल=तस्स इर अर्थात् संभावना (है कि) उसका (है); प्रिय वयस्यः किल=पिअ-वयंसो हिर=संभावना (है कि वह) प्रिय मित्र (है)। पक्षान्तर रूप से 'किल' के स्थान पर 'किल' के प्रयोग का उदाहरण इस प्रकार है:—एवं किल तेन स्वप्नके भणिताः=एवं किल तेण सिविणए भणिआ अर्थात् सम्भावना (है कि) इस प्रकार (की बातें) उस द्वारा स्वप्न-अवस्था में कही गई हैं। यों सम्भावना वाचक अव्यय के स्थान पर प्राकृत-साहित्य में चार शब्द प्रयुक्त होते हैं; जो कि इस प्रकार हैं:—१ किर, २ इर, ३ हिर और किल।

कल्ये संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कल्लं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति; ३-१३७ से सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर कल्लं रूप सिद्ध हो जाता है।

किल संस्कृत सम्भावना-अर्थक अव्यय है। इसका प्राकृत रूप किर होता है इसमें सूत्र संख्या २-१८६ से

किल के स्थान पर किर आदेश की प्राप्ति होकर *किर* रूप सिद्ध हो जाता है ।

खर-हृदयः संस्कृत विशेषण रूप है । इसका प्राकृत रूप खर-हिअओ होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' और 'य' का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *खर-हिअओ* रूप सिद्ध हो जाता है।

तस्य संस्कृत षष्ठयन्त सर्वनाम रूप है । इसका प्राकृत रूप तस्स होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से मूल रूप 'तत्' के द्वितीय 'त्' का लोप और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तस्स* रूप सिद्ध हो जाता है ।

किल संस्कृत संभावना-अर्थक अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप इर होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१८६ से किल के स्थान पर 'इर' आदेश की प्राप्ति होकर *इर* रूप सिद्ध हो जाता है ।

प्रिय-वयस्यः संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप पिअ-वयंसो होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से प्रथम 'य्' का लोप; १-२६ से द्वितीय 'य' में स्थित 'अ' स्वर पर आगम रूप अनुस्वार की प्राप्ति २-७८ से तृतीय 'य्' व्यञ्जन का लोप और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पिअ-वयंसो* रूप सिद्ध हो जाता है ।

किल संस्कृत संभावना-अर्थक अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप हिर होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-१८६ से 'किल' के स्थान पर 'हिर' आदेश की प्राप्ति होकर *हिर* रूप सिद्ध हो जाता है ।

'*एवं*' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है ।

किल संस्कृत अव्यय रूप है । इसका प्राकृत रूप भी किल ही होता है । इसमें सूत्र संख्या २-१८६ से 'किल' ही यथावत् रहकर *किल* रूप सिद्ध हो है ।

तेन संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है । इसका प्राकृत रूप तेण होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से मूल रूप 'तत्' के द्वितीय 'त्' का लोप; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'त' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *तेण* रूप सिद्ध हो जाता है ।

स्वप्नके संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है । इसका प्राकृत रूप सिविणए होता है । इसमें सूत्र-संख्या १-४६ से 'व' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; २-७९ से प्राप्त रूप 'स्वि' में स्थित 'व्' का लोप; १-२३१ से 'प्' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २-१०८ से 'न' के पूर्व में 'इ' की प्राप्ति होकर हलन्त 'व' से 'वि' का सद्भाव; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-१६४ से 'स्वार्थ' रूप में संस्कृत 'क' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में भी 'क' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१७७ से प्राप्त 'क' में से हलन्त 'क्' का लोप; और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन

में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'ङे' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङे' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से 'ङे' प्रत्यय के पूर्व में स्थित लुप्त 'क्' के शेषांश 'अ' को इत्संज्ञा के कारण 'अ' का लोप होकर *सिविणए* रूप सिद्ध हो जाता है।

भणिता: संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भणिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'अ' के स्थान पर दीर्घ 'आ' की प्राप्ति होकर *भणिआ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१८६॥

णवर केवले ॥२-१-१८७॥

केवलार्थे णवर इति प्रयोक्तव्यम् ॥ णवर पिआइं चिअ णिव्वडन्ति ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'केवल' के स्थान पर प्राकृत में 'णवर' अथवा 'णवरं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे-केवलम् प्रियाणि एव भवन्ति=णवर (णवरं) पिआइं चिअ णिव्वडन्ति=अर्थात् केवल प्रिय (वस्तुएं) ही (सार्थक) होती हैं।

केवलम् संस्कृत 'निर्णीत संपूर्ण रूप-एकार्थक' अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णवर' अथवा 'णवरं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८७ से 'केवलम्' के स्थान पर 'णवर' अथवा 'णवरं' आदेश की प्राप्ति होकर *णवर* अथवा *णवरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

प्रियाणि संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप पिआइं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१७७ से 'य्' का लोप; ३-२६ से प्रथमा विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थानीय रूप 'आनि' के स्थान पर प्राकृत में 'इं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२६ से 'ही' प्राप्त प्रत्यय 'इं' के पूर्व में स्थित लुप्त 'य्' के शेषांश ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर *पिआइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

चिअ अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या २-९९ में की गई है।

भवन्ति संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप णिव्वडन्ति (भी) होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-६२ से 'भव्' धातु के स्थान पर 'णिव्वड्' रूप का आदेश; ४-२३९ से हलन्त व्यञ्जन 'ड्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *णिव्वडन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

आनन्तर्ये णवरि ॥२-१८८॥

आनन्तर्ये णवरीति प्रयोक्तव्यम् ॥ णवरि अ से रहु-वइणा ॥ केचित्तु केवलानन्तर्यार्थयोर्ण वर-णवरि इत्येकमेव सूत्रं कुर्वते तन्मते उभावप्युभयार्थौ ॥

अर्थः—संस्कृत साहित्य में 'जहां' 'अनन्तरं' अव्यय का प्रयोग होता है; वहां प्राकृत-साहित्य में इसी अर्थ में 'णवरि' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। इसके बाद ऐसे अर्थ में 'णवरि' अव्यय प्रयुक्त किया जाता है। जैसे:—अनन्तरम् च तस्य रघुपतिना=णवरि अ से रहु-वइणा। अर्थात् 'और पश्चात् रघुपति से उसका' (हित संपादन किया गया)। कोई कोई व्याकरणाचार्य संस्कृत अव्यय 'केवलम् और अनन्तरम्' के लिये प्राकृत में 'णवर और णवरि' दोनों का प्रयोग करना स्वीकार करते हैं।' 'णवर' अर्थात् 'केवलम् और अनन्तरम्;' इसी प्रकार से 'णवरि' अर्थात् 'केवलम् और अनन्तरम्' यों अर्थ किया करते हैं। इसी तात्पर्य को लेकर 'केवलानन्तर्यार्थयोर्णवरणवरि' ऐसा एक ही सूत्र बनाया करते हैं; तदनुसार उनके मत से दोनों प्राकृत अव्यय दोनों प्रकार के संस्कृत-अव्ययों के तात्पर्य को बतलाते हैं। *अनन्तरम्* संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णवरि' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८८ से 'अनन्तरम्' के स्थान पर 'णवरि' आदेश की प्राप्ति होकर *णवरि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*अ*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है।

तस्य संस्कृत षष्ठ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप 'से' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-८१ से संस्कृत मूल-शब्द 'तत्' के साथ संस्कृत की षष्ठी विभक्ति के एक वचन में 'ङस्' प्रत्यय की प्राप्ति होने पर प्राकृत में 'तत् + ङस् के स्थान पर 'से' का आदेश होकर *से* रूप सिद्ध हो जाता है।

रघु-पतिना संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रहु-वइणा होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'घ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-२४ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में इकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'णा' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *रहु-वइणा* रूप सिद्ध हो जाता है।।२-१८८।।

अलाहि निवारणे ॥२-१८९॥

अलाहीति निवारणे प्रयोक्तव्यम् ॥ अलाहि किं वाइएण लेहेण ॥

अर्थः—'मना करने' अर्थ में अर्थात् 'निवारण अथवा निषेध' करने अर्थ में प्राकृत में 'अलाहि' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—मा, किम् वाचितेन लेखेन=अलाहि; किं वाइएण लेहेण अर्थात् मत (पढ़ो),—पढ़े हुए लेख से क्या (होने वाला है)? 'अलाहि' प्राकृत साहित्य का अव्यय है; रूढ़-अर्थक और रूढ़-रूपक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

किं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

वाचितेन संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वाइएण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च्' और 'त्' का लोप; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित एवं लुप्त हुए 'त्' में से शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *वाइएण* रूप सिद्ध हो जाता है।

लेखेन संस्कृत तृतीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप लेहेण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'ह्' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *लेहेण* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१८९॥

अण णाइं नञर्थे ॥ २-१९० ॥

अण णाई इत्येतौ नञोर्थे प्रयोक्तव्यौ ॥ अण चिन्तिअममुणन्ती । णाइं करेमि रोसं ॥

अर्थ—'नहीं' अर्थ में प्राकृत-साहित्य में 'अण' और 'णाइं' अव्ययों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार 'अण' और 'णाइं' अव्यय निषेधार्थक है अथवा नास्तिक अर्थक है। जैसे:—अचिन्तितम् अजानन्ती = अणचिन्तिअं अमुणन्ती अर्थात् नहीं सोची विचारी हुई (बात) को नहीं जानती हुई। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—न करोमि रोषम् = णाइं करेमि रोसं ॥ इत्यादि।

अचिन्तितम् संस्कृत द्वितीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अणचिन्तिअं होता है। सूत्र-संख्या २-१९० से 'अ' अर्थक संस्कृत स्वर 'अ' के स्थान पर प्राकृत में 'अण' अव्यय की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में अथवा पुल्लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणचिन्तिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अजानन्ती संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अमुणन्ती होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-७ से 'जान्' के स्थान पर 'मुण' आदेश; ४-२३९ से हलन्त 'ण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१८१ से संस्कृत प्रत्यय 'शतृ' के स्थानीय रूप 'न्त' के स्थान पर प्राकृत में भी 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप 'अमुणन्त' को स्त्रीलिंग रूप में परिणतार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से 'न्त' में स्थित अन्त्य 'अ' की इत्संज्ञा होकर इस 'अ' का लोप और १-५ से प्राप्त हलन्त 'न्त्' में उक्त 'ई' प्रत्यय की संधि होकर *अमुणन्ती* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णाइं' होता है। इसमें सूत्र संख्या २-१९० से 'न' के स्थान पर 'णाइं' आदेश की प्राप्ति होकर *णाइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

करोमि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप करेमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से मूल संस्कृत रूप 'कर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१४१ से वर्तमान काल के एक वचन में तृतीय पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'मि' के स्थान पर प्राकृत में भी 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति; और ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *करेमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

रोषम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रोसं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'ष' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३

से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर रोसं रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९० ॥

माइं मार्थे ॥२-१९१॥

माइं इति मार्थे प्रयोक्तव्यम् ॥ माइं काहीअ रोसं । माऽकार्षीद् रोषम् ॥

अर्थः—'मा' अर्थात् 'मत' याने नकारार्थ में या निषेध-अर्थ में प्राकृत भाषा में 'माइं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसेः—माइं काहीअ रोसं = मा अकार्षीद् रोषम् अर्थात् उसने क्रोध नहीं किया। इत्यादि।

मा संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'माइं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१९१ से 'मा' के स्थान पर 'माइं' आदेश की प्राप्ति होकर *माइं* रूप सिद्ध हो जाता है।

अकार्षीत् संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'काहीअ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२१४ से मूल-संस्कृत धातु रूप- कृ' अन्त्य 'ऋ' के स्थान पर 'आ' आदेश की प्राप्ति; और ३-१६२ से भूतकाल बोधक प्रत्यय 'हीअ' की प्राप्ति होकर *काहीअ* रूप सिद्ध हो जाता है।

रोसं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१९० में की गई है ॥ २-१९१ ॥

हद्धी निर्वेदे ॥२-१९२॥

हद्धी इत्यव्ययमत एव निर्देशात् हा-धिक् शब्दादेशो वा निर्वेदे प्रयोक्तव्यम् ॥ हद्धी हद्धी । हा धाह धाह ॥

अर्थः—'हद्धी' यह प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय है। इसका प्रयोग 'निर्वेद' अर्थात् खिन्नता प्रकट करने में अथवा 'पश्चाताप पूर्ण खेद प्रकट करने में किया जाता है। संस्कृत अव्यय 'हा-धिक्' के स्थान पर भी वैकल्पिक रूप से इसका व्यवहार किया जाता है। जैसेः—हा-धिक् ! हा-धिक्!! हद्धी ! हद्धी !! पक्षान्तर में हा धाह ! हा धाह !! भी होता है। मानसिक खिन्नता को प्रकट करने के लिये इसका उच्चारण दो बार होता है।

हा ! धिक् संस्कृत अव्यय है। इसके प्राकृत रूप 'हद्धी' अथवा 'हा धाह' होते हैं। इसमें सूत्र-संख्या २-१९२ से 'हा ! धिक्' के स्थान पर 'हद्धी' अथवा हा ! धाह ! की आदेश प्राप्ति होकर *हद्धी* और *हा धाह* रूपों की सिद्धि हो जाती है ॥२-१९२॥

वेव्वे भय-वारण-विषादे ॥२-१९३॥

भय वारण विषादेषु वेव्वे इति प्रयोक्तव्यम् ॥
वेव्वे त्ति भये वेव्वे त्ति वारणे जूरणे अ वेव्वे त्ति ॥
उल्लाविरीइ वि तुहं वेव्वे त्ति मयच्छि किं णेअं ॥ १ ॥
किं उल्लावेन्तीए उअ जूरन्तीए किं तु भीआए ।
उव्वाडिरीए वेव्वे त्ति तीएँ भणिअं न विम्हरिमो ॥ २ ॥

अर्थः-'वेव्वे' यह अव्यय प्राकृत-साहित्य का है। इसका प्रयोग करने पर प्रसंगानुसार तीन प्रकार की वृत्तियों में से किसी एक वृत्ति का ज्ञान होता है। तदनुसार 'वेव्वे' ऐसा कहने पर प्रसंगानुसार कभी 'भय' वृत्ति का; कभी 'निवारण करने रूप' वृत्ति का अथवा कभी 'झूरना-खेद प्रकट करना-रूप' वृत्ति का भान होता है। उदाहरण इस प्रकार है :—

मूलः—वेव्वे 'त्ति' भये वेव्वे त्ति वारणे झूरणे अ वेव्वे त्ति ।।
उल्लाविरीइ वि तुहं वेव्वे त्ति मयच्छि किं णेअं ।।१।।

संस्कृतः-वेव्वे इति भये वेव्वे इति निवारणे (खेदे) विषादे च वेव्वे इति ।।
उल्लपनशीलया अपि तव वेव्वे इति मृगाक्षि ! किम् ज्ञेयं ।।१।।

अर्थः—हे हिरण के समान सुन्दर नेत्रों वाली सुन्दरि ! तुम्हारे द्वारा जो वेव्वे शब्द बोला गया है; वह (शब्द) क्या भय-अर्थ में बोला गया है ? अथवा 'निवारण अर्थ' में बोला गया है ? अथवा 'खिन्नता' अर्थ में बोला गया है ? तदनुसार 'वेव्वे' इसका क्या तात्पर्य समझना चाहिये ? अर्थात् क्या तुम भय-ग्रस्त हो ? अथवा क्या तुम किसी बात विशेष की मनाई कर रही हो ? अथवा क्या तुम खिन्नता प्रकट कर रही हो ? मैं तुम्हारे द्वारा उच्चारित 'वेव्वे' का क्या तात्पर्य समझूँ ? दूसरा उदाहरण इस प्रकार है:—

मूलः—किं उल्लाविन्तीए उअ झूरन्तीएं किं तु भीआए ।।
उव्वाडिरीएँ वेव्वेत्ति तीएँ भणिअं न विम्हरिमो ।।२।।

संस्कृत—किं उल्लापयन्त्या उत खिद्यन्त्या किं पुनः भीतया ।
उद्वातशीलया वेव्वे इति तया भणितं न विस्मरामः ।।२।।

अर्थः-उस (स्त्री) द्वारा (जो) वेव्वे ऐसा कहा गया है; तो क्या 'उल्लाप-विलाप' करती हुई द्वारा अथवा क्या खिन्नता प्रकट करती हुई द्वारा अथवा क्या भयभीत होती द्वारा अथवा क्या वायु-विकार से उद्विग्न होती हुई द्वारा ऐसा (वेव्वे) कहा गया है ? (यह) हमें स्मरण नहीं होता है। अर्थात् हमें यह याद में नहीं आ रहा है कि—वह स्त्री क्या भय-भीत अवस्था में थी अथवा क्या खिन्नता प्रकट कर रही थी अथवा क्या विलाप कर रही थी अथवा क्या वह वायु विकारसे उद्विग्न थी, कि जिससे वह 'वेव्वे' 'वेव्वे' ऐसा बोल रही थी।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'वेव्वे' अव्यय का प्रयोग भय निवारण और खेद अर्थ में होता है।

वेव्वे प्राकृत-भाषा का अव्यय है। रूढ-अर्थक और रूढ़ रूपक होने से साधनिका कि आवश्यकता नहीं है।

त्ति रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-४२ में की गई है।

खेदे संस्कृत सप्तम्यंत रूप है। इसका प्राकृत रूप झूरणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१३२ से 'खिद्' के स्थान पर 'झूर' आदेश; ४-४४८ से संस्कृतवत् 'क्रिया से संज्ञा-निर्माण-अर्थ' 'अन' प्रत्यय की प्राप्ति; १-५ से हलन्त

'र्' के साथ प्राप्त प्रत्यय 'अन' के 'अ' की संधि; १-२२८ से प्राप्त प्रत्यय 'अन' के 'न' को 'ण' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'डे' प्रत्यय का आदेश; 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'ण' के 'अ' की इत्संज्ञा होने से 'अ' का लोप और १-५ से हलन्त 'ण्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर *जूरणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

'अ' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७७* में की गई है।

उल्लपनशीलया संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उल्लाविरीइ होता है। इसमें मूल रूप 'उल्लपनस्य-भावं इति उल्लापम् होता है। तदनुसार सूत्र-संख्या १-११ से एवं समास-स्थिति होने से अन्त्य व्यञ्जन 'म्' का लोप; १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; २-१४५ से 'शील-अर्थक' इर प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से पूर्वस्थ 'व' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'इर' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'व्' में आगे प्राप्त 'इर' के 'इ' की संधि; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'र' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से 'इस' 'अ' का लोप; १-५ से हलन्त 'र्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक 'ङी' = ई प्रत्यय की संधि; ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उल्लाविरीइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

ण अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

तव संस्कृत षष्ठ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तुहं होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९९ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में 'युष्मत्' सर्वनामीय षष्ठ्यंत एक वचन रूप 'तव' के स्थान पर 'तुहं' आदेश की प्राप्ति होकर *तुहं* रूप सिद्ध हो जाता है।

(हे) मृगाक्षि संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप मयच्छि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ग्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ग्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'या' की प्राप्ति; १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'छ्' को द्वित्व 'छ्छ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त 'पूर्व' 'छ्' के स्थान पर 'च्' की प्राप्ति; और ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *मयच्छि* रूप सिद्ध हो जाता है।

किं रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-२९* में की गई है।

ज्ञेयम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप णेअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४२ से 'ज्ञ' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१७७ से 'य' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *णेअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

उल्लापयन्त्या संस्कृत तृतीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उल्लाबेन्तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति; ४-२३९ से संस्कृत में 'उल्लाप' धातु को चुरादिगण वाली मानने से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में केवल 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१५८ से विकरण प्रत्यय के आगे वर्तमान कृदन्त का प्रत्यय 'न्त' होने से उक्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; १-५ से प्राप्त 'उल्लाव्' के हलन्त 'व्' में आगे प्राप्त विकरण प्रत्यय के स्थानीय रूप 'ए' की संधि; ३-१८१ से वर्तमान कृदन्त वाचक 'शतृ' प्रत्यय के स्थानीय संस्कृत प्रत्यय 'न्त' के स्थान पर प्राकृत में भी 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'न्त' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'न्त्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग अर्थक 'ङी = ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उल्लावेन्तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

उअ अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७२* में की गई है।

खिद्यन्त्या संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप जूरन्तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१३२ से संस्कृत धातु 'खिद्' के स्थान पर प्राकृत में 'जूर्' आदेश; ४-२३९ से संस्कृत में 'खिद्' धातु में स्थित विकरण प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में प्राप्त रूप 'जूर' में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति; ३-१८१ से वर्तमान कृदन्त वाचक 'शतृ' प्रत्यय रूप 'न्त' के स्थान पर प्राकृत में भी 'न्त' प्रत्यय की प्राप्ति; ३-३२ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'न्त' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'न्त्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक 'ङी=ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जूरन्तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

तु, संस्कृत निश्चय वाचक अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'तु' ही होता है।

भीतया संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भीआए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-३१ से प्राप्त पुल्लिंग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'आप्=आ' प्रत्यय की प्राप्ति; १-५ से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के साथ आगे प्राप्त प्रत्यय रूप 'आ' की संधि होने से 'आ' रूप की प्राप्ति; और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *भीआए* रूप सिद्ध हो जाता है।

उद्वातशीलया संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप उव्वाहिरीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'व्' को द्वित्व 'व्व्' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; २-१४५ से शील-अर्थक 'इर' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से पूर्वस्थ 'ड' में स्थित 'अ' स्वर का आगे 'इर' प्रत्यय की 'इ' होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'ड्' में आगे प्राप्त 'इर' के 'इ' की संधि ३-३२

से प्राप्त पुल्लिग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'र' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'र्' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक 'ङी=ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *उअरीए/इरीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

तया संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'तत्' में स्थित अन्त्य हलन्त 'त्' का लोप; ३-३३ से शेष 'त' में प्राप्त पुल्लिग रूप से स्त्रीलिंग-रूप-निर्माणार्थ 'ङी' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय ङी' में 'ङ्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' में स्थित 'अ' की इत्संज्ञा होने से इस 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'त' में आगे प्राप्त स्त्रीलिंग-अर्थक-ङी = 'ई' प्रत्यय की संधि और ३-२९ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

भणितम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप भणिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *भणिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

विस्मरामः संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विम्हरिमो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७४ से 'स्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश; ४-२३९ से संस्कृत में प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थानीय रूप के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति; और ३-१५५ से प्राकृत में प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; ३-१४४ से वर्तमानकाल के बहु वचन में तृतीया पुरुष में अर्थात उत्तम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'मः' के स्थान पर प्राकृत 'मो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विम्हरिमो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१९३॥

वेव्व च आमन्त्रणे ॥२–१९४॥

वेव्व वेव्वे च आमन्त्रणे प्रयोक्तव्ये ॥ वेव्व गोले । वेव्वे मुरन्दले वहसि पाणिअं ॥

अर्थः—आमन्त्रण 'अर्थ में अथवा संबोधन-अर्थ में वेव्व और वेव्वे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे:- हे गोले = वेव्व गोले = हे सखि ! हे मुरन्दले वहसि पानीयम् = हे मुरन्दले ! वहसि पाणिअं = हे मुरन्दल ! तू पीने योग्य वस्तु विशेष लिए जा रहा है।

वेव्व प्राकृत साहित्य का रूढ रूपक और रूढ-अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

गोले देशज शब्द रूप होने से संस्कृत रूप का अभाव है। इसमें सूत्र-संख्या ३-४१ से संबोधन के एक वचन में अन्त्य 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *गोले* रूप सिद्ध हो जाता है।

वेव्व प्राकृत साहित्य का रूढ़ रूपक और रूढ़ अर्थक संबोधनात्मक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

सुरन्दले संबोधनात्मक व्यक्ति वाचक संज्ञा रूप है। इसमें सूत्र-संख्या ३-४१ से संबोधन के एक वचन में अन्त्य 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *सुरन्दले* रूप सिद्ध हो जाता है।

वहसि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप भी वहसि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त रूप 'वह्' में विकरण प्रत्यय रूप 'अ' की प्राप्ति और ३-१४० से वर्तमानकाल के एक वचन में द्वितीय पुरुष में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वहसि* रूप सिद्ध हो जाता है।

पाणिअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१०१* में की गई है ॥२-१९४॥

मामि हला हले सख्या वा ॥२-१९५॥

एते सख्या आमन्त्रणे वा प्रयोक्तव्याः ॥ मामि सरिसक्खराण वि ॥ पणवह माणस्स हला ॥ हले हयासस्स । पक्षे । सहि एरिसि च्चिअ गई ।

अर्थः—'सखि' को आमन्त्रण देने में अथवा संबोधित करने में 'मामि' अथवा 'हला' अथवा 'हले' अव्ययों में से किसी भी एक अव्यय का वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जाता है। अर्थात् जब अव्यय विशेष का प्रयोग करना हो तो उक्त तीनों में से किसी भी एक अव्यय का प्रयोग किया जा सकता है; अन्यथा बिना अव्यय के भी "हे सखि = सहि!" ऐसा प्रयोग भी किया जा सकता है। उदाहरण इस प्रकार हैः—हे (सखि)! सदृशाक्षराणाम् अपि=मामि! सरिसक्खराणवि। प्रणमत मानाय हे (सखि)! = पणवह माणस्स हला! हे (सखि)! हताशस्य = हले हयासस्स ॥ पक्षान्तर में उदाहरण इस प्रकार है:—हे सखि! ईदृशी एव गतिः = सहि! एरिसि च्चिअ गई ॥ इत्यादि।

'मामि' प्राकृत भाषा का संबोधनात्मक अव्यय होने से रूढ़-अर्थक और रूढ़ रूपक है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

सदृशाक्षराणाम् संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत-रूप सरिसक्खराण होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४२ से 'ऋ' के स्थान पर 'रि' आदेश; २-७७ से 'द्' में स्थित 'द्' का लोप; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-८४ से प्राप्त 'सा' में रहे हुए दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; २-३ से 'क्ष' के स्थान पर 'ख' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ख' को द्वित्व 'ख्ख' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ख्' के स्थान पर 'क्' की प्राप्ति; ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' आदेश; और ३-१२ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'र' में रहे हुए 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *सरिसक्खराण* रूप की सिद्धि हो जाती है।

'वि' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

प्रणमत संस्कृत आज्ञार्थक सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप 'पणमह' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; ४-२२६ से 'म' के स्थान पर 'व' आदेश और ३-१७६ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के बहु वचन में संस्कृत प्रत्यय 'त' के स्थान पर प्राकृत में 'ह' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पणमह* रूप सिद्ध हो जाता है।

मानाय संस्कृत चतुर्थ्यन्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप माणस्स होता है। इसमें सूत्र-संख्या-१-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; ३-१३१ से संस्कृतीय चतुर्थी के स्थान पर प्राकृत में षष्ठी-विभक्ति की प्राप्ति; ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में (अथवा नपुंसकलिंग में)–संस्कृत 'ङस्' के स्थानीय रूप 'आय' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *माणस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

'हला' प्राकृत भाषा का संबोधनात्मक अव्यय होने से रूढ-रूपक है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है

'हले' प्राकृत-भाषा का संबोधनात्मक अव्यय होने से रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

हताशस्य संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप हयासस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' की प्राप्ति होकर *हयासस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

(हे) *सखि* ! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप (हे) सहि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ख' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्री लिंग में अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर (हे) *सहि* ! रूप सिद्ध हो जाता है।

ईदृशी संस्कृत विशेषणात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप एरिसि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१०५ से प्रथम 'ई' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; २-७७ से 'द्' का लोप १-१४२ से 'ऋ' के स्थान पर 'रि' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति और १-८४ से दीर्घ स्वर द्वितीय 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *एरिसि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'च्चिअ' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है।

गतिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप *गई* होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य ह्रस्व स्वर 'इ' को दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति होकर *गई* रूप सिद्ध हो जाता है।

दे संमुखीकरणे च ॥ २-१९६ ॥

संमुखीकरणे सख्या-आमन्त्रणे च दे इति प्रयोक्तव्यम् ॥ दे पसिअ ताव सुन्दरि ॥ दे आ पसिअ निअत्तसु ॥

अर्थः—'सम्मुख करने' के अर्थ में और 'सखी' को 'आमंत्रित करने' के अर्थ में प्राकृत-भाषा में 'दे' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। 'मेरी ओर देखो' अथवा 'हे सखि !' इन तात्पर्य-पूर्ण शब्दों के अर्थ में 'दे' अव्यय का प्रयोग किया जाना चाहिये। जैसे:-दे ! प्रसीद तावत् (हे) सुन्दरि ! = दे पसिअ ताव (हे) सुन्दरि अर्थात् मेरी ओर देखो; अब हे सुन्दरि ! प्रसन्न हो जाओ। दे (=हे सखि !) आ प्रसीद निवर्तस्व = दे! आ पसिअ निअत्तसु अर्थात् हे सखि! अब प्रसन्न हो जाओ (और निवृत्त हो ओ।)

'दे' प्राकृत-साहित्य का संमुखीकरणार्थक अव्यय है; तदनुसार रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

पसिअ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०१ में की गई है।

ताव अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-११ में की गई है।

हे *(सुन्दरि)* ! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'सुन्दरि' ही होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-४२ से संबोधन के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' को ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *(हे) सुन्दरि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'आ' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप भी 'आ' ही होता है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

पसिअ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१०१ में की गई है।

निवर्तस्व संस्कृत आज्ञार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप निअत्तसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'व' का लोप; २-७९ से 'र्' का लोप और ३-१७३ से संस्कृत आज्ञार्थक प्रत्यय 'स्व' के स्थान पर प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निअत्तसु* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१९६॥

हुं दान-पृच्छा-निवारणे ॥२-१९७॥

हुं इति दानादिषु प्रयुज्यते ॥ दाने। हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ ॥ पृच्छायाम्। हुं साहसु सब्भावं ॥ निवारणे। हुं निल्लज्ज समोसर ॥

अर्थः—'वस्तु-विशेष' को देने के समय में ध्यान-आकर्षित करने के लिये अथवा सावधानी बरतने के लिये प्राकृत साहित्य में 'हुं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है; इसी प्रकार से किसी भी तरह की बात पूछने के समय में भी 'हुं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है एवं 'निषेध करने' के अर्थ में अथवा 'मनाई' करने के अर्थ में भी 'हुं' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। क्रम से उदाहरण इस प्रकार हैं:-[हुं गृहाण आत्मनः एव = हुं गेण्ह अप्पणो च्चिअ अर्थात् आप ही ग्रहण करो। 'पूछने के' अर्थ में 'हुं' अव्यय के प्रयोग का उदाहरण इस प्रकार है:-हुं कथय सद्भावं=हुं साहसु सब्भावं। 'निवारण' के अर्थ में 'हुं' अव्यय के प्रयोग का उदाहरण यों है:-हुं निर्लज्ज! समपसर=हुं निल्लज्ज! समोसर अर्थात् हुं ! निर्लज्ज ! निकल जा।

'हु' प्राकृत-भाषा का अव्यय होने से रूढ-रूपक एवं रूढ-अर्थक है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

गृहाण संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप गण्ह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२०९ से 'ग्रह' धातु के स्थान पर 'गेण्ह्' (रूप का) आदेश; ४-२३९ से हलन्त 'ह्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *गेण्ह* रूप सिद्ध हो जाता है।

आत्मनः संस्कृत बहुवचनान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणो होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-५१ से संयुक्त व्यञ्जन 'त्म' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'प' के स्थान पर द्वित्व 'प्प' की प्राप्ति; और ३-५० से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर प्राकृत में 'णो' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अप्पणो* रूप सिद्ध हो जाता है।

च्चिअ अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-८ में की गई है।

कथय संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप साहसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२ से 'कथ' धातु के स्थान पर प्राकृत में 'साह्' आदेश ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७३ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की होकर *साहसु* रूप सिद्ध हो जाता है।

सद्भावम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सब्भावं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'भ्' को द्वित्व 'भ्भ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त हुए पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सब्भावं* रूप सिद्ध हो जाता है।

निर्लज्ज ! संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर (हे) *निल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

समवसर संस्कृत आज्ञार्थक रूप है। इसका प्राकृत रूप समोसर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७२ से मध्यस्थ उपसर्ग 'अव' के स्थान पर 'ओ' की प्राप्ति; ४-२३९ से 'समोसर' में स्थित अन्त्य हलन्त 'र्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सु' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *समोसर* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-१९७ ॥

हु खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये ॥२-१९८॥

हु खु इत्येतौ निश्चयादिषु प्रयोक्तव्यौ ॥ निश्चये । तं पि हु अच्छिन्नसिरी । तं खु

सिरीएँ रहस्सं ॥ वितर्कः ऊहः संशयो वा । ऊहे । न हु णवरं संगहिआ । एअं खु हसइ ॥ संशये । जलहरो खु धूमवडलो खु ॥ संभावने । तरीउं ण हु णवर इमं । एअं खु हसइ ॥ विस्मये । को खु एसो सहस्स-सिरो ॥ बहुलाधिकारादनुस्वारात् परो हु न प्रयोक्तव्यः ॥

अर्थः—'हु' और 'खु' प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किये जाने वाले अव्यय हैं। इनका प्रयोग करने पर प्रसंगानुसार 'निश्चय' अर्थ; 'तर्कात्मक' अर्थ; 'संशयात्मक' अर्थ; 'संभावना' अर्थ और विस्मय-आश्चर्य अर्थ प्रकट होता है। 'निश्चय' अर्थक उदाहरण इस प्रकार है:—त्वमपि हु (=एवं) अच्छिन्न श्रीः= तं पि हु अच्छिन्नसिरी अर्थात् निश्चय ही तू परिपूर्ण शोभावाली है। त्वम् खु (= खलु) श्रियः रहस्यम् = तं खु सिरीएँ रहस्सं अर्थात् निश्चय ही तू संपत्ति का रहस्य (मूल कारण) है। वितर्क अर्थक, 'साध्य-साधन' से संबंधित 'कल्पना' अर्थक और 'संशय' अर्थक उदाहरण इस प्रकार हैं:—(१) न हु केवलं संगृहीता = न हु णवरं संगहिआ अर्थात् उस द्वारा केवल संग्रह किया हुआ है कि नहीं है? एतं खु हसति = एअं खु हसइ अर्थात् क्या इस पुरुष के प्रति यह हंसती! कि नहीं हंसती है? संशय का उदाहरण:—जलधरः खु धूम पटलः खु = जलहरो खु धूम वडलो खु अर्थात् यह बादल है अथवा यह धुंए का पटल है? संभावना का उदाहरण:—तरितुं न हु केवलम् इमाम् = तरीउं ण हु णवर इमं अर्थात् इस (नदी) को केवल तैरना (= तैरते हुए पार उतर जाना) संभव नहीं है। एतं खु हसति = एअं खु हसइ अर्थात् (वह) इसके प्रति हंसती है, ऐसा संभव है। 'विस्मय' का उदाहरण:—कः खलु एषः सहस्र शिराः = को खु एसो सहस्स-सिरो अर्थात् आश्चर्य है कि हजार सिर वाला यह कौन है? प्राकृत-साहित्य में 'बहुल' की अर्थात् एकाधिक रूपों की उपलब्धि है; अतः अनुस्वार के पश्चात् 'हु' का प्रयोग नहीं कियाजाना चाहिये। ऐसे स्थल पर 'खु' का प्रयोग होता है।

त्वम् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप 'तं' होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-९० से 'युष्मद्' स्थानीय रूप 'त्वम्' के स्थान पर प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय का योग होने पर 'तं' आदेश की प्राप्ति होकर '*तं*' रूप सिद्ध हो जाता है।

'*पि*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-४१* में की गई है।

'*हु*' प्राकृत साहित्य का रूढ़-रूपक एवं रूढ़-अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है। कोई कोई 'खलु' के स्थान पर 'हु' आदेश की प्राप्ति मानते हैं।

अच्छिन्न श्रीः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अच्छिन्नसिरी होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २-१०४ से प्राप्त 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और ३-१९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' को यथास्थिति की प्राप्ति होकर एवं १-११ से अन्त्य व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर *अच्छिन्नसीरी* रूप सिद्ध हो जाता है।

'खलु' संस्कृत अव्यय है। इसका प्राकृत रूप 'खु' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१९८ से 'खलु' के स्थान पर 'खु' आदेश की प्राप्ति होकर 'खु' रूप सिद्ध हो जाता है।

श्रियः संस्कृत षष्ठयन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप सिरीए होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; २-१०४ से प्राप्त 'स्' में आगम रूप 'इ' की प्राप्ति; और ३-२६ से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'यः' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *सिरीए* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

णवरं (=वैकल्पिक रूप-णवर) की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१८७ में की गई है।

संगृहीता संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप संगहिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; और १-१०१ से 'ही' में स्थित दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति होकर *संगहिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

एतत् संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप एअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से १-१७७ से 'त्' का लोप; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर एअं रूप सिद्ध हो जाता है।

हसति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हसइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर हसइ रूप सिद्ध हो जाता है।

जलधरः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जलहरो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जलहरो* रूप सिद्ध हो जाता है।

धूमपटलः संस्कृत रूप है इसका प्राकृत रूप धूमवडलो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व', १-१९५ से 'ट' के स्थान पर 'ड' और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में पुल्लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धूमवडलो* रूप सिद्ध हो जाता है।

तरितुम् संस्कृत हेत्वर्थ कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप तरीउं होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से मूल धातु 'तर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति, ३-१५७ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' को 'इ' की प्राप्ति, १-४ से प्राप्त ह्रस्व 'इ' के स्थान पर दीर्घ 'ई' की प्राप्ति, १-१७७ से द्वितीय 'त्' का लोप और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *तरीउं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'ण' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८० में की गई है।

'णवर' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या २-१८७ में की गई है।

'इमं' सर्वनाम की सिद्धि सूत्र संख्या २-१८१ में की गई है।

'एअं' सर्वनाम की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

कः संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप को होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-७१ से मूल रूप 'किम्' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर को रूप सिद्ध हो जाता है।

'एसो' की सिद्धि सूत्र-संख्या २-११६ में की गई है।

सहस्रशीराः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सहस्ससिरो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से प्रथम 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'स' को द्वित्व 'स्स' की प्राप्ति; १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; १-४ से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर सहस्स-सिरो रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-१९८॥

ऊ गर्हाक्षेप-विस्मय-सूचने ॥२-१९९॥

ऊ इति गर्हादिषु प्रयोक्तव्यम् ॥ गर्हा। ऊ णिल्लज्ज ॥ प्रक्रान्तस्य वाक्यस्य विपर्यासाशङ्काया विनिवर्तन लक्षण आक्षेपः ॥ ऊ किं मए भणिअं ॥ विस्मये। ऊ कह मुणिआ अहयं सूचने। ऊ केण न विण्णायं ॥

अर्थः—'ऊ' प्राकृत साहित्य का अव्यय है; जो कि 'गर्हा' अर्थ में याने निन्दा अर्थ में; आक्षेप अर्थ में अथवा तिरस्कार अर्थ में; विस्मय याने आश्चर्य अर्थ में और सूचना याने विदित होने अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'गर्हा अथवा निंदा का' उदाहरणः—अरे (धिक्) निर्लज्ज != ऊ ! णिल्लज्ज अर्थात अरे निर्लज्ज ! तुझे धिक्कार है। 'आक्षेप' का यहाँ विशेष अर्थ किया गया है, जो कि इस प्रकार है:—वार्तालाप के समय में कहे गये वाक्य का कहीं विपरीत अर्थ नहीं समझ लिया जाय, तदनुसार उत्पन्न हो जाने वाली विपरीत आशंका को दूर करना ही 'आक्षेप' है। इस अर्थक 'आक्षेप का उदाहरण इस प्रकार है:—ऊ, किं मया भणितं = ऊ किं मए भणिअं अर्थात क्या मैंने तुमको कहा था ? (तात्पर्य यह है कि—'तुम्हारी धारणा ऐसी है कि मैंने तुम्हें कहा था', किन्तु तुम्हारी ऐसी धारणा ठीक नहीं है, मैंने तुमको ऐसा कब कहा था)।

'विस्मय-आश्चर्य' अर्थक उदाहरण यों है:—ऊ, कथं (ज्ञाता) = मुनिता अहं = ऊ, कह मुणिआ अहयं अर्थात आश्चर्य है कि मैं किस प्रकार अथवा किस कारण से जान ली गई हूं, पहिचान ली गई हूँ। 'सूचना अथवा विदित होना' अर्थक दृष्टान्त इस प्रकार है:—ऊ, केन न विज्ञातम् = ऊ, केण न विण्णायं

अर्थात् अरे ! किसने नहीं जाना है ? याने इस बात को तो सभी कोई जानता है। यह किसी से छिपी हुई बात नहीं है। इस प्रकार 'ऊ' अव्यय के प्रयोगार्थ को जानना चाहिए।

'ऊ' प्राकृत साहित्य का 'सिद्धादि' रूढ अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है, अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

(हे) *निर्लज्ज !* संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप णिल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७८ से 'ज्' का लोप; २-८९ से 'र्' के लोप होने के पश्चात शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से सम्बोधन के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप (डो=) 'ओ' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *णिल्लज्ज* रूप सिद्ध हो जाता है।

'किं' की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

मया संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप मए होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१०९ से संस्कृत सर्वनाम 'अस्मद्' के साथ में तृतीया विभक्ति के प्रत्यय 'टा' का योग प्राप्त होने पर प्राप्त रूप 'मया' के स्थान पर प्राकृत में 'मए' आदेश की प्राप्ति होकर मए रूप सिद्ध हो जाता है।

'भणिअं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१९३ में की गई है।

'कह' की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई।

ज्ञाता (=मुनिता) संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-७ से 'ज्ञा' के स्थान पर 'मुण्' आदेश, ४-२३९ से हलन्त धातु 'मुण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५६ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; और १-१७७ से 'त्' का लोप होकर *मुणिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

अहम् संस्कृत सर्वनाम रूप है इसका प्राकृत रूप अहयं होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-१०५ से संस्कृत सर्वनाम 'अस्मद्' के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में 'सि' प्रत्यय के योग से प्राप्त रूप 'अहम्' के स्थान पर प्राकृत में 'अहयं' आदेश की प्राप्ति होकर अहयं रूप सिद्ध हो जाता है।

केन संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप केण होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-७१ से मूल रूप 'किम्' के स्थान पर 'क' की प्राप्ति; ३-६ से तृतीया विभक्ति के एक वचन में अकारांत पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'टा' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४ से प्राप्त प्रत्यय 'ण' के पूर्व में स्थित 'क' के अन्त्य स्वर 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर केण रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

विज्ञातम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप विण्णायं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-४२ से 'ज्ञ्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; २-८९ से प्राप्त 'ण्' को द्वित्व 'ण्ण्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विण्णायं* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-१९९॥

थू कुत्सायाम् ॥२-२००॥

थू इति कुत्सायां प्रयोक्तव्यम् ॥ थू निल्लज्जो लोओ ॥

अर्थः—'कुत्सा' अर्थात् निन्दा अर्थ में-घृणा अर्थ में 'थू' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे:-थू (निन्दनीयः) निर्लज्जः लोकः=थू निल्लज्जो लोओ अर्थात् निर्लज्ज व्यक्ति निन्दा का पात्र है। (घृणा का पात्र है) 'थू' प्राकृत भाषा का रूढ रूपक और रूढ अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

निर्लज्जः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निल्लज्जो होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *निल्लज्जो* रूप सिद्ध हो जाता है।

लोओ रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-१७७ में की गई है ॥२-२००॥

रे अरे संभाषण-रतिकलहे ॥२-२०१॥

अनयोरर्थयोर्यथासंख्यमेतौ प्रयोक्तव्यौ ॥ रे संभाषणे। रे हिअय मडह-सरिआ ॥ अरे रति-कलहे। अरे मए समं मा करेसु उवहासं ॥

अर्थः—प्राकृत साहित्य में 'रे' अव्यय 'संभाषण' अर्थ में-'उद्गार प्रकट करने' अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'अरे' अव्यय 'प्रीतिपूर्वक कलह' अर्थ में-'रति-क्रिया संबंधित कलह' अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे:—'रे' का उदाहरणः—रे हृदय! मृतक-सरिता=रे हिअय! मडह-सरिआ...... अर्थात् अरे हृदय! अल्पजल वाली नदी....... (वाक्य अपूर्ण है)। 'अरे' का उदाहरण इस प्रकार है:-अरे! मया समं मा कुरु उपहासं=अरे! मए समं मा करेसु उवहासं अर्थात् अरे! तू मेरे साथ उपहास (रति कलह) मत कर।

'रे' प्राकृत साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है; अतः इसकी साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

हृत्त्य संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप हिअय होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप और ३-३७ से संबोधन के एक वचन में प्राकृत में प्राप्तव्य प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप 'म्' प्रत्यय का अभाव होकर *हिअय* रूप सिद्ध हो जाता है।

मृतक सारिता संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मडह-सरिआ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-२०६ से 'त' के स्थान पर 'ड' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; ४-४४७ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'ह' की व्यत्यय रूप प्राप्ति; (क्योंकि 'अ और 'ह' का समान उच्चारण स्थान कंठ है); और १-१५ से (मूल रूप 'सरित्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन रूप) 'त्' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति होकर *मडह-सरिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*अरे*' प्राकृत साहित्य का रूढ-रूपक और रूढ-अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'*मए*' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या २-१९९ में की गई है।

'*समं*' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप भी समं ही है। अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'*मा*' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप भी '*मा*' ही है। अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'*कुरु*' संस्कृत आज्ञार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप करेसु होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से मूल धातु 'कर्' के हलन्त व्यञ्जन 'र्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; और ३-१७३ से आज्ञार्थक लकार के द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'सु' प्रत्यय की प्राप्ति होकर करेसु रूप सिद्ध हो जाता है।

उपहासम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप उवहासं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *उवहासं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०१॥

हरे क्षेपे च ॥ २-२०२ ॥

क्षेपे संभाषण रतिकलहयोश्च हरे इति प्रयोक्तव्यम् ॥ क्षेपे । हरे णिल्लज्ज ॥ संभाषणे । हरे पुरिसा ॥ रति-कलहे । हरे बहु-वल्लह ॥

अर्थः—प्राकृत साहित्य में 'हरे' अव्यय 'तिरस्कार'-अर्थ में; 'संभाषण'-अर्थ में अथवा 'उद्गार प्रकट करते' अर्थ में; और 'प्रीतिपूर्वक-कलह' अर्थ में याने 'रति-क्रिया-संबंधित कलह' अर्थ में प्रयुक्त

किया जाता है। 'तिरस्कार' अर्थक उदाहरण:— हरे निर्लज्ज ! हरे णिल्लज्ज अर्थात् अरे ! निर्लज्ज ! (धिक्कार है)। 'संभाषण' अर्थक उदाहरण:—हरे पुरुषाः=हरे पुरिसा अर्थात् अरे ओ मनुष्यों ! 'रति कलह' अर्थक उदाहरण:-हरे बहु वल्लभ ! = हरे बहु-वल्लह अर्थात् अरे ! अनेक से प्रेम करने वाला अथवा अनेक स्त्रियों के पति।

'हरे' प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

निर्लज्ज संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप णिल्लज्ज होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२९ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात शेष रहे हुए 'ल' को द्वित्व 'ल्ल' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राप्तव्य प्राकृत प्रत्यय 'ओ' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *'णिल्लज्ज'* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुरुषाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप पुरिसा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१११ से 'उ' के स्थान 'इ' की प्राप्ति; १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; ३-४ से संबोधन के बहु वचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'जस्' की प्राप्ति होकर प्राकृत में लोप; और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'स' के अन्त्य स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर संबोधन बहु वचन में *पुरिसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बहु-वल्लभ संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप बहु-वल्लह होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ' के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राप्तव्य प्राकृत प्रत्यय 'ओ' का वैकल्पिक रूप से लोप होकर *बहु-वल्लह* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-२०२॥

ओ सूचना-पश्चात्तापे ॥ २-२०३ ॥

ओ इति सूचना पश्चात्तापयोः प्रयोक्तव्यम्॥ सूचनायाम्। ओ अविणय-तत्तिल्ले॥ पश्चात्तापे। ओ न मए छाया इत्तिआए॥ विकल्पे तु उतादेशेनैवौकारेण सिद्धम्॥ ओ विरएमि नहयले॥

अर्थः—प्राकृत-साहित्य में 'ओ' अव्यय 'सूचना' अर्थ में और 'पश्चात्ताप' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'सूचना' विषयक उदाहरण इस प्रकार है:—ओ अविनय-तृप्तिपरे !=ओ अविणय-तत्तिल्ले अर्थात् अरे ! (मैं तुम्हें सूचित करता हूँ कि) (तू) अविनय-शील (है)। 'पश्चात्ताप' विषयक उदाहरण:— ओ ! (खेद-अर्थे) न मया छाया एतावत्यां = ओ न मए छाया इत्तिआए = अर्थात् अरे ! इतना (समय)

हो जाने पर (भी) (उसकी) छाया (तक) मुझे नहीं (दिखाई दी)। 'वैकल्पिक' अर्थ में जहाँ 'ओ' आता है; तो वह प्राप्त 'ओ' संस्कृत अव्यय विकल्पार्थक 'उत' अव्यय के स्थान पर आदेश रूप होता है; जैसा कि सूत्र संख्या १-१७२ में वर्णित है। उदाहरण इस प्रकार है:—उत विरचयामि नभस्तले=ओ विरएमि नहयले। इस उदाहरण में प्राप्त 'ओ' विकल्पार्थक है न कि 'सूचना एवं पश्चात्ताप' अर्थक; यों अन्यत्र भी तात्पर्य-भेद समझ लेना चाहिये।

'ओ' अव्यय प्राकृत-साहित्य में रूढ रूपक और रूढ-अर्थक है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

अविनय-तृप्तिपरे संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप अविणय-तत्तिल्ले होता है। इसमें सूत्रसंख्या १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति २-७७ से 'प्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'प्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; २-१५९ से 'मत्' अर्थक 'पर' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'इल्ल' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त प्रत्यय 'इल्ल' के पूर्व में स्थित 'त्ति' के 'इ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'त्त्' में प्रत्यय 'इल्ल' के 'इ' की संधि; ३-३१ से प्राप्त पुल्लिंग रूप 'तत्तिल्ल' में स्त्रीलिंग-रूप निर्माणार्थ 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-४१ से संबोधन के एक वचन में प्राप्त रूप 'तत्तिल्ला' के अन्त्य स्वर 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *अविणय-तत्तिल्ले* रूप सिद्ध हो जाता है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

'छाया' की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४९* में की गई है।

'मए' की सिद्धि सूत्र-संख्या *३-१११* में की गई है।

एतावत्यां संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप इत्तिआए होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१५६ से 'एतावत्' के स्थान पर 'इत्तिअ' आदेश; ३-३१ से स्त्रीलिंग-अर्थ में 'इत्तिअ' के अन्त में 'आ' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-२९ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'यां' प्रत्यय के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *इत्तिआए* रूप सिद्ध हो जाता है।

'उत'='ओ' की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-१७२* में की गई है।

विरचयामि संस्कृत क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विरएमि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से 'च' का लोप; ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'अ' विकरण प्रत्यय की प्राप्ति; ३-१५८ से विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१४१ से वर्तमान काल के एक वचन में तृतीय पुरुष में 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विरएमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

नभस्तले संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप नहयले होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'भ'

के स्थान पर 'ह' की प्राप्ति; २-७७ से 'स्' का लोप; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति और ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय के 'ङि' के स्थान पर प्राकृत में 'डे=ए' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से 'नहयल' के अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होने से लोप; एवं १-५ से अन्त्य हलन्त रूप 'नहयल्' में पूर्वोक्त 'ए' प्रत्यय की संधि होकर नहयले रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०३॥

अव्वो सूचना-दुःख-संभाषणापराध-विस्मयानन्दादर-भय-खेद-विषाद पश्चात्तापे ॥ २-२०४ ॥

अव्वो इति सूचनादिषु प्रयोक्तव्यम् ॥ सूचनायाम् । अव्वो दुक्करयारय ॥ दुःखे । अव्वो दलन्ति हिययं ॥ संभाषणे । अव्वो किमिणं किमिणं ॥ अपराध विस्मययोः ।

अव्वो हरन्ति हिअयं तह वि न वेसा हवन्ति जुवईण ।
अव्वो किं पि रहस्सं मुणन्ति धुत्ता जणब्भहिआ ॥१॥

आनन्दादर भयेषु ।

अव्वो सुपहाय मिणं अव्वो अज्जम्ह सप्फलं जीअं ।
अव्वो अइअम्मि तुमे नवरं जइ सा न जूरिहिइ ॥२॥

खेदे । अव्वो न जामि छेत्तं ॥ विषादे ।

अव्वो नासेन्ति दिहिं पुलयं वड्ढेन्ति देन्ति रणरणयं ।
एण्हिं तस्से अ गुणा ते च्चिअ अव्वो कह णु एअं ॥३॥

पश्चात्तापे ।

अव्वो तह तेण कया अहयं जह कस्स साहेमि ॥

अर्थः—प्राकृत साहित्य का 'अव्वो' अव्यय ग्यारह अर्थों में प्रयुक्त होता है । उक्त ग्यारह अर्थ क्रम से इस प्रकार हैं:—(१) सूचना, (२) दुःख, (३) संभाषण, (४) अपराध, (५) विस्मय, (६) आनन्द, (७) आदर, (८) भय, (९) खेद (१०) विषाद और (११) पश्चात्ताप; तदनुसार प्रसंग को देखकर 'अव्वो' अव्यय का अर्थ किया जाना चाहिये । इनके उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं । सूचना-विषयक उदाहरणः— अव्वो दुष्कर-कारक=अव्वो दुक्कर यारय अर्थात् (मैं) सूचना (करती हूं कि) (ये) अत्यन्त कठिनाई से किये जाने वाले हैं । दुःख-विषयक उदाहरणः—अव्वो दलंति हृदय=अव्वो दलन्ति हिययं अर्थात् दुःख है कि वे हृदय को चीरते हैं-पीड़ा पहुंचाते हैं । संभाषण विषयक उदाहरणः—अव्वो किमिदं किमिदं अर्थात् अरे ! यह क्या है ! यह क्या है ? अपराध और आश्चर्य विषयक उदाहरणः—

संस्कृत:-अव्वो हरंति हृदयं तथापि न द्वेष्याः भवंति युवतीनाम् ॥
अव्वो किमपि रहस्यं जानंति धूर्ताः जनाभ्यधिकाः ॥ १ ॥

प्राकृत:—अव्वो हरन्ति हिअयं तहवि न वेसा हवन्ति जुवईण ॥
अव्वो किं पि रहस्सं मुणन्ति धुत्ता जणब्भहिआ ॥ २ ॥

अर्थात् (कामी पुरुष) युवती-स्त्रियों के हृदय को हरण कर लेते हैं; तो भी (ऐसा अपराध करने पर भी) (ये स्त्रियां) द्वेष भाव करने वाली—(हृदय को चुराने वाले चोरों के प्रति) (दुष्टता के भाव रखने वाली) नहीं होती हैं। इसमें 'अव्वो' का प्रयोग उपरोक्त रीति से अपराध-सूचक है। जन-साधारण से (बुद्धि की) अधिकता रखने वाले ये (कामी) धूर्त पुरुष आश्चर्य है कि कुछ न कुछ रहस्य जानते हैं। 'रहस्य का जानना' आश्चर्य सूचक है-विस्मयोत्पादक है, इसी को 'अव्वो' अव्यय से व्यक्त किया गया है।

आनन्द-विषयक उदाहरण:—अव्वो सुप्रभातम् इदम् = अव्वो सुपहायं इणं=आनन्द की बात है कि (आज) यह सु प्रभात (हुआ)। आदर-विषयक उदाहरणः—अव्वो अद्य अस्माकम् सफलम् जीवितम् =अव्वो अज्जम्ह सप्फलं जीअं = (आप द्वारा प्रदत्त इस) आदर से आज हमारा जीवन सफल हो गया है।

भय-विषय उदाहरण:-अव्वो अतीते त्वया केवलम् यदि सा न खेदयिष्यति = अव्वो अइअम्मि तुमे नवरं जइ सा न जूरिहिइ = (मुझे) भय (है कि) यदि तुम चले जाओगे तो तुम्हारे चले जाने पर क्या वह खिन्नता अनुभव नहीं करेगी; अर्थात् अवश्य ही खिन्नता अनुभव करेगी। यहां पर 'अव्वो' अव्यय भय सूचक है।

खेद-विषयक उदाहरण:—अव्वो न यामि क्षेत्रम् = अव्वो न जामि छेत्तं = खेद है कि मैं खेत पर नहीं जाती हूं। अर्थात् खेत पर जाने से मुझे केवल खिन्नता ही अनुभव होगी—रंज ही पैदा होगा। इस प्रकार यहां पर 'अव्वो' अव्यय का अर्थ 'खिन्नता अथवा रंज' ही है।

विषाद-विषयक उदाहरण:—
सं०—अव्वो नाशयंति धृतिम् पुलकं वर्धयन्ति ददति रणरणकं ॥
इदानीम् तस्य इति गुणा ते एव अव्वो कथम् नु एतत् ॥

प्रा०— अव्वो नासेन्ति दिहिं पुलयं वड्ढेन्ति देन्ति रणरणयं ॥
एण्हिं तस्सेअ गुणा ते च्चिअ अव्वो कह णु एअं ॥

अर्थ:—खेद है कि धैर्य का नाश करते हैं; रोमाञ्चितता बढ़ाते हैं; काम-वासना के प्रति उत्सुकता प्रदान करते हैं; ये सब वृत्तियाँ इस समय में उसी धन-वैभव के ही दुर्गुण हैं अथवा अन्य किसी कारण से हैं ? खेद है कि इस संबंध में कुछ भी स्पष्ट रूप से विदित नहीं हो रहा है। इस प्रकार 'अव्वो' अव्यय यहाँ पर विषाद-सूचक है।

पश्चात्ताप-विषयक उदाहरण इस प्रकार है:—

संस्कृत:—अव्वो तथा तेन कृता अहम् यथा कस्मै कथयामि ।

प्राकृत:—अव्वो तह तेण कया अहयं जह कस्स साहेमि ।

अर्थ:—पश्चात्ताप की बात है कि जैसा उसने किया; वैसा मैं किससे कहूं ? इस प्रकार यहां पर अव्वो अव्यय पश्चात्ताप सूचक है ।

अव्वो-प्राकृत-साहित्य का रूढ-रूपक और रूढ-अर्थक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है ।

दुष्कर-कारक संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप दुक्कर-यारय होता है । इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'ष्' के पश्चात् शेष रहे हुए प्रथम 'क' को द्वित्व 'क्क' की प्राप्ति; १-१७७ से द्वितीय 'क' और तृतीय 'क्' का लोप; १-१८० से दोनों 'क्' वर्णों के लोप होने के पश्चात शेष रहे हुए 'आ' और 'अ' के स्थान पर क्रमिक यथा रूप से 'या' और 'य' की प्राप्ति होकर *दुक्कर-यारय* रूप की सिद्धि हो जाती है ।

दलन्ति संस्कृत क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप भी दलन्ति ही होता है । इसमें सूत्र-संख्या ४-२३९ से हलन्त धातु 'दल्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दलन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है ।

हृदयम् संस्कृत रूप है । इसका प्राकृत रूप हिययं होता है । इसमें सूत्र संख्या १-१२८ से 'ऋ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *हिययं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

किम अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है ।

'*इदम्*' संस्कृत सर्वनाम रूप है । इसका प्राकृत रूप इणं होता है । इसमें सूत्र संख्या ३-७९ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में नपुंसक लिंग में 'इदम्' के स्थान पर 'इणं' आदेश की प्राप्ति होकर *इणं* रूप सिद्ध हो जाता है ।

हरन्ति संस्कृत क्रियापद का रूप है । इसका प्राकृत रूप हरन्ति होता है । इसमें सूत्र संख्या ४-२३९ से प्राकृत हलन्त धातु 'हर्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष रूप में प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हरन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है ।

'*हिअयं*' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है ।

'सह' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६७ में की गई है।

'वि' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

द्वेष्याः संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप वेसा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से 'द्' का लोप; १-२६० से 'ष्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति, २-७८ से 'य' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'स' के साथ लुप्त 'य्' में से शेष रहे हुए 'आ' की संधि और ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप एवं ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त 'जस्' प्रत्यय के पूर्व में स्थित 'आ' की यथा-स्थिति 'आ' की ही प्राप्ति होकर *वेसा* रूप सिद्ध हो जाता है।

भवन्ति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप हवन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-६० से संस्कृत धातु 'भू' के स्थान पर प्राकृत में 'हव्' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त एवं हलन्त धातु 'हव्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *हवन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

युवतीनाम् संस्कृत षष्ठ्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप जुवईण होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और ३-६ से षष्ठी विभक्ति के बहु-वचन में संस्कृत प्रत्यय 'आम्' के स्थान पर प्राकृत में 'ण' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जुवईण* रूप सिद्ध हो जाता है।

'किं' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

'पि' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-४१ में की गई है।

'रहस्सं' की सिद्धि सूत्र संख्या २-१९८ में की गई है।

जानन्ति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-७ से संस्कृत धातु 'ज्ञा' के स्थानीय रूप 'जान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मुण' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त एवं हलन्त धातु 'मुण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय को प्राप्ति होकर मुणन्ति रूप सिद्ध हो जाता है।

धूर्ताः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप धुत्ता होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४ से दीर्घ स्वर 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'उ' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के पूर्व में स्थित 'त्त' के अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *धुत्ता* रूप सिद्ध हो जाता है।

जनाभ्यधिकाः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप जणब्भहिआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-८४

से दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; १-२२८ से 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य' के पश्चात शेष रहे हुए 'भ' को द्वित्व 'भ्भ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'भ्' के स्थान पर 'ब्' की प्राप्ति; १-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' के पूर्व में स्थित अन्त्य ह्रस्व स्वर 'अ' को दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *जणब्भहिआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

सुप्रभातम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सुपहायं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; १-१८७ से 'भ्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *सुपहायं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'इणं' रूप की सिद्धि इसी सूत्र में ऊपर की गई है।

'अज्ज' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३३* में की गई है।

अस्माकम् संस्कृत षष्ठयन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप (अ) म्ह होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-११४ से संस्कृत 'अस्मद्' के षष्ठी बहुवचन में 'आम्' प्रत्यय का योग होने पर प्राप्त रूप 'अस्माकम्' के स्थान पर प्राकृत में 'अम्ह' आदेश की प्राप्ति और १-१० से मूल गाथा में 'अज्जम्ह' इति रूप होने से 'ज' के पश्चात 'अ' का सद्भाव होने से 'अम्ह' के आदि 'अ' का लोप होकर 'म्ह' रूप सिद्ध हो जाता है।

सफलम् संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप सप्फलं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-९७ से 'फ' के स्थान पर द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ' के स्थान पर 'प' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसक लिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म' का अनुस्वार होकर *सप्फलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

जीअं रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२७१* में की गई है।

अतीते संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप अइअम्मि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से दोनों 'त्' वर्णों का लोप; १-१०१ से प्रथम 'त्' के लोप होने के पश्चात शेष रहे हुए दीर्घ स्वर 'ई' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'इ' की प्राप्ति ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'ए' के स्थान पर प्राकृत में 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *अइअम्मि* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्वया संस्कृत तृतीयान्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तुमे होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-९४ से 'युष्मद्' संस्कृत सर्वनाम के तृतीया विभक्ति के एक वचन में 'टा' प्रत्यय का योग होने पर

प्राप्त रूप 'त्वजा' के स्थान पर प्राकृत में 'तुमे' आदेश की प्राप्ति होकर *तुमे* रूप सिद्ध हो जाता है।

केवलम् संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप नवरं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१८७ से 'केवलम्' के स्थान पर 'णवरं' आदेश की प्राप्ति; १-२२९ से 'ण' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से 'न' की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *नवरं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'जइ' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-४०* में की गई है।

'*सा*' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३३* में की गई है।

'*न*' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-६* में की गई है।

खेत्स्यति संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप जूरिहिइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१३२ से 'खिद्=खेद्' के स्थान पर प्राकृत में 'जूर' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'जूर' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१६६ से संस्कृत में भविष्यत्-काल वाचक प्रत्यय 'ष्य' के स्थान पर प्राकृत में 'हि' की प्राप्ति; ३-१५७ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति और ३-१३९ से प्रथम पुरुष के एक वचन में प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जूरिहिइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*न*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

'*यामि*' संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप जामि होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२४५ से 'य्' के स्थान पर 'ज्' की प्राप्ति और ३-१४१ से वर्तमानकाल के एक वचन में तृतीय पुरुष में 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *जामि* रूप सिद्ध हो जाता है।

क्षेत्रम् संस्कृत द्वितीयांत रूप है। इसका प्राकृत रूप छेत्तं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-३ से 'क्ष्' के स्थान पर 'छ्' की प्राप्ति; २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *छेत्तं* रूप सिद्ध हो जाता है।

नाशयन्ति संस्कृत प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप नासेन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श्' के स्थान पर 'स्' की प्राप्ति; ३-१४९ से प्रेरणार्थक में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के बहु वचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *नासेन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

धृतिम् संस्कृत द्वितीयांत रूप है। इसका प्राकृत रूप दिहिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-१३१ से 'धृति' के स्थान पर 'दिहि' आदेश; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दिहिं* रूप सिद्ध हो जाता है।

पुलकम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप पुलयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७

से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एक वचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर पुलयं रूप सिद्ध हो जाता है।

वर्धयन्ति संस्कृत प्रेरणार्थक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप वड्ढेन्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-४० से संयुक्त व्यञ्जन 'र्ध' के स्थान पर 'ढ' आदेश; २-८९ से प्राप्त 'ढ्' को द्वित्व 'ढ्ढ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ढ' के स्थान पर 'ड्' की प्राप्ति; ३-१४९ से प्रेरणार्थक में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *वड्ढेन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

ददते संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप देन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप; ३-१५८ से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त 'ए' के पूर्व में स्थित 'द' के 'अ' का लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'द्' में आगे रहे हुए 'ए' की संधि; और ३-१४२ से वर्तमान काल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'न्ते' के स्थान पर प्राकृत में 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है। प्रेरणार्थक में 'देन्ति' की साधनिका इस प्रकार भी होती है:-संस्कृत मूल धातु 'दा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर १-८४ से ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; ३-१४९ से प्रेरणा अर्थ में प्राकृत में 'ए' प्रत्यय की प्राप्ति; १-१० से प्राप्त प्रत्यय 'ए' के पूर्व में स्थित 'द' के 'अ' का लोप; १-५ से हलन्त 'द्' में 'ए' की संधि और ३-१४२ से 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देन्ति* प्रेरणार्थक रूप सिद्ध हो जाता है।

रणरणकम् संस्कृत द्वितीयान्त रूप है। इसका प्राकृत रूप रणरणयं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'क्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *रणरणयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'एम्हिं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-७ में की गई है।

तस्य संस्कृत षष्ठ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप तस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'तत्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; और ३-१० से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थानीय रूप 'स्य' के स्थान पर प्राकृत में 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *तस्स* रूप सिद्ध हो जाता है।

'इति' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'इअ' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'त्' का लोप और १-९१ से लोप हुए 'त्' के पश्चात शेष रही हुई द्वितीय 'इ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति होकर *'इअ'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*गुणा*' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-११ में की गई है।

'ते' संस्कृत सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप भी 'ते' ही होता है। इसमें सूत्र संख्या १-११ से मूल संस्कृत शब्द 'तत्' के अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'त्' का लोप; ३-५८ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में प्राप्त संस्कृत प्रत्यय 'जस्' के स्थान पर प्राकृत में 'डे' प्रत्यय की प्राप्ति; प्राप्त प्रत्यय 'डे' में 'ड्' इत्संज्ञक होने से पूर्वस्थ 'त' में स्थित अन्त्य स्वर 'अ' की इत्संज्ञा होकर इस 'अ' का लोप और १-५ से हलन्त 'त्' में प्राप्त प्रत्यय 'ए' की संधि होकर 'ते' रूप सिद्ध हो जाता है।

'*च्चिअ*' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-८ में की गई है।

'*कह*' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-२९ में की गई है।

'नु' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप 'णु' होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर '*णु*' रूप सिद्ध हो जाता है।

'*एअं*' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२०९ में की गई है।

'*तह*' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-६७ में की गई है।

'*तेण*' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८६ में की गई है।

कृता संस्कृत क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप कया होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१२६ से 'ऋ' के स्थान पर 'अ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'त्' का लोप और १-१८० से लोप हुए 'त्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति होकर कया रूप सिद्ध हो जाता है।

'*अहयं*' सर्वनाम रूप की सिद्धि सूत्र संख्या २-१९९ में की गई है।

'*जह*' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-६७ में की गई है।

कस्मै संस्कृत चतुर्थ्यन्त सर्वनाम रूप है। इसका प्राकृत रूप कस्स होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-७१ से मूल संस्कृत शब्द 'किम्' के स्थान पर प्राकृत में विभक्ति-वाचक प्रत्ययों की प्राप्ति होने पर 'क' रूप का सद्भाव; ३-१३१ से चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर प्राकृत में षष्ठी-विभक्ति की प्राप्ति; तदनुसार ३-१० से षष्ठी-विभक्ति के एकवचन में प्राकृत में संस्कृत प्रत्यय 'ङस्' के स्थान पर 'स्स' प्रत्यय की प्राप्ति होकर कस्स रूप सिद्ध हो जाता है।

कथयामि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप साहेमि होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२ से संस्कृत धातु 'कथ्' के स्थान पर 'साह्' आदेश; ४-२३९ से हलन्त धातु 'साह्' में 'कथ्' धातु में प्रयुक्त विकरण प्रत्यय 'अय' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; ३-१५८ से प्राप्त विकरण प्रत्यय 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति और ३-१४१ से वर्तमान काल के एकवचन में तृतीय

पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *साहेमि* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२०४ ॥

अइ संभावने ॥२-२०५॥

संभावने अइ इति प्रयोक्तव्यम् ॥ अइ ॥ दिअर किं न पेच्छसि ॥

अर्थः—प्राकृत-साहित्य में प्रयुक्त किया जाने वाला 'अइ' अव्यय 'संभावना' अर्थ को प्रकट करता है। 'संभावना है' इस अर्थ को 'अइ' अव्यय व्यक्त करता है। जैसे:—अइ, देवर ! किम् न पश्यसि=अइ; दिअर ! किं न पेच्छसि अर्थात (मुझे ऐसी) संभावना (प्रतीत हो रही) है (कि) हे देवर ! क्या तुम नहीं देखते हो।

प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है; अतः साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

देवर संस्कृत संबोधनात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप दिअर होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१४६ से 'ए' के स्थान पर 'इ' की प्राप्ति; १-१७७ से 'व्' का लोप और ३-३८ से संबोधन के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय '(सि=) ओ' का अभाव होकर *दिअर* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*किं*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

'*न*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-६ में की गई है।

पश्यसि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पेच्छसि होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८१ से संस्कृत मूल-धातु 'दृश' के स्थानीय रूप 'पश' के स्थान पर प्राकृत में 'पेच्छ' आदेश; ४-२३९ से संस्कृत विकरण प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति; और ३-१४० से वर्तमान काल के एक वचन में द्वितीय पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पेच्छसि* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०५॥

वणे निश्चय-विकल्पानुकम्प्ये च ॥२-२०६॥

वणे इति निश्चयादौ संभावने च प्रयोक्तव्यम् ॥ वणे देमि। निश्चयं ददामि ॥ विकल्पे। होइ वणे न होइ। भवति वा न भवति ॥ अनुकम्प्ये। दासो वणे न मुच्चइ। दासोऽनुकम्प्यो न त्यज्यते ॥ संभावने। नत्थि वणे जं न देइ विहि-परिणामो। संभाव्यते एतद् इत्यर्थः ॥

अर्थः—'वणे' प्राकृत-साहित्य का अव्यय है; जो कि निम्नोक्त चार प्रकार के अर्थों में प्रयुक्त हुआ करता है:—(१) निश्चय-अर्थ में; (२) विकल्प-अर्थ में; (३) अनुकंप्य-अर्थ में-(दया-प्रदर्शन-अर्थ में)

और (४) संभावना-अर्थ में। क्रमिक उदाहरण इस प्रकार हैं:—(१) निश्चय-विषयक दृष्टान्त:—निश्चयं ददामि=वणे देमि अर्थात् निश्चय ही मैं देता हूं। (२) विकल्प-अर्थक दृष्टांत:-भवति वा न भवति=होइ वणे न होइ अर्थात् (ऐसा) हो (भी) सकता है अथवा नहीं (भी) हो सकता है। (३) अनुकम्प्य अर्थात् 'दया-योग्य-स्थिति' प्रदर्शक दृष्टान्त:-दासोऽनुकम्प्यो न त्यज्यते=दासो वणे न मुच्चइ अर्थात (कितनी) दयाजनक स्थिति है (कि बेचारा) दास (दासता से) मुक्त नहीं किया जा रहा है। संभावना-दर्शक दृष्टान्त:—नास्ति यणे यन्न ददाति विधि-परिणाम:=नत्थि वणे जं न देइ विहि-परिणामो अर्थात ऐसी कोई वस्तु नहीं है; जिसको कि भाग्य-परिणाम प्रदान नहीं करता हो; तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का योग केवल भाग्य-परिणाम से ही संभव हो सकता है। सम्भावना यही है कि भाग्यानुसार ही फल-प्राप्ति हुआ करती है। यों 'वणे' अव्यय का अर्थ प्रसंगानुसार व्यक्त होता है।

'वणे' प्राकृत-साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय है; तदनुसार साधनिका की की आवश्यकता नहीं है।

ददामि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप देमि होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप; ३-१५८ से लोप हुए 'द्' के पश्चात शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; १-१० से प्रथम 'द' में स्थित 'अ' के आगे 'ए' की प्राप्ति होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'द्' में आगे प्राप्त 'ए' की संधि और ३-१४१ से वर्तमान काल के एकवचन में तृतीय पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'मि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*होइ*' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-९ में की गई है।

'*न*' अव्यय रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-६ में की गई है।

दासः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप दासो होता है। इसमें सूत्र संख्या ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अकारान्त पुल्लिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *दासो* रूप सिद्ध हो जाता है।

त्यज्यते (=मुच्यते) संस्कृत कर्मणि प्रधान क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मुच्चइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२४९ से कर्मणि प्रयोग में अन्त्य हलन्त व्यञ्जन 'च्' को द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति; और ४-२४९ से ही 'च्' को द्वित्व 'च्च्' की प्राप्ति होने पर संस्कृत रूप में रहे हुए कर्मणि रूप वाचक प्रत्यय 'य' का लोप; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त 'च्च्' में 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमान काल के एकवचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुच्चइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

नास्ति संस्कृत अव्यय-योगात्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप नत्थि होता है। इस (न+अस्ति) में सूत्र संख्या ३-१४८ से 'अस्ति' के स्थान पर 'अत्थि' आदेश; १-१० से 'न' के अन्त्य

'अ' के आगे 'अत्थि' का 'अ' होने से लोप और १-५ से हलन्त 'न्' में 'अत्थि' के 'अ' की संधि होकर *'नत्थि'* रूप सिद्ध हो जाता है।

'जं' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-२४* में की गई है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६* में की गई है।

ददाति संस्कृत सकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप देइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-१७७ से द्वितीय 'द्' का लोप; ३-१५८ से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'आ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति; १-१० से प्रथम 'द्' में रहे हुए 'अ' के आगे 'ए' प्राप्त होने से लोप; १-५ से प्राप्त हलन्त 'द्' में आगे रहे हुए स्वर 'ए' की संधि और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ति' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *देइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

विधि-परिणामः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विहि-परिणामो होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१८७ से 'ध्' के स्थान पर 'ह्' की प्राप्ति और ३-२ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त पुल्लिग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप विसर्ग के स्थान पर प्राकृत में 'ओ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विहि-परिणामो* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२०६ ॥

मणे विमर्शे ॥२-२०७॥

मणे इति विमर्शे प्रयोक्तव्यम् ॥ मणे सूरो । किं स्वित्सूर्यः ॥ अन्ये मन्ये इत्यर्थमपीच्छन्ति ॥

अर्थः—'मणे' प्राकृत साहित्य का अव्यय है जो कि 'तर्क युक्त प्रश्न पूछने' के अर्थ में अथवा 'तर्क-युक्त विचार करने' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'विमर्श' शब्द का अर्थ 'तर्क-पूर्ण विचार' होता है। जैसे:—किंस्वित् सूर्यः=मणे सूरो, अर्थात् क्या यह सूर्य है। तात्पर्य यह है कि-'क्या तुम सूर्य के गुण-दोषों का विचार कर रहे हो। 'सूर्य के संबंध में अनुसन्धान कर रहे हो।' कोई कोई विद्वान 'मन्ये' अर्थात् 'मैं मानता हूं'; 'मेरी धारणा है कि' इस अर्थ में भी 'मणे' अव्यय का प्रयोग करते हैं।

'किं स्वित्' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका आदेश-प्राप्त प्राकृत रूप मणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२०७ से 'किंस्वित्' के स्थान पर 'मणे' आदेश की प्राप्ति होकर *मणे* रूप सिद्ध हो जाता है।

सूरो रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या *१-६४* में की गई है।

मन्ये संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप मणे होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७८ से 'य्' का लोप और १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति होकर *'मणे'* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०७॥

अम्मो आश्चर्ये ॥२-२०८॥

अम्मो इत्याश्चर्ये प्रयोक्तव्यम् ॥ अम्मो कह पारिज्जइ ॥

अर्थः—'अम्मो' प्राकृत-साहित्य का आश्चर्य वाचक अव्यय है। जहाँ आश्चर्य व्यक्त करना हो; वहाँ 'अम्मो' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसेः—(आश्चर्यमेतत्=) अम्मो कथम् पार्यते=अम्मो कह पारिज्जइ अर्थात् आश्चर्य है कि यह कैसे पार उतारा जा सकता है? तात्पर्य यह है कि इसका पार पा जाना अथवा पार उतर जाना निश्चय ही आश्चर्यजनक है।

'*अम्मो*' प्राकृत साहित्य का रूढ-रूपक और रूढ-अर्थक अव्यय है; साधनिका की आवश्यकता नहीं है।

'*कह*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२९ में की गई है।

पार्यते संस्कृत कर्मणि-प्रधान क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप पारिज्जइ होता है। इसमें सूत्र-संख्या ३-१६० से मूल धातु 'पार्' में संस्कृत कर्मणि वाचक प्रत्यय 'य' के स्थान पर प्राकृत में 'इज्ज' प्रत्यय की प्राप्ति; १-५ से 'पार्' धातु के हलन्त 'र्' में 'इज्ज' प्रत्यय के 'इ' की संधि; और ३-१३९ से वर्तमान काल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत-प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *पारिज्जइ* रूप सिद्ध हो जाता है ॥२-२०८॥

स्वयमोर्थे अप्पणो न वा ॥२--२०९॥

स्वयमित्यस्यार्थे अप्पणो वा प्रयोक्तव्यम् ॥ विसयं विअसन्ति अप्पणो कमल-सरा। पक्षे। सयं चेअ मुणसि करणिज्जं ॥

अर्थः—'स्वयम्' इस प्रकार के अर्थ में वैकल्पिक रूप से प्राकृत में 'अप्पणो' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। 'स्वयम्=अपने आप' ऐसा अर्थ जहाँ व्यक्त करना हो; वहाँ पर वैकल्पिक रूप से 'अप्पणो' अव्ययात्मक शब्द लिखा जाता है। जैसेः—विशदं विकसन्ति स्वयं कमल-सरांसि=विसयं विअसन्ति अप्पणो कमल-सरा अर्थात् कमल युक्त तालाब स्वयं (ही) उज्ज्वल रूप से विकासमान होते हैं। यहाँ पर 'अप्पणो' अव्यय 'स्वयं' का द्योतक है। वैकल्पिक पक्ष होने से जहाँ 'अप्पणो' अव्यय प्रयुक्त नहीं होगा; वहाँ पर 'स्वयं' के स्थान पर प्राकृत में 'सयं' रूप प्रयुक्त किया जायगा जैसेः—स्वयं चेव जानासि करणीयं=सयं चेअ मुणसि करणिज्जं अर्थात् तुम खुद ही-(स्वयमेव)-कर्त्तव्य को जानते हो इस उदाहरण में 'स्वयं' के स्थान पर 'अप्पणो' अव्यय प्रयुक्त नहीं किया जाकर 'सयं' रूप प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार वैकल्पिक-स्थिति समझ लेना चाहिये।

विशदम् संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप विसयं होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से 'श' के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-१७७ से 'द्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'द्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में 'सि' प्रत्यय के स्थान पर 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *विसयं* रूप सिद्ध हो जाता है।

विकसन्ति संस्कृत अकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप विअसन्ति होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप; ४-२३९ से हलन्त धातु 'विअस्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४२ से वर्तमानकाल के बहुवचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'न्ति' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *विअसन्ति* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*स्वयं*' संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप अप्पणो होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२०९ से 'स्वयं' के स्थान पर 'अप्पणो' आदेश की प्राप्ति होकर '*अप्पणो*' रूप सिद्ध हो जाता है।

कमल-सरांसि संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कमल-सरा होता है। इसमें सूत्र संख्या १-३२ से मूल संस्कृत शब्द 'कमल-सरस्' को संस्कृतीय नपुंसकत्व से प्राकृत में पुल्लिगत्व की प्राप्ति; १-११ से अन्त्य व्यञ्जन 'स्' का लोप; ३-४ से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त पुल्लिग में प्राप्त प्रत्यय 'जस्' का लोप और ३-१२ से प्राप्त एवं लुप्त प्रत्यय 'जस्' के पूर्वस्थ 'र' व्यञ्जन में स्थित ह्रस्व स्वर 'अ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'आ' की प्राप्ति होकर *कमल-सरा* रूप सिद्ध हो जाता है।

स्वयम् संस्कृत अव्ययात्मक रूप है। इसका प्राकृत रूप सयं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७९ से 'व्' का लोप; और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर सयं रूप सिद्ध हो जाता है।

'*चिअ*' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या १-१८४ में की गई है।

जानासि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप मुणसि होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-७ से संस्कृतीय मूल धातु 'ज्ञा' के स्थानीय रूप 'जान्' के स्थान पर प्राकृत में 'मुण' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'मुण्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४० से वर्तमानकाल के एकवचन में द्वितीय पुरुष में संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *मुणसि* रूप सिद्ध हो जाता है।

'*करणिज्जं*' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या १-२४८ में की गई है॥ २-२०९॥

प्रत्येकमः पाडिक्कं पाडिएक्कं ॥ २-२१० ॥

प्रत्येकमित्यस्यार्थे पाडिक्कं पाडिएक्कं इति च प्रयोक्तव्यं वा। पाडिक्कं। पाडिएक्कं। पक्षे। पत्तेअं॥

अर्थः—संस्कृत 'प्रत्येकम्' के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्राकृत में 'पाडिक्कं' और 'पाडिएक्कं' रूपों का प्रयोग किया जाता है। पक्षान्तर में 'पत्तेअं' रूप का भी प्रयोग होता है। जैसे:—प्रत्येकम् = पाडिक्कं अथवा पाडिएक्कं अथवा पत्तेअं।

प्रत्येकम् संस्कृत रूप है। इसके प्राकृत रूप पाडिक्कं; पाडिएक्कं और पत्तेअं होता है। इनमें

से प्रथम दो रूपों में सूत्र संख्या २-२१० से 'प्रत्येकम्' के स्थान पर 'पाडिक्कं' और पाडिएक्कं' रूपों की क्रमिक आदेश प्राप्ति होकर क्रमसे दोनों रूप 'पाडिक्कं' और 'पाडिएक्कं' सिद्ध हो जाता है।

तृतीय रूप (प्रत्येकम्=) पत्तेअं में सूत्र-संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त्' को द्वित्व 'त्त्' की प्राप्ति; १-१७७ से 'क्' का लोप; और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर पत्तेअं रूप सिद्ध हो जाता है। ॥२-२१०॥

उअ पश्य ॥ २-२११ ॥

उअ इति पश्येत्यस्यार्थे प्रयोक्तव्यं वा ॥

उअ निच्चल-निप्फंदा भिसिणी-पत्तंमि रेहइ बलाआ।

निम्मल-मरगय-भायण-परिट्ठिआ सङ्ख-सुत्ति व्व ॥

पक्षे पुलआदयः ॥

अर्थः—'देखो' इस मुहाविरे के अर्थ में प्राकृत में 'उअ' अव्यय का वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसेः—पश्य=उअ अर्थात् देखो। 'ध्यान आकर्षित करने के लिये' अथवा 'सावधानी बरतने के लिये 'अथवा' चेतावनी देने के लिये हिन्दी में 'देखो' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी तात्पर्य को प्राकृत में व्यक्त करने के लिये 'उअ' अव्यय को प्रयुक्त करने की परिपाटी है। भाव-स्पष्ट करने के लिये नीचे एक गाथा उद्धृत की जा रही हैः—

संस्कृतः—पश्य निश्चल-निष्पन्दा बिसिनी-पत्रे राजते बलाका ॥
निर्मल-मरकत-भाजन प्रतिष्ठिता शंख-शुक्तिरिव ॥१॥

प्राकृतः—उअ निच्चल-निप्फंदा भिसिणी-पत्तंमि रेहइ बलाआ ॥
निम्मल-मरगय-भायण-परिट्ठिआ सङ्ख-सुत्ति व्व ॥१॥

अर्थः—'देखो'-शान्त और अचंचल बगुली (तालाब का सफेद-वर्णीय मादा पक्षी विशेष) कमलिनी के पत्ते पर इस प्रकार सुशोभित हो रही है कि मानों निर्मल मरकत-मणियों से खचित बर्तन में शंख अथवा सीप प्रतिष्ठित कर दी गई हो अथवा रख दी गई हो। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि 'बलाका=बगुली' की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये व्यक्ति विशेष अपने साथी को कह रहा है कि 'देखो=(प्रा० उअ)' कितना सुन्दर दृश्य है!' इस प्रकार 'उअ' अव्यय की उपयोगिता एवं प्रयोगशीलता जान लेना चाहिये। पक्षान्तर में 'उअ' अव्यय के स्थान पर प्राकृत में 'पुलअ' आदि पन्द्रह प्रकार के आदेश रूप भी प्रयुक्त किये जाते हैं; जो कि सूत्र संख्या ४-१८१ में आगे कहे गये हैं। तदनुसार 'पुलअ' आदि रूपों का तात्पर्य भी 'उअ' अव्यय के समान ही जानना चाहिये।

पश्य संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप 'उअ' होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२११ से पश्य' के

स्थान पर प्राकृत में 'उअ' आदेश की प्राप्ति होकर *'उअ'* अव्यय रूप सिद्ध हो जाता है।

निश्चल-निष्पन्दा संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप निच्चल-निप्फंदा होता है। इसमें सूत्र संख्या २-७७ से प्रथम 'श्' का लोप; २-८६ से लोप हुए 'श्' के पश्चात शेष रहे हुए 'च' को द्वित्व 'च्च' की प्राप्ति; २-५३ से संयुक्त व्यञ्जन 'ष्प' के स्थान पर 'फ' की प्राप्ति; २-८६ से आदेश प्राप्त 'फ' को द्वित्व 'फ्फ' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'फ्' के स्थान पर 'प्' की प्राप्ति; और १-२५ से हलन्त 'न्' के स्थान पर पूर्वस्थ 'फ' वर्ण पर अनुस्वार की प्राप्ति होकर *निच्चल-निप्फंदा* रूप सिद्ध हो जाता है।

बिसिनी-पत्रे संस्कृत सप्तम्यन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप भिसिणी-पत्तंमि होता है। इस शब्द-समूह में से 'भिसिणी' रूप की सिद्धि सूत्र-संख्या १-२३८ में की गई है; शेष 'पत्तंमि' में सूत्र संख्या २-७९ से 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'र्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त' के स्थान पर द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति; ३-११ से सप्तमी विभक्ति के एक वचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'ङि' के स्थानीय रूप 'ए' के स्थान पर प्राकृत में 'म्मि' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ की वृत्ति से हलन्त प्रत्ययस्थ 'म्' का अनुस्वार होकर *भिसिणी-पत्तंमि* रूप सिद्ध हो जाता है।

राजते संस्कृत अकर्मक क्रिया पद का रूप है। इसका प्राकृत रूप रेहइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-१०० से संस्कृत धातु 'राज्' के स्थान पर प्राकृत में 'रेह्' आदेश; ४-२३९ से प्राप्त हलन्त धातु 'रेह्' में विकारण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१३९ से वर्तमानकाल के एक वचन में प्रथम पुरुष में संस्कृत प्रत्यय 'ते' के स्थान पर प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर रेहइ रूप सिद्ध हो जाता है।

बलाका संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप बलाआ होता है। इसमें सूत्र संख्या १-१७७ से 'क्' का लोप और १-११ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में आकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृतीय प्रत्यय 'सि' के स्थानीय रूप रूप विसर्ग व्यञ्जन का लोप होकर *बलाआ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'निर्मल-मरकत-भाजन-प्रतिष्ठिता' संस्कृत समासात्मक विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप 'निम्मल-मरगय-भायण-परिट्ठिआ' होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७९ से रेफ रूप प्रथम 'र्' का लोप; २-८९ से लोप हुए रेफ रूप 'र्' के पश्चात शेष रहे हुए (प्रथम) 'म' को द्वित्व 'म्म' की प्राप्ति; ४-४४७ से और १-१७७ की वृत्ति से 'क' के स्थान पर व्यत्यय रूप 'ग' की प्राप्ति; १-१७७ से प्रथम 'त' का लोप; १-१८० से लोप हुए (प्रथम) 'त्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-१७७ से 'ज्' का लोप; १-१८० से लोप हुए 'ज्' के पश्चात शेष रहे हुए 'अ' के स्थान पर 'य' की प्राप्ति; १-२२८ से द्वितीय 'न' के स्थान पर 'ण' की प्राप्ति; १-३८ से 'प्रति' के स्थान पर 'परि' आदेश; २-७७ से 'ष्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'ष्' के पश्चात शेष रहे हुए 'ठ्' को द्वित्व 'ठ्ठ्' की प्राप्ति; २-९० से प्राप्त पूर्व 'ठ्' के स्थान पर 'ट्' की प्राप्ति; और १-१७७ से अन्त्य 'ता' में स्थित 'त्' का लोप होकर संपूर्ण समासात्मक रूप *'निम्मल-मरगय भायण परिट्ठिआ'* सिद्ध हो जाता है।

शंख-शुक्तिः संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप सङ्ख-सुत्ति होता है। इसमें सूत्र-संख्या १-२६० से दोनों 'श' व्यञ्जनों के स्थान पर 'स' की प्राप्ति; १-३० से अनुस्वार के स्थान पर आगे 'ख' व्यञ्जन होने से कवर्गीय पञ्चम-अक्षर की प्राप्ति; ४-७७ से 'क्ति' में स्थित हलन्त 'क्' व्यञ्जन का लोप; २-८६ से लोप हुए 'क्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'त्' को द्वित्व 'त्त' की प्राप्ति और १-११ से अन्त्य हलन्त व्यञ्जन रूप विसर्ग का लोप होकर सङ्ख-सुत्ति रूप सिद्ध हो जाता है।

'*च*' अव्यय की सिद्धि सूत्र-संख्या १-७ में की गई है।

पश्य संस्कृत क्रियापद रूप है। इसका प्राकृत रूप पुलअ भी होता है। इसमें सूत्र-संख्या ४-१८१ से संस्कृत मूल धातु 'दृश्' के स्थानीय रूप 'पश्य' के स्थान पर 'पुलअ' आदेश की प्राप्ति; और ३-१७५ से आज्ञार्थक लकार में द्वितीय पुरुष के एक वचन में प्राप्तव्य प्रत्यय का लोप होकर *पुलअ* रूप सिद्ध हो जाता है॥ २-२११ ॥

इहरा इतरथा ॥२-२१२॥

इहरा इति इतरथार्थे प्रयोक्तव्यं वा ॥ इहरा नीसामन्नेहिं । पक्षे । इअरहा ॥

अर्थः—संस्कृत शब्द 'इतरथा' के अर्थ में प्राकृत-साहित्य में वैकल्पिक रूप से 'इहरा' अव्यय का प्रयोग होता है। जैसे:-इतरथा निः सामान्यैः=इहरा नीसामन्नेहिं अर्थात् अन्यथा असाधारणों द्वारा-(वाक्य अपूर्ण है)। वैकल्पिक पक्ष होने से जहाँ 'इहरा' रूप का प्रयोग नहीं होगा वहाँ पर 'इअरहा' प्रयुक्त होगा। इस प्रकार 'इतरथा' के स्थान पर 'इहरा' और 'इअरहा' में से कोई भी एक रूप प्रयुक्त किया जा सकता है।

इतरथा संस्कृत अव्यय रूप है। इसके प्राकृत रूप इहरा और इअरहा होते हैं। इनमें से प्रथम रूप में सूत्र संख्या २-२१२ से 'इतरथा' के स्थान पर 'इहरा' रूप की आदेश प्राप्ति होकर प्रथम रूप *इहरा* सिद्ध हो जाता है।

द्वितीय रूप-(इतरथा =) इअरहा में सूत्र संख्या १-१७७ से 'त' का लोप और १-१८७ से 'थ्' के स्थान पर 'ह्' आदेश की प्राप्ति होकर द्वितीय रूप *इअरहा* भी सिद्ध हो जाता है।

निः सामान्यैः संस्कृत विशेषणरूप है। इसका प्राकृत रूप नीसामन्नेहिं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-७७ से विसर्ग रूप 'स्' का लोप; १-४३ से विसर्ग रूप 'स्' का लोप होने से 'नि' व्यञ्जन में स्थित ह्रस्व स्वर 'इ' के स्थान पर दीर्घ स्वर 'ई' की प्राप्ति; १-८४ से 'मा' में स्थित दीर्घ स्वर 'आ' के स्थान पर ह्रस्व स्वर 'अ' की प्राप्ति; २-७८ से 'य्' का लोप; २-८९ से लोप हुए 'य्' के पश्चात् शेष रहे हुए 'न' को द्वित्व 'न्न' की प्राप्ति; ३-७ से तृतीया विभक्ति के बहुवचन में अकारान्त में संस्कृत प्रत्यय 'भिस्' के स्थानीय रूप 'एस्' के स्थान पर प्राकृत में 'हिं' प्रत्यय की प्राप्ति और ३-१५ से

तृतीया विभक्ति के बहु वचन में प्रत्यय 'हिं' के पूर्वस्थ 'न' में स्थित 'अ' के स्थान पर 'ए' की प्राप्ति होकर *निसामन्नेहिं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१२ ॥

एक्कसरिअं झगिति संप्रति ॥ २-२१३ ॥

एक्कसरिअं झगित्यर्थे संप्रत्यर्थे च प्रयोक्तव्यम् ॥ एक्कसरिअं । झगिति सांप्रतं वा ॥

अर्थः—'शीघ्रता' अर्थ में और 'संप्रति=आजकल' अर्थ में याने प्रसंगानुसार दोनों अर्थ में प्राकृत-साहित्य में केवल एक ही अव्यय 'एक्कसरिअं' प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार 'एक्कसरिअं' अव्यय का अर्थ 'शीघ्रता=तुरन्त' अथवा 'झटिति' ऐसा भी किया जाता है और 'आजकल=संप्रति' ऐसा भी अर्थ होता है। तदनुसार विषय-प्रसंग देखकर दोनों अर्थों में से कोई भी एक अर्थ 'एक्कसरिअं' अव्यय का किया जा सकता है।

झटिति संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप एक्कसरिअं होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१३ से 'झटिति' के स्थान पर प्राकृत में 'एक्कसरिअं' रूप की आदेश-प्राप्ति होकर *एक्कसरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है।

संप्रति संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप एक्कसरिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या २-२१३ से 'संप्रति' के स्थान पर प्राकृत में 'एक्कसरिअं' रूप की आदेश-प्राप्ति होकर *एक्कसरिअं* रूप सिद्ध हो जाता है ॥ २-२१३ ॥

मोरउल्ला मुधा ॥२-२१४॥

मोरउल्ला इति मुधार्थे प्रयोक्तव्यम् ॥ मोरउल्ला । मुधेत्यर्थः ॥

अर्थः—संस्कृत अव्यय 'मुधा=व्यर्थ' अर्थ में प्राकृत-भाषा में 'मोरउल्ला' अव्यय का प्रयोग होता है। जब 'व्यर्थ' ऐसा भाव प्रकट करना हो तो 'मोरउल्ला' ऐसा शब्द बोला जाता है। जैसेः— मुधा=मोरउल्ला अर्थात् व्यर्थ (है)।

मुधा संस्कृत अव्यय रूप है। इसका प्राकृत रूप मोरउल्ला होता है। इसमें सूत्र संख्या २-२१४ से 'मुधा' के स्थान पर प्राकृत में 'मोरउल्ला' आदेश की प्राप्ति होकर *मोरउल्ला* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१४ ॥

दराधाल्पे ॥ २-२१५ ॥

दर इत्यव्ययमर्धार्थे ईषदर्थे च प्रयोक्तव्यम् ॥ दर-विअसिअं । अर्धेनेषद्वा विकसित-मित्यर्थः ॥

अर्थः—'अर्ध'=खंड रूप अथवा आधा सममाग' इस अर्थ में और 'ईषत्=अल्प अर्थात् थोड़ासा' इस अर्थ में भी प्राकृत में 'दर' अव्यय का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार जहाँ 'दर' अव्यय हो; वहाँ पर विषय-प्रसंग को देखकर के दोनों अर्थों में से कोई सा भी एक उचित अर्थ प्रकट करना चाहिये। जैसेः—अर्ध विकसितम् अथवा ईषत् विकसितम्=दर-विअसिअं अर्थात् (अमुक पुष्प विशेष) आधा ही खिला है अथवा थोड़ा सा ही खिला है।

अर्ध-विकसितम् अथवा *ईषत्-विकसितम्* संस्कृत विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप दर विअसिअं होता है। इसमें सूत्र-संख्या-२-२१५ से 'अर्ध' अथवा 'ईषत्' के स्थान पर प्राकृत में 'दर' आदेश; १-१७७ से 'क्' और 'त्' का लोप; ३-२५ से प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अकारान्त नपुंसकलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर प्राकृत में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *दर-विअसिअं* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१५ ॥

किणो प्रश्ने ॥ २-२१६ ॥

किणो इति प्रश्ने प्रयोक्तव्यम् ॥ किणो धुवसि ॥

अर्थः—'क्या, क्यों अथवा किसलिये' इत्यादि प्रश्न वाचक अर्थ में प्राकृत-भाषा में 'किणो' अव्यय प्रयुक्त होता है। जहाँ 'किणो' अव्यय प्रयुक्त हो; वहाँ इसका अर्थ 'प्रश्नवाचक' जानना चाहिये। जैसेः—किम् धूनोषि=किणो धुवसि अर्थात् क्यों तू हिलाता है?

'किणो' प्राकृत साहित्य का रूढ-अर्थक और रूढ-रूपक अव्यय *किणो* सिद्ध है।

धूनोषि संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप धुवसि होता है इसमें सूत्र संख्या-४-५९ से संस्कृत धातु 'धून्' के स्थान पर प्राकृत में 'धुव्' आदेश; ४-२३९ से हलन्त प्राकृत धातु 'धुव्' में विकरण प्रत्यय 'अ' की प्राप्ति और ३-१४० से वर्तमान काल के एक वचन में द्वितीय पुरुष में 'सि' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *धुवसि* रूप सिद्ध हो जाता है। ॥ २-२१६ ॥

इ-जे-राः पादपूरणे ॥ २-२१७ ॥

इ, जे, र इत्येते पाद-पूरणे प्रयोक्तव्याः ॥ न उणा इ अच्छीइं । अणुकूलं वोत्तुं जे । गेण्हइ र कलम-गोवी ॥ अहो । हंहो । हेहो । हा । नाम । अहह । हीसि । अयि । अहाह । अरि रि हो इत्यादयस्तु संस्कृत समत्वेन सिद्धाः ॥

अर्थः—'छंद आदि रचनाओं' में पाद-पूर्ति के लिये अथवा कथनोप-कथन में एवं संवाद-वार्त्ता में किसी प्रयोजन के केवल परम्परागत शैली-विशेष के अनुसार 'इ, जे, र' वर्ण रूप अव्यय प्राकृत रचना में प्रयुक्त किये जाते हैं। इन एकाक्षरी रूप अव्ययों का कोई अर्थ नहीं होता है; केवल ध्वनि

रूप से अथवा उच्चारण में सहायता रूप से ही इनका प्रयोग किया जाता है; तदनुसार से अर्थ हीन होते हैं एवं तात्पर्य से रहित ही होते हैं। पाद-पूर्ति तक ही इनकी उपयोगिता जाननी चाहिये। उदाहरण इस प्रकार हैं:—न पुनर् अक्षीणि=न उणा इ अच्छीइं अर्थात् पुनः आँखें नहीं-(वाक्य अपूर्ण है)। इस उदाहरण में एकाक्षरी रूप 'इ' अव्यय अर्थ हीन होता हुआ भी केवल पाद-पूर्ति के लिये ही आया हुआ है। 'जे' का उदाहरण:-अनुकूलं वक्तुं=अणुकूलं वोत्तुं जे अर्थात् अनुकूल बोलने के लिये। इस प्रकार यहाँ पर 'जे' अर्थ हीन रूप से प्राप्त है। 'र' का उदाहरण:-गृह्णाति कलम गोपी=गेण्हइ र कलम-गोवी अर्थात् कलम-गोपी (धान्यादि की रक्षा करने वाली स्त्री विशेष) ग्रहण करती है। इस उदाहरण में 'र' भी अर्थ हीन होता हुआ पाद-पूर्ति के लिये ही प्राप्त है। यों अन्यत्र भी जान लेना चाहिये।

प्राकृत-साहित्य में अन्य अव्यय भी देखे जाते हैं; जो कि संस्कृत के समान ही होते हैं; कुछ एक इस प्रकार हैं:—(१) अहो, (२) हंहो, (३) हेहो, (४) हा, (५) नाम, (६) अहह, (७) ही-सि, (८) अयि, (९) अहाह, (१०) अरि, (११) रि और (१२) हो। ये अव्यय-वाचक शब्द संस्कृत के समान ही अर्थ-युक्त होते हैं और इनकी अक्षरीय-रचना भी संस्कृत के समान ही होकर तद्-वत् सिद्ध होते हैं। अतएव इनके लिए अधिक वर्णन की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

'न' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या *१-६* में की गई है।

'उणा' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या *१-६५* में की गई है।

'इ' अव्यय पाद-पूर्ति अर्थक-मात्र होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

'अच्छीइं' रूप की सिद्धि सूत्र संख्या *१-३३* में की गई है।

अनुकूलम् संस्कृत द्वितीयान्त विशेषण रूप है। इसका प्राकृत रूप अनुकूलं होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२२८ से 'न्' के स्थान पर 'ण्' की प्राप्ति; ३-५ से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में 'म्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से प्राप्त 'म्' का अनुस्वार होकर *अणुकूलं* रूप सिद्ध हो जाता है।

वक्तुम् संस्कृत कृदन्त रूप है। इसका प्राकृत रूप वोत्तुं होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२११ से मूल संस्कृत धातु 'वच्' के स्थान पर कृदन्त रूप में 'वोत्' आदेश और ४-४४८ से संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी हेत्वर्थकृदन्त अर्थ में 'तुम्' प्रत्यय की प्राप्ति और १-२३ से अन्त्य हलन्त 'म्' का अनुस्वार होकर *वोत्तुं* रूप सिद्ध हो जाता है।

'जे' अव्यय पाद पूर्ति अर्थक मात्र होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

गृह्णाति संस्कृत सकर्मक क्रियापद का रूप है। इसका प्राकृत रूप गेण्हइ होता है। इसमें सूत्र संख्या ४-२०९ से मूल संस्कृत धातु 'ग्रह्' के स्थान पर प्राकृत में 'गेण्ह' आदेश और ३-१३९ से वर्तमान काल के एकवचन में प्रथम पुरुष में प्राकृत में 'इ' प्रत्यय की प्राप्ति होकर *गेण्हइ* रूप सिद्ध हो जाता है।

'र' अव्यय पाद-पूर्त्ति अर्थक मात्र होने से साधनिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

कलम-गोपी संस्कृत रूप है। इसका प्राकृत रूप कलम-गोवी होता है। इसमें सूत्र संख्या १-२३१ से 'प' के स्थान पर 'व' की प्राप्ति और ३-१६ से प्रथमा विभक्ति के एकवचन में दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिंग में संस्कृत प्रत्यय 'सि' के स्थान पर अन्त्य दीर्घ स्वर 'ई' को 'यथा-स्थिति' अर्थात् दीर्घता ही प्राप्त होकर कलम-गोवी रूप सिद्ध हो जाता है।

'वृत्ति' में वर्णित अन्य अव्ययों की साधनिका की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उक्त अव्यय संस्कृत अव्ययों के समान ही रचना वाले और अर्थ वाले होने से स्वयमेव सिद्ध रूप वाले ही हैं। ॥ २-२१७ ॥

प्यादयः ॥ २-२१८ ॥

प्यादयो नियतार्थवृत्तयः प्राकृते प्रयोक्तव्याः ॥ पि वि अप्यर्थे ॥

अर्थः—प्राकृत भाषा में प्रयुक्त किये जाने वाले 'पि' और 'वि' इत्यादि अव्ययों का वही अर्थ होता है; जो कि संस्कृत भाषा में निश्चित है; अतः निश्चित अर्थ वाले होने से इन्हें 'वृत्ति' में 'नियत अर्थ-वृत्तिः' विशेषण से सुशोभित किया है। तदनुसार 'पि' अथवा 'वि' अव्यय का अर्थ संस्कृतीय 'अपि' अव्यय के समान ही जानना चाहिये।

'पि' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या *१-४१* में की गई है।

'वि' अव्यय की सिद्धि सूत्र संख्या *१-६* में की गई है। ॥ २-२१८ ॥

इत्याचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि विरचितायां सिद्ध हेमचन्द्राभिधानस्वोपज्ञ शब्दानुशासन वृत्तौ अष्टमस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

अर्थः—इस प्रकार आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' नामक संस्कृत-प्राकृत-व्याकरण की स्वकीय 'प्रकाशिका' नामक संस्कृतीय टीकान्तर्गत आठवें अध्याय का अर्थात् प्राकृत व्याकरण का द्वितीय चरण समाप्त हुआ॥

—: पादान्त मंगलाचरण :—

द्विषत्-पुर-क्षोद-विनोद-हेतो र्भवादवामस्य भवद्भुजस्य ।।
अयं विशेषो भुवनैकवीर ! परं न यत्-काममपाकरोति ।। १ ।।

अर्थः—हे विश्व में एक ही—अद्वितीय वीर सिद्धराज ! शत्रुओं के नगरों को विनष्ट करने में ही आनन्द का हेतु बनने वाली ऐसी तुम्हारी दाहिनी भुजा में और अब वर्णित भगवान् शिव-शङ्कर में (परस्पर में) इतना ही विशेष अन्तर है कि जहाँ भगवान् शिव-शङ्कर काम-(मदन-देवता) को दूर करता है; वहाँ तुम्हारी यह दाहिनी भुजा काम (शत्रुओं के नगरों को नित्य ही नष्ट करने की इच्छा विशेष) को दूर नहीं करती है। तुम्हारे में और शिव-शङ्कर में परस्पर में इसके अतिरिक्त सभी प्रकार से समानता ही है। इति शुभम्।

इति अष्टम-अध्याय के द्वितीय पाद की 'प्रियोदयाख्या'
हिन्दी-व्याख्या समाप्त ।।

परिशिष्ट-भाग

—: अनुक्रमणिका :—

१—संकेत बोध

२—कोष-रूप-सूची

३—शुद्धि-पत्र

संकेत-बोध

अ.	=	अव्यय ।
अक.	=	अकर्मक-धातु ।
अप.	=	अप-भ्रंश भाषा ।
उप.	=	उपसर्ग
उभ.	=	सकर्मक तथा अकर्मक धातु; । अथवा दो लिंग वाला ।
कर्म.	=	कर्मणि-वाच्य ।
कवकृ.	=	कर्मणि-वर्तमान-कृदन्त ।
कृ.	=	कृत्य-प्रत्ययान्त ।
कृद.	=	कृदन्त
क्रि.	=	क्रियापद ।
क्रि. वि.	=	क्रिया-विशेषण
चू. पै.	=	चूलिका पैशाची भाषा ।
त्रि.	=	त्रिलिंग ।
दे.	=	देशज ।
न.	=	नपुंसकलिंग
पुं.	=	पुंलिंग ।
पुं. न.	=	पुंलिंग तथा नपुंसकलिंग ।
पुं स्त्री.	=	पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग ।
पै.	=	पैशाची भाषा ।
प्रयो.	=	प्रेरणार्थक-णिजन्त ।
ब.	=	बहु वचन ।
भ. कृ.	=	भविष्यत् कृदन्त ।
भवि.	=	भविष्यत्-काल
भू. का.	=	भूतकाल ।
भू. कृ.	=	भूत-कृदन्त ।
मा.	=	मागधी भाषा ।
व. कृ.	=	वर्तमान-कृदन्त ।
वि.	=	विशेषण ।
शौ.	=	शौरसेनी भाषा ।
सर्व.	=	सर्वनाम ।
सं. कृ.	=	संबन्धक कृदन्त ।
सक.	=	सकर्मक-धातु ।
स्त्री.	=	स्त्रीलिंग ।
स्त्री. न.	=	स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग ।
हे. कृ.	=	हेत्वर्थ-कृदन्त ।

॥ श्री ॥

प्राकृत-व्याकरण में प्रथम-द्वितीय पाद में सिद्ध किये गये शब्दों की

कोष-रूप-सूची

[पद्धति-परिचयः—प्रथम शब्द प्राकृत-भाषा का है; द्वितीय अक्षरात्मक लघु-संकेत प्राकृत शब्द की व्याकरणगत विशेषता का सूचक है; तृतीय कोष्ठान्तर्गत शब्द मूल प्राकृत शब्द के संस्कृत रूपान्तर का अवबोधक है और चतुर्थ स्थानीय शब्द हिन्दी-तात्पर्य बोधक है। इसी प्रकार प्रथम अंक प्राकृत-व्याकरण का पादक्रम बोधक है और अन्य अंक इसी पाद के सूत्रों की क्रम संख्या को प्रदर्शित करते हैं। यों व्याकरण-गत शब्दों का यह शब्द-कोष ज्ञातव्य है।]

[अ]

अ अ. (च) और; पुन; फिर; अवधारण, निश्चय इत्यादि; १-१७७; २-१७४, १८८; १९३;।

अइ अ (अति) अतिशय, अतिरेक, उत्कर्ष, महत्व, पूजा, प्रशंसा आदि अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। १-१६९, २-१७९, २०५;

अइअम्मि वि. (अतीते) व्यतीत अर्थ में; २-२०४।

अइमुत्तयं पुं० (अतिमुक्तकम्) अयवन्ता कुमार को; १-२६, १७८, २०८।

अइमुंतयं पुं० (अतिमुक्तकम्) अयवन्ता कुमार को; १-२६, १७८।

अइसरिअं न. (ऐश्वर्यम्) वैभव, संपत्ति, गौरव; १-१५१

अंसु न. (अश्रु आंसु नेत्र-जल; १-२६।

अक्को पुं० (अर्कः) सूर्य आक का पेड़, स्वर्ण-सोना; १-१७७; २-७९, ८९।

अक्खइ सक. आख्याति) वह कहता है; १-१८७।

अक्खराण (अक्षराणाम्) अक्षरों के, वर्णों के; २-९५।

अग्गणी पुं० (अग्निः) आग; २-१०२।

अगया पुं० देशज =(असुराः) दैत्य, दानव; २-१७४

अगरू पुं. न. (अगुरुः) सुगंधित काष्ठ विशेष; १-१०७

अगरू वि० (अगुरुः) जो बड़ा नहीं ऐसा लघु, छोटा; १-७७।

अग्गओ पुं. (अग्रतः) सामने, आगे; १-३७।

अग्गी पुं (अग्नि) आग; १०२;

अग्घइ अक. (राजते) वह सुशोभित होता है, चमकता है; १-१८७।

अङ्कोल्लो पु. अङ्कोठः वृक्ष विशेष; १-२००; २-१५५।

अंगे (अंगे) अंग पर; १-७ अंगाइं (अंगानि) शरीर के अवयवों ने (अथवा को); १-९३। अंगेहि, अंगैः) शरीर के अवयवों द्वारा; २-१७९।

अङ्गणं अंगणं न. (अंगणम्) आंगन; १-३०।

अङ्गारो पुं. (अंगारः) जलता हुआ कोयला; जैन साधुओं के लिये भिक्षा का एक दोष; १-४७

अंगुअं न. (इंगुदम्) इंगुद वृक्ष का फल; १-८९।

अच्चो वि. (अर्च्यः) पूज्य, पूजनीय; १-१७७

अच्छअरं न. (आश्चर्यम्) विस्मय चमत्कार; १-५८; २-६७।

अच्छरसा स्त्री (अप्सराः) इन्द्र की एक पटरानी; देवी रूपवती स्त्री; १-२०।

अच्छरा स्त्री (अप्सराः) इन्द्र की एक पटरानी; देवी; १-२०; २-२१।

अच्छरिअं न. (आश्चर्यम्) विस्मय, चमत्कार; १-५८ २-६७।

अच्छरिज्जं न. (आश्चर्यम्) विस्मय, चमत्कार; १-५८ २-६७ ।

अच्छरीअं न. (आश्चर्यम्) विस्मय, चमत्कार १-५८ २-६७ ।

अच्छिन्न वि. (अच्छिन्न) नहीं तोड़ा हुआ; अन्तर-रहित; २-१९८ ।

अच्छी पु. स्त्री (अक्षि) आंख; १-३३, ३५ । अच्छीइं (अक्षिणी) आँखों को १-३३; २-२१७

अच्छेरं न. (आश्चर्यम्) विस्मय, चमत्कार; १-५८ २-२१, ६६, ६७ ।

अजिअं पु. (अजितम्) द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथजी को; १-२४ ।

अज्ज अ. (अद्य) आज; १-३३; २-२०४;

अज्ज पु. (आर्य) श्रेष्ठ पुरुष, मुनि १-६ ।

अज्जा स्त्री. आज्ञा आदेश, हुक्म; २-८३

अज्जा स्त्री. (आर्या) साध्वी; आर्या नामक छन्द; पूज्या; १-७७ ।

अज्जू स्त्री, (श्वश्रूः) सासू १-७७ ।

अञ्जली पु स्त्री. (अञ्जलिः) कर-संपुट; नमस्कार रूप विनय; १-३५

अञ्जिअं अंजिअं वि. (अञ्जितम्) आंजा हुआ; १-३०

अटइ सक. (अटति) वह भ्रमण करता है; १-१९५

अट्टमट्ट पु. (देशज) बयारी; २-१७४ ।

अट्ठी स्त्री. (अस्थिः) हड्डी; २-३२

अट्ठो पु. (अर्थः) वस्तु, पदार्थ, विषय, वाच्यार्थ, मतलब, प्रयोजन; १-३३ ।

अडो पु. (अवटः) कूप के पास में पशुओं के पानी पीने के लिये जो गड्ढा आदि किया जाता है वह, १-२७१

अड्ढं वि. (अर्धम्) आधा; २-४१ ।

अण न. (ऋणम्) ऋण, कर्ज; १-१४१ ।

अण अ. (नञर्थे) 'नहीं' अर्थ में प्रयुक्त होता है; २-१९० ।

अणङ्ग पु (अनंगः) काम; विषयाभिलाषा; कामदेव; २-१७४ ।

अणण्णय वि. (अनन्यक) अभिन्न, अपृथग्भूत; २-१५ ।

अणिउँतयं पु. (अविमुक्तकम्) अयवन्ता कुमार को; १-२६, १७८, २०८ ।

अणिट्ठं वि. (अनिष्टम्) अप्रीतिकर; द्वेष्य; २-३४ ।

अणुकूलं वि (अनुकूलम्) अप्रतिकूल; अनुकूल, २-२१७

अणुसारिणी स्त्री. वि. (अनुसारिणी) अनुसरण करने वाली; पीछे पीछे चलने वाली; १-६ ।

अणुसारेण पुं (अनुसारेण) अनुसरण द्वारा; अनुवर्तन से; २-१७४ ।

अत्तमाणो वकृ. (आवर्तमानः) चक्राकार घूमता हुआ; परिभ्रमण करता हुआ; १-२७१ ।

अत्ता पु. (आत्मा) आत्मा, जीव, चेतन, निज, स्व; २-५१ ।

अत्थ न. पु (अर्थ) पदार्थ; तात्पर्य; धन; १-७; २-३३

अत्थक्कं न. (देशज) (अकाण्डम्) अकाण्ड, अकस्मात् असमय; २-१७४ ।

अत्थिओ वि. (अर्थिकः) धनी, धनवान् २-१५९ ।

अथिरो वि. (अस्थिरः) चंचल, चपल, अनित्य, विनश्वर; १-१८७ ।

अदंसणं न. (अदर्शनम्) नहीं देखना; परोक्ष; २-९७ ।

अद्दं वि. (आर्द्रम्) गीला; भींजा हुआ; १-८२ ।

अद्दंसणं न. (अदर्शनम्) नहीं देखना; परोक्ष; २-९७ ।

अद्दो पु. (अब्दः) मेघ, वर्षा; वर्ष, संवत्सर; २-७९ ।

अद्धं वि. (अर्धम्) आधा; २-४१ ।

अनलो पु. (अनलः) अग्नि; आग; १-२२८ ।

अनिलो पु. (अनिलः) वायु, पवन; १-२२८ ।

अन्तग्गयं वि. (अन्तर्गतम्) अन्दर रहा हुआ; १-६० ।

अन्तप्पाओ पु. (अन्तः पातः) अन्तर्भाव, समावेश; २-७७ ।

अन्तरप्पा पु. (अन्तरात्मा) अन्तरात्मा; १-१४ ।

अन्तरं, अंतरं न. अन्तरम्) मध्य, भीतर, भेद, विशेष फर्क; १-३०; ।

अन्तरेसु (अन्तरेषु) भेदों में; २-१७४ ।

अन्तावेई स्त्री. (अन्तर्वेदिः) मध्य की वेदिका; अथवा पु. में गंगा और यमुना के बीच का देश;) (कुमारपाल काव्य); १-४ ।

अन्तेआरी पु. वि. (अन्तश्चारी बीच में जाने वाला; १-६०

अन्तेउरं न. (अन्तः पुरम्) राज-स्त्रियों का निवास गृह १-६० ।

अन्तो अ. (अन्तर्) मध्य में; १-६० ।

अन्तोवरि अ. (अन्तोपरि) आन्तरिक भाग के ऊपर; १-१४

अन्तो वीसंभ निवेसिआणं वि० (अन्तर्विश्रम्भ-निवेशि

तानाम्) जिनके हृदय में विश्वास है, ऐसे निवासियों का; १-६० ।
अन्धलो वि. (अन्धः) अन्धा; २-१७३ ।
अन्धो वि. (अन्धः) अन्धा; २-१७३ ।
अन्नत्तो अ. (अन्यतः) अन्य रूप से; २-१६० ।
अन्नत्थ अ. (अन्यत्र) अन्य स्थान पर; २-१६१ ।
अन्नदो अ. (अन्यतः) दूसरे से; दूसरी तर्फ; २-१६० ।
अन्नन्नं वि. (अन्योन्यम्) परस्पर में; आपस में १-१५६
अन्नह अ. (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर; २-१६१ ।
अन्नहि अ. (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर; २-१६१ ।
अन्नारिसो वि. (अन्यादृशः) दूसरे के जैसा; १-१४२ ।
अन्नुन्नं वि. (अन्योन्यम्) परस्पर में; आपस में; १-१५६
अप्पज्जो वि. (आत्मज्ञः) आत्म तत्त्व को जानने वाला अपने आपको जानने वाला; २-८३ ।
अप्पणयं वि. (आत्मीयम्) स्वकीय को; निजीय को, २-१५३
अप्पण्णू वि. (आत्मज्ञः) आत्म तत्त्व को जानने वाला; आत्म-ज्ञानी २-८३ ।
अप्पमत्तो वि. (अप्रमत्तः) अप्रमादी, सावधान उपयोग वाला, १-२३१ ।
अप्पा अप्पणो अ. (स्वयम्) आप, खुद, निज २-१९७ २०९ ।
अप्पाणो पु. (आत्मा) आत्मा, जीव; २-५१ ।
अप्पुल्लं वि. (आत्मीयं) आत्मा में उत्पन्न; २-१६३
अमरिसो पु. (अमर्षः) असहिष्णुता; २-१०५ ।
अमुगो सर्व (अमुकः) वह कोई अमुक-ढमुक; १-१७७
अमुणन्ती वकृ. (अजानन्ती) नहीं जानती हुई; २-१९०
अम्बं न. (आम्रम्) आम्र-फल; १-८४; २-५६ ।
अम्बिर (देशज) न. (आम्र-फलम्) आम्रफल; २-५६ ।
अम्बिलं वि. (आम्लम्) खट्टा; २-१०६ ।
अम्मो अ. (आश्चर्ये) आश्चर्य अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है; २-२०८.
अम्ह अम्ह (अस्माकम्) हमारा; १-३३, २४६, २-२०४;
अम्हकेरो सर्व. (अस्मदीयः) हमारा; २-१४७ ।
अम्हकेरं सर्व. (अस्मदीयम्) हमारा; २-९९ ।
अम्हे सर्व. (वयम्) हम; १-४०;
अम्हारिसो वि. (अस्मादृशः) हमारे जैसा; १-१४२; २-७४

अम्हेच्चयं वि. (अस्मदीयम्) हमारा; २-१४९ ।
अम्हेत्थ सर्व अ. (वयमत्र) हम यहां पर; १-४०
अयं सर्व. (अयम्) यह; १-७३ ।
अयि अ० (अयि) अरे ! हे !; २-२१७ ।
अप्पिअं वि. (अर्पितम्) अर्पण किया हुआ; भेंट किया हुआ; १-६३ ।
उप्पिअं वि. (अर्पित) अर्पण किया हुआ; १-२६९
ओप्पेइ सक. (अर्पयति) वह अर्पण करता है; १-६३ ।
ओप्पिअं वि. (अर्पितम्) अर्पण किया हुआ; १-६३ ।
समप्पेत्तुण कृ (समर्पित्वा) अर्पण करके; २-१६४ ।
अरण्णं न० (अरण्यम्) जंगल; १-६६ ।
अरहन्तो पु. (अर्हन्) जिन देव; जैन-धर्म-उपदेशक; २-१११
अरहो पु. (अर्हन्) जिनदेव; जिनसे कुछ भी अज्ञेय नहीं है ऐसे देव; २-१११ ।
अरि पु. (अरि) दुश्मन, रिपु; २-११७ ।
अरिहन्तो पु. (अर्हन्) जिनेन्द्र भगवान; २-१११ ।
अरिहा वि. (अर्ही) योग्य; लायक; २-१०४ ।
अरिहो पु. (अर्हन्) जिनदेव; २-१११ ।
अरुणो वि (अरुणः) लाल; रक्तवर्णीय; १-६ ।
अरुहन्तो पु. (अर्हन्) जिनदेव; २-१११ ।
अरुहो पु. (अर्हन्) जिनदेव २-१११
अरे अ. (अरे) अरे; सम्बोधक अव्यय शब्द; २-२०१
अरिहइ सक. (अर्हति) पूजा के योग्य होता है; २-१०४
अलचपुरं न. (अचलपुरम्) एक गांव का नाम; २-११८
अलसी स्त्री. (अतसी) तेल वाला तिलहन विशेष; १-२११ ।
अलाउं न. (अलाबुम्) तुम्बीफल; १-६६ ।
अलाऊ स्त्री. (अलाबूः) तुम्बी लता; १-६६ ।
अलाबू स्त्री. (अलाबूः) तुम्बी-लता १-२३७ ।
अलाहि अ. (निवारण-अर्थ) 'निवारण-मनाई' करने अर्थ में; २-१८९ ।
अलिअं, अलीअं न. (अलीकम्) मृषावाद; झूठ; (वि.) मिथ्या खोटा; १-१०१ ।
अल्लं वि. (आर्द्रम्) गीला, भींजा हुआ; १-८२ ।

अल्लं न. (दिनम्) (देशज) दिन, दिवस; २-१७४।
अवऊढो वि. (अवगूढ:) ढंका हुआ; आलिंगित; १-६।
अवक्खन्दो पु. (अवस्कन्द:) शिविर, छावनी, सेना का पड़ाव, रिपु-सेना द्वारा नगर का घेरा जाना; २-४।
अवगूढो वि. (उपगूढ:) आलिंगित; २-१६८।
अवजसो पु. (अपयश:) अपकीर्ति; १-२४५।
अवज्जं न. (अवद्यम्) पाप; वि. निन्दनीय; २-२४।
अवडो पु. (अवट:) कूप, कुंआ; १-२७१।
अवद्दालं न. (अपद्वारम्) छोटी खिड़की; गुप्त द्वार; १-२५४।
अवयवो पु. (अवयव:) गात्र, अंश, विभाग, अनुमान प्रयोग का वाक्यांश; १-२४५।
अवयासइ सक. (श्लिष्यति) वह आलिंगन करता है; २-१७४।
अवयासो पु. (अवकाश:) मौका प्रसंग, स्थान, खुलासा, आलिंगन, १-६, १७२।
अवरण्हो पु. (अपराह्ण:) दिन का अन्तिम प्रहर; २-७५
अवरि अ. (उपरि) ऊपर; २-१६६।
अवरिं अ. (उपरि) ऊपर; १-२६, १०८।
अवरिल्लो वि. (उपरितन:) उत्तरीय वस्त्र, चद्दर; २-१६६
अवसद्दो पु. (अपशब्द:) खराब वचन; १-१७२।
अवहडं वि. (अपहृतम्) छीना हुआ; १-२०६।
अवहं सर्व. (उभयम्) दोनों; युगल; २-१३८।
अवहोआसं अ. (उभय बले; आर्षे उभयो कालं) दोनों समय; २-१३८।
अवि अ. (अपि) भी; १-४१।
अविणय न. (अविनय) अविनय; १-२०३।
अव्वो अ. (सूचनादि-अर्थे) "सूचना, दुःख, संभाषण, अपराध, विस्मय, आनन्द, आदर, भय, खेद, विषाद और पश्चाताप" अर्थ में; २-२०४।
अस् अत्थि (अस्ति) वह है; २-४५।
नत्थि (नास्ति) वह नहीं है; २-२०६।
सिआ (स्यात्) होवे; २-१०७।
सन्तो (सन्त:) अस्ति स्वरूप वाले; १-३७।
असहेज्ज वि. (असहाय) सहायता रहित; १-७९।
असुगो पुं. (असुक:) प्राण; (न.) चित्त, ताप; १-१७७।
असुरी वि. (असुरी) दैत्य-दानव-संबंधी; १-७९।
असोअ पुं. (अशोक) अशोक वृक्ष; २-१६४।
अस्सं न. (आस्यम्) मुख, मुंह, १-८४।
अहक्खायं न. (यथाख्यातम्) निर्दोष चारित्र; परिपूर्ण संयम; १-२४५।
अहं सर्व. (अहम्); मैं; १-४०;
अहयं सर्व. (अहं) मैं; २-१९९, २०४;।
अहरुट्ठं पुंन. (अधरोष्ठम्) नीचे का होठ; १-८४।
अहव अ. (अथवा) अथवा; १-६७।
अहवा (अ.) (अथवा) अथवा; १-६७;
अहह अ. (अहह) आमन्त्रण, खेद, आश्चर्य, दुःख, आधिक्य, प्रकर्ष आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है; २-२१७।
अहाजायं वि. (यथाजातम्) नग्न, प्रावरण रहित; १-२४५।
अहाह अ. (अहअह) आमन्त्रण, खेद आदि में प्रयुक्त होता है; २-२१७।
अहिआइ अक. (अभियाति) सामने आता है; १-४४।
अहिज्जो, अहिण्णू पुं. (अभिज्ञ:) अच्छी तरह से जानने वाला; १-५६; २-८३।
अहिमज्जू, अहिमन्जू पु. (अभिमन्यु:) अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु; २-२५।
अहिमन्नू पु. (अभिमन्यु:) अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु; १-२४३; २-२५।
अहिरीओ वि. (अह्रीक:) निर्लज्ज, बेशरम; १-१०४।
अहिवन्नू पुं. (अभिमन्यु:) अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु; १-२४३।
अहो अ. (अहो) अरे; विस्मय, आश्चर्य, खेद, शोक, आमन्त्रण, संबोधन, वितर्क, प्रशंसा, असूया, द्वेष आदि अर्थों में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय; १-७; २-२१७।

आ

आइरिओ पु. (आचार्य:) गण का नायक; आचार्य; १-७३
आउज्जं पु. न. (आतोद्यम्) वाद्य, बाजा; १-१५६।
आउण्टणं न. (आकुञ्चनम्) संकोच करना; १-१७७।
आऊ स्त्री. (दे०) (आप:) पानी, जल; २-१७४।
आओ वि. (आगत:) आया हुआ; १-२६८।
आकिई स्त्री. (आकृति:) स्वरूप, आकार; १-२०९
आगओ वि. (आगत:) आया हुआ; १-२०९; २६८।

आगमण्णू पु. वि. (आगमज्ञः) शास्त्रों को जानने वाला; १-५६ ।
आगमिओ पु. वि. (आगमिकः) शास्त्र-संबंधी, शास्त्र-प्रतिपादित; शास्त्रोक्त वस्तु को ही मानने वाला; १-१७७ ।
आगरिसो पु. (आकर्षः) ग्रहण, उपादान; खींचाव; १-१७७
आगारो पु. (आकारः) अपवाद; इंगित; चेष्टा विशेष आकृति; रूप; १-१७७ ।
आढत्तो वि. (आरब्धः) शुरू किया हुआ; प्रारब्ध २-१३८
आढिओ वि. (आदृतः) सत्कृत; सम्मानित; १-१४३ ।
आणत्ती स्त्री. (आज्ञप्तिः) आज्ञा; हुकम; २-९२ ।
आणवणं न. (आज्ञापनं) आज्ञा, आदेश, फरमाइश; २-९२
आणा स्त्री (आज्ञा) आज्ञा, हुकम; २-८३, ९२ ।
आणालक्खम्भो पु. (आलानस्तम्भः) जहां हाथी बांधा जाता है वह स्तम्भ; २-९७, ११७ ।
आणालो पु. (आलानः) बंधन; हाथी बांधने की रज्जु, डोरी २-११७ ।
आफंसो पु (आस्पर्शः) अल्प स्पर्श; १-४४ ।
आम अ. (अभ्युपगमार्थे) स्वीकार करने अर्थ में; हाँ; २-१७७ ।
आमेलो पु. (आपीडः) फूलों की माला; शिरो-भूषण; १-१०५, २०२, २३४ ।
आयंसो पु. (आदर्शः) दर्पण, बैल आदि गले का भूषण-विशेष; २-१०५ ।
आयमिओ वि. पु. (आगमिकः) शास्त्र संबंधी; शास्त्र-प्रतिपादित; १-१७७ ।
आयरिओ पु. (आचार्यः) गण का नायक, आचार्य, १-७३; २-१०७ ।
आयरिसो पु. (आदर्शः) दर्पण; बैल आदि के गले का भूषण विशेष; २-१०५ ।
आयासं पु. न. (आकाशं) आकाश, अन्तराल; १-८४ ।
आरण्णं वि. (आरण्य) जंगली; १-६६ ।
आरनालं न. (आरनालम्) कांजी, साबूदाना; (देशज) कमल; १-२२८ ।
आरम्भो पु. (आरम्भः) प्रारम्भ; जीव-हिंसा; पाप-कर्म; १-३० ।
आलक्खिमो सक. (आलक्षयामः) हम जानते हैं; हम पहचानते हैं १-७ ।

आलिद्धो वि. पु. (आश्लिष्टः) आलिंगित; २-४९, ९० ।
आली स्त्री. (सखी) सखी, वयस्या; (आली) = पंक्ति श्रेणी; १-८३ ।
आलेट्ठुअं हे. कृ. (आश्लेष्टुम्) आलिंगन करने के लिये; १-२४; २-१६४ ।
आलेट्ठुं हे. कृ. (आश्लेष्टुम्) आलिंगन करने के लिये; २-१६४ ।
आलोअणं न. (आलोचन) देखना; १-७ ।
आवज्जं न. (आतोद्यम्) बाजा; वाद्य १-१५६ ।
आवत्तओ वि (आवर्तकः) चक्राकार भ्रमण करने वाला; २-३० ।
आवत्तणं न. (आवर्तनम्) चक्राकार भ्रमण; २-३० ।
आवत्तमाणो वकृ (आवर्तमानः) चक्राकार घूमता हुआ; १-२७१ ।
आवलि स्त्री. (आवलिः) पंक्ति, समूह; १-६ ।
आवसहो पु. (आवसथः) घर, आश्रम, स्थान मठ; १-१८७
आवासयं न. (आवासकम्) (आवश्यकं), नित्यकर्तव्य; १-४३ ।
आवेडो पु. (आपीड़) फूलों की माला; शिरोभूषण; १-२०२ ।
आसं न. (आस्यम्) मुख, मुंह; २-९२ ।
आसारो पु (आसारः) वेग से पानी बरसना; १-७६
आसीसा स्त्री. (आशीः) आशीर्वाद; २-१७४ ।
आसो पु. (अश्वः) घोड़ा; १-४३ ।
आहडं वि. (आहृतम्) छीना हुआ; चोरी किया हुआ; १-२०६ ।
आहिआई स्त्री. (अभिजातिः) कुलीनता, खानदानी; १-४४
आहित्थ वि. (? दे) चलित, गत, कुपित, व्याकुल, २-१७४ ।

(इ)

इ अ. (पाद पूरणे प्रयोगार्थम्) पाद-पूर्ति करने में प्रयुक्त होता है २-२१७ ।
इअ अ. (इति) ऐसा; १-४२, ९१ ।
इअर वि. (इतर) अन्य; १-७ ।
इअरहा अ. (इतरथा) अन्यथा, नहीं तो, अन्य प्रकार से; २-२१२ ।
इआणि अ. (इदानीम्) इस समय; १-२९ ।

इआणिं अ. (इदानीम्) इस समय; १-२९, २-१३४ ।
इक्क सर्व. (एक) एक; १-८४ ।
इक्खू पु. (इक्षुः) ईख, ऊख; २-१७ ।
इङ्गालो पु. (अंगारः) जलता हुआ कोयला; जैन साधुओं की भिक्षा का एक दोष; १-४७; २५४ ।
इङ्गिअज्जो, इङ्गिअण्णू वि. (इंगितज्ञः) इशारे से समझने वाला; २-८३ ।
इंगुअं न. (इंगुदम्) इंगुद वृक्ष का फल; १-८९ ।
इट्टा स्त्री. (इष्टा) ईंट; २-३४ ।
इट्ठो वि. (इष्टः) अभिलषित, प्रिय; २-३४ ।
इड्ढी स्त्री. (ऋद्धिः) वैभव, ऐश्वर्य, संपत्ति; १-१२८ और २-४१ ।
इणं सर्व (इदम्) यह; २-१०४ ।
इत्तिअं वि. (एतावत्); इतना; २-१५६ ।
इत्तो अ. (इतः) इससे; इस कारण; इस तरफ; २-१६०
इत्थी स्त्री. (स्त्रीः) महिला; २-१३० ।
इदो अ. (इतः) इससे; इस कारण; इस तरफ; २-१६० ।
इन्ध सक. (इन्ध्)–(वि उपसर्ग सहित) विज्झाइ (विध्यति) वह छेद करता है; २-२८ । (सम् उपसर्ग सहित)–समिज्झाइ (समिध्यति) वह चारों ओर से चमकता है; २-२८ ।
इंदहणू पु. न. (इन्द्रधनुः) सूर्य की किरणों से मेघों पर पड़ने वाला सप्तरंगी दृश्य विशेष; १-१८७ ।
इंधं न. (चिह्नम्) निशानी; चिह्न; १-१७७; २-५०
इमं सर्व (इदम्) यह; २-१८१, १९८ ।
इमा सर्व. स्त्री (इयम्) यह; १-४० ।
इर अ. (किल) संभावना, निश्चय, हेतु, पादपूर्णार्थ संदेह आदि अर्थ में; २-१८६ ।
इव अ. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा इन अर्थों में; २-१८२ ।
इसी पु. (ऋषिः) मुनि, साधु, ज्ञानी, महात्मा, भविष्यत्-दर्शी; १-१२८, १४१ ।
इह अ. (इह) यहाँ पर; इस जगह; १-९; २-१६४
इहं अ. (इह) यहाँ पर, इस जगह, १-२४ ।
इहयं अ. (इह) यहाँ पर; इस जगह; १-२४; २-१६४
इहरा अ. (इतरथा) अन्यथा, नहीं तो; अन्य प्रकार से; २-२१२ ।

(ई)

ईसरो पु. (ईश्वरः) ईश्वर, परमात्मा; १-८४; २-९२
ईसालू वि. (ईर्ष्यालुः) ईर्ष्यालु; द्वेषी; २-१५९ ।
ईसि अ. (ईषत्) अल्प; थोड़ा सा; १-४६; २-१२९

(उ)

उअ अ. (उत) विकल्प, वितर्क, विमर्श, प्रश्न समुच्चय आदि अर्थ में; १-१७२; २-१९३, २११
उअ सक. (पश्य) देखो; २-२११ ।
उइंदो पु. (उपेन्द्रः) इन्द्र का छोटा भाई; १-६ ।
उउंबरो पु. (उदुम्बरः) गूलर का पेड़; १-२७० ।
उऊ त्रिलिंग, (ऋतुः) ऋतु; दो मास का काल विशेष; १-१३१, १४१, २०९ ।
उऊहलो पु. (उदूखलः) उलूखल; गूगल; १-१७१ ।
उक्कण्ठा, उक्कंठा स्त्री. (उत्कंठा) उत्कण्ठा, उत्सुकता; १-२५ ३० ।
उक्कत्तिओ वि. (उत्कर्तितः) कटा हुआ; छिन्न; २-३० ।
उक्करो पु. (उत्करः) राशि; ढेर; १-५८ ।
उक्का स्त्री. (उल्का) से जो एक प्रकार का अंगार सा गिरता है; २-७९, ८९ ।
उक्किट्ठं वि. (उत्कृष्टम्) उत्कृष्ट, उत्तम; १-१२८ ।
उक्केरो पु. (उत्करः) राशि, समूह; १-५८ ।
उक्खयं वि. (उत्खातम्) उखाड़ा हुआ; १-६७ ।
उक्खलं न. (उदूखलम्) गूगल; २-९० ।
उक्खायं वि. (उत्खातम्) उखाड़ा हुआ; १-६७ ।
उक्खित्तं वि. (उत्क्षिप्तम्) फेंका हुआ; ऊंचा उठाया हुआ; २-१२७ ।
उग्गमा वि. (उद्गता) निकली हुई, उत्पन्न हुई; १-१७१
उग्गयं वि. (उद्गतम्) ऊंचा गया हुआ; उत्पन्न हुआ १-१२ ।
उच्चअं वि. (उच्चैस्) ऊँचा; उत्तम; उत्कृष्ट; १-१५४
उच्छवो पु. (उत्सवः) उत्सव; २-२२ ।
उच्छण्णो वि. (उत्सन्नः) छिन्न, खण्डित; नष्ट; १-११४
उच्छा पु. (उक्षा) बैल; सांड; २-१७ ।
उच्छाहो पु. (उत्साहः) उत्साह, दृढ़ उद्यम, सामर्थ्य; १-११४; २-२१, ४८ ।
उच्छू पु. (इक्षुः) ईख; गन्ना; १-२४७ ।

उच्छू पुं. (इक्षुः) ईख; गन्ना; १-९५; २-१७ ।

उच्छुओ वि. (उत्सुकः) उत्कण्ठित; २-२२ ।

उच्छूढं वि. (उत्क्षिप्तम्) फेंका हुआ; ऊंचा उड़ाया हुआ; २-१२७ ।

उज्जलो वि. (उज्ज्वलः) निर्मल, स्वच्छ, दीप्त, चमकीला; २-१७४ ।

उज्जल्ला वि. (देशज) पसीना वाला; मलिन; बलवान; २-१७४ ।

उज्जू वि. (ऋजुः) सरल, निष्कपट, सीधा; १-१३१ १४१; २-९८ ।

उज्जोअगरा वि. (उद्योतकराः) प्रकाश करने वाले; १-१७७ ।

उट्टो पुं. (उष्ट्रः) ऊंट; २-३४ ।

उडू पुं. न. (उडुः) नक्षत्र, तारा; १-२०२ ।

उणा अ. (पुनः) भेद, निश्चय, प्रस्ताव, द्वितीय वार, पक्षान्तर आदि अर्थ में; १-६५; १७७ ।

उणा अ. (पुनः) भेद, निश्चय, प्रस्ताव, द्वितीयवार, १-६५; २-२१७ ।

उणाइ अ. (पुनः) भेद, निश्चय, प्रस्ताव, द्वितीयवार, १--६५।

उण्हीसं पुं. न. (उष्णीषम्) पगड़ी, मुकुट; २-७५ ।

उत्तरिज्जं, उत्तरीअं न. (उत्तरीयम्) चद्दर, दुपट्टा १-२४८

उत्तिमो वि. (उत्तमः) श्रेष्ठ; १-४६ ।

उत्थारो पुं० (उत्साहः) उत्साह; दृढ़ उद्यम; स्थिर प्रयत्न; २-४८ ।

उदू वि. (ऋतुः) ऋतु, दो मास का काल विशेष; १-२०९ ।

उद्दामो वि. (उद्दामः) स्वच्छन्द; अव्यवस्थित; प्रचण्ड; प्रखर; १-१७७ ।

उद्धं न. (ऊर्ध्वम्) ऊपर, ऊंचा; २-५९ ।

उप्पलं न. (उत्पलम्) कमल; पद्म; २-७७ ।

उप्पाओ पु (उत्पातः) उत्पतन; ऊर्ध्व-गमन; २-७७ ।

उप्पावेइ सक. (उत्प्लावयति) वह गोता खिलाता है; कुदाता है; २-१०६ ।

उप्पेहड (देशज) वि. (?) उद्भट, आडम्बर वाला; २-१७४ ।

उप्फालइ सक. (उत्पाटयति) वह उठाता है; उखेड़ता है; २-१७४ ।

उब्भंतयं वि. (उद्भ्रान्तकम्) भ्रान्ति पैदा करने वाला; भौंचक्का बनाने वाला; २-१६४ ।

उब्भं न. (ऊर्ध्वम्) ऊपर; ऊंचा; २-५९ ।

उभयबलं न. (उभय बलम्) दोनों प्रकार का बल; २-१३८ ।

उभयोकालं न. (उभय कालम्) दोनों काल; २-१३८ ।

उंबरो पुं (उदुम्बरः) गूलर का पेड़; १-२७० ।

उम्मत्तिए स्त्री. (उन्मत्तिके) हे मदोन्मत्त ! (स्त्री.) १-१६९

उम्हा स्त्री. (ऊष्मा) भाप; गरमी; २-७४ ।

उरो पुं. न. (उरः) वक्षः स्थल; छाती; १-३२ ।

उलूहलं न. (उदूखलम्) उलूखल; गूगल; १-१७१ ।

उल्लं वि. (आर्द्रम्) गीला; भींजा हुआ; १-८२ ।

उल्लविरीइ वि. (उल्लपनशीलया) बकवादी स्त्री द्वारा; २-१९३ ।

उल्लावेंतिए वि. (उल्लापयन्त्या) बकवादी स्त्री द्वारा; २-१९३ ।

उल्लिहणे वि. (उल्लेखने) घर्षण किये हुए पर; १-७ ।

उल्लेइ सक. (आर्द्रीकरोति) वह गीला करता है; १-८२

उवज्झाओ पु. (उपाध्यायः) उपाध्याय; पाठक; अध्यापक; १-१७३; २-२६ ।

उवणिअं वि. (उपनीतम्) पास में लाया हुआ; १-१०१

उवणीओ पुं. वि. (उपनीतः) समीप में लाया हुआ; अर्पित; १-१०१ ।

उवमा स्त्री. (उपमा) सादृश्यात्मक दृष्टान्त; १-२३१

उवमासु स्त्री. (उपमासु) उपमाओं में; १-७ ।

उवयारेसु पुं. (उपचारेषु) उपचारों में; सेवा-पूजाओं में; भक्ति में; १-१४५ ।

उवरिं अ. (उपरिम्) ऊपर; ऊर्ध्व; १-१०८ ।

उवरिल्लं वि. (उपरितनम्) ऊपर का; ऊर्ध्व-स्थित; २-१६३ ।

उववासो पुं. (उपवासः) दिन रात का अनाहारक व्रत विशेष १-१७३ ।

उवसग्गो पुं. (उपसर्गः) उपद्रव, बाधा; उपसर्ग-विशेष; १-२३१ ।

उवहं वि. (उभयं) दोनों; २-१३८ ।

उवहसिअं वि. (उपहसितम्) हंसी किया हुआ; हंसाया हुआ; १-१७३ ।

उवहासं पुं. (उपहासम्) हंसी, ठट्ठा; २-२०१ ।

उव्वाडिरीए स्त्री. (उद्विग्नया) घबड़ाई हुई स्त्री द्वारा; २-१९३।

उव्विग्गो, उव्विण्णो वि. (उद्विग्नः) खिन्न; घबराया हुआ; २-७९।

उव्वीढं उव्वूढं वि. (उद्व्यूढम्) धारण किया हुआ; पहना हुआ; १-१२०।

उसभं पुं. (ऋषभम्) प्रथम जिनदेव को; १-२४।

उसहो पुं. (ऋषभः) प्रथम जिनदेव; (वृषभः) बैल; सांड; १-१३१; १३३; १४१।

(ऊ)

ऊ अ. देशज (?) निन्दा, आक्षेप, विस्मय, सूचना आदि अर्थों में; २-१९९।

ऊआसो पुं. (उपवासः) दिन रात का अनाहारक व्रत विशेष; उपवास, १-१७३।

ऊज्झाओ पुं. (उपाध्याय) पाठक, अध्यापक; १-१७३।

ऊरुजुअं नं. (ऊरु-युगम्) दोनों जंघाएँ; १-७।

ऊसवो पुं. (उत्सवः) उत्सव; त्योहार; १-८४, ११४

ऊससइ सक. (उच्छ्वसति) वह ऊंचा सांस लेता है; १-११४।

ऊससिरो वि. (उच्छ्वसनशीलः) ऊंचा सांस लेने वाला; २-१४५।

ऊसारिओ वि. (उत्सारितः) दूर किया हुआ; २-२१।

ऊसारो पुं. (उत्सारः) परित्याग; (आसारः) वेग वाली वृष्टि; १-७६।

ऊसित्तो वि. उत्सिक्तः गर्वित, उद्धत; १-११४।

ऊसुओ वि. (उच्छुकः) जहां से तोता उड़ गया हो वह; १-११४, २-२२।

ऊसरं न. देशज (?) (ताम्बूलम्) पान; २-१७४।

ऊसो पुं (उस्रः) किरण; १-४३।

(ए)

एअ गुणा पुं. न. (एतद्गुणाः) ये गुण; १-११।

एअं सर्व. (एतद्) यह; १-२०९; २-१९८, २०४।

एआरह वि. (एकादश) ग्यारह; १-२१९, २६२।

एआरिसो वि. (एतादृशः) ऐसा; इसके जैसा; १-१४२।

एओ वि. सर्व. (एकः) एक; प्रथम; अकेला; २-९९ १६५।

एकत्तो अ. (एकतः) एक से; अकेले से; २-१६०।

एकदा अ. (एकदा) कोई एक समय में; एक बार में; २-१६२।

एकदो अ. (एकतः) एक से; अकेले से; २-१६०।

एकल्लो वि. (एकाकी) अकेला; २-१६५।

एक्काए स्त्री. वि. (एकाकः) एकाकी; (एकया) एक द्वारा; १-३६।

एक्को वि. (एकः) एक; २-९९,१६५।

„ एक्काए सर्व. वि. (एकया) एक द्वारा; १-३६।

एक्कइआ अ. (एकदा) एक बार; कोई दफे; २-१६२।

एक्कसरिअं अ. देशज (?) शीघ्र; आजकल; २-२१३।

एक्कसि, एक्कसिअं अ. (एकदा) किसी एक समय में; २-१६२

एक्कारो पुं (अयस्कारः) लोहार; १-१६६।

एगत्तं वि. (एकत्वम्) एकत्व; एकपना; १-१७७।

एगया अ. (एकदा) एक समय में; कोई वख्त में; २-१६२।

एगो वि. (एकः) एक; १-१७७।

एण्हिं अ. (इदानीम्) इस समय में; १-७; २-१३४।

एत्ताहे अ. (इदानीम्) इस समय में; अधुना; २-१३४, १८०;

एत्तिअं वि. (इयत्; एतावत्) इतना, २-१५७।

एत्तिअमत्तं-एत्तिअमेत्तं वि. (इयन्मात्रम्) इतना ही; १-८१

एत्तिलं वि. (इयत्) इतना; २-१५७।

एत्थ अ. (अत्र) यहाँ पर; १-४०,५७;।

एद्दहं वि. (इयत्) इतना; २-१५७।

एमेव अ. (एवमेव) इसी तरह; इसी प्रकार; १-२७१

एरावओ पु. (ऐरावतः) इन्द्र का हाथी; १-२०८।

एरावणो पुं. (ऐरावतः) इन्द्र का हाथी; १-१४८, २०८

एरिसी वि. (ईदृशी) इस तरह की; ऐसा-ऐसी; २-१९५

एरिसो वि. (ईदृशः) ऐसा इस तरह का; १-१०५, १४२

एव अ. (एव) ही; १-२९।

एवं अ. (एवम्) ऐसा ही; १-२९; २-१८६।

एवमेव अ. (एवमेव) इसी तरह का ही; १-२७१।

एस सर्व. (एष.) यह; १-३१, ३५।

एसो सर्व. (एषः) यह; (पुं.) २-११६, १९८।

एसा सर्व. (स्त्री.) (एषा) यह; १-३३, ३५, १५८।

(ऐ)

ऐ अ (अयि) संभावना, आमन्त्रण, संबोधन, प्रश्न आदि अर्थों में; १-१६९।

(ओ)

ओ (अव, अप, उत,) नीचे, दूर अर्थों में; अथवा; आदि अर्थों में १-१७२, २-२०३।

ओआसो पुं. (अवकाशः) मौका; प्रसंग; १-१७२, १७३

ओक्खलं न. (उदूखलम्) उलूखल; मूसल; १-१७१।

ओज्झरो पुं. (निर्झरः) झरना; पर्वत से निकलने वाला जल प्रवाह; १-९८।

ओज्झाओ पुं. (उपाध्यायः) पाठक; उपाध्याय; अध्यापक; १-१७३।

ओप्पिअं वि. (अर्पितम्) अर्पण किया हुआ; १-६३।

ओमालं न. (अवमाल्यम्) निर्माल्य; देवोच्छिष्ट द्रव्य; १-३८; २-९२।

ओमालयं न. (अवमाल्यम्) निर्माल्य; देवोच्छिष्ट द्रव्य; १-३८।

ओली स्त्री. (आली) पंक्ति; श्रेणी, १-८३।

ओल्लं वि. (आर्द्रम्) गीला; भींजा हुआ; १-८२।

ओसढं न. (औषधम्) दवा; इलाज; भैषज; १-२२७।

ओसहं न. (औषधम्) दवा; भैषज; १-२२७।

ओसिअंतं व कृद. (अवसीदंतम्) पीड़ा पाते हुए को; १-१०१।

ओहलो पुं. (उदूखलः) उदूखल; मूसल; १-१७१।

(क)

कइ पुं. (कवि) कविता करने वाला विद्वान पुरुष; कवि; ५-४०।

कइअवं वि. (कतिपयम्) कतिपय; कई एक; १-२५०

कइअवं न. (कैतवम्) कपट; दम्भ; १-१५१।

कइद्धओ पुं. (कपिध्वजः) वानर-द्वीप के एक राजा का नाम; अर्जुन; २-९०।

कइधओ पुं (कपिध्वजः) अर्जुन; २-९०।

कइन्दाणं पुं. (कवीन्द्राणम्) कवीन्द्रों का; १-७।

कइमो वि. (कतमः) बहुत में से कौनसा; १-४८

कइरवं न. (कैरवम्) कमल; कुमुद; १-१५२।

कइलासो पुं. (कैलासः) पर्वत विशेष का नाम; १-५२।

कइवाहं वि. (कतिपयं) कतिपय; कई एक; १-२५०।

कई पु. (कविः) कविता करने वाला विद्वान्;

कई पुं. (कपिः) बन्दर; १-२३१।

कउच्छेअयं न. (कौक्षेयकम्) पेट पर बंधी हुई तलवार; १-१६२।

कउरवो पुं. (कौरवः) कुरु-देश में उत्पन्न हुआ; राजा कौरव; १-१६२।

कउरव पुं. (कौरव) कुरु देश में उत्पन्न हुआ; १-८

कउला पु. (कौलाः) जाति विशेष के पुरुष; १-१६२।

कउसलं न. (कौशलम्) कुशलता; दक्षता; १-६२।

कउहा स्त्री. (ककुभ्) दिशा; १-२१।

कउहं न. (पुं.) (ककुदम्) बैल के कंधे का कूबड़; सफेद छत्र आदि; १-२२५।

कंसं न. (कांस्यम्) कांसी-(धातु विशेष) का पात्र; १-२९, ७०।

कंसालो पुं. (कांस्यालः) वाद्य-विशेष; २-९२।

कंसिओ पुं. (कांसिकः) कसेरा; ठठेरा विशेष; १-७०

ककुधं न. पुं. (ककुदम्) पर्वत का अग्र भाग चोटी; छत्र विशेष; २-१७४।

कक्कोडो पुं. (कर्कोटः) सांप की एक जाति विशेष; १-२६।

कच्छा स्त्री. (कक्षा) विभाग, अंश, संशय-कोटि; प्रकोष्ठ; २-१७।

कच्छो पुं. (कक्षः) कांख; जल-प्राय देश; इत्यादि; २-१७।

कज्जं न. (कार्यम्) कार्य; प्रयोजन १-१७७; २-२४

कज्जे न. (कार्ये) काम में, प्रयोजन में; २-१८०।

कञ्चुओ पुं (कञ्चुकः) वृक्ष विशेष कपड़ा १-२५, ३०

कञ्चुअं न. (कञ्चुकम्) कांचली; १-७।

कट्टु कृ (कृत्वा) करके; २-१४६।

कट्ठं न. (काष्ठम्) काठ; लकड़ी; २-३४; ९०।

कडणं न. (कदनम्) मार डालना; हिंसा, मर्दन, पाप; आकुलता; १-२१७।

कडुएल्लं वि. (कटु तैलम्) तीखे स्वाद वाला, २-१५५।

कणयं न. (कनकम्) स्वर्ण; सोना; धतूरा; १-२२८।

कणवीरो पुं. (करवीरः) वृक्ष-विशेष; कनेर; १-२५३।

कणिआरो पुं. (कर्णिकारः) वृक्ष विशेष, कनेर का गाछ; गोशाला का एक भक्त; २-९५।

कणिट्ठयरो वि. (कनिष्ठ तरः) छोटे से छोटा; २-१७२।

कणेरू स्त्री. (करेणुः) हस्तिनी, हथिनी; २-११६।

कण्टओ-कंटओ पु. (कण्टकः) कांटा; १-३०।

कण्डं,कंडं न. (काण्डम्) विभाग; हिस्सा; १-३० ।

कण्डलिआ स्त्री. (कन्दरिका) गुफा; कन्दरा; २-३८ ।

कण्डुअइ सक. (कण्डूयति) वह खुजलाता है; १-१२१

कण्णिआरो पु. (कर्णिकारः) वृक्ष विशेष; गोशाला का एक भक्त; १-१६८ २-९५ ।

कण्णेरो पु. (कर्णिकारः) वृक्ष-विशेष; गोशाला का एक भक्त; १-१६८ ।

कण्हो वि. (कृष्णः) काला; श्याम; नाम-विशेष; २-७५; ११० ।

कत्तरी स्त्री. (कर्त्तरी) कतरनी; कैंची २-३० ।

कत्तिओ पु. (कार्तिकः) कार्तिक महीना; कार्तिक सेठ आदि; २-३० ।

कत्थइ सक. (कथयति) वह कहता है; १-८७ ।

कहइ सक. (,,) ,, ,, ।

कत्थ अ० (कुत्र) कहाँ पर; २-१६१ ।

कत्थइ अ. (क्वचित्) कहीं; किसी जगह; २-१७४ ।

कन्था स्त्री. (कन्था) पुराने वस्त्रों से बनी हुई गुदड़ी; १-१८७ ।

कन्दुट्टं न० (देशज) (?) नील कमल; २-१७४ ।

कन्दो पुं. (स्कन्दः) कार्तिकेय; षडानन; २-५ ।

कप्पतरू पुं० (कल्पतरुः) कल्प-वृक्ष; २-८९ ।

कप्फलं न. (कट् फलम्) कायफल; २-७७ ।

कमढो पुं० (कमठः) तापस विशेष; १-१९९ ।

कमन्धो पुं० (कबन्ध) धड़; मस्तक हीन शरीर; १-२३९

कमलं न. (कमलम्) कमल; पद्म; अरविन्द; २-१८३

कमला स्त्री. (कमला) लक्ष्मी; १-३३ ।

कमलाइं न. (कमलानि) नाना कमल; १-३३ ।

कमलवणं न. (कमल-वनम्) कमलों का वन; २-१८३ ।

कमल-सरा पुं० न. (कमलसरांसि) कमलों के तालाब;

कमो पुं० (क्रमः) पाद; पांव; अनुक्रम; परिपाटी; मर्यादा; नियम; २-१०६ ।

कंपइ-कम्पइ अक. (कम्पते) वह कांपता है; १-३०, २-३१

कम्भीरा पुं० (कश्मीराः) काश्मीर के लोक; २-६० ।

कम्मसं न. (कल्मषम्) पाप; वि. (मलीन) २ ७९ ।

कम्हारा पुं. (कश्मीराः) काश्मीर के लोक; १-१००, २-६०,७४ ।

कयं कृद. वि. (कृतम्) किया हुआ; १- १२६, २०९ २-११४;

कयग्गाहो पु. (कचग्रहः) केश-ग्रहण; बाल-ग्रहण; १-११७ १८० ।

कयणं न. (कदनम्) मार डालना; हिंसा; पाप; मर्दन; आकुलता; १-२१७ ।

कयण्णू पुं. वि. (कृतज्ञ) उपकार को मानने वाला; १-५६ ।

कयन्धो पुं. (कबन्धः) रुंड; मस्तक हीन शरीर; धड़; १-२३९ ।

कयम्बो पुं. (कदम्बः) वृक्ष-विशेष; कदम का गाछ; १-२२२ ।

कयरो वि. (कतरः) दो में से कौन ? १-२०९ ।

कयलं न. (कदलम्) कदली-फल; केला; १-१६७ ।

कयली स्त्री. (कदली) केला का गाछ; १-१६७,२२० ।

कर क्रिया. (कृ) करना;

करेमि सक. (करोमि) मैं करता हूँ; १-२९; २-१९०

करेसु सक. (करोषि) तू करता है; २-२०१ ।

काहिइ सक. (करिष्यति) वह करेगा; १-५; ।

काही सक. (करिष्यति) वह करेगा; १-५ ।

किज्जइ सक. (क्रियते) किया जाता है; १-९७ ।

करिअ संबं (कृत्वा) करके; १-२७ ।

काऊण संबं (,,) ,, १-२७, २-१४६ ।

काउआणं काउआण सं. (कृत्वा) करके; १-२७ ।

कया अ. (कदा) कब; किस समय में; २-२०४ ।

करणिज्जं वि. (करणीयम्) करनी चाहिये; करने योग्य; १-२४८; २-२०९ ।

करणीअं वि. (करणीयम्) करने योग्य; १-२४८ ।

पडिकरइ सक. (प्रति करोति) वह प्रतिकूल करता है; १-२०६ ।

करुहं-करुहो पुं न. (करुहम्) नख; १-३४ ।

करली स्त्री. (कदली) पताका; हरिण की एक जाति हाथी का एक आभरण; १-२२० ।

करसी स्त्री. (देशज) (?) श्मशान; मसाण; २-१७४

करिसो पुं. (करीषः) जलाने के लिये सुखाया हुआ गोबर; कंडा; १-१०१ ।

करीसो पुं. (करीषः) जलाने के लिये सुखाया हुआ गोबर; कंडा; १-१०१ ।

करेणू स्त्री. (करेणुः) हस्तिनी; हथिनी; २-११६ ।

कलओ पुं. (कालकः) कालकाचार्य; १-६७ ।

कलमगोवी स्त्री. दे (शालि-गोपी) चाँवल की रक्षा करने वाली २-२१७।

कलम्बो पुं. (कदम्बः) वृक्ष-विशेष; कदम का गाछ; १-३०, २२२।

कलावो पुं. (कलापः) समूह, जत्था; १-२३१।

कलुणो वि. (करुणः) दीन, दया-जनक; करुणा का पात्र १-२५४।

कल्लं न. (कल्यम्) कल; गया हुआ अथवा आगामी दिन; २-१८६।

कल्हारम् न. (कल्हारम्) सफेद कमल; २-७६।

कवट्टिओ वि (कदर्थित) पीड़ित, हैरान किया हुआ; १-२२४; २-२९।

कवड्डो पुं०. (कपर्दः) बड़ी कौड़ी; वराटिका; २-३६।

कवालं न. (कपालम्) खोपड़ी; घट-कर्पर; हड्डी का भिक्षा-पात्र; १-२३१।

कविलं न. वि. (कपिलम्) पीला रंग जैसे वर्ण वाला; १-२३१।

कव्व-कव्वं न. (काव्यम्) कविता, कवित्व, काव्य; २-७९

कव्वइत्तो पुं० (काव्यवान्) काव्य वाला; २-१५९।

कस विअसन्ति अक. (विकसन्ति) खिलते हैं; २-२०९।

विअसिअं वि. (विकसितम्) खिला हुआ; १-४१, २-२०५

कसणो, कसणो पुं० वि. (कृष्णः) काला; १-२३६; २-७५ ११०।

कसाओ वि (कषायः) कषैला स्वाद वाला; कषाय रंग वाला; खुशबूदार; १-२६०।

कसिण वि. (कृत्स्नः) सकल, सब, सम्पूर्ण, (कृष्णः = काला) २-७५; १०४।

कसिणो वि. (कृष्णः अथवा कृत्स्नः) काला अथवा पूर्ण; २-८९, १०४, ११०।

कह अ. (कथम्) कैसे ? किस तरह ? १-२९, २-१६१। १९९; २०४ २०८।

कहं अ. (कथम्) कैसे ? किस तरह ? १-२९, ४१

कहमवि अ. (कथमपि) किसी भी प्रकार; १-४१।

कहावणो पुं. (कार्षापणः) सिक्का विशेष; २-७१,९३।

कहि अ. (कुत्र) कहाँ पर ? २-१६१।

काउँओ पुं. (कामुकः) महादेव; शिव; १-१७८।

कामिणीण स्त्री. (कामिनीनाम्) सुन्दर स्त्रियों के; २-१८४

कायमणी पुं. (काचमणिः) काँच-रत्न विशेष; १-१८०।

कालओ पुं. (कालकः) कालकाचार्य; १-६७।

कालायसं, कालासं न. (कालायसम्) लोहे की एक जाति १-२६९।

कालो पुं. (कालः) समय; वक्त; १-१७७।

कासइ अ. (कस्यचित्) कोई; १-४३।

कासओ पुं. (कर्षकः) किसान; १-४३।

कासं न. (कांस्यम्) धातु-विशेष; काँसी; वाद्य-विशेष;

कासओ वि. पुं. (कश्यपः) दारु पीने वाला, १-४३।

कासा स्त्री. वि. (कृशा) दुर्बल स्त्री; १-१२७।

काहलो वि. पुं. (कातरः) कायर; डरपोक; १-२१४,

काहावणो पुं. (कार्षापणः) सिक्का विशेष; २-७१।

काहीअ सक. (कार्षीद्) करो; ३-१९१।

काहिइ सक. (करिष्यति) वह करेगा; १-५।

किंसुअं न. (किंशुकम्) ढाक; वृक्ष-विशेष; १-२९,८६

किआ स्त्री. (क्रिया) चारित्र; २-१०४।

किई स्त्री. (कृतिः) कृति; क्रिया; विधान; १-१२८।

किच्चा स्त्री. (कृत्या) क्रिया, काम, कर्म; महामारी का रोग विशेष; १-१२८।

किच्ची स्त्री. (कृत्तिः) कृत्तिका नक्षत्र; मृग आदि का चमड़ा, भोज-पत्र २-१२-८९।

किच्छं न. (कृच्छ्रम्) दुःख, कष्ट; १-१२८।

किज्जइ क्रिया. (क्रियते) किया जाता है १-९७।

किडी पुं. (किरिः) सूकर-सूअर। १-२५१।

किणा सर्व. (केन) किस से ? किस के द्वारा; ३-६९।

किणो अ. (प्रश्न-वाचक अर्थ में) क्या; क्यों; २ २१६

कित्ती स्त्री. (कीर्तिः) यश-कीर्ति; २-३०।

किर अ. (किल) संभावना, निश्चय, हेतु, संशय, पाद-पूर्ण आदि अर्थों में; १-८८; २-१८६।

किरायं न. पुं. (किरातम्) अनार्य देश विशेष अथवा भील को; १-१८३।

किरिआ स्त्री. (क्रिया) क्रिया, काम, व्यापार, चारित्र आदि; २-१०४।

किल अ. (किल) संभावना, निश्चय, हेतु, संशय, पाद पूर्ण आदि अर्थों में २-१८६।

किलन्तं वि. (क्लान्तम्) खिन्न; श्रान्त; २-१०६।

किलम्मइ अक. (क्लाम्यति) वह क्लान्त होता है; वह खिन्न होता है; २-१०६।

किलिट्ठं वि. (क्लिष्टम्) क्लेश-जनक; कठिन, विषम; २-१०६ ।
किलित्त वि. (क्लृप्त) कल्पित; रचित; १-१४५ ।
किलिन्न वि. (क्लिन्न) आर्द्र; गीला; १-१४५ ।
किलिन्नं वि. (क्लिन्नम्) आर्द्र; गीला; २-१०५,१०६ ।
किलेसो पुं. (क्लेशः) खेद, थकावट, दुःख, बाधा; २-१०६
किवा स्त्री (कृपा) दया, मेहरबानी; १-१२८ ।
किवाणं न. (कृपाणम्) खड्ग, तलवार; १-१२८ ।
किविणो पुं० वि. (कृपणः) कृपण; कंजूस; १-४६, १२८
किवो पुं० (कृपः) कृपाचार्य, नाम विशेष; १-१२८
किसरं न. (केसरम्) पुष्प-रेणु; स्वर्ण; छंद-विशेष १-१४६
किसरा स्त्री. (कृसरा) खिचड़ी; १-१२८ ।
किसलं, किसलयं न. (किसलयम्) कोमल पत्ती, नूतन अंकुर; १-२६९ ।
किसा स्त्री. (कृशा) दुर्बल स्त्री; १-१२७ ।
किसाणू पु. (कृशानुः) आग; वृक्ष-विशेष तीन की संख्या; १-१२८ ।
किसिओ वि. (कृषितः) खींचा हुआ; रेखा किया हुआ; जोता हुआ; १-१२८ ।
किंसुअं न. (किंशुकम्) ढाक; वृक्ष-विशेष; १-२९, ८६
किसो वि. (कृशः) पतला, दुर्बल; १-१२८ ।
कीलइ अ. कि. (क्रीडति) वह खेलता है; १-२०२ ।
कुऊहलं न. (कुतूहलम्) कौतुक, परिहास; अपूर्व वस्तु देखने की लालसा; १-११७ ।
कुङ्कुम न. (कुङ्कुम) सुगन्धी द्रव्य विशेष; २-१६४ ।
कुच्छी स्त्री. (कुक्षिः) कोख; १-३५, २-१७ ।
कुच्छेअयं न. (कौक्षेयकम्) पेट पर बंधी तलवार; १-१६१; २-१७ ।
कुज्जय पुं. (कुब्जक) कूबड़ा, वामन; १-१८१ ।
कुंजरो पुं. (कुञ्जरः) हाथी; १-६६ ।
कुड्डं न. (कुड्यम्) भित्ति; भींत; २-७८ ।
कुड्डं देशज न (?) आश्चर्य, कौतुक, कुतूहल; २-१७४ ।
कुढारो पुं० (कुठारः) कुल्हाड़ा; फरसा; १-१९९ ।
कुणंति सक. (कुर्वन्ति) वे करते हैं; १-८ ।
कुणिमं वि. (कुणपम्) दुर्गन्धी; मृत शरीर; मुर्दा; १-२३१ ।
कुत्तो अ. (शौर) (कुतः) कहाँ से ? १-३७ ।

कुप्पासो, कुप्पिसो पुं. (कूर्पासः) कञ्चुक, काँचली अनार्मी कुरती; १-७२ ।
कुमरो कुमारो पुं. (कुमारः) प्रथम वय का बालक; अविवाहित; १-६७ ।
कुमुअं न. (कुमुदम्) चन्द्र-विकासी कमल; २-१८२ ।
कुम्पलं पुं. न. (कुड्मलम्) कलि, कलिका; १-२६ २-५२ ।
कुम्भआरो पुं. (कुम्भकारः) कुम्भकार; १-८ ।
कुम्भआरो कुम्भारो पुं० (कुम्भकारः) कुम्भकार; १-८ ।
कुम्हाणो पु. (कुश्मानः) देश-विशेष; २-७४ ।
कुलं न. (कुलम्) कुल, वंश, जाति, परिवार; १-३३
कुलो पुं. (,,) कुल, वंश जाति, परिवार, १-३३
कुल्ला स्त्री. (कुल्या) छोटी नदी; बनावटी नदी; २-७९
कुसुम न. (कुसुम) पुष्प-फूल; १-९१, १४५ ।
कुसुमपयरो-कुसुमप्पयरो पु. (कुसुम-प्रकरः) पुष्प-समूह २-९७ ।
कुसो पुं० (कुशः) तृण-विशेष; राम के एक पुत्र का नाम; १-२६० ।
कूर अ. (ईषत्) थोड़ा सा; २-१२९ ।
केढवो पुं० (कैटभः) दैत्य-विशेष; १-१४८, १९६, २४०
केत्तिअं, केत्तिलं, केद्दहं वि. (कियत्) कितना; २-१५७ ।
केरवं न. (कैरवम्) कमल; कुमुद; १-१५२ ।
केरिसो वि. (कीदृशः) कैसा किस तरह का, १०५; १४२ ।
केलं न. (कदलम्) कदली-फल; केला; १-१६७ ।
केलासो पुं० (कैलासः) मेरु-पर्वत हिमालय की चोटी विशेष; १-१४८, १५२ ।
केली स्त्री. (कदली) केला का गाछ; १-१६७, २२०
केवट्टो पुं० (कैवर्तः) धीवर; मच्छी मार; २-३० ।
केसरं न. (केसरम्) पुष्प-रेणु; स्वर्ण; छन्द-विशेष; १-१४६ ।
केसुअं न. (किंशुकम्) ढाक; वृक्ष विशेष; १-२९, ८६
को सर्व. (कः) कौन; २-१९८ ।
कि सर्व. (किम्) क्या; १-२९ ।
किं सर्व. (,,) ,, १-२९, ४१, ४२; २- ८६, १९३, १९९, २०४, २०५ ।
केण सर्व. (केन) किसके द्वारा; २-१९९ ।
केणावि सर्व पुं. (केनापि) किसी के भी द्वारा; १-४१ ।

कस्स सर्व. (कस्य अथवा कस्मै) किसका अथवा किसके लिये; ३-२०४।
कत्तो अ. (कुतः) कहाँ से; किस तरफ से; २-१६०
कत्तो, कदो अ. (,,) ,, ,, ,, ,,
कोउहल्लं न. (कुतूहलम्) कौतुक; परिहास; १-११७, १७१; २-९९।
कोऊहलं न. (कुतूहलम्) कौतुक; अपूर्व वस्तु देखने की लालसा; १-११७।
कोच्छेअयं न. (कौक्षेयकम्) पेट पर बंधी हुई तलवार; १-१६१।
कोञ्चो पुं० (क्रौञ्चः) पक्षि-विशेष; इस नाम का अनार्य देश; १-१५९।
कोट्टिमं न. (कुट्टिमम्) आंगण विशेष; झोपड़ा विशेष; रत्नों की खान; १-११६।
कोण्डं न. (कुण्डम्) कुंडा; जलाशय-विशेष; १-२०२
कोण्ढो वि. (कुण्ठः) मंद; मूर्ख; १-११६।
कोत्थुहो पुं० (कौस्तुभः) मणि-विशेष; १-१५९।
कोन्तो पुं. (कुन्तः) भाला; हथियार-विशेष; १-११६
कोप्परं न. पुं. (कूर्परम्) कोहनी; नदी का किनारा; तट; १-१२४।
कोमुई स्त्री. (कौमुदी) शरद् ऋतु की पूर्णिमा; चांदनी; १-१५९।
कोसम्बी स्त्री. (कौशाम्बी) नगरी विशेष; १-१५९।
कोसिओ पुं० (कौशिकः) कौशिक नामक तापस; १-१५९
कोहण्डी स्त्री. (कूष्माण्डी) कोहले का गाछ; १-१२४; २-७३।
कोहलं न. (कुतूहलम्) कौतुक, परिहास; १-१७१।
कोहलिए स्त्री. (हे कुतूहलिके !) हे कौतुक करने वाली स्त्री; १-१७१।
कोहली स्त्री. (कूष्माण्डी) कोहले का गाछ; १-१२४, २-७३।
कौरवा पुं० कौरवाः कुरु देश के रहने वाले; ४-१।
क्खण्डं न. (खण्डं) खण्ड, टुकड़ा; २-९७।

(ख)

खइओ वि. (खचितः) व्याप्त; जटित, मण्डित; विभूषित; १-१९३।
खइरं वि. (खादिरम्) खेर के वृक्ष से सम्बंधित; १-६७
खओ पुं. (क्षयः) क्षय, प्रलय, विनाश; २-३।
खग्गं न. (खड्गः) तलवार; १-३४।
खग्गो पुं. (,,) ,, १-३४, २०२; २-७७।
खट्टा स्त्री. (खट्वा) खाट, पलंग, चारपाई १-१९५।
खणो पुं. (क्षणः) काल का भाग विशेष; बहुत थोड़ा समय २-२०।
खण्डं न. (खण्डम्) टुकड़ा; भाग; २-९७।
खण्डिओ वि. पुं० (खण्डितः) टूटा हुआ. १-५३।
खण्णू पुं. (स्थाणुः) ठूंठ; शिवजी का नाम; २-९९।
खत्तिआणं पुं. (क्षत्रियाणाम्) क्षत्रियों का; २-१८५।
खन्दो पुं० (स्कन्दः) कार्तिकेय; षडानन; २-५।
खन्धावारो पुं० (स्कन्धावारः) छावनी; सेना का पड़ाव; शिविर; २-४।
खन्धो पुं. (स्कन्धः) पिण्ड; पुद्गलों का समूह; कन्धा; पेड़ का धड़; २-४।
खप्परं पुं. न. (कर्परम्) खोपड़ी; घट का टुकड़ा; भिक्षा-पात्र; १-१८१।
खमा स्त्री. (क्षमा) क्रोध का अभाव; क्षमा; २-
खम्भो पु. (स्तम्भः) खम्भा; थम्भा; १-१८७, २-८, ८९
खर वि. (खर) निष्ठुर; रूखा; कठोर; २-१८६।
खलिअ वि. (स्खलित) खिसका हुआ; २-७७।
खलिअं वि. (स्खलितम्) ,, ,, २-८९।
खल्लीडो पु. वि. (खल्वाटः) जिसके सिर पर बाल न हों; गञ्जा; चंदला; १-७४।
खसिअं न. (कसितम्) रोग-विशेष; खांसी; १-१८१।
खसिओ वि. (खचितः) व्याप्त; जटित; मण्डित; विभूषित; १-१९३।
खाओ वि. (ख्यातः) प्रसिद्ध; (विख्यात) २-९०।
खाइरं वि. (खादिरम्) खेर के वृक्ष से सम्बंधित १-६७
खाणू पु. (स्थाणु) ठूंठ रूप वृक्ष; शिवजी का नाम; २-७, ९९।
खासिअं न. (कासितम्) खांसी रोग विशेष; १-१८१।
खित्तं न. (क्षेत्रम्) खेत उपजाऊ जमीन; २-१२७।
खीणं वि. (क्षीणम्) क्षय-प्राप्त; नष्ट, विच्छिन्न, दुर्बल कृश; २-३।
खीरं न. (क्षीरम्) दूध; पानी; २-१७।
खीरोओ पु. क्षीरोदः समुद्र-विशेष क्षीर-सागर; २-१८२
खीलओ पु. (कीलकः) खीला, खूंटा; खूंटी; १-१८१

खु अ. (खलु) निश्चय, वितर्क, संदेह, संभावना, आश्चर्य आदि अर्थों में; २-१९८ ।
खुज्जो वि. (कुब्जः) कूबड़ा, वामन; १-१८१ ।
खुड्डिओ वि. पुं. (खण्डितः) त्रुटित, खंडित, विच्छिन्न; १-५३ ।
खुड्डओ वि. (क्षुल्लकः) लघु, छोटा, नीच, अधम, दुष्ट;
खे न. (खे) आकाश में; गगन में; १-१८७ ।
खेडओ पुं० (क्ष्वेडकः) विष, जहर; २-६ ।
खेडओ वि. (स्फेटिकः) नाशक, नाश-कर्ता; २-६ ।
खेडिओ पुं. वि. (स्फेटिकः) नाशवाला; नश्वर; २-६ ।
खेड्डं न. (खेलम्) क्रीड़ा, खेल, तमाशा, मजाक; २-१७४ ।
खोडओ पु. (स्फोटकः) फोड़ा, फुनसी; २-६ ।
पु. (क्ष्वोटकः) नख से चर्म का निष्पीडन; २-६

(ग)

गई स्त्री. (गतिः) गतिः गमन, चाल; २-१९५ ।
गईए स्त्री. (गत्याः) गति से, गति का; २-१८४ ।
गउआ स्त्री. (गवया) मादा रोझ; रोझड़ी; पशु-विशेष; १-५४, १५८ ।
गउओ पु. (गवयः) रोझ; पशु-विशेष; १-५४, १५८; २-१७४ ।
गउडो पुं. (गौड़ः) गौड़ देश का निवासी; बंगाल का पूर्वी भाग; १-१६२; २०२ ।
गउरवं न. (गौरवम्) अभिमान, गौरव, प्रभाव; १-१६३
गउरि स्त्री. (गौरि) स्त्री; शिवजी की पत्नी; १-१६३
गओ पुं. (गजः) हाथी; गज-सुकमाल मुनि; १-१७७
गग्गरं वि. (गद्गदम्) आनन्द अथवा दुःख से अव्यक्त कथन; १-२१९ ।
गज्जन्ति अक. (गर्जन्ति) वे गर्जना करते हैं; १-१८७ ।
गड्डहो पुं. (गर्दभः) गदहा; गधा; २-३७ ।
गड्डा स्त्री. (गर्ता) गड्ढा १-३५, २-३५ ।
गड्डो पुं. (गर्तः) गड्ढा (गलगंड) रोग-विशेष; १-३५, २-३५ ।
गण्ठी स्त्री. (ग्रन्थिः) गांठ; जोड़; बांस आदि की गिरह; पर्व; १-३५ ।
गद्दहो पुं. (गर्दभः) गदहा; गधा; २-३७ ।
गन्धउडिं स्त्री. (गन्ध पुटीम्) गन्ध की फैलावट; १-८

गन्धो पुं. (गन्धः) गन्ध, नाक से ग्रहण करने योग्य; १-१७७ ।
गब्भिणो वि. (गर्भितः) गर्भ-युक्त; १-२०८ ।
गम् सक. (गच्छ्) जाना; समझना; जानना;
गच्छइ सक. (गच्छति) वह जाता है; १-१८७ ।
गओ वि. (गतः) गया हुआ; समझा हुआ; १-२०९
गयं वि. (गतम्) गया हुआ; समझा हुआ; १-९७
अवगयं वि. (अपगतम्) सरका हुआ; हटा हुआ; बीता हुआ; १-१७२ ।
आओ वि. (आगतः) आया हुआ; १-२६८ ।
आगओ वि. (आगतः) आया हुआ १-२०९; २६८ ।
उग्गयं वि. (उद्गतम् उत्पत्ति को प्राप्त हुआ, १-१२ ।
गमिर वि. (गमन शील) जाने वाला; जाने के स्वभाव वाला; २-१४५ ।
गम्भीरिअं न. (गाम्भीर्यम्) गम्भीरता; गम्भीरपना; २-१०७ ।
गय वि. (गतः) गया हुआ; बीता हुआ, १-९७ ।
गयणं न. (गगनम्) गगन; आकाश; २-१६४ ।
गयणे न. (गगने) आकाश में १-८ ।
गयणयम्मि न. (गगनके) आकाश में; २-१६४ ।
गया स्त्री. (गदा) लोहे का मुद्गर या लाठी; अस्त्र-विशेष; १-१७७, १८० ।
गरिमा पुं. (गरिमा) एक प्रकार की लब्धि विशेष; गुरुता; गौरव; १-३५ ।
गरिहा स्त्री. (गर्हा) निन्दा, घृणा; जुगुप्सा; २-१०४
गरुई स्त्री. (गुर्वी) बड़ी; ज्येष्ठा; महती; १-१०७ ।
गरुओ वि. (गुरुकः) गुरु; बड़ा; महान; १-१०९ ।
गरुलो पुं. (गरुडः) गरुड, पक्षी विशेष; १-२०२ ।
गरुवी स्त्री. (गुर्वी) बड़ी; ज्येष्ठा; महती; २-११३ ।
गलोई स्त्री. (गडूचीः) लता विशेष; गिलोय; १-१०७; १२४ ।
गहवई पुं० (गृहपतिः) घर का स्वामी; ग्रहपति, चन्द्रमा; २-१४४ ।
गव्विरो वि. (गर्ववान्) अहंकारी; घमंडी; २-१५९ ।
गहो पुं. (ग्रहः) नक्षत्र-विशेष; २-७९ ।
गहिअं वि. (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ; स्वीकृत; १-१०१ ।

गहिरं वि. (गभीरम्) गहरा; गम्भीर; १-१०१।
गहीरिअं न. (गाम्भीर्यम्) गहराई; गम्भीरपना; २-१०७
गाई स्त्री. (गौः) गाय; १-१५८।
गाओ पुं. स्त्री. (गौः) गाय और बैल; १-१५८।
गामिल्लिआ वि. (ग्रामेयकाः) गांव के निवासी; २-१६३
गारवं (गौरवम्) अभिमान, गौरव, प्रभाव; १-१६३।
गावी, गावीओ स्त्री. (गावः) गाय; २-१७४।
गिट्ठी स्त्री. (गृष्टिः) एक बार ब्याई हुई गाय आदि
१-२६।
गिण्ठी स्त्री. (गृष्टिः) एकवार ब्याई हुई गाय आदि;
१-२६; १२८।
गिद्धी स्त्री. (गृद्धिः) आसक्ति, लम्पटता; १-१२८।
गिम्हो पुं०. (ग्रीष्मः) गरमी का समय; ग्रीष्म-ऋतु;
१-७४।
गिरा स्त्री. (गीः) वाणी; १-१६।
गिलाइ अक. (ग्लायति) वह म्लान होता है; वह
जम्हाई लेता है; २-१०६।
गिलाणं न. वि. (ग्लानम्) उदासीन बीमार; थका
हुआ; २-१०६।
गुज्झं वि. (गुह्यम्) गोपनीय; छिपाने योग्य; २-२६;
१२४।
गुच्छं न. (गुच्छम्) गुच्छा; १-२६।
गुडो पुं० (गुडः) गुड, लाल शक्कर; १-२०२।
गुणा पुं. न. (गुणाः) गुण, पर्याय, स्वभाव, धर्म;
१-११, ३४।
गुणाइं पुं. न. (गुणाः) गुण, पर्याय, स्वभाव, धर्म;
१-३४।
गुत्तो वि. (गुप्तः) गुप्त; प्रच्छन्न; छिपा हुआ; २-७७
गुप् अक. ,, ,, प्रकाशित होना चमकना।
गोवइ अक. (गोपयति) वह प्रकाशित होता है;
वह चमकता है; १-२३१।
गुत्तो वि. (गुप्तः) गुप्त; प्रच्छन्न; छिपा हुआ; २-७७
जुगुच्छइ सक. (जुगुप्सते) वह बचाता है, वह
छिपाता है; वह निन्दा करता है;
२-२१।
गुप्फं न. (गुल्फम्) पैर की गांठ; फीली; २-९०।
गुभइ सक. (गुफति) वह गूंथता है; वह गांठता है;
१-२३६।

गुम्फइ सक. (गुम्फति) वह गूंथता है; वह गांठता है;
१-२३६।
गुय्हं वि. (गुह्यम्) गोपनीय; छिपाने योग्य; २-१२४
गुरू पुं. (गुरुः) गुरु; पूज्य; बड़ा; १-१०९।
गुरुल्लावा पुं. (गुरूल्लापाः) गुरु को उक्तियां; १-८४।
गुलो पुं. (गुड) गुड; लाल शक्कर; १-२०२।
गुहइ सक (गोहति) वह छिपाता है; वह ढांकता है;
१-२३६।
गुहा स्त्री. (गुहा) गुफा; कन्दरा; १-४२।
गूढोअर न. (गूढोदरम्) पेट के आन्तरिक भाग में रहा
हुआ; १-६।
गेज्झं वि. (ग्राह्यम्) ग्रहण करने के योग्य; १-७८।
गेण्हइ सक. (गृह्णाति) वह ग्रहण करता है; २-२१७
गेन्दुअं न. (कन्दुकम्) गेंद; १-५७, १८२।
गोआवरी स्त्री. (गोदावरी) एक नदी का नाम; २-१७४
गोट्ठी स्त्री. (गोष्ठीः) मण्डली; समान वय वालों की
सभा; २-७७।
गोणी स्त्री. (गौः) गाय; २-१७४।
गोरिहरं, गोरीहरं न. (गौरी-गृहम्) सुन्दर स्त्री का घर;
पीहर; १-४।
गोला स्त्री. (गोदा) नाम विशेष; २-१९४।
गोले स्त्री. (हे गोदे !) नाम विशेष; (देशज);
२-१९४।
गामि वि. (गामी) जाने वाला; २-१५।
गेण्हइ सक. (गृह्णाति) वह ग्रहण करता है; २-२१७
गेण्ह सक. (गृहाण) ग्रहण करो; लेओ; २-१९७।
घेत्तूण सम्ब. कृद. (गृहीत्वा) ग्रहण करके;
२-१४६।
गहिअं वि. भूत कृद. (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ;
१-१०१।
गेज्झं वि. (ग्राह्यम्) ग्रहण करने के योग्य; १-७८
संगहिआ वि. (संगृहीताः) संग्रह किये हुए;
इकट्ठे किये हुए; २-१९८।

(घ)

घट्ठा वि. (घृष्टाः) घिसे हुए; २-१७४।
घट्ठो वि. (घृष्टः) घिसा हुआ; १-१२६।
घडइ सक. (घटति) वह करता है; वह बनाता है;
१-१९५।

घडो पुं० (घटः) घड़ा, कुम्भ; कलश; १-१९५ ।

घणो पुं० (घनः) मेघ, बादल; १-१७२, १८७ ।

घण्टा स्त्री. (घण्टा) घण्टा; कांस्य-निर्मित वाद्य-विशेष १-१९५ ।

घयं न. (घृतम्) घी, घृत; १-१२६ ।

घरो पुं० (गृह) घर; मकान; २-१४४ ।

घर-सामी पुं० (गृह-स्वामी) घर का मालिक; २-१४४

घायणो पुं० दे. (गायनः) गायक, गवैया; २-१७४ ।

घिणा स्त्री. (घृणा) घृणा; नफरत; १-१२८ ।

घुसिणं न. (घुसृणम्) कुङ्कुम, केशर; १-१२८ ।

घेत्तूणं संबं. कृद. (गृहीत्वा) ग्रहण करके; २-१४६ ।

घोसइ सक. (घोषयति) वह घोषणा करता है; वह घोषता है; १-२६० ।

(च)

च अ० (च) और; १-२४ ।

चइत्तं न. (चैत्यम्) चिता पर बना हुआ स्मारक; १-१५१; २-१३ ।

चइत्तो पु० (चैत्रः) चैत्र-मास; १-१५२ ।

चउ वि. (चतुर्) चार; संख्या-विशेष; १-१७१ ।

चउग्गुणो वि. (चतुर्गुणः) चार-गुण; १-१७१ ।

चउट्ठो वि. (चतुर्थः) चौथा; २-३३ ।

चउत्थो वि. ,, ,, १-१७१, २-३३ ।

चउत्थी वि. (चतुर्थी) चौथी; १-१७१ ।

चउद्दसी वि. (चतुर्दशी) चौदश तिथि; १-१७१ ।

चउद्दह वि. (चतुर्दश) चौदह; १-१७१; २१९ ।

चउव्वारो वि. (चतुर्वारः) चार बार; १-१७१ ।

चक्कं न. (चक्रम्) गाड़ी का पहिया; २-७९ ।

चक्काओ पु. (चक्रवाकः) चकवा; पक्षी विशेष; १-८ ।

चक्खू पुं. न. (चक्षुः) आँख १-३३ ।

चक्खूइं पुं. न. (चक्षूंषि) आँखें; १-३३ ।

चच्चरं न. (चत्वरम्) चौहट्टा; चौरास्ता, चौक; २-१२

चच्चिक्कं देशज वि. मंडित; १-७४ ।

चड्डू पुं० (चटुः) खुशामद, प्रिय वचन; १-६७ ।

चन्दओ पुं. (चन्द्रः) चन्द्रमा; २-१६४ ।

चन्दणं न. (चन्दनम्) चन्दन का पेड़, चन्दन की लकड़ी २-१८२ ।

चन्दिमा स्त्री. (चन्द्रिका) चन्द्र की प्रभा; ज्योत्स्ना; १-१८५ ।

चन्दो, चंदो पुं. (चन्द्रः) चन्द्रमा; चाँद; १-३०, २-८०, १६४ ।

चन्द्रो पुं. (चन्द्र) चन्द्रमा, चाँद; २-८० ।

चमरो पुं. (चामरः) चंवर; १-६७ ।

चम्मं न. (चर्म) चमड़ा; १-३२ ।

चरणं न. (चरणं) संयम, चारित्र, व्रत-नियम; १-२५४

चलणो पुं. (चरणः) पांव, पैर; १-२५४ ।

चलणे पुं. (चरणे) पैर में; २-१८० ।

चविडा स्त्री. (चपेटा) तमाचा, थप्पड़; १-१४६; १९८

चविला ,, ,, ,, ,, १-१९८

चवेडी ,, ,, ,, ,, १-१४६ ।

चाउँण्डा स्त्री. (चामुण्डा) चामुण्डा देवी; १-१७८ ।

चाउरन्तं वि. न. (चतुरन्तम्) चार सीमाओं वाला; १-४४

चाडू पुं. न. (चाटुः) खुशामद; प्रिय वाक्य; १-६७

चामरो पु. (चामरः) चंवर; १-६७ ।

चिअ अ. (एव) ही; निश्चय वाचक अव्यय; २-९९; १८४, १८७ ।

चिइच्छइ सक. (चिकित्सति) वह शंका करता है; २-२१

चिञ्च सक. (मण्डम्) विभूषित करना; अलंकृत करना; २-१२९ ।

चिण्हं न. (चिह्नम्) निशानी; लाञ्छन; चिह्न; २-५० ।

चिन्तिअं वि. (चिंतितम्) जिसकी चिन्ता की गई हो वह; २-१९० ।

चिन्ता स्त्री. (चिन्ता) विचार, शोक; १-८५ ।

चिन्धं न. (चिह्नम्) निशानी, लाञ्छन, चिह्न; २-५०

चिलाओ पुं. (किरातः) भील एक जंगली जाति; १-१८३; २५४ ।

चिहुरो पुं (चिकुरः) केश, बाल; १-१८६ ।

ची-वन्दणं न. (चैत्य-वन्दनम) स्मारक विशेष की वन्दना; १-१५१ ।

चुअइ अक. (श्च्योतते) वह झरता है, वह टपकता है; २-७७ ।

चुच्छं वि. (तुच्छम्) अल्प, थोड़ा, हलका, हीन, जघन्य नगण्य; १-२०४ ।

चुण्णं न. (चूर्णम्) पीसा हुआ बारीक पदार्थ; चूर्ण; २-३४ ।

चुण्णो पुं. न० (चूर्णः) पीसा हुआ बारीक पदार्थ; चूर्ण; १-८४ ।

चेअ अ. (एव) ही; १-७; २-९९, १८४, २०९ ।

चेइअं न. (चैत्यम्) चिता पर बनाया हुआ स्मारक विशेष; १-१५१; २-१०७।

चेत्तो पुं० (चैत्रः) चैत्र-मास; १-१५२।

चोग्गुणो वि. (चतुर्गुणः) चार-गुणा वाला; १-१७१।

चोत्थो वि. (चतुर्थः) चौथा; १-१७१।

चोत्थी वि० स्त्री० (चतुर्थी) चौथी; तिथि-विशेष; १-१७१।

चोद्दसी स्त्री. (चतुर्दशी) चौदहवीं; तिथि-विशेष; १-१७१।

चोद्दह वि. (चतुर्दश) चौदह; संख्या-विशेष; १-१७१

चोरिअं न. (चौर्यम्) चोर-कर्म; अपहरण; १-३५; २-१०७।

चोरिआ स्त्री. (चौरिका) चोरी, अपहरण; १-३५।

चोरो पुं० (चोरः) तस्कर; दूसरे का धन आदि चुराने वाला चोर; १-१७७।

चोव्वारो पुं० वि० (चतुर्वारः) चार दरवाजा वाला; १-१७१।

च्चअ अ० (एव) ही; २-१८४।

च्चिअ अ. (एव) ही; १-८; २-९९; १८४, १९५, १९७।

च्चेअ अ. (एव) ही निश्चय वाचक अव्यय; २-९९, १८४।

(छ)

छइअं वि० (स्थगितम्) आवृत, आच्छादित, तिरोहित; २-१७।

छउमं न. (छद्मम्) छल, बहाना, कपट, शठता, माया; २-११२।

छट्ठी स्त्री. (षष्ठी) छट्ठी; संबंध-सूचक विभक्ति; १-२६५।

छट्ठो पुं० वि. (षष्ठः) छट्ठा; १-२६५; २-७७।

छड्डुइ सक. (मुञ्चति) वह छोड़ता है; वह वमन करता है; २-३६

छणो पुं० (क्षणः) उत्सव; २-२०।

छत्तवण्णो पुं. (सप्तपर्णः) वृक्ष विशेष; १-४९।

छत्तिवण्णो पुं. ,, ,, ,, १-४९; २६५।

छड्डी दे. स्त्री. (छर्दिः) शय्या; बिछौना, २-३६।

छन्दं न. (छन्दस्) कविता; पद्य; १-३३।

छन्दो पुं. ,, ,, ,, ,,

छप्पओ पुं. (षट्पदः) भ्रमर, भँवरा; १-२६५; २-७७

छमा स्त्री. (क्षमा) क्षमा; पृथिवी; २-१८, १०१।

छमी स्त्री. (शमी) वृक्ष-विशेष; ऐसा वृक्ष जिसके आन्तरिक भाग में आग हो; १-२६५।

छम्मं न. (छद्मम्) छल; बहाना, कपट; २-११२।

छंमुहो पुं० (षण्मुखः) स्कन्द; कार्तिकेय; १-२५।

छम्मुहो ,, ,, ,, ,, १-२६५।

छयं न. (क्षतम्) व्रण, घाव, (वि०) पीड़ित, व्रणित; २-१७।

छाइल्लो वि० (छायावान्) छाया वाला, कान्ति-युक्त; २-१५९।

छाया स्त्री. (छाया) छाया; कान्ति, प्रतिबिम्ब, परछाई; १-२४९, २-२०३।

छारो पुं. (क्षारः) खारा, सज्जीखार, गुड़; भस्म, मात्सर्य; २-१७।

छाली स्त्री. (छागी) बकरी; १-१९१।

छालो पुं० (छागः) बकरा; १-१९१।

छावो पुं. (शावः) बालक, शिशु; १-२६५।

छाही स्त्री. (छाया) कान्ति, प्रतिबिम्ब, परछाई; १-२४९।

छिक्को दे. (छुप्तः) स्पृष्ट; छूआ हुआ; २-१३८।

छिछि दे अ. (धिक्-धिक्) छीछी; धिक्-धिक्; धिक्कार; २-१७४।

छिछ्छई दे. स्त्री. (पुंश्चली) असती स्त्री कुलटा, छिनाल; २-१७४।

छित्तं वि० (क्षिप्तम्) फेंका हुआ; २-२०४।

अच्छिन्न वि. (अच्छिन्न) नहीं कटा हुआ; २-१९८।

छिरा स्त्री. (शिरा) नस, नाड़ी, रग; १-२६६।

छिहा स्त्री. (स्पृहा) स्पृहा, अभिलाषा; १-१२८; २-२३।

छीअं न. स्त्री. (क्षुतम्) छींक; १-११२; २-१७।

छीणं वि. (क्षीणम्) क्षय-प्राप्त; कृश, दुर्बल; २-३

छीरं न० (क्षीरम्) दूध, जल; २-१७।

छुच्छं वि. (तुच्छम्) अल्प, थोड़ा, हीन, जघन्य, नगण्य; १-२०४।

छुण्णो वि. (क्षुण्णः) चूर चूर किया हुआ; विनाशित; अभ्यस्त; २-१७।

छुत्तो दे. वि. (छुप्तः) स्पृष्ट; छूआ हुआ; २-१३८
छुरो पुं० (क्षुरः) छुरा, नाई का अस्तूरा, पशु का नख, बाण; २-१७ ।
छुहा स्त्री. (क्षुध्) भूख; (सुधा) = अमृत; १-१७, २६५; २-१७ ।
छूढो वि. (क्षिप्तः) क्षिप्त; फेंका हुआ; प्रेरित; २-९२, १२७ ।
छूढं वि. (क्षिप्तम्) फेंका हुआ; प्रेरित; २-१९ ।
छेओ पुं० (छेद) नाश; १-७ ।
छेत्तं न. (क्षेत्रम्) आकाश, खेत, देश, आदि; २-१७

(ज)

जइ अ. (यदि) यदि, अगर; १-४०, २-२०४ ।
जइमा अ. सर्व. (यदि इमा) जिस समय में यह; १-४०
जइहं अ. सर्व. (यदि अहम्) जिस समय में मैं; यदि मैं; १-४० ।
जई पुं. (यतिः) यति, साधु, जितेन्द्रिय, संयमी; १-१७७ ।
जउँणा स्त्री. (यमुना) नदी-विशेष यमुना; १-१७८ ।
जउँणायडं-जउँणयडं न. (यमुना-तटम्) यमुना का किनारा; १-४ ।
जओ अ. (यतः) क्योंकि, कारण कि; १-२०९
जक्खा पुं (यक्षाः) व्यन्तर देवों की एक जाति; २-८९, ९० ।
जज्जो वि. (जय्यः) जो जीता जा सके वह; जिस पर विजय प्राप्त की जा सके; २-२४ ।
जट्टो पुं (जर्तः) देश-विशेष; उस देश का निवासी; २-३० ।
जडालो वि. (जटिलो-जटा युक्तः) जटा युक्त; लम्बे लम्बे केश धारी; २-१५९ ।
जडिलो वि. (जटिलः) जटावाला; जटाधारी; १-१९४ ।
जढरं, जढलं न. (जठरम्) पेट, उदर; १-२५४ ।
जणा पुं. (जनाः) अनेक मनुष्य; २-११४ ।
जणब्भहिआ वि. (जनाभ्यधिकाः) मनुष्य से भी अधिक; २-२०४ ।
जण्हू पुं. (जह्नुः) भरत-वंशीय एक राजा; २-७५ ।
जत्तो अ. (यतः) क्यों कि, कारण कि; जिससे, जहाँ से; २-१६० ।
जत्थ अ. (यत्र) जहां पर, जिसमें; २-१६१ ।
जदो अ. (यतः) क्यों कि, कारण कि जिससे, जहां से; २-१६० ।
जं सर्व. (यत्) जो; १-२४, ४२; २-१८४; २०६
जम (जमो) पुं० (यमः) यमराज; लोक-पाल देव-विशेष; १-२४५ ।
जमलं न. (यमलम्) जोड़ा; युगल; २-१७३ ।
जम्पि-अवसाणे न. (जल्पितावसाने) कह चुकने पर; कथन समाप्ति पर; १-६१ ।
जम्पिरो वि. (जल्पन-शीलः) बोलने वाला, वाचक, वाचाल; २-१४५ ।
जम्मणं न. (जन्म) जन्म, उत्पत्ति, उत्पात; २-१७४
जम्मो न. (जन्म) जन्म १-११, ३२; २-६१ ।
जर स्त्री. (जरा) बुढ़ापा; १-१०३ ।
जलं अ. (जलं) पानी; १-२३ ।
जलेण न. (जलेन) पानी से; २-१५५ ।
जलचरो, जलयरो पुं. (जल-चरः) जल निवासी जन्तु; १-१७७ ।
जलहरो पुं० (जल-धरः) मेघ, बादल; २-१९८ ।
जवणिज्जं-जवणीअं वि. (यापनीयम्) गमन करवाने योग्य; व्यवस्था करवाने योग्य; १-२४८
जसो पुं० (यशस्) यश, कीर्ति १-११, ३२, २४५
जह अ. (यथा) जैसे, १-६७; २-२०४ ।
जह अ. (यत्र) जहां पर, जिसमें २-१६१ ।
जहणं न. (जघनम्) जंघा; कमर के नीचे का भाग;
जहा अ. (यथा) जैसे; १-६७ ।
जहि अ. (यत्र) जहां पर; २-१६१ ।
जहिट्ठिलो पुं. (युधिष्ठिरः) पाण्डु राजा का ज्येष्ठ पुत्र; युधिष्ठिर; १-९६, १०७ ।
जहुट्ठिलो पुं. (युधिष्ठिरः) युधिष्ठिर; १-९६, १०७, २५४ ।
जा अ. (यावत्) जब तक; १-२७१ ।
जाइ क्रिया. (याति) वह जाता है; १-२४५ ।
जाणं न. (ज्ञानं) ज्ञान; २-८३ ।
जामइल्लो पुं० (यामवान्) पहरेदार; सिपाही विशेष; २-१५९ ।
जामाउओ पुं० (जामातृकः) जामाता; लड़की का पति; १-१३१ ।
जारिसो वि. (यादृशः) जैसा, जिस तरह का; १-१४२

जारो पु० (जारः) व्यभिचारी; उपपति; १-१७७
जाला अ. (यदा) जिस समय में; १-२६९ ।
जाव अ. (यावत्) जब तक; १-११, २७१ ।
निज्जिअ वि (निर्जित) जीत लिया है; २-१६४
जिअइ-जिअउ क्रिया (जीवति) वह जीवित होता है; (जीवतु) वह जीवित रहे; १-१०१ ।
जिअन्तस्स वि. (जीवतस्य) जीवित होते हुए का ३-१८०
जिण-धम्मो पुं० (जिन-धर्मः) तीर्थंकर द्वारा प्ररूपित धर्म; १-१८७ ।
जिण्णे वि. (जीर्णे) पचा हुआ होने पर; पुराना होने पर; १-१०२ ।
जिण्हू पुं० (जिष्णुः) जीतने वाला; विजयी; विष्णु, सूर्य, इन्द्र; २-७५ ।
जित्तिअं वि. (यावत्) जितना, २-१५६ ।
जिब्भा स्त्री. (जिह्वा) जीभ रसना; २-५७ ।
जीअं न. (जीवितम्) जिन्दगी; जीवन; १-२७१; २-२०४ ।
जीआ स्त्री. (ज्या) धनुष की डोर; पृथिवी, माता, २-११५ ।
जीव्-जिअइ अक. (जीवति) वह जीता है; १-१०१
जिअइ-जिअउ अक. (जीवति), (जीवतु) वह जीता है; वह जीता रहे; १-१०१ ।
जीविअं न. (जीवितम्) जिन्दगी, जीवन; १-२७१ ।
जीहा स्त्री. (जिह्वा) जीभ, रसना; १-९२; २-५७ ।
जुई स्त्री. (द्युतिः) कान्ति, तेज, प्रकाश, चमक; २-२४
जुगुच्छइ सक. (जुगुप्सति) वह घृणा करता है, वह निन्दा करता है; २-२१ ।
जुग्गं न. (युग्मम्) युगल, द्वन्द्व, उभय; २-६२, ७८ ।
जुण्ण वि. (जीर्ण) जूना, पुराना; १-१०२
जुम्मं न. (युग्मम्) युगल, दोनों, उभय, २-६२ ।
जुम्ह सर्व. (युष्मद्) तू अथवा तुम वाचक सर्व नाम; १-२४६ ।
जुवइ-अणो पुं० (युवति-जनः) जवान स्त्री-पुरुष; १-४
जूरिहिइ अक. (खेत्स्यति) वह खेद करेगी; २-२०४
जूरन्तीए कृद. (खेदन्त्याः) खेद करती हुई का; २-१९३ ।
जूरणे न. (जूरणे-खेदे) झूरना करने पर; खेद प्रकट करने पर; २-१९३ ।

जे अ. (पाद-पूरणार्थम्) छंद की पूर्ति अर्थ में प्रयोग किया जाने वाला अव्यय; २-२१७ ।
जेट्ठयरो वि. (ज्येष्ठतर;) अपेक्षाकृत अधिक बड़ा; २-१७२ ।
जेण सर्व. पुं० (येन) जिससे, जिसके द्वारा; १-३६; २-१८३ ।
जेत्तिअं, जेत्तिलं, जेद्दहं वि. (यावत्) जितना; २-१५७
जा सर्व. स्त्री. (या) जो (स्त्री); १-२७१ ।
जं सर्व. न. (यत्) जो; १-२४, ४२; २-१८४, २०६ ।
जं सर्व. पुं० (यम्) जिस को; ३-३३ ।
जं अ. (यत्) क्योंकि कारण कि; सम्बंध-सूचक अव्यय; १-२४ ।
जोओ पुं० (द्योतः) प्रकाश-शील; २-२४ ।
जोण्हा स्त्री. (ज्योत्स्नावान्) चन्द्र प्रकाश; २-७५ ।
जोण्हालो वि. (ज्योत्स्नावान्) चांदनी के प्रकाश सहित; २-१५९ ।
जोव्वणं न. (यौवनम्) जवानी; तारुण्य; १-१५९; २-९८
णच्चा कृद. (ज्ञात्वा) जान करके; २-१५ ।
विण्णायं वि. (विज्ञातं) भली प्रकार से जाना हुआ; २-१९९ ।

(झ)

झओ पुं० (ध्वजः) ध्वजा; पताका २-२७ ।
झडिलो वि. (जटिलः) जटा वाला; तापस; १-१९४
झत्ति अ. (झटिति) झट से ऐसा; १-४२ ।
झसुरं दे. न. (ताम्बूलम्) पान; २-१७४ ।
झाणं न. पुं० (ध्यानम्) ध्यान, चिन्ता, विचार, उत्कण्ठा-पूर्वक स्मरण; २-२६ ।
झिज्जइ क्रिया. (क्षीयते) वह क्षीण होता है; वह क्षय होता है; २-३ ।
झीणं वि. (क्षीणम्) क्षय-प्राप्त; विनष्ट; विच्छिन्न, कृश; २-३ ।
झुणी स्त्री. (ध्वनिः) ध्वनि, आवाज; १-५२ ।

(ट)

टक्को पुं० (टक्कः) देश-विशेष; १-१९५ ।
टगरो पुं. (तगरः) वृक्ष-विशेष; तगर का वृक्ष; १-२०५ ।

डसरी पुं. (असरः) टसर; एक प्रकार का सूत; १-२०५।

टूवरो पुं. (तूवरः) जिसके दाढ़ी-मूंछ न उगी हो, ऐसा चपरासी; १-२०५।

(ठ)

ठड्ढो वि. (स्तब्ध.) हक्का बक्का; कुण्ठित, जड़; २-३९

ठम्भिज्जइ क्रि. (स्तम्भ्यते) उससे हक्का बक्का हुआ जाता है; २-९।

ठम्भो पुं. (स्तम्भ) खम्भा; थम्भा; स्तम्भ; २-९।

ठविओ ठाविओ वि. (स्थापितः) स्थापना किया हुआ १-६७

ठीणं न. (स्त्यानं) आलस्य; प्रतिध्वनि; १-७४; २-३३।

(ड)

डक्को वि. (दष्टः) डसा हुआ; दाँत से काटा हुआ; २-२,८९।

डण्डो पुं० (दण्डः) जीव-हिंसा; लाठी, सजा; १-२१७

डट्ठो वि. (दष्टः) जिसको दांत से काटा गया हो वह; १-२१७।

डड्ढो वि. (दग्धः) जलाया हुआ; १-२१७।

डब्भो पुं० (दर्भः) तृण-विशेष; कुश; १-२१७।

डम्भो पुं० (दम्भः) माया, कपट; १-२१७।

डरो पुं० (दरः) भय, डर; १-२१७।

डसइ सक. (दशति) वह काटता है; १-२१८।

डसणं न. (दशनम्) दंश, काटना; १-२१७।

डहइ सक. (दहति) वह जलाता है; १-२१८।

डाहो पुं० (दाहः) ताप, जलन, गरमी, रोग-विशेष; १-२१७।

डिम्भो पुं० (डिम्भः) बालक, बच्चा, शिशु; १-२०२

डोला स्त्री (दोला) झूला, हिंडोला; १-२१७।

डोहलो पुं० (दोहदः) गर्भिणी स्त्री की अभिलाषा विशेष; १-२१७।

(ण)

ण अ. न. नहीं; मत; २-१८०, १९८।

णइ अ. (अव-धारण-अर्थे) निश्चय वाचक अर्थ में; २-१८४।

णई स्त्री. (नदी) नदी, जल-धारा; १-२२९।

णओ वि. (नतः) नमा हुआ; प्रणत; झुका हुआ; २-१८०।

णङ्गलं न. (लांगलम्) हल; कृषि-औजार २-२५६।

णङ्गूलं न. (लांगूलम्) पूंछ; १-२५६।

णच्चा कृद (ज्ञात्वा) जान करके; २-१५।

णडं न. (नडम्) तृण-विशेष; भीतर से पोला, बाण के आकार का घास; १-२०२।

णडालं न. (ललाटम्) ललाट; भाल, कपाल; १-४७, २५७; २-१२३।

णरो पुं० (नरः) मनुष्य; पुरुष; १-२२९।

णलं न. (नडम्) तृण-विशेष; १-२०२।

णलाडं न. (ललाटम्) भाल, कपाल; २-१२३।

णवर अ. (केवलम्) केवल; फक्त; २-१८७, १९८।

णवरं अ. (केवलम्) केवल, फक्त; २-१९८, २०४।

णवरि अ (आनन्तर्य-अर्थे) अनन्तर, बाद में; २-१८८

णवि अ (वैपरीत्य-अर्थे) विपरीतता-सूचक, निषेध-अर्थक; २-१७८।

णाइं अ. (नञर्थे) नहीं अर्थक अव्यय; २-१९०।

णाडी स्त्री. (नाडी) नाड़ी, नस, सिरा; १-२०२।

णाणं न. (ज्ञानम्) ज्ञान, बोध, चैतन्य, बुद्धि; २-४२, ८३।

णामुक्कसिअं दे. (कार्यम्) कार्य, काम, काज; २-१७४।

णारीओ स्त्री. (नार्यः) नारियाँ; १-८।

णाली स्त्री. (नाडी) नाड़ी, नस, सिरा; १-२०२।

णाहलो पु. (लाहलः) म्लेच्छ पुरुषों की एक जाति विशेष; १-२५६।

णिअम्बो पु. (नितम्ब) कमर के नीचे का पार्श्व वर्ती भाग; १-४।

णिच्चलो वि. (निश्चलः) स्थिर, दृढ़, अचल; २-७७।

णिडालं न. (ललाटम्) ललाट; १-४७, २५७।

णिल्लज्जो वि. (निर्लज्ज) लज्जा रहित; २-२०२।

णिव्वडन्ति अक. (भवन्ति) होते है; २-१८७।

णीसहेहिं वि. (निः सहैः) मन्दों से, अशक्तों से; २-१७९

णुमज्जइ अक. (निमज्जति) वह डूबता है; १-९४।

णुमण्णो वि. (निमग्नः) डूबा हुआ; १-९४, १७४।

णेअं कृ. (ज्ञेयम्) जानने योग्य; २-१९३।

णेड्डं न. (नीडम्) घोंसला; २-९९।

ण्हाविओ पु. (नापितः) नाई, हजाम; १-२३० ।

(त)

तं अ. (तत्) वाक्य-आरंभक अव्यय विशेष; १-२४, ४१; २-९९, १७६, १८४, १९८ ।
तं पु. सर्व. (तम्) उसको; १-७ ।
तं न. सर्व. (तत्) वह, उसको; १-२४, ४१; २-९९, १७६, १८४, १९८ ।
तं स्त्री. सर्व. (ताम्) उसको; २-१९८ ।
तेण सर्व. (तेन) उससे १-३३; २-१८३, १८६, २०४
तीए सर्व. स्त्री. (तस्यै) उसके लिये; २-१९३ ।
ते सर्व. (ते) वे; १-२६९; २-१८४ ।
तइअं वि. (तृतीयम्) तीसरा; १-१०१ ।
तओ अ. (ततः) अ. इसके बाद; १-२०९ ।
तंसं वि. न. (त्र्यस्रम्) विशेष, तीन कोना वाला; १-२६; २-९२ ।
तक्करो पुं० (तस्करः) चोर; २-४ ।
तग्गुणा पुं० (तद्गुणाः) वे गुण; १-११ ।
तच्चं न. (तथ्यम्) सत्य, सच्चाई; २-२१ ।
तट्ठं वि. (त्रस्तम्) डरा हुआ; २-१३६ ।
तडी स्त्री. (तटी) किनारा; १-२०२ ।
तणं न. (तृणम्) तिनका, घास; १-१२६ ।
तणुवी स्त्री. (तन्वी) ईषत् प्राग्-भारा नामक पृथ्वी; २-११३ ।
तत्तिल्ले दे. वि. (तत्परे) तत्पर; २-२०३ ।
तत्तो अ. (ततः) उससे, उस कारण से बाद में; २-१६० ।
तत्तो वि. (तप्तः) गरम किया हुआ २-१०५ ।
तत्थ अ. (तत्र) वहाँ, उसमें; २-१६१ ।
तत्थं वि. (त्रस्तम्) डरा हुआ; २-१३६ ।
तदो अ. (ततः) उससे, उस कारण से, बाद में; २-१६० ।
तद्दिअस दे. न. (तद्दिवस) प्रतिदिन, हर रोज; २-१७४
तन्तु पुं० (तन्तु) सूत, धागा; १-२३८ ।
तप्-तव् अक. (तप्) गरम होना;
तवइ अक. (तपति) वह गरम होता है; १-२३१ ।
तविओ वि. (तप्तः) तपा हुआ; २-१०५ ।
तत्तो वि. (तप्तः) तपा हुआ; गरम हुआ; २-१०५ ।
तं अ. (तत्) वाक्य के प्रारंभक अर्थ में प्रयोग किया जाने वाला अव्यय; २-१७६ ।
तमो पुं० (तमः) अन्धकार; १-११; ३२ ।
तम्बं न. (ताम्रम्) तांबा, धातु-विशेष; १-८४; २-५६ ।
तम्बिर दे. वि. (ताम्र) ताम्र-वर्ण वाला; २-५६ ।
तम्बो पुं० (ताम्र) वर्ण-विशेष; २-४५ ।
तम्बोलं न. (ताम्बूलम्) पान; १-१२४ ।
तयाणिं अ. (तदानीम्) उस समय में; १-१०१ ।
तर् अक. (शक्) समर्थ होना । सक. (तर्) तैरना
तरिउं हे. कृ. (तरितुम्) तैरने के लिये; २-१९८ ।
अवयरइ सक. (अवतरति) नीचे उतरता है; १-१७२ ।
तरणी पुं० (तरणिः) सूर्य; १-३१
तरल वि. (तरल) चञ्चल; १-७
तरु पुं० (तरुः) वृक्ष; १-१७७
तरू पुं (तरुः) वृक्ष; १-१७७ ।
तलवेण्टं-तलवोण्टं न. (ताल वृन्तम्) ताड़ का पंखा; १-६७
तलायं न. (तडागम्) तालाब, सरोवर; १-२०३ ।
तविओ वि. (तप्तः) गरम किया हुआ; २-१०५ ।
तवो पुं० (स्तवः) स्तुति, स्तवन, गुण-कीर्तन; २-४६
तह अ. (तथा) वैसे, उसी प्रकार से; १-६७, १७१
तहा अ. „ „ „ १-१६७ ।
तहि अ. (तत्र) वहाँ, उसमें; २-१६१ ।
ता अ. (तदा) तब तक; १-२७१ ।
ताओ पुं० (तातः) पिता तात; १-२०९ ।
तामरस पुं० (ताम रस) कमल, पद्म, ताम्र, स्वर्ण, धतूर के पौधा; १-६ ।
तारिसो वि. (तादृशः) वैसा उस तरह का; १-१४२
तालवेण्टं न. (ताल वृन्तम्) ताड़ का पंखा; १-६७; २-३१
तालवोण्टं न. „ „ „ १-६७; ।
ताव अ. (तावत्) तब तक, १-११, २७१; २-१९६
ति अ. (इति) इस प्रकार; १-४२ ।
तिअस पुं० (त्रिदश) देवता; २-१७६ ।
तिअसीसो पुं० (त्रिदशेश) देवेन्द्र; १-१० ।
तिक्खं न. वि. (तीक्ष्णम्) तेज तीखा, धारदार; २-८२

तिङ्गिच्छि दे. स्त्री. (?) कमल की रज; २-१७४।

तिग्गं न. (तिग्मम्) तीक्ष्ण, तेज २-६२।

तिण्हं न. वि. (तीक्ष्णम्) तीखा, तेज; २-७५, ८२। (नक्षत्र विशेष अर्थ भी है)

तित्तिअं वि. (तावत्) उतना; २-१५६।

तित्तिरो पुं० (तित्तिरः) तीतर, पक्षी विशेष; १-९०।

तित्थगरो पुं० (तीर्थंकरः) तीर्थंकर जिन; १-१७७।

तित्थं न. (तीर्थम्) तीर्थ; साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओं का समूह; १-८४, १०४; २-७२ ९०

तित्थयरो पुं० (तीर्थंकरः) तीर्थंकर, जिन; १-१७७ १८०।

तिप्पं वि. (तृप्तम्) संतुष्ट; १-१२८।

तिम्मं न. (तिग्मम्) तीक्ष्ण, तेज २-६२।

तिरिआ (आर्ष) पुं० (तिर्यक्) पशु-पक्षी आदि तिर्यंच् प्राणी; २-१४३।

तिरिच्छि पुं० (तिर्यक्) पशु-पक्षी आदि तिर्यंच् प्राणी; २-१४३।

तीसा संख्या वाचक वि. (त्रिंशत्) तीस; संख्या विशेष; १-२८, ९२

ते सर्व. (त्वया, तुभ्यम्, तव,) तुझ से, तेरे लिये, तेरा; १-३३।

तुह सर्व. (त्वम्, त्वाम्) (त्वत्, तव, त्वयि) तू, तुझ को, तुझ से, तेरा, २-१८०।

तुहं सर्व. (तव, तुभ्यम्) तुम्हारा, तेरे लिये; २-१६२

तुमे सर्व (त्वाम्, त्वया, तव, तुभ्यम्, त्वयि) तुझको, तुझसे, तेरा तेरे लिये; २-२०४।

तुच्छं वि. (तुच्छम्) अल्प, हलका, हीन, जघन्य, नगण्य; १-२०४।

तुण्हिक्को वि. (तूष्णीकः) मौन रहा हुआ; २-९९।

तुण्हिक्को, तुण्हिक्क वि. (तूष्णीकः) मौन रहा हुआ; २-९९

तुप्पं न. (घृतम्) घी, घृत; १-२००।

तुम्हारिसो वि. (युष्मादृशः) आपके जैसा, तुम्हारे जैसा; १-१४२, २४६।

तुम्हेच्चयं वि. (यौष्माकम्) आपका, तुम्हारा; २-१४९

तूणं (तूणम्) तीर रखने का पदार्थ विशेष, भाथा, तरकस; १-१२५।

तूरं न. (तूर्यम्) बाद्य, बाजा; २-६३।

तूहं न. (तीर्थम्) पवित्र स्थान; १-१०४; २-७२

तेआलीसा वि. (त्रिचत्वारिंशत्) तितालीस; २-१७४।

तेओ पु. (तेजः) तेज, कान्ति, प्रकाश; १-३२।

तेण (तेन) उससे; १-३३; २-१८३, १८६, २०४

तेत्तिअं वि. (तावत्) उतना; २-१५७।

„ तेत्तिलं वि. (तावत्) उतना; २-१५७।

तेत्तीसा संख्या वाचक विशे. (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस; १-१६५

तेद्दहं वि. (तावत्) उतना; २-१५७।

तेरह संख्या वाचक वि. (त्रयोदश) तेरह; १-१६५, २६२।

तेलोक्कं न. (त्रैलोक्यम्) तीन जगत्, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक १-१४८; २-९७।

तेल्ल न. (तैल) तेल; १-२००।

„ तेल्लं न. (तैलम्) तेल; २-९८, १५५।

ते लोक्कं न. (त्रैलोक्यम्) तीन जगत; २-९७।

तेवण्णा वि. (त्रिपञ्चाशत्) त्रेपन; २-१७४।

तेवीसा वि. (त्रयोविंशतिः) तेवीस; १ १६५।

तोणं न (तूणम्) इषुधि, भाथा, तरकस; १-१२५।

तोणीरं न. (तूणीरम्) इषुधि, भाथा, तरकस; १-१२४

तोण्डं न (तुण्डम्) मुख, मुंह; १-११६।

त्ति अ. (इति) समाप्ति, एवम्, इस प्रकार; १-४२ ९१; २-१९३।

(थ)

थणा पुं० (स्तन) थन, कुच, पयोधर; १-८४।

थणहरो पुं० (स्तन-भरः) स्तन का बोझ; १-१८७।

थम्भिज्जइ अक. (स्तम्भ्यते) उससे स्तम्भ समान हुआ जाता है; २-९।

थम्भो पुं० (स्तम्भः) खम्भा, थम्भा; २-८, ९।

थवो पुं० (स्तवः) स्तुति, स्तवन, गुण-कीर्तन; २-४६

थाणुणो पुं० (स्थाणोः) महादेव का, शिव का; २-७।

थिण्णं वि. (स्त्यानम्) कठिन, जमा हुआ; १-७४; २-९९।

थी स्त्री. (स्त्री) स्त्री, महिला, नारी; २-१३०।

थीणं वि. (स्त्यानम्) कठिन, जमा हुआ; १-७४; २-३३, ९९।

थुई स्त्री. (स्तुतिः) स्तवन, गुण-कीर्तन; २-४५।

थुल्लो वि. (स्थूलः) मोटा; २-९९।

थुवओ वि. (स्तावकः) स्तुति करने वाला; १-७५।

दुक्खाइं न. (दुःखानि) अनेक प्रकार के संकट; १-३३।
दुक्खिओ वि. (दुःखितः) पीड़ित, दुःखित; १-१३।
दुक्खिआ वि. (दुःखिता) दुखयुक्त; २-७२।
दुगुल्लं आर्ष. (दुकूलम्) वस्त्र, महिन कपड़ा; १-११९
दुग्गाएवी स्त्री. (दुर्गा देवी) पार्वती, देवी विशेष; १-२७०
दुग्गावी स्त्री. (दुर्गा देवी) गौरी, पार्वती; देवी विशेष; १-२७०।
दुद्धं न. (दुग्धम्) दूध, क्षीर; २-७७, ८९।
दुमत्तो वि. (द्विमात्रः) दो मात्रा वाला स्वर-वर्ण; १-९४
दुरवगाहं न. (दुरवगाहम्) स्नान करने में कठिनाई वाला स्थान; १-१४।
दुरुत्तरं न. (दुरुत्तरम्) अनिष्ट उत्तर; उतरने में असमर्थ; १-१४।
दुरेहो पुं (द्विरेफः) भ्रमर, भँवरा; १-९४।
दुवयणं न. (द्विवचनम्) दो का बोधक व्याकरण प्रसिद्ध प्रत्ययः १-९४।
दुवारं न. (द्वारम्) दरवाजा; २-११२।
दुवारिओ पु. (दौवारिकाः) द्वारपाल; १-१६०।
दुवालसंगे (आर्ष न.) (द्वादशांगे) बारह जैन आगम ग्रन्थों में; १-२५४।
दुविहो वि. (द्विविधः) दो प्रकार का; १-९४।
दुसहो वि. (दुस्सहः) जो कठिनाई से सहन किया जा सके १-११५।
दुस्सहो वि. (दुस्सहः) जो दुःख पूर्वक सहन किया जा सके; १-१३, ११५।
दुहवो दुहओ वि. (दुर्भगः) खोटे भाग्य वाला, अभागा, अप्रिय, अनिष्ट, १-११५, १९२।
दुहं न. (दुःखम्) दुःख, कष्ट, पीड़ा; २-७२।
दुहा अ. (द्विधा) दो प्रकार का; १-९७।
दुहाइअं वि. (द्विधाकृतम्) दो प्रकार से किया हुआ; १-९७, १२६।
दुहिअए वि. (दुःखितके) पीड़ित में, दुःखयुक्त में; २-१६४।
दुहिआ स्त्री. (दुहिता) लड़की की पुत्री; २-१२६।
दुहिओ वि. (दुःखितः) पीड़ित, दुखी; १-१३।
दूसहो पुं वि (दुस्सहः) जो दुःख से सहन किया जाय; १-१३, ११५।
दूसासणो पुं. (दुश्शासनः) कौरवों का भाई; १-४३।
दूहवो वि. (दुर्भगः) अभागा; अप्रिय, अनिष्ट; १-११५, १९२।
दूहिओ वि. (दुःखितः) दुःखयुक्त; १-१३।
दे अ. (संमुखी करणे निपातः) सम्मुख करने के अर्थ में अथवा सखी के आमन्त्रण अर्थ में प्रयोक्तव्य अव्यय; २-१९६।
देअरो पुं. (देवरः) देवर, पति का छोटा भाई; १-१८०
देउलं न. (देव कुलम्) देव कुल; १-२७१।
देन्ति सक. (ददन्ते) वे देते हैं; १-२०४।
देरं न. (द्वारम्) दरवाजा, १-७९; २-११२
देव पुं०(देव) देव, परमेश्वर, देवाधिदेव; १-७९
देवउलं न. (देव कुलम्) देव कुल; १-२७१।
देवत्थुई, देवथुई स्त्री. (देव-स्तुतिः) देवका गुणानुवाद; २-९७।
देवदत्तो पुं० (देवदत्तः) देवदत्त; १-४६
देवं पुं० (देव) देव; १-२६।
देवाइं न. (देवाः) देव-वर्ग; १-३४।
देवा पुं० " " "
देवाणि न. " " "
देवंनाग-सुवण्ण न. (देव-नाग-सुवर्ण) वस्तु-विशेष का नाम; १-२६।
देवरो पुं० (देवरः) पति का छोटा भाई; १-१४६।
देवासुरी वि. (देवासुरी) देवता और राक्षस सम्बंधी; १-७९।
देवो पुं० (देव-) देवता; १-१७७।
देव्वं न. (दैवम्) भाग्य, प्रारब्ध, दैव, पूर्व कृत कर्म; १-१५३।
देसित्ता स. कृ. (देशयित्वा) कह करके; उपदेश देकर; १-८८।
दोला स्त्री. (दोला) झूला, हिंडोला; १-२१७।
दोवयणं न. (द्विवचनम्) दो का बोधक व्याकरण प्रसिद्ध प्रत्यय; १-९४।
दोहलो पुं० (दोहदः) गर्भिणी स्त्री का मनोरथ; १-२१७, २२१।
दोहा अ. (द्विधा) दो प्रकार (वाला) १-९७।
दोहाइअं वि. (द्विधा कृत.) जिसका दो खण्ड किया गया हो वह; १-९७।

द्रहो पुं० (ह्रदः) बड़ा जलाशय, झील, सरोवर, ह्रद; २-८० ।

द्रहम्मि पुं० (ह्रदे) बड़े जलाशय में, झील में; २-८०

(ध)

धओ पुं० (ध्वजः) ध्वजा, पताका; २-२७ ।

धट्ठज्जुणो पुं० (धृष्टद्युम्नः) राजा द्रुपद का एक पुत्र; २-९४ ।

धट्ठो वि. (धृष्टः) धीठ, प्रगल्भ, निर्लज्ज, १-१३०

धणंजओ पुं० (धनंजयः) धनंजय, अर्जुन; १-१७७; २-१८५ ।

धणमणो, धणवन्तो वि. (धनवान्) धनी, धनवान्; २-१५९

धणी वि. (धनी) धनिक, धनवान्; २-१५९ ।

धणुहं न. (धनुः) धनुष; १-२२ ।

धणू पुं. न. (धनुः) धनुष; १-२२ ।

धत्ती स्त्री. (धात्री) धाय-माता, उपमाता; २-८१ ।

धत्थो वि. (ध्वस्तः) ध्वंस को प्राप्त; नष्ट; २-७९ ।

धन्ना स्त्री. (धन्या) एक स्त्री का नाम, धन्य-स्त्री; २-१८४ ।

धम्मिल्लं, धम्मेल्लं न. (धम्मिल्लम्) संयत केश; बंधा हुआ केश; १-८५ ।

धरणीहर पुं. (धरणी धर) पर्वत, पहाड़; २-१६४ ।

धरिओ वि. (धृतः) धारण किया हुआ; १-३६ ।

धा अक. (धाव्) दौड़ना सक. (धा) धारण करना; "नि" उपसर्ग के साथ में

निहित्तो वि. (निहितः) धारण किया हुआ; २-९९ ।

निहिओ वि. (निहितः) धारण किया हुआ; २-९९

"श्रद्" के साथ में

सद्दहिअं वि. (श्रद्धितम्) जिस पर श्रद्धा की गई हो वह; १-१२ ।

धाई स्त्री. (धात्री) धाई, उपमाता; २-८१ ।

धारा स्त्री. (धारा) धार, नोक, अणी; १-७, १४५ ।

धारी स्त्री. (धात्री) धाई, उपमाता; २-८१ ।

धाह देशज. स्त्री. (?) एक प्रकार की पुकार, चिल्लाहट; २-१९२ ।

धिई स्त्री. (धृतिः) धैर्य, धीरज; १-१२८; २-१३१ ।

धिज्जं न. (धैर्यम्) धैर्य, धीरज; २-६४ ।

धिट्ठो वि. (धृष्टः) धीठ, प्रगल्भ, निर्लज्ज; १-१३० ।

धिद्धि देशज. अ. (धिक् धिक्) धिक् धिक्, छी छी; २-१७४ ।

धिप्पइ अक. (दीप्यते) चमकता है, जलता है; १-२२३ ।

धिरत्थु अ. (धिगस्तु) धिक्कार हो; २-१७४ ।

धीरं न. (धैर्यम्) धीरज, को; १-१५५; २-६४ ।

धीरिअं न. (धैर्यम्) धीरज, धीरता; २-१०७ ।

धुत्तिमा पुं. स्त्री. (धूर्तत्वम्) धूर्तता, ठगाई; १-३५ ।

धुत्तो पुं. (धूर्तः) ठग, वञ्चक, जूआ खेलने वाला; १-१७७; २-३० ।

धुत्ता पुं. (धूर्ताः) ठग-गण; २-२०४ ।

धुरा स्त्रीः (धुर्) गाड़ी आदि का अग्र भाग; धुरी; १-१६ ।

धुवसि अक. (धुनासि) तू कम्पता है; २-२१६ ।

धूआ स्त्री. (दुहिता) लड़की की पुत्री; २-१२६ ।

धूम पडलो पुं. (धूम पटलः) धूम-समूह; २-१९८ ।

धोरणि स्त्री. (धोरणि) पंक्ति, कतार; १-७ ।

(न)

न अ. (न) नहीं; १-६, ४२; २-१८०, १९३, १९८, १९९, २०३, २०४, २०५, २०६, २१७

नइ स्त्री. (नदी); हे नइ (हे नदि) हे नदी ।

नई स्त्री. (नदी) नदी; १-२२९ ।

नइगामो पुं० (नदी-ग्रामः), नइग्गामो (नदी ग्रामः) नदी के किनारे पर स्थित ग्राम; २-९७ ।

नईसोत्तं न. (नदीस्रोतः) नदी का झरना; १-४ ।

नई-सोत्तं (नदी स्रोतः) १-४ ।

न उणा न. उण, न उणाइ, नउणो अ. (नपुनः) फिर से नहीं; १-६५ ।

नओ पुं० (नगः) पहाड़, वृक्ष; १-१७७ ।

नक्कंचरो पुं० (नक्तं चरः) राक्षस, चोर, बिडाल; १-१७७

नक्खा पुं० (नखानि) नख, नाखून; २-९०, ९९ ।

नग्गो वि. (नग्नः) नंगा, वस्त्र रहित; २-७८, ८९ ।

नच्चइ अक. (नृत्यति) वह नाचता है;

नच्चाविआइं वि. (नर्तितानि) नचाई हुई को; १-३३

नज्जइ सक. २-२६; जाना जाता है ।

नट्टइ अक. (नृत्यते) (नट्यते) उससे नाचा जाता है;

नडो पुं० (नटः) नट; १-१९५ ।

नत्तिओ पुं० (नप्तृकः) पौत्र; पुत्र का अथवा पुत्री का पुत्र; १-१३७।

नत्तुओ पुं० (नप्तृकः) पौत्र; पुत्र का अथवा पुत्री का पुत्र; १-१३७।

नभं न. (नभस्) आकाश गगन; १-१८७।

नम् अक. (नम्) भार के कारण के झुकना; सक. (नम्) नमस्कार करना;

नमिमो सक. (नमामः) हम नमस्कार करते हैं १-१८३।

नओ वि. (नतः) नमा हुआ, झुका हुआ; १-१८०।

"उद्" के साथ में—

उन्नयं वि. (उन्नतं) उन्नत, ऊंचा; १-१२।

"प्र" के साथ में—

पणमह सक. (प्रनमथ) तुम नमस्कार करते हो; १-१९५।

नमिर वि. (नमन शील) नमने के स्वभाव वाला; २-१४५।

नमोक्कारो पु. (नमस्कारः) नमस्कार; १-६२, २-४।

नम्मो पुं. (नर्म) हंसी, मजाक; १-३२।

नयणं पुं. न. (नयनं) आंख, नेत्र; १-१७७, १८०, २२८।

नयणा पुं. न. (नयनानि) आंखें; १-३३।

नयणाइं न. " " "

नयरं न. (नगरं) नगर, शहर, पुर; १-१७७, १८०

नरो पु. न. (नरः) मनुष्य, पुरुष; १-२२९।

नराओ पुं. (नाराच) शरीर की रचना का एक प्रकार; १-६७।

नरिन्दो पुं. नरेन्द्रः राजा; १-८४।

नवरं अ. (केवलम्) केवल, विशेष, सिर्फ; २-२०४

नवल्लो वि. (नवः) नया, नूतन, नवीन; २-१६५।

नवो वि. " " " " "

नश्—

"प्र" उपसर्ग के साथ में—

पणट्ठ वि. (प्रनष्ट) विशेष रूप से नष्ट हुआ; १-१८७।

नह न. (नख) नख, नाखून; १-६, ७।

नहा न. (नखानि) नख, नाखून; १-२०, ३३।

नहं न. (नभः) आकाश; १-३२, १८७।

नहयले न. (नभस्तले) आकाश तल में; २-२०३।

नाओ पुं. (न्यायः) न्याय नीति; १-२२९।

नाग पुं. (नाग) सर्प, सांप; १-२६।

नाणं न. (ज्ञानम्) ज्ञान, बोध, चैतन्य, बुद्धि; २-१०४

नाम अ. (नाम) संभावना-आमन्त्रण संबोधन-ख्याति वाक्यालंकार-पाद-पूर्ति अर्थ में; प्रयोक्तव्य अव्यय; २-२१७।

नारइओ वि. (नारकिकः) नरक का जीव; १-७९।

नाराओ पुं. (नाराचः) शरीर की रचना का एक प्रकार; १-६७।

नावा स्त्री. (नौः) नौका, जहाज; १-१६४।

नाविओ पुं. (नापितः) नाई हज्जाम; १-२३०।

नाहो पुं. (नाथः) स्वामी, मालिक; १-१८७; २-७८

निअत्तसु अक (निवृत्त) पीछे हट जा, रुक जा; २-१९६

निअत्तं वि. (निवृत्तम्) निवृत्त, प्रवृत्त विमुख हटा हुआ; १-१३२।

निअम्ब न. (नितम्ब) कमर के नीचे का भाग—पुट्ठे १-४।

निउअं वि. (निवृतम्) परिवेष्टित-घेराया हुआ; १-१३१

निउरं न. (नूपुरम्) स्त्री के पांव का एक आभूषण; १-१२३।

निक्कओ पुं० (निष्क्रयः) वेतन, मजदूरी; २-४।

निक्कम्पं न: (निष्कम्पम) कम्पन-रहित, स्थिर २-४

निक्खं पुं. न. (निष्कम्) सोना-मोहर, मुद्रा, रुपया; २-४

निच्चलो वि. (निश्चल) स्थिर, दृढ़, अचल; २-२१

निच्चल वि. (निश्चलः) स्थिर, दृढ़, अचल; २-२१।

निज्झरो पुं. (निर्झरः) झरना, पहाड़ से गिरते हुए पानी का प्रवाह; १-९८; २-९०।

निठ्ठुरो वि. (निष्ठुरः) निष्ठुर पुरुष, कठोर आदमी; १-२५४; २-७७।

निठ्ठुलो वि. (निष्ठुरः) निष्ठुर पुरुष, कठोर आदमी; १-२५४।

निण्णओ पुं. (निर्णयः) निश्चय, अवधारण, फैसला; १-९१

निण्णं वि. (निम्नम्) नीचे, अधस्; २-४२।

निद्धणो वि. (निर्धनः) धन रहित, अकिंचन; २-९०।

निद्धं न. (स्निग्धम्) स्नेह, रस-विशेष; स्नेह युक्त, चिकना; २-१०९।

निनओ पुं. (निनदः) १-१८० ।
निप्पहो वि. (निष्प्रभः) निस्तेज, फीका; २-५३ ।
निप्पिहो वि. (निस्स्पृहः) स्पृहा रहित, निर्मम; २-५३ ।
निप्पुंसणं न. (निस्पुंसनम्) पोंछना, अभिमर्दन, मार्जन; २-५३ ।
निप्फन्दा वि. (निष्पन्दा) चलन रहित, स्थिर; २-२११ ।
निप्फावो पुं. (निष्पावः) धान्य-विशेष; २-५३ ।
निप्फेसो पुं. (निष्पेषः) पेषण, पीसना, संघर्ष; २-५३ ।
निब्भरो वि. (निर्भरः) पूर्ण, भरपूर, व्यापक, फैलने वाला; २-९० ।
निबिडं वि. (निबिडम्) सान्द्र, घना, गाढ़; १-२०२ ।
निम्बो पुं. (निम्बः) नीम का पेड़; १-२३० ।
निम्मल वि. (निर्मल) मल रहित, विशुद्ध; २-२११ ।
निम्मल्लं न. (निर्माल्यम्) निर्मलत्व; १-३८ ।
निम्मोओ पुं. (निर्मोकः) कञ्चुक, सर्प की त्वचा, २-१८२
निरन्तरं अ. (निरन्तरम्) सदा, लगातार; १ १४ ।
निरवसेसं न. वि. (निरवशेषम्) सम्पूर्ण; १-१४ ।
निरूविअं वि. (निरूपितम्) देखा हुआ; प्रतिपादित, कहा हुआ; २-४० ।
निलयाए स्त्री. (निलयायाः) स्थान वाली का; १-४२ ।
निल्लज्ज वि. (निर्लज्ज) लज्जा रहित; २ १९७ ।
निल्लज्जो वि. (निर्लज्जः) लज्जा रहित; २-२००
निल्लज्जिमा पुं. स्त्री. (निर्लज्जत्वम्) निर्लज्जपन बेशर्मी; १-३५ ।
निवडइ अक. (निपतति) वह गिरता है; १-९४ ।
निवत्तओ वि. (निवर्तकः) वापिस आने वाला, लौटने वाला, वापिस करने वाला; २-३० ।
निवत्तणं न. (निवर्तनम्) निवृत्ति; जहाँ रास्ता बंद होता हो वह स्थान; २-३० ।
निविडं वि. (निबिडम्) सान्द्र, घना, गाढ़; १-२०२ ।
निवुत्तं वि. (निवृत्तम्) निवृत्त, हटा हुआ, प्रवृत्ति-विमुख; १ १३२ ।
निवो पुं. (नृपः) राजा, नरेश; १-१२८ ।
निव्वत्तओ वि. (निर्वर्तकः) निष्पन्न करने वाला, बनाने वाला; २-३० ।
निव्वुअं वि. (निर्वृतम्) निर्वृति-प्राप्त; १-१३१ ।
निव्वुई स्त्री (निर्वृतिः) निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति; १-१३१
निव्वुओ वि. (निर्वृतः) निर्वृति-प्राप्त; १-२०९ ।
निसंसो वि. (नृशंसः) क्रूर, निर्दय; १-१२८, २६० ।
निसढो पुं. (निषधः) निषध देश का राजा, स्वर-विशेष, देश-विशेष; १-२२६ ।
निसमण न. (निशमन) श्रवण, आकर्णन; १-२६९ ।
निसाअरो पुं. (निशाकरः) चन्द्रमा; १ ८ । (निशाचरः) राक्षस आदि ।
निसायरो पुं. (निशाचरः) रात्रि में चलने वाला राक्षस आदि; १-७२ ।
निसिअरो पुं० (निशिचरः) रात्रि में चलने वाले राक्षस आदि; १-८, ७२ ।
निसीढो पुं० (निशीथः) मध्य रात्रि; १-२१६ ।
निसीहो पुं. (निशीथः) मध्यरात्रि, प्रकाश का अभाव; १-२१६ ।
निस्सहं वि. न. (निःसहम्) असहनीय, अशक्त; १-१३।
निस्सहाइं वि. न. (निःसहानि) अशक्त; १-९३
निहओ वि. (निहतः) मारा हुआ; १-१८०
निहट्ठं वि. (निघृष्टं) घिसा हुआ; २-१७४ ।
निहसो पुं. (निकषः) कसौटी का पत्थर; १-१८६, २६०
निहि-निही स्त्री. (निधिः) खजाना; १-३५ ।
निहिओ-निहित्तो वि. (निहितः) स्थापित; रखा हुआ; २-९९ ।
निहुअं वि. (निभृतम्) उपशान्त, गुप्त, प्रच्छन्न, १-१३१
निहेलणं देशज न. (निलयः) गृह, घर, मकान; २-१७४
नी—
"आ" उपसर्ग के साथ में—
आणिअं वि. (आनीतम्) लाया हुआ; १-१०१
"उप" उपसर्ग के साथ में—
उवणिअं वि. (उपनीतम्) ले आया हुआ; १-१०१ ।
उवणिओ वि. (उपनीतः) ले आया हुआ; १-१०१ ।
नीचअं अ. (नीचैः) नीचा, अधो-स्थित; १-१५४ ।
नीडं (नीडम्) घोंसला; १-१०६, २०२; २-९९ ।
नीमी स्त्री. (नीवी) मूल-धन, पूंजी, नाड़ा, इजार बन्द; १-२५९ ।
नीमो पुं. (नीपः) कदम्ब का पेड़; १-२३४ ।
नीलुप्पल न. (नीलोत्पल) नील रंग का कमल; २-१८२
नीलुप्पलं (नीलोत्पलम्) " " " १-८४ ।

नीवी स्त्री. (नीवी) मूल-धन, पूंजी, नाड़ा, इजार बन्द; १-२५९ ।
नीवो पुं० (नीपः) कदम्ब का पेड़; १-२३४ ।
नीसरइ अक. (निःसरति) निकलता है; १-९३ ।
नीसहो वि. पुं० (निस्सहः) असमर्थ; १-४३ ।
नीसहं न. (निर्-सहम्) असहनीय; १-१३ ।
नीसामन्नेहिं वि. (निस्सामान्यैः) असाधारणों से; २-२११ ।
नीसासूसासा पुं. (निश्वासोच्छ्वासो) श्वासोश्वास; १-१०
नीसासो वि. (निश्वासः) निःश्वास लेने वाला; १-९३; २-९२ ।
नीसित्तो वि. (निष्षिक्तः) अत्यन्त सिक्त; गीला; १-४३
नीसो पुं. (निः स्वः) १-४३ ।
नु अ. (नु) निश्चय अर्थक अव्यय; २-२०४ ।
नूउरं न. (नूपुरम्) स्त्री के पांव का आभूषण; १-१२३
नूण-नूणं अ (नूनम्) निश्चय अर्थक, हेतु अर्थक अव्यय; १-२९ ।
नेउरं न. (नूपुरम्) स्त्री के पांव का आभूषण; १-१२३
नेड्डं-नेड्डं न. (नीडम्) घोंसला; २-९९ ।
नेत्ता पुं. न. (नेत्राणि) आंखें १-३३ ।
नेत्ताइं न. (नेत्राणि) आंखें; १-३३ ।
नेरइओ वि. (नैरयिकः) नरक में उत्पन्न हुआ जीव; १-७९
नेहालू वि. (स्नेहालुः) प्रेम करने वाला; २-१५९ ।
नेहो पुं. (स्नेहः) तेल आदि चिकना रस, प्रेम; २-७७, १०२ ।
नोमालिआ स्त्री. (नवमालिका) सुगन्धित फूल वाला वृक्ष विशेष; १-१७० ।
नोहलिया स्त्री. (नव फलिका) ताजी फली, नवोत्पन्न फली, नूतन फल वाली; १-१७० ।

(प)

पइट्ठा स्त्री. (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा, इज्जत, सम्मान; १-३८, २०६ ।
पइट्ठाणं न. (प्रतिष्ठानम्) स्थिति, अवस्थान, आधार, आश्रय; १-२०६ ।
पइट्ठिअं वि. (प्रतिष्ठितम्) रखा हुआ; १-३८ ।
पइण्णा स्त्री. (प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा, प्रण, शपथ; १-२०६ ।
पइसमयं न. (प्रतिसमयम्) प्रतिक्षण, हर समय; १-२०६
पइहरं न. (पतिगृहम्) पति का घर; १-४ ।
पई पुं. (पतिः) स्वामी, १-५ ।
पईवं वि. (प्रतीपम्) प्रतिकूल; १-२०६ ।
पईवो पुं. (प्रदीपः) दीपक, दिया; १-२३१ ।
पईहरं न. (पतिगृहम्) पति का घर; १-४ ।
पउट्ठो पुं. वि. (प्रवृष्टः) बरसा हुआ; १-१३१ ।
पउट्ठो पुं. (प्रकोष्ठः) कोहनी के नीचे के भाग का नाम; १-१५६ ।
पउणो वि. (प्रगुणः) पटु, निर्दोष, तैयार; १-१८० ।
पउत्ती स्त्री. (प्रवृत्तिः) प्रवर्तन, समाचार, कार्य; १-१३१
पउमं न. (पद्मम्) कमल; १-६१; २-११२ ।
पउरजणो पुं. (पौर-जन) नगर-निवासी, नागरिक; १-१६२
पउरं वि. (प्रचुरम्) प्रभूत, बहुत; १-१८० ।
पउरिसं न. (पौरुषम्) पुरुषत्व, पुरुषार्थ; १-१११, १६२
पउरो पुं० (पौरः) नगर में रहने वाला; १-१६१ ।
पओ पुं० (पयः) दूध और जल; १-३२ ।
पओओ पुं० (प्रयोगः) काम में लाना; शब्द योजना; १-२४५ ।
पंको पुं० (पंकः) कीचड़; १-३० ।
पंसणो वि. (पांसनः) कलंकित करने वाला; दूषण लगाने वाला; १-७० ।
पंसुलि स्त्री. (पांसुली) कुलटा, व्यभिचारिणी स्त्री; २-१७९ ।
पंसू पुं० (पांसु) (पांशु) धूली, रज, रेणु; १-२९, ७० ।
पंसू पुं० (पर्शु) कुठार, कुल्हाड़ा; १-२६ ।
पक्कं वि. (पक्वम्) पका हुआ; १-४७, २-७९ ।
पक्का वि. (पक्वा) पकी हुई; २-१२९ ।
पक्कलो देशज वि. (समर्थः) समर्थ, शक्त; २-१७४ ।
पक्ख पुं० (पक्ष) तरफ और २-१६४ ।
पक्खे पुं० (पक्ष) पक्ष में, तरफदार में, कक्षा में; २-१४७ ।
पक्खो पुं० (पक्षः) आधा महीना; २-१०६ ।
पङ्को-पंको पुं. (पङ्कः) कीचड़; १-३० ।
पंगुरणं न. (प्रावरणम्) वस्त्र, कपड़ा; १-१७५ ।
पच्चओ पुं. (प्रत्ययः) व्याकरण में शब्द के साथ जुड़ने वाला शब्द विशेष; २-१३ ।
पच्चड्डिअं देशज वि. (?) (क्षरित) झरा हुआ; टपका हुआ; २-१७४ ।

पच्चूसो पच्चूहो पुं. (प्रत्यूषः) प्रातःकाल; २-१४।
पच्छं वि. (पथ्यम्) हितकारी; २-२१।
पच्छा वि. (पथ्या) हितकारिणी; २-२१।
पच्छा अ. (पश्चात्) पीछे; २-२१।
पच्छिमं वि. न. (पश्चिमम्) पश्चिम दिशा का, पाश्चात्य; पश्चिम दिशा; २-२१।
पच्छे कम्मं न. (पश्चात्-कर्म) पीछे किया जाने वाला कार्य; १-७९।
पज्जत्तं वि. (पर्याप्तम्) पर्याप्त, काफी; २-२४।
पज्जन्तो पुं० (पर्यन्तः) अन्त सीमा तक; प्रान्त भाग; १-५८; २-६५।
पज्जा स्त्री. (प्रज्ञा) बुद्धि, मति, २-८३।
पज्जाओ पुं० (पर्याय.) समान अर्थ का वाचक शब्द; उत्पन्न होने वाली नूतन अवस्था; २-२४।
पज्जुण्णो पु. (प्रद्युम्नः) श्री कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न; २-४२।
पञ्चावण्णा स्त्री. न. देशज (पञ्च पञ्चाशत्) पचपन; संख्या विशेष; २-१७४।
पट्टणं न. (पत्तनम्) नगर, शहर; २-२९।
पट्ठी वि. (पृष्ठी) पीछे वाली; १-१२९, २-९०।
पठ् सक. (पठ्) पढ़ना।
पढइ सक. (पठति) वह पढ़ता है; १-१९९, २३१
पडंसुआ स्त्री. (प्रतिश्रुत्) प्रतिध्वनि, प्रतिज्ञा, १-२६; ८८, २०६।
पडाया स्त्री. (पताका) ध्वजा; १-२०६।
पडायाणं न. (पर्याणम्) घोड़े आदि का साज समान; १-२५२।
पडकरइ सक. (प्रति करोति) वह प्रतिकार करता है; १-२०६।
पडिकूलं वि. (प्रतिकूलम्) विपरीत, अनिष्ट; २-९७।
पडिक्कूलं वि. " " "
पडिनिअत्तं वि (प्रति निवृत्तम) पीछे लौटा हुआ; १-२०६
पडिप्फद्धी पुं. वि. (प्रतिस्पर्धी) प्रति स्पर्धा करने वाला; १-४४।
पडिभिन्नो वि. (प्रतिभिन्न) उस जैसा; १-६।
पडिमा स्त्री. (प्रतिमा) प्रतिमा, जैन-शास्त्रोक्त नियम-विशेष; १-२०६।
पडिवआ स्त्री. (प्रतिपत्) पक्ष की प्रथम तिथि; १-४४
पडिवण्णं वि. (प्रतिपन्नम्) प्राप्त; स्वीकृत, आश्रित; १-२०६।
पडिवया स्त्री. (प्रतिपत्) पक्ष की प्रथम तिथि; १-२०६
पडिसारो पु. (प्रतिसारः) सजावट, अपसरण, विनाश; १-२०६।
पडिसिद्धी स्त्री. (प्रतिसिद्धिः) अनुरूप सिद्धि अथवा प्रतिकूल सिद्धि १-४४, २-१७४।
पडिसोओ आर्ष. पुं. (प्रतिस्रोतः) प्रतिकूल प्रवाह; उलटा प्रवाह; २-९८।
पडिहारो पुं० (प्रतिहारः) द्वारपाल; १-२०६।
पडिहासो पुं० (प्रतिभासः) प्रतिभास, आभास, मालूम होना; १-२०६।
पड्डुच्छिरं देशज वि. (?) सदृश, समान; २-१७४।
पढइ सक. (पठति) वह पढ़ता है; १-१९९, २३१।
पढमो वि. (प्रथमः) पहला आद्य; १-२१५।
पढमं वि. न. (प्रथमम्) पहला; १-५५।
पढुमं वि. न. (प्रथमम्) पहला १-५५।
पणट्ठ वि. (प्रनष्ट) अधिक मात्रा में नाश प्राप्त; १-१८७।
पणवण्णा देशज स्त्री. न. (पञ्च पञ्चाशत्) पचपन; संख्या विशेष; २-१७४।
पणवह सक. (प्रणमत) नमस्कार करें; २-१९५।
पण्डवो पु.० (पाण्डवः) राजा पाण्डु का पुत्र; १-७०
पण्णरह वि. (पञ्चदश) पन्द्रह; २-४३।
पण्णा स्त्री. (प्रज्ञा) बुद्धि, मति; २-४२, ८३।
पण्णासा देशज स्त्री. (पञ्चाशत्) पचास; २-४३।
पण्णो पुं० (प्राज्ञः) बुद्धिमान्; १-५६।
पण्हा स्त्री. (प्रश्नः) प्रश्न; १-३५।
पण्हुओ वि. (प्रस्नुतः) झरा हुआ; जिसने झरने को प्रारम्भ किया हो; २-७५।
पण्हो पु. (प्रश्नः) प्रश्न; १-३५; २-७५।
पत्

पडिया वि. (पतिता) गिरी हुई; गिरे हुए; २-८०।

"नि" उपसर्ग के साथ में-

निवडइ अक. (निपतति) वह नीचे गिरता है; १-९४।

पत्तं, पत्तलं न. (पत्रम्) जिस पर लिखा जाता है वह कागज पत्ता; २ १७३।
पत्तेअं वि. न. (प्रत्येकम्) हर एक, २-२१०।
पत्तो वि. (प्राप्तः) मिला हुआ; पाया हुआ; २-१५।

पत्थरो पुं० (प्रस्तरः) पत्थर; २-४५ ।
पत्थवो, पत्थावो पुं० (प्रस्तावः) अवसर, प्रसंग, प्रकरण; १-६८ ।
पन्ति स्त्री. (पंक्ति) कतार, श्रेणी; १-६ ।
पन्ती स्त्री. (पंक्तिः) कतार श्रेणी; १-२५ ।
पन्थो पुं० (पान्थः) पथिक, मुसाफिर; १-३० ।
पन्थं पुं० (पन्थं) मार्ग को; १-८८ ।
पमुक्कं वि. (प्रमुक्तम्) परित्यक्त; २-९७ ।
पम्मुक्कं वि. " " "
पम्हल वि. (पक्ष्मल) सुन्दर केश और सुन्दर आंखों वाला; २-७४ ।
पम्हाइं पुं० न. (पक्ष्माणि) आंखों के बाल; भौंह; २-७४
पयट्टइ अक. (प्रवर्तते) वह प्रवृत्ति करता है; २-३० ।
पयट्टो वि. (प्रवृत्तः) जिसने प्रवृत्ति की हो वह; २-२९
पयडं वि. (प्रकटम्) प्रकट, व्यक्त, खुला; १-४४ ।
पययं वि. (प्राकृतम्) स्वाभाविक; १-६७ ।
पयरणं न. (प्रकरणम्) प्रस्ताव, प्रसंग, एकार्थ प्रतिपादक ग्रन्थ; १-२४६ ।
पयरो पुं. (प्रकारः) भेद, किस्म, ढंग, रीति, तरह; १-६८ ।
पयरो पुं० (प्रचारः) प्रचार, फैलाव; १-६८ ।
पयाई पुं० (पदातिः) पैदल सैनिक; २-१३८ ।
पयागजलं न. (प्रयाग-जलम्) गंगा और यमुना के जल का संगम; १-१७७ ।
पयारो पुं० (प्रकारः अथवा प्रचारः) भेद, ढंग अथवा प्रचार; १-६८ ।
पयावई पुं. (प्रजापतिः) ब्रह्मा अथवा कुम्भकार; १-१७७, १८० ।
पर —
पारिव्वअइ २-२०८ ।
पर वि. (पर) अन्य, तत्पर, श्रेष्ठ, प्रकर्ष, दूरवर्ती, अनात्मीय; २-७२, ८७ ।
परउट्ठो पुं. (परपुष्टः) अन्य से पालित, कोयल पक्षी; १-१७९ ।
परक्कं वि. (परकीयम्) दूसरे का; दूसरे से संबंधित; २-१४८ ।
परमं वि. (परमं) श्रेष्ठ; २-१५ ।
परम्मुहो पुं. वि. (पराङ्मुखः) विमुख, फिरा हुआ; १-२५ ।
परहुओ पुं. (परभृतः) कोयल; १-१३१ ।
परामरिसो पुं. (परामर्शः) विचार, युक्ति; स्पर्श, न्यायशास्त्रोक्त व्याप्ति; २-१०५ ।
परामुट्ठो वि. (परामृष्टः) विचारित, स्पष्ट किया हुआ; १-१३१ ।
परिघट्ठं वि. (परिघृष्टम्) जिसका घर्षण किया गया हो वह; १-१७४ ।
परिट्ठविओ वि. (प्रतिस्थापितः) विरोधी-रूप से स्थापित; १-६७ ।
परिट्ठा स्त्री. (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा; १-३८ ।
परिट्ठाविओ वि. (प्रतिस्थापितः) विरोधी-रूप से स्थापित; १-६७ ।
परिट्ठिअं वि. (प्रतिष्ठितम्) रहा हुआ; १-३८ ।
परिणामो पुं० (परिणामः) फल; २-२०६ ।
परोप्परं वि. (परस्परम्) आपस में; १-६२; २-५३ ।
परोप्पर वि. (परस्पर) आपस में; १-८ ।
परोहो पुं० (प्ररोहः) उत्पत्ति, अंकुर; १-४४ ।
पलक्खो पुं० (प्लक्षः) बड़ का पेड़; २-१०३ ।
पलय पुं० (प्रलय) युगान्त, विनाश; १-१८७ ।
पलही देशज पुं० (कर्पासः) कपास; २-१७४ ।
पलिअङ्को पुं० (पर्यङ्कः) पलंग, खाट; २-६८ ।
पलिअं न. (पलितम्) वृद्ध अवस्था के कारण बालों का पकना, बदन की झुरियां; १-२१२ ।
पलित्तं वि. (प्रदीप्तम्) ज्वलित; १-२२१ ।
पलिलं न. (पलितम्) वृद्ध अवस्था के कारण से बालों का श्वेत हो जाना; १-२१२ ।
पलिविअं वि. (प्रदीपितम्) जलाया हुआ; १-१०१ ।
पलीवइ, पलीवेइ सक. (प्रदीपयति) वह जलाता है, सुलगाता है; १-२२१ ।
पलोएसु सक. (प्रलोकय) देखो; २-१८१ ।
पल्लङ्को पुं. (पर्यङ्कः) पलंग, खाट; २-६८ ।
पल्लट्टो वि. (पर्यस्तः) क्षिप्त, विक्षिप्त, हत, पतित; २-४७ ।
पल्लट्टं वि. (पर्यस्तम्) क्षिप्त, हत, विक्षिप्त, पतित; २-६८ ।
पल्लत्थो वि. (पर्यस्तः) क्षिप्त, हत, विक्षिप्त, पतित; २-४७ ।
पल्लत्थं वि. (पर्यस्तम्) क्षिप्त, हत, विक्षिप्त, पतित; २-६८ ।

पल्लविल्लेण पुं. (पल्लवेन) पल्लव से, नूतन पत्ते से; २-१६४ ।

पल्लाणं न. (पर्याणम्) घोड़े आदि का साज सामान; १-२५२; २-६८ ।

पल्हाओ पुं. (प्रह्लादः) हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का पुत्र; २-७६ ।

पवट्ठो वि. (प्रवृष्टः) बरसा हुआ; १-१५६ ।

पवत्तओ वि. (प्रवर्तकः) प्रवर्तक, प्रवृत्ति करने वाला; २-३० ।

पवत्तणं न. (प्रवर्तनम्) प्रवृत्ति; २-३० ।

पवहो पुं. (प्रवाहः) प्रवृत्ति, बहाव; १-६८ ।

पवहेण पुं. (प्रवाहेन) बहाव द्वारा; १-८२ ।

पवासू वि. (प्रवासिन) मुसाफिरी करने वाला यात्री; १-४४ ।

पवाहो पुं. (प्रवाहः) प्रवृत्ति; बहाव; १-६८ ।

पवाहेण पुं. (प्रवाहेन) बहाव द्वारा; १-८२ ।

पवो पुं. (प्लवः) पूर, उछल-कूद; २-१०६ ।

पसढिलं वि. (प्रशिथिलम्) विशेष ढीला; १-८९ ।

पसत्थो वि. (प्रशस्तः) प्रशंसनीय, श्लाघनीय, श्रेष्ठ; २-४५ ।

पसिअ अक. (प्रसीद) प्रसन्न हो; १-१०१; २-१९६ ।

पसिढिलं वि. (प्रशिथिलम्) विशेष ढीला; १-८९ ।

पसिद्धी स्त्री. (प्रसिद्धिः) प्रसिद्धि; १-४४ ।

पसुत्तो वि. (प्रसुप्तः) सोया हुआ; १-४४ ।

पसूण न. (प्रसून) फूल, पुष्प; १-१६६, १८१ ।

पहरो पुं. (प्रहारः) मार, प्रहार; १-६८ ।

पहिओ पुं. (पान्थः) मार्ग में चलने वाला, यात्री, मुसाफिर; २-१५२ ।

पहुडि अ. (प्रभृति) आरम्भ कर, वहाँ से शुरु कर, लेकर; १-१३१, २०६ ।

पहो पुं. (पन्थाः) मार्ग; १-८८ ।

पा (धातु) पीने अर्थ में ।

पियइ सक. (पिबति) पीता है; १-१८० ।

पाइक्को पुं. (पदातिः) पाँव से चलने वाला पैदल सैनिक; २-१३८ ।

पाउओ वि. (प्राकृतः) आच्छादित, ढँका हुआ; १-१३१ ।

पाउरणं न. (प्रावरणम्) वस्त्र, कपड़ा; १-१७५ ।

पाउसो पुं. (प्रावृट्) वर्षा-ऋतु; १-१९, ३१, १३१ ।

पाओ पुं. (पादः) पाँव; १-५ ।

पाडलिउत्ते न. (पाटलि पुत्रे) पाटलि-पुत्र नगर में; २-१५० ।

पाडिएक्कं, पाडिक्कं न. (प्रत्येकम्) हर एक; २-२१० ।

पाडिप्फद्धी पुं० वि. (प्रतिस्पर्धी) प्रतिस्पर्धा करने वाला; १-४४, २०६; २-५३ ।

पाडिवआ, पाडिवया स्त्री. (प्रतिपद्) प्रतिपदा, एकम तिथि; १-१५, ४४ ।

पाडिसिद्धी स्त्री. (प्रतिसिद्धिः) अनुरूप सिद्धि, प्रतिकूल सिद्धि १-४४; २-१७४ ।

पाणिअं न. (पानीयम्) पानी, जल; १-१०१, २-१९४

पाणिणीआ वि. (पाणिनीयाः) पाणिनि ऋषि से संबंधित; २-१४७ ।

पाणीअं न. (पानीयम्) पानी, जल; १०१ ।

पायडं न. (प्रकटम्) प्रकट; १-४४ ।

पाययं वि. (प्राकृतम्) स्वाभाविक; १-६७ ।

पायवडणं न. (पाद पतनम्) पैर में गिरना, प्रणाम विशेष; १-२७० ।

पायवीढं न. (पादपीठम्) पैर रखने का आसन; १-२७०

पायारो पुं० (प्राकारः) किला, दुर्ग; १-२६८ ।

पायालं न. (पातालम्) पाताल, रसा-तल, अधो भुवन; १-१८० ।

पारओ वि (प्रावारकः) आच्छादक, ढाँकने वाला; १-२७१ ।

पारकेरं वि. न. (परकीयम्) दूसरे से सम्बन्धित; १-४४; २-१४८ ।

पारक्कं वि. (पारकीयम्) दूसरे से सम्बन्धित; १-४४, २-१४८ ।

पारद्धी स्त्री (पापर्द्धिः) शिकार, मृगया; १-२३५ ।

पारावओ, पारेवओ पुं. (पारापतः) पक्षि-विशेष, कबूतर; १-८० ।

पारो पुं० (प्राकारः) किला, दुर्ग; १-२६८ ।

पारोहो पुं. (प्ररोहः) उत्पत्ति, अंकुर; १-४४ ।

पावडणं न. (पाद-पतनम्) पैरों में गिरना, प्रणाम-विशेष; १-२७० ।

पावं न. (पापम्) पाप, अशुभ कर्म पुद्गल; १-१७७ २३१ ।

पावयणं न. (प्रवचनम्) प्रवचन; १-४४ ।

पावरणं न. (प्रावरणम्) वस्त्र, कपड़ा; १-१७५ ।

पावारओ वि. (प्रावारकः) आच्छादक; ढाँकने वाला; १-२७१।
पावासुओ वि. पुं. (प्रवासिन्) प्रवास करने वाला; १-९५
पावासू वि पुं. (प्रवासिन्) प्रवास करने वाला; १ ४४
पावीढं न. (पाद-पीठम्) पैर रखने का आसन; १-२७०
पासइ सक. (पश्यति) वह देखता है; १-४३।
पासं न. (पार्श्वम्) अन्दे के नीचे का भाग; पांजर १-९२।
पासाणो पुं. (पाषाणः) पत्थर; १-२६२।
पासाया पुं. (प्रासादाः) महल; २-१५०।
पासिद्धि स्त्री. (प्रसिद्धिः) प्रसिद्धि; १-४४।
पासुत्तो वि. (प्रसुप्तः) सोया हुआ; १-४४।
पासू पुं. (पांसुः) धूलि, रज, रेणु; १-२९, ७०।
पाहाणो पुं. (पाषाणः) पत्थर, १-२६२।
पाहुडं न. (प्राभृतम्) उपहार, भेंट; १-१३१, २०६
पि अ. (अपि) भी; १-४१; २-१९८, २०४, २१८।
पिअ वि. (प्रिय) प्यारा; २-१५८।
पिओ वि. (प्रियः) प्यारा; १-४२; ९१।
पिआइं वि. (प्रियाणि) प्रिय; २-१८७।
पिअ वयंसो पु. (प्रिय वयस्यः) प्यारा मित्र, प्रिय सखा; २-१८६।
पिउओ पुं. (पितृकः) पिता से सम्बन्धित; १-१३१
पिउच्छा स्त्री. (पितृष्वसा) पिता की बहन; २-१४२।
पिउल्लओ पुं. (पितृकः) पिता से सम्बन्धित; २-१६४
पिउवई पुं. (पितृ पतिः) यम, यमराज; १-१३४।
पिउवणं न. (पितृ वनम्) पिता का वन; १-१३४।
पिउसिआ स्त्री. (पितृष्वसा) पिता की बहन; १-१३४; २-१४२।
पिउहरं न. (पितृ गृहम्) पिता का घर; १-१३४।
पिक्कं वि. न. (पक्वम्) पक्का हुआ; १-४७; २-७९
पिच्छि स्त्री. (पृथ्वीम्) पृथ्वी को; २-१५।
पिच्छी स्त्री. (पृथ्वी) पृथ्वी; १-१२८, २-१५।
पिञ्जरयं वि. (पिञ्जरकम्) पीले रंग वाला; २-१६४।
पिट्ठं न. (पृष्ठम्) पीठ; १-३५; वि. न. (पिष्टं) पीसा हुआ; १-८५।
पिट्ठि स्त्री. (पृष्ठम्) पीठ; १-१२९।
पिट्ठी स्त्री. (पृष्ठम्) पीठ, शरीर के पीछे का भाग; १-३५, १२९।
पिढरो पुं. (पिठरः) मन्थान-दण्ड, मथनिया, १-२०१।
पिण्डं न. (पिण्डम्) समूह, संघात; १-८५।
पिधं अ. (पृथक्) अलग; १-१८८।
पियइ सक. (पिबति) वह पीता है; १-१८०।
पिलुट्ठं वि (प्लुष्टम्) दग्ध; जला हुआ; २-१०६।
पिलोसो पुं. (प्लोषः) दाह, जलन; २-१०६।
पिव अ. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा; २-१८२।
पिसल्लो पुं. (पिशाचः) पिशाच, व्यन्तर देवों की एक जाति; १-१९३।
पिसाओ पुं. (पिशाचः) पिशाच व्यन्तर देवों की एक जाति; १-१९३।
पिसाजी वि. (पिशाची) भूताविष्ट; भूत आदि से घिराया हुआ; १-१७७।
पिहडो पुं. (पिठरः) मन्थान-दंड, मथनिया; १-२०१।
पिहं अ. (पृथक्) अलग, जुदा; १-२४, १३७, १८८
पीअं पीअलं वि. (पीतम्) पीत वर्ण वाला, पीला; १-२१३ २-१७३।
पीडिअं वि. (पीडितम्) पीड़ा से अभिभूत, दुःखित, दबाया हुआ; १-२०३।
पीढं न. (पीठम्) आसन, पीढ़ा; १-१०६।
पीणत्तं, पीणत्तं वि. (पीनत्वम्) मोटापन, मोटाई; २-१५४
पीणदा पीणया वि. दे. (पीनता) " " "
पीणिमा वि. (पीनत्वम्) " " "
पीवलं वि. (पीतम्) पीत वर्ण वाला, पीला; १-२१३; २-१७३।
पुच्छं न. (पुच्छम्) पूंछ; १-२६।
पुञ्जा पुं. (पुञ्जाः) ढंग, राशि, ढेर; १ १६६।
पुट्ठो वि. (पृष्टः) पूछा हुआ; २-३४।
पुट्ठो वि. (स्पृष्टः) छुआ हुआ; १-१३१।
पुढमं वि. (प्रथमम्) पहला; १-५५।
पुढवी स्त्री. (पृथिवी) पृथ्वी, धरती, भूमि; १-८८, २१६।
पुढुमं वि. (प्रथमम्) पहला; १-५५।
पुणरुत्तं वि. (पुनरुक्तम्) फिर से कहा हुआ; २-१७९
पुणाइ अ. (पुनः) फिर से; १-६५।
पुण्णमन्तो वि. (पुण्यवान्) पुण्यवाला, भाग्यवाला; २-१५९
पुणो अ. (पुनः) फिर से; २-१७४।

पुधं अ. (पृथक्) अलग, जुदा १-१८८।
पुन्नामाइं न. (पुन्नागानि) पुन्नाग के फूल-(फूलों को); १-१९० ।
पुप्फत्तणं न. (पुष्पत्वम्) पुष्पपना; फूल पना; २-१५४
पुप्फत्तणं पुप्फत्तं न. (पुष्पत्वम्) पुष्पपना, फूल पना; २-१५४ ।
पुप्फं न. (पुष्पम्) फूल; कुसुम; १-२३६, २-५३, ९० ।
पुप्फिमा स्त्री. (पुष्पत्वम्) पुष्पपना, फूलपना; २-१५४
पुरओ अ. (पुरतः) आगे से, पहले से; १-३७ ।
पुरंदरो पुं. (पुरन्दरः) इन्द्र, देवराज, गन्ध द्रव्य विशेष; १-१७७ ।
पुरा स्त्री. (पुर्) नगरी; शहर; १-१६ ।
पुरिमं न. (पूर्वम्) पहिले, काल-मान विशेष; २-१३५
पुरिल्लं वि. (पूर्वभवं) पहिले होने वाला; पूर्ववर्ती; २-१६३ ।
पुरिल्लो वि. (पुरो) पहिले, २-१६४ ।
पुरिसो पुं (पुरुषः) पुरुष, व्यक्ति; १-४२, ९१, १११; २-१८५ ।
पुरिसा पुं. (पुरुषाः) पुरुष, व्यक्ति; २-२०२ ।
पुरेकम्मं न. (पुराकर्म) पहिले के कर्म; १-५७ ।
पुलअ सक. (पश्य) देखो; २-२११ ।
पुलयं पुं. (पुलकं) रोमाञ्च को; २-२०४ ।
पुलोमी स्त्री. (पौलोमी) इन्द्राणी; १-१६० ।
पुव्वण्हो पुं. (पूर्वाह्नः) दिन का पूर्व भाग; १-६७; २-७५ ।
पुव्वं न. (पूर्वम्) पहिले; काल मान-विशेष; २-१३५
पुव्वाण्हो पुं. (पूर्वाह्नः) दिन का पूर्व भाग; १-६७ ।
पुहई स्त्री. (पृथिवी) पृथ्वी, धरती, भूमि; १-८८, १३१ ।
पुहं अ. (पृथक्) अलग, जुदा; १-१३७, १८८ ।
पुहवी स्त्री. (पृथिवी) पृथ्वी, धरती, भूमि; १-२१६ ।
पुहवीसो पुं. (पृथ्वीशः) राजा, पृथ्वी पति; १-६ ।
पुहुवी स्त्री. (पृथिवी) पृथ्वी, धरती; १-१३१; २-११३
पूसो पुं. (पुष्यः) पुष्य-नक्षत्र; १-४३ ।
पेआ स्त्री. (पेया) पीने योग्य वस्तु-विशेष; यवागू; १-२४८ ।
पेऊसं न. (पीयूषम्) अमृत, सुधा; १-१०५ ।
पेच्छ—
पेच्छसि सक. (प्रेक्षसे) तू देखता है; २-१०५
पेच्छ सक. (प्रेक्षस्व) देख; देखो; १-२३
पेच्छइ सक. (प्रेक्षते) वह देखता है; २-१४३
पेज्जा स्त्री. (पेया) पीने योग्य वस्तु विशेष; यवागू; १-२४८ ।
पेट्ठं न. (पेष्टम्) पीसा हुआ आटा, चूर्ण आदि; १-८५
पेढं न. (पीठम्) आसन, पीढा; १-१०६ ।
पेण्डं न. (पिण्डम्) पिण्ड, समूह, संघात; १-८५ ।
पेम्मं न (प्रेम) प्रेम, स्नेह; २-९८ ।
पेरन्तो पुं० (पर्यन्तः) अन्त सीमा, प्रान्त भाग; १-५८ २-६५ ।
पेरन्तं न. (पर्यन्तम्) अन्त सीमा, प्रान्त-भाग; २-९३
पेलवाणं वि. (पेलवानाम्) कोमल का; मृदु का; १-२३८
पेसो वि. (प्रेष्यः) भेजने योग्य; २-९२ ।
पोक्खरं न. (पुष्करम्) पद्म, कमल; १-११६; २-४ ।
पोक्खरिणी स्त्री. (पुष्करिणी) जलाशय विशेष, चौकोर बावड़ी; कमलिनी; २-४ ।
पोग्गलं न. (पुद्गलम्) रूप आदि युक्त मूर्त-द्रव्य विशेष; १-११६ ।
पोत्थओ पु. (पुस्तकः) लीपने पोतने का काम करने वाला; १-११६ ।
पोप्फलं न. (पूगफलम्) सुपारी; १-१७० ।
पोप्फली स्त्री (पूगफली) सुपारी का पेड़; १-१७० ।
पोम्मं न. (पद्मम्) कमल; १-६१; २-११२ ।
पोरो पुं० (पूतरः) जल में होने वाला क्षुद्र जन्तु; १-१७० ।

(फ)

फडालो वि. (फटावान्) फन वाला, सांप; २-१५९ ।
फणसो पुं. (पनसः) कटहर का पेड़; १-२३२ ।
फणी पुं. (फणी) सांप; फण वाला; १-२३६ ।
फन्दणं न (स्पन्दनम्) थोड़ा हिलना-फिरना; २-५३ ।
फरुसो वि. (परुषः) कर्कश, कठिन; १-२३२ ।
फलं न. (फलम्) फल; १-२३ ।
फलिहा स्त्री. (परिखा) खाई; किले या नगर के चारों ओर की नहर; १-२३२, २५४ ।
फलिहो पुं० (स्फटिकः) स्फटिक मणि; १-१८६, १९७

फलिहो पुं. (परिघः) अर्गला, आगल; ज्योतिष्-शास्त्र प्रसिद्ध एक योग; १-२३२, २५४।
फाडेइ सक. (पाटयति) वह फाड़ता है; १-१९८, २३२
फालिहद्दो पुं. (पारिभद्रः) फरहद का पेड़ देवदारु अथवा निम्ब का पेड़; १-२३२, २५४।
फालेइ सक. (पाटयति) वह फाड़ता है; १-१९८, २३२
फासो वि. (स्पर्शः) स्पर्श, छूना; २-९२।
फुल्फुल्लइ (देशज) सक. (?) २-१७४।

(ब)

बइल्लो (देशज) पुं. (बलीवर्दः) बैल, वृषभ; २-१७४।
बढरो, बढलो वि. पुं. (बठरः) मूर्ख छात्र; १-२५४।
बद्धफलो पुं. (बद्धफलः) करञ्ज का पेड़; २-९७।
बन्दि स्त्री. (बन्दि) हठ-हृत-स्त्री, बांदी; २-१७६।
बन्दीणं स्त्री. (बन्दिनाम्) बांदी वासियों का; १-१४२।
बन्ध
बन्धइ सक. (बध्नाति) वह बांधता है; १-१८७
बन्धेउं हे कृ. (बन्धितुम्) बांधने के लिये; १-१८१।
अणुबद्धं वि. (अनुबद्धम्) अनुकूल रूप से बंधा हुआ; २-१८४।
आबन्धतीए वकृ. (आबध्नत्या) बांधती हुई के; १-७।
बन्धो पुं. (बन्धः) बंधन, जीव कर्म-संयोग; १-१८७।
बन्धवो, बंधवो (बान्धवः) कुटुम्ब संबंधित पुरुष; १ ३०
बप्फो पुं. (बाष्पः) भाप, ऊष्मा; २-७०।
बम्भचेरं न. (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत, शील व्रत; २-७४
बम्भणो पुं. (ब्राह्मणः) ब्राह्मण; २-७४।
बम्हचरिअं न. (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत, शील व्रत; २-६३, १०७।
बम्हचेरं न. (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत; १-५९, २-६३, ७४, ९३।
बम्हणो पुं. (ब्राह्मणः) ब्राह्मण; १-६७; २-७४।
बम्हा पुं. (ब्रह्मा) ब्रह्मा, विधाता; २-७४।
बरिहो पुं. (बर्हः) मयूर, मोर; २-१०४।
बलया, बलाया स्त्री. (बलाका) बगुले की एक जाति; १-६७।

बली पुं. स्त्री. (बलिः) बल वाली अथवा बल वाला; १-३५।
बले अ. (निर्धारणे निश्चये च निपातः) निश्चय निर्णय-अर्थक अव्यय; २-१८५।
बहप्पई पुं. (बृहस्पतिः) ज्योतिष्क देव-विशेष; देव गुरु; २-१३७।
बहप्फई पुं. (बृहस्पतिः) ज्योतिष्क देव-विशेष; देव-गुरु; १-१३८; २-६९, १३७।
बहला वि. (बहुला) निबिड, निरंतर, गाढ़; २-१७७
बहस्सई पुं. (बृहस्पतिः) ज्योतिष्क देव-विशेष; देव-गुरु; २-६९, १३७।
बहिद्धा (देशज) अ. (?) बाहर अथवा मैथुन, स्त्री-संभोग; २-१७४।
बहिणी स्त्री. (भगिनी) बहिन; २-१२६।
बहिरो वि. (बधिरः) बहरा, जो सुन नहीं सकता हो वह; १-१८७।
बहु वि. (बहु) बहुत; प्रचुर, प्रभूत; २-१६४।
बहुअं वि. (बहुकं) प्रचुर, प्रभूत, बहुत; २-१६४।
बहुअअं वि. " " " " "
बहुअरो वि. (बहुतरः) बहुत में से बहुत; १-१७७।
बहु वल्लह वि. (बहुवल्लभ) प्रभूत वल्लभ; २-२०२।
बहुप्पई. बहुप्फई पुं. बृहस्पति देवताओं का गुरु; २-५३।
बहुवी क्रि. वि (बहु वी) अत्यन्त, अतिशय; २-११३
बहेडओ पुं. (बिभीतकः) बहेड़ा; फल-विशेष; १-८८, १०५, २०६।
बाम्हणो पुं. (ब्राह्मणः) ब्राह्मण; १-६७।
बारं न. (द्वारम्) दरवाजा; १-७९; २-७९, ११२
बारह संख्या वि. (द्वादश) बारह; १-२१९, २६२।
बाह पुं. (बाष्पः) अश्रु, आंसु; १-८२।
बाहो पुं. " " " २-७०।
बाहइ सक. (बाधते, विरोध करता है, पीड़ा पहुंचाता है; १-१८७।
बाहाए स्त्री. (बाहुना) भुजा से; १-३६।
बाहिं बाहिरं अ. (बहिः) बाहर; २-१४०।
बाहू पुं. (बाहुः) भुजा; १-३६।
बिइओ वि. (द्वितीयः) दूसरा; १-५, ९४।
बिइज्जो वि. " " १-२४८।
बिउणो वि. (द्विगुणः) दो गुणा; दूणा, १-९४; २-७९
बिंहिओ वि. (बृंहितः पुष्ट; उपचित, १-१२८।

बिन्दूइं, बिन्दुणो (बिन्दवः) अनेक बिन्दु अथवा बिन्दुओं को; १-३४।
बिल्लं न. (बिल्लम्) बिल्व का फल; १-८५।
बिस न. (बिस) कमल; १-७, २३८।
बिसी स्त्री. (बृषी) ऋषि का आसन; १-१२८।
बिहप्पई पुं. (बृहस्पतिः) देवताओं का गुरु; २-१३७।
बिहप्फई पु. " " " १-१३८; २-१३७।
बिहस्सई पुं. (बृहस्पतिः) देवताओं का गुरु; २ ६९; १३७।
बीओ सं. वि. (द्वितीयः) दूसरा; १-५, २४८; २-७९
बीहेमि अक. (बिभेमि) मैं डरता हूँ; १-१६९
बुज्झा सं. कृ. (बुद्ध्वा) बोध प्राप्त करके; २-१५।
बुहप्पई पुं. (बृहस्पतिः) देवताओं का गुरु; २-५३, १३७।
बुहप्फई पुं. (बृहस्पतिः) देवताओं का गुरु; १-१३८; २-५३, १३७।
बुहस्सई पुं. (बृहस्पतिः) देवताओं का गुरु; २-१३७
बुंधं न. (बुध्नम्) मूल-भाग; २-२६।
बेल्लं न. (बिल्वम्) बिल्व पेड़ का फल; १-८५
बोरं न. (बदरम्) बेर का फल; १-१७०।
बोरी स्त्री. (बदरी) बेर का गाछ; १-१७०।

(भ)

भइणी स्त्री (भगिनी) बहिन; स्वसा; २-१२६।
भइरवो पुं. (भैरवः) भैरवराग भयानक रस, नवविशेष; १-१५१
भओ पुं. (भयः) डर, त्रास; १-१८७।
भज्जा स्त्री. (भार्या) पत्नी, स्त्री; २-२४।
भट्टिओ पुं. (दे.) (विष्णुः) विष्णु, श्री कृष्ण; २-१७४
भडो पुं. (भटः) योद्धा, शूर, वीर; १-१९५।
भणिअं वि. (भणितम्) कहा हुआ, बोला हुआ; १-१९३ १९९।
भणिआ वि. (भणिता) बोलने वाली, कहने वाली; २-१८६।
भणिरी वि. (भणन-शीला) बोलने के स्वभाव वाली; २-१८०।
भत्तिवन्तो वि. (भक्तिमान्) भक्ति वाला, भक्त; २-१५९
भद्दं न. (भद्रम्) मंगल, कल्याण; २-८०।
भद्दं न. " " " "
भप्पो पुं. (भस्मः) राख, ग्रह विशेष; २-५१।
भमया स्त्री. (भ्रूः) नेत्र के ऊपर की केश-पंक्ति; २-१६७।
भमर पुं. (भ्रमर) भंवरा, अलि, मधुकर; १-६ २-१८३।
भमरो पुं. (भ्रमरः) भंवरा, अलि, मधुकर; १-२४४, २५४।
भमिअ सं. कृ. (भ्रान्त्वा) घूम करके; २-१४६
भमिरो वि. (भ्रमण-शीलः) घूमने के स्वभाव वाला; २-१४५।
भयप्पइ, भयस्सई पुं. (बृहस्पतिः) ज्योतिष्क देव-विशेष, देव-गुरु; २-६९, १३७।
भरहो पु. (भरतः) ऋषभदेव स्वामी के बड़े लड़के, प्रथम चक्रवर्ती; १-२१४।
भवओ अ. (भवतः) आपसे; १-३७।
भवन्तो सर्व. (भवन्तः) आप श्रीमान्, तुम; २-१७४।
भवन्तो सर्व. (भवन्तः) आप, तुम; १-३७।
भवारिसो वि. (भवादृशः) तुम्हारे जैसा, आपके तुल्य; १-१४२।
भव्विओ वि. (भव्यः) सुन्दर, श्रेष्ठ, मुक्ति-योग्य; २-१०७
भसलो पुं. (भ्रमरः) भंवरा, अलि, मधुकर; १-२४४; २५४।
भस्सो पुं. (भस्मा) राख, ग्रह-विशेष; २-५१।
भाउओ पुं. (भ्रातृकः) भाई, बन्धु; १-१३१।
भाणं न. (भाजनम्) पात्र, आधार-योग्य, बरतन; १ २६७।
भामिणी स्त्री. (भामिनी) महिला, स्त्री; १-१९०।
भायणं न. (भाजनं) पात्र, आधार-योग्य, बरतन; १-२६७; २-२११।
भायणा, भायणाइं न. (भाजनानि) पात्र, बरतन; १-३३
भारिआ स्त्री. (भार्या) पत्नी, स्त्री; २ २४, १०७।
भासा स्त्री. (भाषा) बोली, भाषा; १-२११।
भिउडी स्त्री. (भ्रुकुटी) भौंह का विकार, भ्रकुटी; १-११०।
भिऊ पुं. (भृगुः) भृगु नामक एक ऋषि; १-१२८।
भिङ्गारो पुं. (भृङ्गारः) भ्रमर; भंवरा; १-१२८।

भिङ्गो पुं. (भृङ्गः) भ्रमर भय जल-पात्र; १-१२८।

भिण्डिवालो पुं. (भिन्दिपालः) शस्त्र-विशेष; २-३८, ८९

भिप्फो वि. (भीष्मः) भय जनक, भयंकर; २-५४।

भिब्भलो वि. (विह्वलः) व्याकुल, घबड़ाया हुआ; २-५८, ९०।

भिमोरो (देशज) पुं. (हिमोरः) हिम का मध्य भाग (?); २-१७४।

भिसओ पुं. (भिषक्) वैद्य, चिकित्सक; १-८।

भिसिणी स्त्री. (बिसिनी) कमलिनी, पद्मिनी; १-२३८, २-२११।

भीआए स्त्री. (भीतया) डरी हुई से; २-१९३।

भुअयन्तं भुआयन्तं न. (भुज-यन्त्रम्) बाहु-यन्त्र, भुजा-यन्त्र; १-४।

भुई स्त्री. (भृतिः) भरण, पोषण, वेतन, मूल्य; १-१३१।

भुज् सक. खाना, भक्षण करना, भोगना।

भोच्चा सक. संबं कृ. (भुक्त्वा) भोग करके; २-१५।

भुत्तं वि. (भुक्तम्) भोगा हुआ; २-७७, ८९।

भुमया स्त्री. (भ्रूमया) भौंह वाली; आंख के ऊपर की रोम-राजि वाली; १-१२१; २-१६७।

भू अक. होना।

होइ अक. (भवति) वह होता है; १-९; २-२०६।

हुवउ विधि. (भव, भवतात्) तू हो; ४-१८०।

होही भूतकाल (अभवत्) वह हुआ; "

बहुत्तं वि. (प्रभूतम्) बहुत; १-२३३; २९८।

भेडो वि. (देशज) (भेरः) भीरु, कातर, डरपोक; १-२५१।

भेत्तूआण संबंध- कृ. (भित्त्वा) भेदन करके; २-१४६।

भोअण-मत्ते न. (भोजन-मात्रे) भोजन-मात्र में; १-१०२

भोअण-मेत्तं न. (भोजन-मात्रं) भोजन-मात्र; १-८१।

भोच्चा संबंध कृ. (भुक्त्वा) खा करके, पालन करके, भोग करके, अनुभव करके; २-१५।

भ्रम् अक. घूमना, भ्रमण करना, चक्कर खाना;

भमिअ संबंध कृ. (भ्रमित्वा) घूम करके;

(म)

मए सर्व. (मया) मुझ से; २-१९९, २०१, २०३

मअङ्को पुं. (मृगाङ्कः) चन्द्रमा; १-११८।

मइलं वि. (मलिनम्) मैला, मल-युक्त, अस्वच्छ; २-१३८।

मईअ वि. (मदीय) मेरा, अपना; २-१४७।

मउ-अत्तयाइ वि. (मृदुकत्वेन) कोमलपने से, सुकुमारतासे; २-१७२।

मउअं न. (मृदुकम्) कोमलता; १-१२७।

मउडं न. (मुकुटम्) मुकुट, सिरपेंच; १-१०७।

मउणं न. (मौनम्) मौन; १-१६२।

मउत्तणं न. (मृदुत्वम्) कोमलता; १-१२७।

मउरं न. (मुकुरम्) मौर (आम मञ्जरी); बकुल का पेड़, शीशा; १-१०७।

मउलणं न. (मुकुलनम्) थोड़ी विकसित कली; २-१८४

मउलं न. (मुकुलम्) " " " १-१०७

मउली स्त्री पुं. मौलिः मुकुट, बाँधे हुए बाल; १-१६२

मउलो स्त्री. पु. (मुकुलम्) थोड़ी विकसित कली; १-१०७।

मउवी वि. (मृद्वी) कोमलता वाली; २-११३।

मऊरो पु. (मयूरः) पक्षि-विशेष; मोर; १-१७१।

मऊहो पुं. (मयूखः) किरण, रश्मि, कान्ति तेज, १-१७१

मओ पुं. (मृगः) हरिण; १-१२६।

मंजारो पुं. (मार्जारः) बिलाव, बिल्ला; १-२६

मंसं न. (मांसम्) मांस, गोश्त; १-२९, ७०।

मंसलं वि. (मांसलम्) पुष्ट, पीन उपचित; १-२९

मंसुल्लो वि. (श्मश्रुमान) दाढ़ी-मूंछ वाला; २-१५९।

मंसू पुं. न. (श्मश्रुः) दाढ़ी मूंछ १-२६; २-८६।

मग्गओ अ. (मार्गतः) मार्ग से; १-३७।

मग्गन्ति क्रिया. (मृग्यन्ते) ढूंढे जाते हैं, अनुसन्धान किये जाते हैं; १-३४।

मग्गू पुं. (मद्गुः) पक्षि-विशेष; जल काक; २-७७

मघोणो देशज पु. (मघवान्) इन्द्र, २-१७४।

मच्चू पुं. (मृत्युः) मौत, मृत्यु, मरण; यमराज, १-१३०

मच्छरो, मच्छलो वि. (मत्सरः) ईर्ष्यालु, द्वेषी, क्रोधी, कृपण; २-२१।

मच्छिआ स्त्री. (मक्षिका) मक्खी; जन्तु-विशेष; २-१७

मज्ज्—

णुमज्जइ अक. क्रिया. (निमज्जति) डूबता है, तल्लीन होता है; १-९४।

णुमज्जो वि. (निमग्नः) डूबा हुआ, तल्लीन हुआ; १-९४, १७४।

मज्जं न. (मद्यम्) दारू; मदिरा; २-२४।

मज्जाया स्त्री: (मर्यादा) सीमा, हद, अवधि, कूल, किनारा; २-२४।

मज्जारो पु. (मार्जारः) बिल्ला, बिलाव; १-२६; २-१३२।

मज्झण्हो, मज्झन्न पु. (मध्याह्नः) दिन का मध्य भाग; दोपहर; २-८४।

मज्झं न. (मध्यम्) संख्या विशेष, अन्त्य और परार्ध्य के बीच की संख्या; २-२६, ९०।

मज्झिमो पु. (मध्यमः) मध्यम; १-४८।

मञ्जरो पु. (मार्जारः) मंजार, बिलाव, बिल्ला; २-१३२

मञ्जारो पु. " " बिल्ला, बिलाव; १-२६

मट्टिआ स्त्री. (मृत्तिका) मिट्टी; २-२९।

मट्ठं वि. न. (मृष्टम्) मार्जित, शुद्ध, चिकना; १-१२८

मट्ठा वि. (मृष्टाः) घिसे हुए; चिकने किये हुए; २-१७४।

मडप्फर (देशज) पु. (? गर्वः) अभिमान, अहंकार; २-१७४।

मडयं न. (मृतकम्) मुर्दा, शव, लाश; १-२०६।

मडह सरिआ वि. (हे मृतक-सदृश !) हे मुर्दे के समान; २-२०१।

मड्डिओ वि. (मर्दितः) जिसका मर्दन किया गया हो वह; २-३६।

मढो पु. (मठः) सन्यासियों का आश्रम, व्रतियों का निवास स्थान; १-१९९।

मणयं अ (मनाक्) अल्प, थोड़ा; २-१६९।

मणसिला स्त्री. (मनःशिला) लाल वर्ण की एक उप धातु; १-२६।

मणहरं वि. (मनोहरम्) रमणीय, सुन्दर; १-१५६।

मणंसिला स्त्री. (मनःशिला) लालवर्ण की एक उपधातु, मैनशील; १-२६।

मणंसी, मणंसिणी पु. स्त्री. (मनस्वी, मनस्विनी) प्रशस्त मन वाला अथवा प्रशस्त मन वाली; १-२६, ४४।

मणा अ (मनाक्) अल्पसा, थोड़ासा; २-१६९।

मणासिला स्त्री. (मनःशिला) लालवर्ण की एक उपधातु, मैनशील; १-२६, ४३।

मणिअं अ. (मनाक्) अल्प, थोड़ा; २-१६९।

मणुअत्तं न. (मनुजत्वम्) मनुष्यता; १-८।

मणूसो पुं० (मनुष्यः) मनुष्य; १-४३।

मणे अ. (विमर्श-अर्थक) विचार-कल्पना के अर्थ में प्रयोग किया जाने वाला अव्यय-विशेष; २-२०७।

मणोज्जं, मणोण्णं वि. (मनोज्ञम्) सुन्दर, मनोहर; २-८३

मणोसिला स्त्री. (मनःशिला) लालवर्ण की एक उपधातु; १-२६।

मणोहरं वि. (मनोहरम्) रमणीय, सुन्दर; १-१५६।

मण्डलग्गं न. (मण्डलाग्रम्) मण्डल का अग्र भाग तलवार १-३४।

मण्डलग्गो पुं० (मण्डलाग्रः) तलवार, खड्ग; १-३४।

मण्डुक्को पुं० (मण्डूकः) मेंढक, दादुर; २-९८।

मत्ते [illegible]

मन्—

मन्ने सक. (मन्ये) मैं मानता हूं; १-१७१।

माणिओ वि. (मानितः) माना हुआ, सम्मान किया हुआ; २-१८०।

मन्तू पुं० (मन्युः) क्रोध, अहंकार, अफसोस; २-४४

मन्दरयड पुं० (मन्दर तट) मेरु पर्वत का तट किनारा २-१७४।

मन्नू पुं० (मन्युः) क्रोध, अहंकार, अफसोस; २-२५ ४४।

मन्ने सक. (मन्ये) मैं मानता हूं; १-१७१।

मम्मणं न. (मन्मनम्) अव्यक्त वचन; २-६१।

मम्मो पु. (मर्म) रहस्यपूर्ण गुप्त बात; जीवन स्थान, सन्धि; १-३२।

मयगलो वि. (मदकलः) मद के उत्कट, नशे में चूर; १-१८२।

मयङ्को पु. (मृगाङ्क) चन्द्रमा; १-१३०, १७७, १८०

मयच्छि स्त्री. (मृगाक्षी) हरिण के नेत्रों जैसी सुन्दर नेत्रों वाली स्त्री. २-१९३।

मयणो पु. (मदनः) कन्दर्प, कामदेव; १-१७७, १८० २२८।

मयर-द्धय पु. (मकर-ध्वज) कन्दर्प, कामदेव; १-७।

मरगय पु. (मरकत) नीलवर्ण वाला रत्न-विशेष; पन्ना; २-१११।

मरगयं न. (मरकतम्) नीलवर्ण वाला रत्न-विशेष; १-१८२ ।
मरणा वि. (मरणा) मृत्यु धर्म वाले; १-१०३ ।
मरहट्ठो पु. (महाराष्ट्रः) प्रान्त विशेष; मराठा भाषा; १-६९ ।
मरहट्ठं न. (महाराष्ट्रम्) प्रान्त विशेष; मराठा भाषा; १-६९; २-११९ ।
मलय पुं. (मलय) पर्वत विशेष, मलयाचल; २-९७
मलिअ वि. (मृदित) मसला हुआ; ४-७ ।
मलिणं, मइलं वि. (मलिनम्) मैला, मल-युक्त; २-१३८
मल्लं न० (माल्यम्) मस्तक स्थित पुष्पमाला; २-७९
मसणं वि. (मसृणम्) स्निग्ध, कोमल, सुकुमाल, चिकना; १-१३० ।
मसाणं न. (श्मशानम्) मसाण, मरघट; २-८६ ।
मसिणं वि. (मसृणम्) स्निग्ध, चिकना, कोमल, सुकु-माल; १-१३० ।
मस्सू पुं. न० (श्मश्रुः) दाढ़ी-मूंछ; २-८६ ।
महइ, महए सक. (कांक्षति) वह इच्छा करता है; १-५ ।
महण्णव पुं० (महार्णव) महासमुद्र; १-२६९ ।
महन्तो वि. (महान्) अत्यन्त बड़ा; २-१७४ ।
महपिउल्लओ वि. (महापितृकः) पितामह से संबंधित; २-१६४ ।
महपुण्डरिए पुं० (महापुण्डरीकः) ग्रह विशेष; २-१२० ।
महमहिअ वि. (महमहित) फैला हुआ; १-४६ ।
महा-पसु पुं० (महापशु) बड़े पशु; १-८ ।
महिमा पुं० स्त्री. (महिमा) महत्व, महानता; १-३५
महिला स्त्री. (महिला) स्त्री, नारी; १-१४६ ।
महिवट्ठं न. (मही-पृष्ठम्) पृथ्वी का तल; १-१२९ ।
महिवालो पुं० (मही-पाल:) राजा; १-२३१ ।
महुअं न. (मधूकम्) महुआ का फल; १-१२२ ।
महुरव्व अ. (मथुरावत्) मथुरा नगरी के समान; २-१५० ।
महुलट्ठी स्त्री: (मधु-यष्टिः) औषधि-विशेष इक्षु, ईख; १-२४७ ।
महूअं न. (मधूकम्) महुआ का फल; १-१२२ ।
महेला स्त्री. (महिला) स्त्री नारी; १-१४६ ।
मा अ० (मा) मत, नहीं; २-२०१ ।
माइं अ० (मा) मत, नहीं; २-१९१ ।
माइहरं न० (मातृ-गृहम्) माता का घर; १-१३५
माईण स्त्री. (मातृणाम्) माताओं का, की, के १-१३५ ।
माउअं वि. (मृदुकम्) कोमल, सुकुमाल; २-९९
माउआ स्त्री. (मातृका) माता संबंधी; स्वर आदि मूल वर्ण; १-१३१
माउओ वि. (मातृकः) माता संबंधी; स्वर आदि मूल वर्ण; १-१३१
माउक्कं न. (मृदुत्वम्) कोमलता; १-१२७; २-२, ९९
माउच्छा स्त्री. (मातृष्वसा) माता की बहिन, मौसी; २-१४२ ।
माउत्तणं न. (मृदुत्वम्) कोमलता; २-२ ।
माउमण्डलं न. (मातृ-मण्डलम्) माताओं का समूह; १-१३४
माउलुङ्ग न. (मातुलुङ्गम्) बीजोरे का फल; १-२१४ ।
माउसिआ स्त्री. (मातृष्वसा) माता की बहिन, मौसी; १-१३४; २-१४२ ।
माउहरं न. (मातृगृहम्) माता का घर; १-१३४, १३५
माणइ सक. (मानयति) वह सम्मान करता है, अनुभव करता है; ४-२२८ ।
माणइत्तो पुं० (मानवान्) इज्जत वाला; २-१५९ ।
माणंसी पुं. (मनस्वी) अच्छे मन वाला, १-४४ ।
माणंसिणी स्त्री (मनस्विनी) अच्छे मन वाली; १-४४ ।
माणस्स पुं. न. (मानाय) मान के लिये; २-१९५ ।
माणिओ वि. (मानितः) सन्मान किया हुआ; २-१८० ।
मामि अ. (सखी-आमन्त्रण-अर्थक) सहेली को बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय-विशेष; २-१९५ ।
मायन्दो (देशज) पुं. (माकन्दः) आम्र, आम का पेड़; २-१७४ ।
माला स्त्री. (माला) माला; २-१८२ ।
मालस्स वि. (मालस्य) माला वाले का; १-४
मासं न. (मासम्) मांस, मांस; १-२९; ७० ।
मासलं वि. न (मांसलम्) पीन, पुष्ट, उपचित; १-२९
मासू पुं० न (श्मश्रुः) दाढ़ी-मूंछ; २-८६ ।
माहप्पो पुं० (माहात्म्यम्) बड़प्पन; १-३३ ।
माहप्पं पुं० (माहात्म्यम्) बड़प्पन; १-३३
माहुलिङ्गं न. (मातुलिङ्गम्) बीजोरे का फल; १-२१४ ।

माहो पुं० (माघः) कवि विशेष; एक महीने का नाम; १-१८७।

मिअङ्को पुं० (मृगाङ्कः) चन्द्रमा; १-१३०।

मिइङ्गो पुं० (मृदंगः) मृदंग; बाजा विशेष; १-१३७।

मिच्चू पुं० (मृत्युः) मृत्यु, मरण, यमराज; १-१३०

मिच्छा अ. (मिथ्या) असत्य, झूठ; २-२१।

मिट्ठं वि. (मृष्टं) मीठा, मधुर; १-१२८।

मिरिअं न. पु० (मरिचम्) मरिच का गाछ; मिरच; १-१४६।

मिलाइ अक. (म्लायति) वह म्लान होता है, निस्तेज होता है; २-१०६।

मिलाणं वि. (म्लानम्) म्लान, निस्तेज; २-१०६।

मिलिच्छो पुं० (म्लेच्छः) म्लेच्छ, अनार्य पुरुष; १-८४

मिव अ. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा के संयोग में काम आने वाला अव्यय विशेष; २-१८२।

मिहुणं न. (मिथुनम्) स्त्री-पुरुष का जोड़ा; दम्पति; ज्योतिष-प्रसिद्ध एक राशि; १-१८८।

मीसं न. (मिश्रम्) मिलावट वाला; १-४३; २-१७०

मीसालिअं वि. (मिश्रितम्) संयुक्त, मिला हुआ; २-१७०

मुइङ्गो पुं. (मृदङ्गः) मृदङ्ग; १-४६, १३७।

मुक्को वि. (मुक्तः) छोड़ा हुआ, व्यक्त; मोक्ष-प्राप्त; २-२।

मुक्को वि. (मूकः) गूंगा, वाक्-शक्ति से रहित; २-९९

मुक्खो वि. (मूर्खः) मूर्ख, अज्ञानी; २-८९, ११२।

मुच्;

मुञ्चइ सक. (मुञ्चति) वह छोड़ता है; २-२०६

मोत्तुं सं. कृ. (मुक्त्वा) छोड़ करके, २-१४६।

मुत्तो वि. (मुक्तः) छूटा हुआ; २-२।

मुक्को, पम्मुक्कं, पमुक्कं वि. (प्रमुक्तम्) छूटा हुआ; २-९७।

मुच्छा स्त्री. (मूर्च्छा) मोह, बेहोशी, आसक्ति; २-९०

मुञ्जायणो पुं. (मौञ्जायनः) ऋषि विशेष; १-१६०।

मुट्ठी पुं० स्त्री. (मुष्टिः) मुट्ठी, मूठी, मुक्का; २-३४

मुणसि सक. (जानासि) तू जानता है; २-२०९।

मुणन्ति सक. (जानन्ति) वे जानते हैं; २-२०४

अमुणन्ती वि. क. (अजानन्ती) नहीं जानती हुई; २-१०९।

मुणिआ वि. (ज्ञाता) जानी हुई; जान ली गई; २-१९९।

मुणालं न. (मृणालम्) पद्म, कमल; १-१३१।

मुणिन्दो पुं. (मुनीन्द्रः) मुनियों के आचार्य; १-८४।

मुण्ढा पुं. (मूर्द्धा) मस्तक, सिर; १-२६, २-४१।

मुत्ताहलं न. (मुक्ताफलम्) मोती; १-२३६।

मुत्ती स्त्री. (मूर्तिः) रूप, आकार, काठिन्य; २-३०

मुत्तो वि. (मूर्तः) आकृति वाला, कठिन, मूढ़, मूर्च्छा-युक्त; २-३०।

मुत्तो वि. (मुक्तः) छूटा हुआ; त्यक्त; मुक्ति-प्राप्त; २-२।

मुद्ध वि. (मुग्ध) मोह-युक्त, सुन्दर, मनोहर, मूढ़; १-१[illegible]

मुद्धाइ, मुद्धाए स्त्री. (मुग्धया) मोहित हुई स्त्री से; १-५।

मुद्धं वि. (मुग्धम्) मूढ़, सुन्दर, मोह-युक्त; २-७७

मुद्धा पुं० (मूर्धा) मूर्धा, मस्तक, सिर; २-४१।

मुरन्दले पुं. (मुरन्दले !) हे मुरन्दल; २-१९४।

मुरुक्खो वि. (मूर्खः) मूर्ख, अज्ञानी; २-११२।

मुव्वहइ सक. (उद्वहति) वह धारण करता है; वह उठाता है; २-१७४।

मुसलं न. (मुसलम्) मूसल; १-११३।

मुसा अ. (मृषा) मिथ्या, अनृत, झूठ; १-१३६।

मुसावाओ पुं. (मृषावादः) मिथ्या वचन, झूठे बोल; १-१३६।

मुह न. (मुख) मुंह, वदन, मुख; १-२४९।

मुहं न. (मुखम्) मुंह, वदन, मुख; १-१८७; २-१६४।

मुहलो वि. (मुखरः) वाचाल, बकवादी, बहुत बोलने वाला; १-२५४।

मुहुत्तो पुं. (मुहूर्तः) दो घड़ी का काल; अड़ चालीस मिनिट का समय; २-३०।

मुहुल्लं न. (मुखकम्) मुंह, मुंह, मुख; २-१६४।

मूओ वि (मूकः) वाक्-शक्ति से रहित, गूंगा; २-९९

मूसओ पुं. (मूषकः) चूहा; १-८८।

मूसलं न. (मुसलम्) मूसल; १-११३।

मूसा अ. (मृषा) मिथ्या, अनृत, झूठ; १-१३६।

मूसावाओ पुं. (मृषावादः) मिथ्या वचन, झूठे बोल; १-१३६।

मेढी पुं. (मेथिः) खलिहान में पशु को बांधने का काष्ठ-विशेष; १-२१५ ।

मेत्तं न. (मात्रम्) मात्र, सौभाग्य; १-८१ ।

मेरा स्त्री. देशज. (?) (मिरा) मर्यादा, १-८७ ।

मेहला स्त्री. (मेखला) काञ्ची, करधनी, कटि में पहिनने का आभूषण; १-१८७ ।

मेहा पुं. (मेघाः) बादल; १-१८७ ।

मेहो पुं. (मेघः) बादल; १-१८७ ।

मोक्खं न. (मोक्षम्) छुटकारा, मुक्ति; २-१७६ ।

मोग्गरो पुं. (मुद्गरः) मोगरा का गाछ, पेड़ विशेष, मुद्गर; १-११६; २-७७ ।

मोण्डं न. (मुण्डम्) मुण्ड, मस्तक, सिर; १-११६, २०२

मोत्तूं संबंध कृ. (मुक्त्वा) छोड़ करके; २-१४६ ।

मोत्था स्त्री. (मुस्ता) मोथा, नागर मोथा नामक औषधि विशेष, १-११६ ।

मोरउल्ला अ. (मुधा) व्यर्थ, फिजूल; २-२१४ ।

मोरो पुं. (मयूरः) पक्षि-विशेष; मोर; १-१७१ ।

मोल्लं न. (मूल्यम्) कीमत; १-१२४ ।

मोसा अ. (मृषा) झूठ, मिथ्या, अनृत; १-१३६ ।

मोसावाओ पुं. (मृषावादः) मिथ्या वचन, झूठे बोल; १-१३६ ।

मोहो पुं. (मयूखः) किरण, रश्मि, तेज, कान्ति, शोभा, १-१७१ ।

(य)

य अव. (च) हेतु-सूचक, संबंध-सूचक अव्यय; और २-१८४; १-५७ ।

यडं न. (तटम्) किनारा; १-४ ।

जामि अक. (यामि) मैं जाता हूं; २-२०४ ।

(र)

र अ. (पाद पूरणे) श्लोक चरण की पूर्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने वाला अव्यय विशेष; २-२१७ ।

रअणीअरो पु. (रजनीचरः) रात्रि में चलने वाले राक्षस आदि; १-८ ।

रइ स्त्री. (रति) नाम-विशेष; कामदेव की स्त्री;

रग्गो पुं. (रक्तः) लाल वर्ण, २-१०, ८९ ।

रच्—

विरएमि अक. (विरमामि) मैं क्रीडा करता हूं; २-२०३ ।

रणरणयं (देशज वि.) (रणरणकम्) निश्वास, उद्वेग, उत्कण्ठा; २-२०४ ।

रण्णं न. (अरण्यम्) जंगल; १-६६ ।

रत्ती स्त्री. (रात्रिः) रात, निशा; २-७९, ८८ ।

रत्तो वि. पु (रक्तः) लाल वर्ण वाला; २-१० ।

रभ्—

आढत्तो, आरद्धो वि. (आरब्धः) शुरु किया हुआ; २-१३८ ।

रम्—

रमइ अक. आत्मने पदी (रमते) वह क्रीडा करता है; १-२०२ ।

रमिअ संबंध कृ. (रमित्वा) रमण करके; २-१४६ ।

रयणं न. (रत्नम्) रत्न, माणिक्य, मणि; २-१०१

रयणीअरो पुं० (रजनीचरः) रात्रि में चलने वाला राक्षस, १-८ ।

रययं न. (रजतम्) चांदी नामक धातु; १-२०९

रययं न. " " " " १-१७७; १८०, २०९ ।

रवी पुं० (रविः) सूर्य; १-१७२ ।

रस पुं. न. (रस) मधुर आदि रस; २-१६४ ।

रसायलं न. (रसातलं) पाताल लोक, पृथ्वी के नीचे का अंतिम भाग; १-१७७, १८० ।

रसालो पुं. (रसालः) आम्र वृक्ष, आम का गाछ; २-१५९ ।

रस्सी स्त्री. (रश्मिः) किरण, रस्सी; १-३५; २-७४, ७८ ।

रहस्सं वि. (रहस्यम्) गुह्य, गोपनीय, एकान्त का; २-१९८, २०४ ।

रहुवइणा पुं. (रघुपतिना) रघुपति से; २-१८८

राइक्कं न. (राजकीयम्) राज-संबंधी; २-१४८ ।

राई स्त्री. (रात्रिः) रात. निशा; २-८८ ।

राईवं न (राजीवम्) कमल, पद्म; १-१८० ।

राउलं न. (राजकुलम्) राज-समूह; राजा का वंश; १-२६७ ।

राओ पु. (रागः) रंगना; रञ्जन; १-६८।

राम पु. (राम) श्री रामचन्द्रजी; २-१६४।

रायउलं न. (राजकुलम्) राज-समूह; राजा का वंश; १-१६७।

रायकेरं न. (राजकीयम्) राज संबंधी; २-१४८।

रायवट्टयं न. (राज वार्तिकम्) राज-संबंधी वार्ता-समूह; २-३०।

रायहरं न. (राजगृहम्) राजा का महल; २-१४४।

रि अ. (रे) संभाषण अथवा संबोधन अर्थक अव्यय; २-२१७।

रिऊ पु. (ऋतुः) ऋतु; दो मास का काल विशेष; १-१४१, २०९।

रिऊ पु. (रिपुः) शत्रु, दुश्मन; १-१७७, २३१।

रिक्खो पु. (ऋक्षः) रीछ, भालू; २-१९।

रिक्खं पु. (ऋक्षम्) रीछ को; भालू को; २-१९।

रिच्छो पु. (ऋक्षः) रींछ, भालू; १-१४०, २-१९।

रिच्छं पु. (ऋक्षम्) रींछ को, भालू को; २-१९

रिज्जू वि. (ऋजुः) सरल, निष्कपट, सीधा; १-१४१

रिणं न. (ऋणम्) ऋण, कर्ज; १-१४१।

रिद्धी स्त्री. (ऋद्धिः) संपत्ति, समृद्धि, वैभव; १-१२८, १४०; २-४१।

रिसहो पु. (ऋषभः) प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ प्रभुः; १-१४१।

रिसी पु (ऋषिः) ऋषि; मुनि, साधु, ज्ञानी महात्मा; १-१४१।

रुअं न. (रुतम्) शब्द, आवाज; १-१४१।

रुक्ख पु. न. (वृक्ष) पेड़, गाच्छ, पादप; २-१९।

रुक्खो पु. (वृक्षः पेड़, गाच्छ, पादप; २-१२७

रुक्खाइं न. (वृक्षाः) पेड़, गाच्छ, पादप; १-३४

रुक्खा पु. (वृक्षाः) ,, ,, ,, ,,

रुण्णं वि. (रुदितम्) रोया हुआ; रुदन किया हुआ; १-२०९।

रुद्दो पु० (रुद्रः) महादेव, नाम-विशेष; २-८०।

रुद्दा स्त्री. " " " " "

रुप्पिणी स्त्री. (रुक्मिणी) नाम विशेष; वासुदेव की पत्नी; २-५२।

रुप्पी वि. (रुक्मी) सोना वाला, चांदी वाला; २-५२, ८९।

रुहिरं पुं० (रुधिर) रक्त; खून; १-६।

रूवो पु. (रूपः) आकृति; १-१४२।

रूवेण पु. (रूपेण) आकृति से; आकार से; २-१८४।

रे अ. (रे) परिहास, अधिक्षेप, आक्षेप, तिरस्कार आदि अर्थक अव्यय; २-२०१।

रेफो पु. (रेफः) 'र' अक्षर, रकार; दुष्ट, निर्दय, गरीब; १-२३६।

रेहइ अक. (राजते) शोभित होती है; २-२११

रेहा स्त्री. (रेखा) चिन्ह विशेष, लकीर २-७।

रेहिरो पु. (रेखावान्) रेखा वाला; २-१५९।

रोविरो वि. (रोदिता) रोने वाला; २-१४५।

रोसं पु. (रोषम्) क्रोध को; २-१९०, १९१।

(ल)

लक्खण पु. न. (लक्षण) अन्य से भेद-सूचक चिन्ह; वस्तु-स्वरूप; २-१७४।

लक्खणं न. (लक्षण) लक्षण, चिन्ह, २-३।

लग्गो पु० (लग्नः) स्तुति-पाठक; २-७८।

लङ्गलं न. (लांगलम्) हल; १-२५६।

लङ्गूलं न. (लांगूलम्) पुच्छ, पूंछ; १-२५६।

लङ्घणं न. (लंघनम्) भोजन नहीं करना; १-३०।

लच्छी स्त्री. (लक्ष्मीः) संपत्ति, वैभव कान्ति; २-१७

लञ्छणं न. (लाञ्छनम्) चिन्ह, अंकन; १-२५, ३०।

लंछणं न. " " " १-३०।

लज्जालुआ स्त्री. (लज्जावती) लज्जावाली; २-१५९

लज्जालुइणी ,, ,, , २-१७४

लज्जिरो वि. (लज्ज वान्) लज्जा शील; २ १४५

लट्ठी स्त्री. (यष्टिः) लाठी, छड़ी; १-२४७; २-३४

लण्हं न. (श्लक्ष्णम्) लोहा, धातु-विशेष; २-७७
वि. (चिकना, अथवा अल्प)

लभ्-

लब्भइ सक. (लभते) वह प्राप्त करता है; १-१८७।

लिच्छइ सक (लिप्सते) वह लालसा करता है, प्राप्त करना चाहता है; २-२१।

लल्लक्क वि. देशज, (?) भीम, भयंकर; २-१७४।

लवण न. (लवण) नमक; १-१७१।

लहुअं न. (लघुकं) कृष्णागुरु, सुगन्धित धूप द्रव्य विशेष; १-१२२ ।

लहुवी स्त्री. वि. (लघ्वी) मनोहर, सुन्दर; छोटी; २-११३ ।

लाउं, लाऊ न. (अलाबुम्) तुम्बड़ी, फल-विशेष; १-६६ ।

लायण्णं न. (लावण्यम्) शरीर-सौन्दर्य, कान्ति; १-१७७, १८० ।

लासं न. (लास्यम्) वाद्य, नृत्य और गीतमय नाटक विशेष; २-९२ ।

लाहइ सक. (श्लाघते) वह प्रशंसा करता है; १-१८७

लाहलो पु. (लाहलः) म्लेच्छ-जाति-विशेष; १-२५६ ।

लिहइ सक. (लिखति) वह लिखता है; १-१८७

लित्तो वि. (लिप्तः) लीपा हुआ; लगा हुआ; १-६ ।

लिम्बो पु. (निम्बः) नीम का पेड़; १-२३० ।

लुक्को वि. (रुग्णः) बीमार, रोगी, भग्न; १-२५४; २-२

लुग्गो वि. (रुग्णः) बीमार, रोगी, भग्न; २-२ ।

लेहेण वि. (लेखेन) लेख से; लिखे हुए से; २-१८९ ।

लोओ पु. (लोकः) लोक, जगत्, संसार; १-१७७; १-२४० ।

लोअस्स पु. (लोकस्य) लोक का; प्राणी वर्ग का; १-१८० ।

लोअणा पु. न. (लोचनानि) आँखें अथवा आँखों को; १-३३; २-७४ ।

लोअणाई पु. न. (लोचनानि) आँखें अथवा आँखों को; १-३३ ।

लोअणाणं पु. न. (लोचनानाम्) आँखों का, की के; २-१८४ ।

लोगस्स पु. (लोकस्य) लोक का, संसार का, प्राणी वर्ग का; १-१७७ ।

लोणं न. (लवणम्) नमक; १-१७१ ।

लोद्धओ पु. (लुब्धकः) लोभी, शिकारी; १-११६; २-७९

(व)

व अ. (वा) अथवा, १-६७ ।

इव, व अ. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षार्थक अव्यय विशेष; २-१८२; १८२ ।

वइआलिओ वि. (वैतालिकः) मंगल-स्तुति आदि से जगाने वाला मागध आदि; १-१५२ ।

वइआलीअं न. (वैतालीयम्) छन्द-विशेष; १-१५१ ।

वइएसो वि. (वैदेशः) विदेशी, परदेशी; १-१५१ ।

वइएहो वि. (वैदेहः) मिथिला देश का निवासी विशेष; १-१५१ ।

वइजवणो वि. (वैजवनः) गोत्र-विशेष में उत्पन्न; १-१५१

वइदब्भो पु. (वैदर्भः) विदर्भ देश का राजा आदि ,

वइरं न. (वज्रम्) रत्न-विशेष, हीरा, ज्योतिष-प्रसिद्ध एक योग; १-६; २-१०५ ।

वइरं न. (वैरम्) शत्रुता, दुश्मनी की भावना; १-१५२ ।

वइसम्पायणो पु. (वैशम्पायनः) व्यास ऋषि का शिष्य; १-१५२ ।

वइसवणो पु. (वैश्रवणः) कुबेर; १-१५२ ।

वइसालो वि. (वैशालः) विशाला में उत्पन्न; १-१५१ ।

वइसाहो पु. (वैशाखः) वैशाख नामक मास विशेष; १-१५१ ।

वइसिअं न. (वैशिकम्) जैनेतर शास्त्र विशेष; काम-शास्त्र; १-१५२ ।

वइस्साणरो पु. (वैश्वानरः) वह्नि, चित्रक वृक्ष, सामवेद का अवयव विशेष; १-१५१ ।

वंसिओ वि. (वांशिकः) बाँस वाद्य बजाने वाला; १-७०

वंसो पु. (वंशः) संतान-संतति, माल-वृक्ष, बांस; १-२६० ।

वक्कं न. (वाक्य) पद समुदाय; शब्द-समूह; २-१७४

वक्कलं न. (वल्कलम्) वृक्ष की छाल; २-७९ ।

वक्खाणं न. (व्याख्यानम्) कथन, विवरण, विशद रूप से अर्थ-प्ररूपण, २-९० ।

वग्गो पु. (वर्गः) जातीय समूह; पञ्च-परिच्छेद-वर्ग, अध्ययन, १-१७७; २-७९ ।

वग्गे पु. (वर्गे) वर्ग में, समूह में; १-६ ।

वग्घो पु. (व्याघ्रः) बाघ, रक्त एरण्ड का पेड़, करञ्ज वृक्ष; २-९० ।

वङ्कं वि. न. (वक्रम्) बांका, टेढ़ा, कुटिल; १-२६ ।

वच्

वोत्तुं हे. कृ. (वक्तुम्) बोलने के लिये; २-२१७ ।

वाइएण वि. (वाचितेन) पढ़े हुए से, बाँचे हुए से; २-१८९ ।

वच्छं न. (वक्षस्) छाती, सीना; २-१७ ।

वच्छो पु. (वृक्षः) पेड़, द्रुम; २-१७, १२७।
वच्छं पु. (वृक्षम्) वृक्ष को; १-२३।
वच्छस्स पुं० (वृक्षस्य) वृक्ष का; १-२४९।
वच्छाओ पुं० (वृक्षात्) वृक्ष से; १-५।
वच्छेणं, वच्छेण पुं० (वृक्षेण) वृक्ष द्वारा, वृक्ष से; १-२७।
वच्छेसु, वच्छेसुं पुं० (वृक्षेषु) वृक्षों में; वृक्षों के ऊपर; १-२७।
वज्जं न. (वज्रम्) रत्न-विशेष, हीरा, एक प्रकार का लोहा; १ १७७; २-१०५।
वज्जं न. (वर्यम्) श्रेष्ठ; १-२४
वज्झए कर्मणि क्र० (वध्यते) मारा जाता है; २-२६
वञ्जरो पु० (मार्जारः) मंजार, बिल्ला, बिलाव; २-१३२
वट्टं न. (वृत्तम्) गोलाकार; १-८४।
वट्टा स्त्री. (वार्ता) बात, कथा; २-३०।
वट्टी स्त्री (वर्तिः) बत्ती, आँख में सुरमा लगाने की सलाई; २-३०।
वट्टुलं वि. न. (वर्तुलम्) गोल, वृत्ताकार, एक प्रकार का कंद मूल; २-३०।
वट्टो पुं० (वृत्तः) गोल, पद्य, श्लोक, कछुआ; २-२९
वट्ठं न. (पृष्ठम्) पीछे का तल; १-८४, १२९।
वडिसं न. (वडिशम्) मच्छली पकड़ने का कांटा; १ २०२।
वड्डयर दे. वि. (बृहत्तरम्) विशेष बड़ा; २-१७४।
वड्ढो देश. पुं. (वढः) दरवाजे का एक भाग; १-१७४
वढरो, वढलो पुं. (बठरः) मूर्ख, छात्र, शठ, धूर्त, मन्द, आलसी; १-२५४।
वणप्फई पुं० (वनस्पतिः) फूल के बिना ही जिसमें फल लगते हों वह वृक्ष; २-६९।
वणं न. (वनम्) अरण्य, जंगल; १-१७२।
वणम्मि, वणंसि न. (वने) जंगल में, अरण्य में; १-२३।
वणे न. (वने) जंगल में; २-१७८।
वणस्सइ पुं० (वनस्पतिः) फूल के बिना ही जिसमें फल लगते हों वह वृक्ष; २-६९।
वणिआ स्त्री. (वनिता) स्त्री, महिला, नारी; २-१२८
वणे अ. (निश्चयमादि अर्थक निपातम्) निश्चय, विकल्प, अनुकम्पनीय अर्थक अव्यय; २-२०६

वणोली स्त्री. (वनावली) अरण्य-भूमि; २-१७७
वण्णो पुं. (वर्णः) प्रशंसा, श्लाघा, कुंकुम; १-१४२। गीत क्रम, चित्र; १-१७७।
वण्ही पुं. (वह्निः) अग्नि, चित्रक वृक्ष, भिलावा का पेड़; २-७५।
वतनकं (पै.) न. (वदनम्) मुंह, मुख; उक्ति, कथन; २-१६४।
वतनके (पै.) न. (वदने) मुख में, मुंह पर, उक्ति में; २-१६४।
वत्तं न. (पात्रम्) भाजन, बरतन; १-१४५।
वत्ता स्त्री. (वार्ता) बात, कथा; २-३०।
वत्तिआ स्त्री. (वर्तिका) बत्ती, सलाई, कलम; २-३०
वत्तिओ वि. (वार्तिकः) कथाकार; २-३०।
वन्दणं न. (वन्दनम्) प्रणाम, स्तवन, स्तुति; १-१५१
वन्दामि सक. (वन्दे) मैं वंदना करता हूं; १-६
वन्दे सक. " " " " हूं; १ २४।
वन्दित्तु, वन्दित्ता सं. कृ. (वन्दित्वा) वंदना करके; २-१४६।
वन्दारया वि. (वृन्दारकाः) मनोहर, मुख्य, प्रधान; १-१३२
वन्द्रं न. (वन्द्रम्) समूह, यूथ; १-५३; २-७९।
वम्फइ सक. (कांक्षति) वह इच्छा करता है; १-३०
वंफइ सक. (कांक्षति) वह इच्छा करता है; १-३०।
वम्महो पुं. (मन्मथः) कामदेव, कंदर्प; १-२४२, २-६१
वम्मिओ पुं. (वल्मीकः) कीट विशेष द्वारा कृत मिट्टी का स्तूप; १-१०१।
वम्हलो दे. पु. (? अपस्मारः) केसर; २-१७४।
वयंसो पु. (वयस्यः) समान आयु वाला मित्र; १-२६; २-१८६।
वयणं न. (वचनं) उक्ति, कथन, वचन; १-२२८।
वयणा, वयणाइं न (वचनानि) उक्तियां, विविध कथन; १-३३।
वयं न. (वयस्) आयु, उम्र; १-३२।
वर –
पाउओ वि. (प्रावृतः) ढका हुआ; १-१३१।
निउओ वि. (निवृतम्) परिवेष्टित, घेरा या हुआ; १-१३१।

निव्वुअं वि. (निर्वृतम्) निर्वृति प्राप्त; १-१३१

निव्वुओ वि. (निर्वृतः) " " १-२०९

विउअं वि. (विवृतम्) विस्तृत, व्याख्यात; १-१३१।

संवुअं वि. (संवृतम्) संकड़ा, अविस्तृत; १-१३१।

वरिअं वि. (वृतम्) स्वीकृति, जिसकी सगाई की गई हो वह; २-१०७।

वरिसं न. (वर्षम्) मेघ, भारत आदि क्षेत्र; २-१०५

वरिसा स्त्री. (वर्षा) वृष्टि, पानी का बरसना;

वरिससयं न. (वर्ष-शतम्) सौ वर्ष; २-१०४

वृत् —(धातु) व्यवहार आदि अर्थ

वित्तं न. (वृत्तम्) वृत्ति, वर्तन, व्यवहार; १-१५८।

वट्टो पुं. (वृत्तः) कूर्म, कछुआ; २-२९।

निअत्तसु आज्ञा. अक. (निवर्त्तस्व) निवृत्त हो; १-१९६।

निवुत्तं वि. (निवृत्तम्) निवृत्त, हटा हुआ, प्रवृत्ति-विमुख; १-१३२।

निअत्तं वि (निवृत्तम्) निवृत्त, हटा हुआ, प्रवृत्ति-विमुख; १-१३२।

पडिनिअत्तं वि. (प्रतिनिवृत्तम) पीछे लौटा हुआ; १-२०६।

पयट्टइ अक. (प्रवर्तते) वह प्रवृत्ति करता है; २-३०।

पयट्टो वि. (प्रवृत्तः) जिसने प्रवृत्ति की हो वह; २-२९।

संवट्टिअं वि. (संवर्तितम्) संवर्त-युक्त; २-३०

वृध् —(धातु) बढ़ने अर्थ में

विद्ध वि. (वृद्धः) बुड्ढा; १-१२८; २-४०

वुड्ढो पुं. " " १-१३१, २-४०, ९०

वृष् —(धातु) बरसने अर्थ में—

विट्ठो, वुट्ठो वि. (वृष्टः) बरसा हुआ; १-१३७

पवुट्ठो पुं. वि. (प्रवृष्टः) " " १-१३१

वलयाणलो पुं. (वडवानलः) वडवाग्नि, वडवानल; १-१७७

वलयामुहं न. (वडवामुखम्) " १-२०२।

वलिसं न. (बडिशम्) मच्छली पकड़ने का कांटा; १-२०२।

वलुणो पुं. (वरुणः) वरुणवर द्वीप का एक अधिष्ठाता देव; १-२५४।

वल्ली स्त्री. (वल्ली) लता, बेल; १-५८।

वसई स्त्री. (वसतिः) स्थान, आश्रय, वास, निवास; १-२१४।

वसन्ते पु. (वसन्ते) ऋतु-विशेष में; चैत्र-वैशाख मास के समय में; १-१९०।

वसही स्त्री. (वसतिः) स्थान, आश्रय, वास, निवास; १-२१४।

वसहो पु (वृषभ) बैल; १-१२६, १३३।

वह् (धातु) धारण करने आदि अर्थ में

वहसि सक (वहसि) तू पहुँचाता है, तू धारण करता है; २-१९४।

वहइ सक (वहति) वह धारण करता है; १-३८

वहु स्त्री. (वधूः) बहू; १-९।

वहुआइ स्त्री. (वध्वाः, वधूकायाः) बहू के १-७

वहुत्तं वि. (प्रभूतम्) बहुत प्रचुर; १-२३३; २-९८।

वहुमुहं, वहूमुहं न. (वधू-मुखम्) बहू का मुख; १-४।

वा अ. (वा) अथवा; १-६७।

वाइएण न. (वाचितेन) पढ़े हुए से; बाँचे हुए से; २-१८९।

वाउलो वि. (वातूलः) वात-रोगी, उन्मत्त; १-१२१; २-९९।

वाउल्लो वि. (वातूलः) वात-रोगी, उन्मत्त; २-९९।

वाणारसी स्त्री. (वाणारसी) बनारस; २-११६

वामेअरो वि. पुं (वामेतरः) दाहिना; १-३६

वायरणं न. (व्याकरणम्) व्याकरण कथन, प्रतिपादन; १-२६८।

वारं न. (द्वारम्) दरवाजा; १-७९।

वारणं न. (व्याकरणम्) व्याकरण, कथन, प्रतिपादन, उपदेश; १-२६८।

वारिमई, वारीमई, स्त्री. (वारिमतिः) पानी वाली; १-४

वारिहरो पुं (वारिधरः) बादल;

वावडो वि. (व्यापृतः) किसी कार्य में लगा हुआ; १-२०६

वासइसी, वासेसी, पुं (व्यासर्षिः) व्यास-ऋषि १-५।

वाससयं, न (वर्ष-शतम्) सौ वर्ष; २-१०५।

वासो, पु. (वर्षः) एक वर्ष; १-४३।

वासं, न. (वर्षम्) वर्ष; २-१०५।

वासा, पुं (वर्षाः) अनेक वर्ष; १-४३; २-१०५

वाहिओ, वाहित्तो, वि. (व्याहृतः) उक्त, कथित; २-९९

वाहित्त, वि. (व्याहृतम्) कहा हुआ; १-१२८

वाहो पुं (व्याधः) लुब्धक, शिकारी, बहेलिया; १-१८७।

वाहो वि. (बाह्यः) बाहिर का; २-७८।

वि, अ. (अपि) भी; १-६,२३,४१,९७; २-१९३, १९५, २१८।

विअ, अव. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा अर्थक अव्यय; २-१८१।

विअइल्ल पु. न. (विचकिल) पुष्पविशेष, वृक्ष विशेष; १-१६६।

विअड वि. (विकट) प्रकट, खुला, प्रचण्ड, १-१४६।

विअड्डी स्त्री. (वितर्दिः) वेदिका, हवन-स्थान; २-३६

विअड्डो वि. (विदग्धः) निपुण, कुशल, पंडित; २-४०।

विअणं पुं न. (व्यजनम्) पंखा; १-४६।

विअणा स्त्री. (वेदना) ज्ञान, सुख-दुःख आदि का अनुभव, पीड़ा; १-१४६।

विअसिअ कुसुम-सरो वि. (विकसित-कुसुमशरः) खिले हुए फूल रूप बाण वाला; १-९१।

विआणं न. (वितानम्) विस्तार; यज्ञ, अवसर, आच्छादन विशेष; १-१७७।

विआरुल्लो वि. (विकारवान्) विकार वाला, विकार-युक्त; २-१५९।

विइण्हो वि. (वितृष्णः) तृष्णा रहित, निस्पृह; १-१२८

विउअं वि. (विवृतम्) विस्तृत, व्याख्यात, खुला हुआ १-१३१।

विउसग्गो पु. (व्युत्सर्गः) परित्याग, तप-विशेष; २-१७४

विउसा वि. (विद्वांसः) विज्ञ, पण्डित; २-१७४।

विउहो वि. पु (विबुधः) पण्डित, विद्वान्, देव, सुर; १-१७७।

विओओ पु. (वियोगः) जुदाई, बिछोह, विरह; १-१७७

विकासरो पु. (विकस्वरः) खिलने वाला; १-४३।

विक्कवो वि. (विक्लवः) व्याकुल, बेचैन; २-७९।

विंचुओ पु. (वृश्चिकः) बिच्छू; २-१६।

विच्छड्डो पु. (विच्छर्दः) ऋद्धि, वैभव, संपत्ति विस्तार; २-३६।

विजणं न. (व्यजनम्) पंखा; १-१७७।

विज्जं पु. (विद्वान्) पण्डित, जानकार; २-१५।

विज्जू स्त्री. (विद्युत्) बिजली; १-१५; २-१७३

विज्जुणा विज्जूए स्त्री. (विद्युता) बिजली से; १-३३।

विज्जुला स्त्री. (विद्युत्) बिजली; १-६; २-१७३।

विज्झाइ अक. (विध्माति) बुझता है, ठण्डा होता है, गुल होता है; २-२८।

विञ्चुओ पु. (वृश्चिकः) बिच्छू; १-१२८; २-१६, ८९

विञ्छुओ पु. „ „ १-२३।

विंछिओ पु. (वृश्चिक) बिच्छू; १-२६।

विञ्झ पु. (विन्ध्यः) विन्ध्याचल पर्वत; १-४२।

विञ्झो पु. (विन्ध्यः) विन्ध्याचल पर्वत; व्याध; १-२५ २-२६, ९२।

विट्ठी स्त्री. (वृष्टिः) वर्षा, बारिस; १-१३७।

विट्ठो वि. (वृष्टः) बरसा हुआ; १-१३७।

विड्डा स्त्री. (व्रीडा) लज्जा, शरम; २-९८।

विड्डिर वि. (व्रीडावाला) लज्जा वाला; २-१७४।

विणओ पु. (विनयः) नम्रता; १-२४५।

विणोअ पु. (विनोद) खेल, क्रीड़ा, कौतुक, कुतूहल; १-१४६।

विण्टं न. (वृन्तम्) फल-पत्र आदि का बन्धन; १-१३९

विण्णाणं न. (विज्ञानम्) सद्बोध, विशिष्ट ज्ञान; २-४२; ८३।

विण्णायं न. (विज्ञातम्) जाना हुआ, विदित; २-१९९।

विण्हू पु. (विष्णुः) व्यक्ति-विशेष का नाम; १-८५; २-७५।

वित्ती स्त्री. (वृत्तिः) जीविका, निर्वाह-साधन; १-१२८

वित्तं न. (वृत्तम्) वृत्ति, वर्तन; १-१२८।

विदुरो वि. (विदुरः) विचक्षण, धीर, नागरिक; १-१७७।

विद्दाओ वि. (विद्रुतः) विनष्ट, पलायित; १-१०७।

विद्ध वि (वृद्ध.) वृद्धि-प्राप्त, निपुण; १-१२८; २-४०

विप्पवो पुं. (विप्लवः) देश का उपद्रव; विविध झगड़े; २-१०६।

विप्पो पु. (विप्रः) ब्राह्मण, द्विज; १-१७७।

विब्भलो वि. (विह्वलः) व्याकुल, घबराया हुआ; २-५८

विम्हओ वि. (विस्मयः) आश्चर्य, चमत्कृत; २-७४।

विम्हयणिज्जं वि. (विस्मयनीयम्) आश्चर्य के योग्य; १-२४८।

विम्हयणीअं वि. (विस्मयनीयम्) आश्चर्य के योग्य; १-२४८ ।
विम्हरह सक. (विस्मरथ) तुम भूलते हो
विरलो वि. (विरला) अल्प, थोड़े; २-७२ ।
विरसं वि. न. (विरसम्) रसहीन; १-७ ।
विरहो पु. (विरहः) वियोग, विच्छोह, जुदाई; १-११५
विरहग्गी स्त्री. (विरहाग्निः) वियोग रूपी अग्नि; १-८४
विलया स्त्री. (वनिता) स्त्री, महिला, नारी; २-१२८
विलिअं न. (व्यलीकम्) मिथ्या; १-४६ ।
विलिअं वि. (व्रीडितम्) लज्जित; १-१०१ ।
विव अव. (इव) उपमा, सादृश्य, तुलना, उत्प्रेक्षा अर्थक अव्यय विशेष; २-१८२ ।
विश्-
विसइ अक. (विशति) प्रवेश करता है; १-२६० ।
निवेसिआण वि. (निवेशितानाम्) रहे हुओं का; १-६० ।
विसढो वि. (विषमः) समान स्थिति वाला नहीं; ऊंचा-नीचा; १-२४१ ।
विसण्ठुलं वि. (विसंस्थुलम्) विह्वल, व्याकुल, अव्यवस्थित; २-३२ ।
विसंतवो पु. वि. (द्विषन्तपः) शत्रु को तपाने वाला, दुश्मन को हैरान करने वाला; १-१७७ ।
विसमो वि. (विषमः) ऊंचा-नीचा; १-२४१ ।
विसम आयवो (विषमातपः) कठोर धूप; १-५ ।
विसमइओ, विसमओ वि. पु. (विषमयः) विष का बना हुआ; १-५० ।
विसमायवो पु. (विषमातपः) कठोर धूप; १-५ ।
विसयं न. (विषयम्) गृह, घर, संभव, संभावना; २-२०९ ।
विससिज्जन्त व. कृ. (विशस्यमानः) हिंसा किये जाते हुए; १-८ ।
विसाओ पु. (विषादः) खेद, शोक, अफसोस; १-१५५
विसी स्त्री. (बृसी) ऋषि का आसन; १-१२८
विसेसो पु. वि. (विशेषः) भिन्नताओं वाला; १-२६०
विस्सोअसिआ स्त्री. (विस्रोतसिका) विमार्ग-गमन, दुष्ट-चिंतन; २-९८ ।
विहडप्फड देशज (?) २-१७४ ।

विहत्थी स्त्री. (वितस्तिः) परिमाण-विशेष; बारह अंगुल का परिमाण; १-२१४ ।
विहलो वि. (विह्वलः) व्याकुल, तल्लीन; २-५८, ९३
विहवेहिं पु. (विभवैः) वैभव द्वारा, विविध सामग्री द्वारा; १-१३४ ।
विहि पु. (विधिः) योग्य; २-२०६ ।
विही स्त्री. पु. (विधिः) प्रकार भेद रीति; १-३५ ।
विहीणो वि. (विहीनः) रहित; १-१०३ ।
विहूणो वि. (विहीनः) रहित; १-१०३ ।
वीइ स्त्री. (वीचि) लहर; १-४ ।
वीरिअं न. (वीर्यम्) शरीरस्थित एक धातु, शुक्र, तेज, दीप्ति; २-१०७ ।
वीसम्भो पु. (विस्रम्भः) विश्वास, श्रद्धा; १-४३ ।
वीसमइ अक. (विश्राम्यति) वह विश्राम करता है; १-४३ ।
वीसा स्त्री. (विंशतिः) संख्या-विशेष, बीस; १-२८, ९२ ।
वीसाणो पु. (विष्वाणः) आहार, भोजन; १-४३ ।
वीसामो पुं. (विश्रामः) विश्राम लेना; १-४३ ।
वीसासो पु. (विश्वासः) विश्वास; १-४३ ।
वीसुं अ. (विष्वक्) सब ओर से, चारों ओर से; १-२४; ४३, ५२ ।
वुट्ठी स्त्री. (वृष्टिः) वर्षा; १-१३७ ।
वुड्ढी स्त्री. वृद्धिः बढ़ना, बढ़ाव, व्याकरण में प्रसिद्ध एक संज्ञा; १-१३१; २-४० ।
वुड्ढो वि. (वृद्धः) बुड्ढा; पंडित, जानकार; १-१३१; २-४० ।
वुत्तन्तो पु. (वृत्तान्तः) खबर, समाचार, हकीकत, बात १ १३१ ।
वुन्दं न. (वृन्दम्) समूह, यूथ; १-१३१ ।
वुन्दारया वि. (वृन्दारकाः) मनोहर, मुख्य, प्रधान; १-१३२ ।
वुन्दावणो पु. (वृन्दावन) मथुरा के पास का स्थान-विशेष; १-१३१ ।
वुन्द्रं न. (वृन्दम्) समूह यूथ; १-५३ ।
वेअणा स्त्री. (वेदना) ज्ञान, सुख-दुःख आदि का अनुभव; पीड़ा, संताप; १-१४६ ।

वेअसो पुं. (वेतसः) बेंत का पेड़; १-२०७।
वेआलिओ वि पुं. (वैतालिकः) मंगल-स्तुति आदि से जगाने वाला मागध आदि; १-१५२।
वेइल्लं न. (विचकिलम्) पुष्प-विशेष; १-१६६; २-९८
वेकुण्ठो पुं. (वैकुण्ठः) विष्णु का नाम; १-१९९।
वेज्जो पुं. (वैद्यः) वैद्य, चिकित्सक, हकीम; १-१४८; २-२४।
वेडिसो पुं. (वेतसः) बेंत की लकड़ी; १-४६, २०७।
वेडुज्जं न. (वैडूर्यम्) रत्न की एक जाति; २-१३३
वेणुलट्ठी स्त्री. (वेणुयष्टिः) बांस की लाठी, छड़ी; १-२४७।
वेणू पुं. (वेणुः) वाद्य-विशेष, बंसी; १-२०३।
वेण्टं न. (वृन्तम्) फल-पत्र आदि का बंधन; १-१३९; २-३१।
वेण्हू पुं. (विष्णु) व्यक्ति विशेष का नाम; १-८५
वेरं न. (वैरम्) दुश्मनाई, शत्रुता; १-१५२।
वेरि पुं. (वैरि) शत्रु; १-६।
वेरुलिअं न. (वैडूर्यम्) रत्न की एक जाति; २-१३३।
वेलुवणं, वेलूवणं न. (वेणुवनम्) बांसों का वन; १-४।
वेलू पुं. (वेणु) बांस; १-२०३।
वेल्लन्तो व. कृ. (रममाणः) क्रीड़ा करता हुआ; १-६६
वेल्ली स्त्री. (वल्ली) लता, बेल; १-५८।
वेविरो वि. (वेपनशीलः) कांपने वाला; २-१४५।
वेव्व अ. (आमन्त्रण अर्थक) आमंत्रण-अर्थक; २-१९४
वेव्वे अ (भयादि-अर्थक) भय, वारण, विषाद, आमन्त्रण-अर्थक; २-१९३, १९४।
वेसम्पायणो पुं. (वैशम्पायनः) व्यास ऋषि का शिष्य; १-१५२।
वेसवणो पुं. (वैश्रवणः) कुबेर; १-१५२।
वेसिअं न. (वैशिकम्) जैनेतर शास्त्र विशेष, काम-शास्त्र; १-१५२।
वेसो वि. (द्वेष्यः) द्वेष करने योग्य, अप्रीति कर; २ ९२
वेहव्वं न. (वैधव्यम्) विधवापन, रांडपन; १-१४८।
वोक्कन्त वि. (व्युत्क्रान्तम्) विपरीत क्रम से स्थित; १-११६।
वोण्टं न (वृन्तम्) फल-पत्र आदि का बंधन; १-१३९
वोत्तुं हे. कृ. (वक्तुम्) बोलने के लिये; २-२१७।
वोद्रह दे. वि. (तरुण) तरुण, युवा; २-८०।
वोद्रहीओ स्त्री. (तरुण्यः) तरुण महिलाएँ; २-८०।
वोसिरणं न. (व्युत्सर्जनम्) परित्याग; २ १७४।
व्व अव. (इव) समान, उस जैसा; १-६, ७, ६६; २-१४, १२९, १५०, १८२, २११।

(श)

शक-सिक्खन्तु आज्ञार्थक (शिक्षन्ताम्) शिक्षाशील हों; २-८०
शुभ् (धातु) शोभने अर्थ में
सोहइ अकर्मक आत्मने (शोभते) वह सुशोभित होता है; १-१८७, २६०।
श्रम् (धातु) विश्राम अर्थ में
विसमइ अक. (विश्राम्यति) विश्राम करता है; १-४३।
श्रु (धातु) सुनने अर्थ में
सोउआण सं. कृ. (श्रुत्वा) सुन करके; २-१४६
सोच्चा सं. कृ. (श्रुत्वा) सुन करके; २-१५।
सुओ वि. (श्रुतः) सुना हुआ; १-२०९।
श्लिष् (धातु) आलिंगन अर्थ में
सिलिट्ठं वि. (श्लिष्टम्) आलिंगन किया हुआ; २-१०६।
आलेद्ठुअं हे. कृ. (आश्लेष्टुम्) आलिंगन करने के लिये; १-२४; २-१६४।
आलेट्ठु हे. कृ. (आश्लेष्टुम्) आलिंगन करने के लिये; २-१६४।
आलिद्धो वि. पु. (आश्लिष्टः) आलिंगित; २-४९, ९०।
श्वस् (धातु) श्वास लेना।
ऊससइ, सक. (उच्छ्वसति) वह ऊंचा सांस लेता है; १-११४।
वीससइ सक. (विश्वसिति) वह विश्वास करता है १-४३।

(स)

स सर्व (सः) वह; २-१८४।
सइ अ. (सकृत्) एक समय, एक बार; १-१२८।
सइ अ. (सदा) हमेशा, निरन्तर; १-७२।
सइन्नं न. (सैन्यम्) सेना, लश्कर; १-१५१।
सइरं न. (स्वैरम्) स्वच्छन्दता; १-१५१।

सई स्त्री. (शची) इन्द्राणी; १-१७७।
सउणो पु. (शकुनिः) चील-पक्षी; शुभाशुभ सूचक बाहु-स्पन्दन आदि शकुन १-१८०।
सउरा पु. (सौराः) ग्रह-विशेष; सूर्य-संबंधी; १-१६२।
सउहं न. (सौधम्) राज-प्रासाद; चांदी; १-१६२।
संवच्छरो संवच्छलो पु. (संवत्सरः) वर्ष, साल; २-२१।
संवट्टिअं वि. (संवर्तितम्) पिंडीभूत, एकत्रित; संवर्त-युक्त; २-३०।
संवट्टओ पु. (संवर्तकः) बलदेव, वडवानल; २-३०।
संवट्टणं न. (संवर्तनम्) जहां पर अनेक मार्ग मिलते हों, वह स्थान; २-३०।
संवरो पु. (संवरः) कर्म-निरोध, मत्स्य की एक जाति; दैत्य विशेष; १-१७७।
संवुडो पु. (संवृतः) आवृत, संगोपित; १-१७७।
संसओ पु. (संशयः) संदेह, शंका; संशय, १-३०।
संसिद्धिओ वि. (सांसिद्धिकः) स्वभाव सिद्ध, १-७०।
संहारो पु. (संहारः) बहु-जंतु-क्षय; प्रलय; १-२६४।
सक्कयं वि. (संस्कृतम्) संस्कार युक्त; १-२८; २-४।
सक्कारो पु. (सत्कारः) सम्मान, आदर, पूजा; १-२८; २-४
सक्कालो पु. (सत्कारः) संस्कार, सम्मान, आदर, पूजा; १-२५४।
सक्को वि. (शक्तः) समर्थ, शक्ति युक्त; २-२।
सक्खं अव. (साक्षात्) प्रत्यक्ष, आंखों के सामने, प्रकट; १-२४।
सक्खिणो वि. (साक्षिणः) गवाह, साक्षी; २-१७४।
संकरो पु. (शङ्करः) शिव महादेव; १-१७७।
संकलं न. (शृंखलम्) सांकल, बेड़ी, आभूषण-विशेष; १-१८९।
संखायं वि. (संस्त्यानम्) आवाज करने वाला, प्रति-ध्वनि; १-७४।
संखो पु. (शंखः) शंख, जल-जन्तु-विशेष; १-३०, १८७
सङ्खो पु. (शंखः) शंख, जल-जन्तु विशेष, १-३०
संगं न. (शृंगम्) सींग; १-१३०।
संगमो पु. (संगमः) मेल, मिलाप; १-१७७।
संगहिआ वि. (संगृहिता) जिसका संचय किया गया हो वह; २-१९८।
संघारो पु. (संहारः) बहु जन्तु-क्षय; प्रलय; १-२६४।
संघो पु. (संघः) साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका का समुदाय; प्राणी समूह; १-१८७।

सचावं न. (सचापम्) धनुष्य सहित; १-१७७।
सच्चं न. (सत्यम्) यथार्थ-भाषण; सत्य-युग, सिद्धांत; २-१३।
सच्छायं वि. (सच्छायम्) छाया सहित; कान्ति-युक्त; १-२४९।
सच्छाहं वि. (सच्छायम्) छाया सहित; तुल्य, सदृश; १-२४९।
सज्जणो पु. (सज्जनः) अच्छा पुरुष; १-११।
सज्जो पु. (षड्जः) स्वर-विशेष; २-७७।
सज्झं न. (साध्यम्) सिद्ध करने योग्य, मन्त्र-विशेष; २-२६।
सज्झसं न. (साध्वसम्) भय, डर; २-२६।
सज्झाओ पु. (स्वाध्यायः) शास्त्र का पठन, आवर्तन आदि; २-२६।
सज्झो वि. (सह्यः) सहन करने योग्य; २-२६, १२४
संजत्तिओ वि. (सांयात्रिकः) जहाज से यात्रा करने वाला मुसाफिर, १-७०।
संजमो पु. (संयमः) चारित्र व्रत, नियन्त्रण, काबू; १-२४५।
संजा स्त्री. (संज्ञा) आख्या, नाम, सूर्य की पत्नी, गायत्री; २-८३।
संजोगो पु. (संयोगः) संबन्ध, मेल-मिलाप, मिश्रण; १-२४५।
संझा स्त्री. (सन्ध्या) सांझ संध्या; १-६, २५, ३०; २-९२।
सञ्झा स्त्री. (सन्ध्या) सांझ, संध्या; १-३०
संठविओ संठाविओ वि. (संस्थापितः) अच्छी तरह से स्थापित; १-६७।
सड्ढा स्त्री. (श्रद्धा) विश्वास; २-४१।
सढा स्त्री. (सटा) सिंह आदि की जटा; यती का केश-समूह; शिखा; १-१९६।
सढिलं वि. (शिथिलम्) ढीला; १-८९।
सढो वि. (शठः) धूर्त, मायावी, कपटी; १-१९९।
सणिअं अ. (शनैः) धीरे; २-१६८।
सणिच्छरो पु. (शनैश्चरः) शनिग्रह; १-१४९।
सणिद्धं न. (स्निग्धम्) चांवल का मांड, चिकना; २-१०९।
सणेहो पु. (स्नेहः) प्रेम, प्रीति, स्निग्धरस; चिकनाई २-१०२।

सण्ढो पुं. (षण्ढः) साँड, वृषभ, बैल; १-२६० ।
संढो, सण्ढो पुं. (षण्ढः) नपुंसक; १-३० ।
सण्णा स्त्री. (संज्ञा) सूर्य की पत्नी, गायत्री, आख्या, नाम; २-४२, ८३ ।
सण्हं न. (श्लक्ष्णम्) लोहा; २-७५, ७९ ।
सण्हं वि. (सूक्ष्मम्) छोटा, बारीक; १-११८; २-७५
सत्तरी वि. (सप्तति:) सित्तर; साठ और दश; १-२१०
सत्तावीसा वि. (सप्तविंशतिः) सत्ताईस; १-४ ।
सत्तो वि. (शक्तः) समर्थ, शक्तिवान्; २-२ ।
सत्थि अव. (स्वस्ति) आशीर्वाद क्षेम, कल्याण, मंगल; २-४५ ।
सत्थो पु. (सार्थः) समूह; १-९७ ।
सद्-
ओसिअन्त व. कृ. (अवसीदंतम्) पीड़ा पाते हुए को; १-१०१ ।
णुमण्णो वि. (निषण्णः) बैठा हुआ, स्थित; १-१७४ ।
पसिअ अक. (प्रसीद) प्रसन्न हो; १-१०१; २-१९६ ।
सद्दहिओ वि. (श्रद्धितम्) विश्वासपूर्वक धारण किया हुआ; १-१२ ।
सद्दालो वि. (शब्दवान्) शब्द वाला; २-१५९ ।
सद्दो पु. (शब्दः) ध्वनि, आवाज; १-२६०; २-७९
सद्धा स्त्री. (श्रद्धा) विश्वास; १-१२; २-४१ ।
सन्तो वि. (सन्तः) अस्तित्वरूप वाले; १-३७ ।
संदट्ठो वि. (संदष्टः) जो काटा गया हो वह; २-३४ ।
सपावं न. (सपापम्) पाप सहित; १-१७७ ।
सपिवासो, सप्पिवासो वि. (सपिपासः) तृषातुर, सतृष्ण; २-९७ ।
सप्फं न. (शष्पम्) बालतृण, नया घास; २-५३ ।
सप्फलं न. (सफलम्) सार्थक, फल सहित; २-२०४ ।
सब्भावं न. (सद्भावम्) सद्भाव, सुन्दर भाव; २-१९७
सभरी स्त्री. (शफरी) मछली; १-२३६ ।
सभलं वि. (सफलम्) फल सहित, सार्थक; १-२३६
समिक्खू पु. (सद्-भिक्षुः) श्रेष्ठ साधु; १-११ ।
समए (एं) पु. (समये) समय में; ३-१३७ ।
समत्तो वि. (समाप्तः) पूर्ण, पूरा, जो सिद्ध हो चुका हो वह; २-४५ ।
समप्पेत्तून सं. कृ (समर्पित्वा) समर्पण करके; २-१६४
समं अ. (समम्) साथ; २-२०१ ।
समा वि. (समा) समानतावाली, तुल्यतावाली १-२६९
समरो पु. (शबरः) भील जाति-विशेष; १-२५८ ।
समवाओ पु (समवायः) संबन्ध विशेष; गुण-गुणी आदि का संबंध; १-१७७ ।
समिज्झाइ अक. (समिन्धे) वह चमकता है; २-२८ ।
समिद्धी स्त्री. (समृद्धि) समृद्धि, धन-संपत्ति; १-४४, १२८ ।
समुद्दो, समुद्द्रो पु. (समुद्र) सागर, समुद्र; २-८० ।
समुहं अ. (सम्मुखम्) सामने; १-२९ ।
समोसर अक. (समपसर) दूर सरक; २-१९७ ।
संपआ स्त्री. (संपत्) संपदा, धन-वैभव; १-१५ ;
संपइ अ. (संप्रति) इस समय में, वर्तमान में, अधुना, अब; १-२०६ ।
संपया स्त्री. (संपद्) संपदा, धन-वैभव; १-१५ ।
संपयं वि. (सांप्रतम्) वर्तमान; विद्यमान; १-२०९
संफासो पु. (संस्पर्शः) स्पर्श; १-४३ ।
संभम पु. (संभ्रम) घबराहट; १-८ ।
संमड्डिओ वि. (संमर्दितः) संमृष्ट; अच्छी तरह से घिसा हुआ; २-३६ ।
संमड्डो पु (संमर्दः) युद्ध लड़ाई, परस्पर संघर्ष; २-३६
सम्मं अ. (सम्यक्) अच्छी तरह से; १-२४ ।
सम्मं न. (शर्मन्) सुख; १-३२ । (प्रथमा एक वचन रूप-शर्म)
संमुहं अ. (सम्मुखम्) सामने; १-२९ ।
सयहुत्तं अ. (शतकृत्वः) सौ बार; २-१५८ ।
सयं न. (शतम्) सौ; २-१०५ ।
सयढो पु. (शकटः) गाड़ी; १-१९६ ।
सयढं न. (शकटम्) गाड़ी, नगर-विशेष; १-१७७, १८० ।
सयणो पुं. (स्वजनः) अपना आदमी; २ ११४ ।
सयं अ (स्वयम्) खुद ब खुद; २ २०९ ।
सयलं वि. (सकलं) सम्पूर्ण, सब; २-१५ ।
सया अ. (सदा) हमेशा, निरन्तर; १-७२ ।
सय्हो वि. पु. (सह्यः) सहन करने योग्य; २-१२४
सर् (धातु) सरकने अर्थ में
ओसरइ, अवसरइ, अक. (अपसरति) वह पीछे हटता है, नीचे सरकता है; १-१७२ ।

ओसारिअं, अवसारिअं, वि. (अपसारितं) पीछे हटाया हुआ, नीचे सरकाया हुआ; १-१७२ ।

समोसर, अक. आज्ञा. (समपसर) दूर सरक; २-१९७ ।

ऊसरइ अक. (उत्सरति) वह ऊपर सरकता है; १-११४ ।

ऊसारिओ वि. (उत्सारितः) ऊपर सरकाया हुआ; अलग किया हुआ; २-२१ ।

नीसरइ अक. (निःसरति) वह बाहिर निकलता है; १-९३ ।

सरो पुं. (शरः) बाण; १-७, ३१ ।

सरओ पुं. (शरद्) ऋतु-विशेष; आश्विन-कार्तिक मास; १-१८, ३१ ।

सररुहं न. (सरोरुहम्) कमल; १-१५६ ।

सरि वि. (सदृक्) सदृश, सरीखा, तुल्य; १-१४२

सरिआ स्त्री. (सरित्) नदी; १-१५ ।

सरिच्छो वि. (सदृशः) सदृश, समान, तुल्य; १-१४४, १४२; २-१७ ।

सरिया स्त्री. (सरित्) नदी; २-१५ ।

सरिस वि. (सदृश) समान, सरीखा, तुल्य; २-१९५

सरिसो वि. (सदृशः) समान, तुल्य; १-१४२

सरिसव खलो पु. (सर्षप-खलः) सरसों के खलिहान को साफ करने वाला; १-१८७ ।

सरो पु (स्मर) कामदेव; २-७४, ७८ ।

सरोरुहं न. (सरोरुहम्) कमल; १-१५६ ।

सलाहा स्त्री. (श्लाघा) प्रशंसा, तारीफ; २-१०१ ।

सलिल पु. न. (सलिल) पानी, जल; १-८२ ।

सवइ अक. (शपति) वह शाप देती है; १-२३१ ।

सवलो वि. (शबलः) रंग-बिरंगा, चित्र-विचित्र; १-२३७

सवहो पु. (शपथः) सौगंध, आक्रोश वचन, गाली; १-१७९; २३१ ।

सव्वं वि. पु. (सर्वम्) सब को; तमाम को; १-१७७; २-७९ ।

सव्वओ अ. (सर्वतः) सब प्रकार से; १-३७; २-१६०

सव्वङ्गिओ वि. (सर्वाङ्गीणः) जो सभी अंगों में व्याप्त हो ऐसा; २-१५१ ।

सव्वज्जो-सव्वण्णू पु. (सर्वज्ञः) जो सब कुछ जानता हो वह; १-५६; २-८३ ।

सव्वत्तो अ. (सर्वतः) सब प्रकार से; २-१६० ।

सव्वदो अ. (सर्वतः) सब प्रकार से; २-१६० ।

संवुअं वि. (संवृतम्) ढंका हुआ, सकड़ा, अविवृत; १-१३१ ।

सह-सहइ अक. (राजते) वह सुशोभित होता है; १-६

सहकारो सहयारो पु. (सहकारः) आम का पेड़, मदद, सहायता; १-१७७ ।

सहरी स्त्री. (शफरी) मछली; १-२३६ ।

सहलं वि. (सफलम्) फल-युक्त सार्थक; १-२३६ ।

सहस्स पु. न. (सहस्र) हजार; दस सौ; २-१५८ ।

सहस्ससिरो वि. पु. (सहस्र शिरः) प्रभूत मस्तक वाला, विष्णु; २-१९८ ।

सहा स्त्री (सभा) सभा, समिति, परिषद; १-१८७

सहावो पु. (स्वभावः) स्वभाव; प्रकृति, निसर्ग; १-१८७

सहि स्त्री. (सखि) सहेली संगिनी; २-१९५ ।

सहिआ त्रि. (सहृदयाः) सुन्दर चित्त वाले, परिपक्व बुद्धि वाले; १-२६९ ।

सहिअएहिं वि. (सहृदयैः) सुन्दर विचार शील पुरुषों द्वारा; १-२६९ ।

सा स्त्री. सर्व. (सा) वह (स्त्री); १-३३; २-१८० २०४ ।

सा पु. स्त्री. (श्वान) कुत्ता, अथवा कुतिया; १-५२

साउअयं-साऊअयं न. (स्वादूदकम्) स्वादिष्ट जल; १-५

साणो पु. (श्वान) कुत्ता; १-५२ ।

सामओ पु. (श्यामाकः) धान्य विशेष; १-७१ ।

सामच्छं-सामत्थं न. (सामर्थ्यम्) समर्थता शक्ति; २-२२

सामा स्त्री. (श्यामा) श्याम वर्ण वाली स्त्री; १-२६० २-७८ ।

सामिद्धि स्त्री. (समृद्धिः) समृद्धि, धन-वैभव; १-४४ ।

सायरो पु. (सागरः) समुद्र; २-१८२ ।

सारङ्गं न. (शार्ङ्गम्) विष्णु का धनुष; प्रधान दल, श्रेष्ठ अवयव; २-१०० ।

सारिक्खं वि. (सादृश्यम्) समान, तुल्य; २-१७ ।

सारिच्छो वि (सदृशः) सदृश, समान, तुल्य; १-४४ ।

सारिच्छं वि. न. (सादृश्यं) तुल्यता, समानता; २-१७ ।

सालवाहणो पुं. (शालवाहनः) शाल वाहन नामक एक व्यक्ति; १-२११।

सालाहणो पु. (शालवाहनः) शाल वाहन नामक एक व्यक्ति; १-८; २११।

सालाहणी स्त्री. (शालवाहनी) शाल वाहन; से संबंध रखने वाली; १-२११

सावगो पु. (श्रावकः) जैन-उपासक गृहस्थ; श्रावक; १-१७७।

सावो पु. (शापः) शाप, आक्रोश, शपथ, सौगन; १-१७९, २३१।

सासं न. (सस्यम्) खेत में उगा हुआ हरा धान; १ ४

साह-

साहसू आज्ञा. सक. (कथय) कहो; २-१९७

साहेमि वर्त. सक. (कथयामि) मैं कहता हूं; २-२०४।

साहा स्त्री. (शाखा) डाली; एक ही आचार्य की शिष्य-परम्परा; १-१८७।

साहुली दे. स्त्री. (शाखा) डाली; २-१७४।

साहू पु. (साधुः) साधु, यति, महाव्रती; १-१८७

साहेमि सक. (कथयामि) मैं कहता हूं; २-२०४।

सि अक. (असि) तू है; ३-२१७।

सिआ अ. (स्यात्) प्रशंसा, अस्तित्व, सत्ता, संशय, प्रश्न निश्चय, विवाद आदि सूचक अव्यय; २-१०७

सिआलो पु. (शृगालः) सियार, गीदड़ पशु-विशेष; १-१२८

सिआवाओ पु. (स्याद्वादः) अनेकान्त दर्शन; जैन दर्शन का सिद्धान्त विशेष; २-१०७।

सिंहदत्तो पु. (सिंहदत्तः) व्यक्ति वाचक नाम; १-९२।

सिंहराओ पु. (सिंहराजः) केशरीसिंह; १-९२।

सिङ्गं न. (शृंगम्) सींग, विषाण; १-१३०।

सिङ्गारो पु. (शृंगारः) काव्य में प्रसिद्ध रस-विशेष; १-१२८।

सिंघो पु. सिंहः) सिंह; १-२९, २६४।

सिच-

ऊसित्तो वि. (उत्सिक्तः) गर्वित, उद्धत; १-११४।

नीसित्तो वि. (निष्षक्तः) अत्यन्त सिक्त, गीला; १-४३।

सिज्जइ अक. (स्विद्यति) वह पसीना वाली होती है; २-१८०।

सिट्ठं वि. (सृष्टम्) रचित, निर्मित; १-१२८।

सिट्ठी स्त्री. (सृष्टिः) विश्व-निर्माण, बनाई हुई; १-१२८, २३४।

सिढिलो वि. पु (शिथिलः) ढीला, जो मजबूत न हो वह; मंद; १-२१५।

सिढिलं वि. न. (शिथिलम्) ढीला, मंद, १-८९

सिढिलो वि. पु. (शिथिरः) ढीला; मंद; १-२१५, २५४

सिणिद्धं वि. (स्निग्धम्) चिकना, तेल वाला; २-१०९

सिंहो पु. (सिंहः) मृग-राज, केशरी; २-७५।

सित्थं न. (सिक्थम्) धान्य कण, औषधि-विशेष; २-७७।

सिंद्धओ पु. (सिद्धकः) सिन्दूर वार नामक वृक्ष-विशेष; १-१८७।

सिन्दूरं न (सिन्दूरम्) सिन्दूर, रक्त-वर्णीय चूर्णविशेष १-८५।

सिन्धवं न. (सैन्धवम) सेंधा नमक, लवण विशेष; १-१४९।

सिन्नं न. (सैन्यम्) सेना, लश्कर; १-१५०।

सिप्पी स्त्री. (शुक्तिः) सीप, जल में पाया जाने वाला पदार्थ विशेष; २-१३८।

सिभा स्त्री. (शिफा) वृक्ष का जटाकार मूल; १-२३६

सिमिणो पु (स्वप्नः) स्वप्न, सपना; १-४६; २५९।

सिम्भो पु (श्लेष्मा) श्लेष्मा, कफ; २-७४।

सिरं न. (शिरस्) मस्तक, सिर; १-३२।

सिरविअणा स्त्री. (शिरोवेदना) सिर की पीड़ा; १-१५६

सिरा स्त्री. (शिरा) नस, नाड़ी, रग; १-२६६

सिरी स्त्री. (श्रीः) लक्ष्मी, संपत्ति, शोभा; २-१०४

सिरि स्त्री. (श्री) लक्ष्मी, शोभा; २-१९८।

सिरीए स्त्री. (श्रियाः) लक्ष्मी का, शोभा का; २ १९८।

सिरिमन्तो वि. (श्रीमान्) शोभा वाला; शोभा-युक्त; २-१५९।

सिरिसो पु. (शिरीषः) सिरसा का वृक्ष; १-१०१।

सिरोविअणा स्त्री. (शिरोवेदना) सिर की वेदना; १-१५६

सिला स्त्री. (शिला) चट्टान विशेष; १-४।

सिलिट्ठं वि. (श्लिष्टम्) मनोज्ञ, सुन्दर, आलिंगित; २-१०६।

सिलिम्हो पु. (श्लेष्मा) श्लेष्मा, कफ; २-५५, १०६ ।
सिलेसो पु. (श्लेषः) वज्र लेप आदि संधान; संसर्ग; २-१०६ ।
सिलोओ पु. (श्लोकः) श्लोक, काव्य; २-१०६ ।
सिवम् न. (शिवम्) मंगल, कल्याण, सुख; २-१५ ।
सिविणो पु. (स्वप्नः) स्वप्न, सपना; १-४६ २५९ २-१०८ ।
सिविणए पु. (स्वप्नके) स्वप्नमें, सपने में; ३-१८६ ।
सिहरं न. (शिखरः) पर्वत के ऊपर का भाग, चोटी, शृंग; २-९० ।
सीअरो पु. (शीकरः) पवन से क्षिप्त जल, फुहार, जल कण; १-८४ ।
सीभरो पु. (शीकरः) पवन से फेंका हुआ जल, फुहार, जल कण; १-८४ ।
सीआणं न. (श्मशानम्) श्मशान, मसाण, मरघट; २-८६
सीलेण न. (शीलेन) चारित्र से, सदाचार से, २-१८४
सीसं न. (शीर्षम्) मस्तक, माथा; २-९२ ।
सीसो पु. (शिष्यः) शिष्य, चेला; १-४३ ।
सीहो पु. (सिंहः) सिंह, केशरी मृगराज; १-२९ ९२, २६४; ३-१८५ ।
सीहेण पु. (सिंहेन) सिंह से, मृगराज द्वारा; १-१४४; २-९९ ।
सीहरो पु. (शीकरः) पवन से फेंका हुआ जल कण; फुहार; १-१८४ ।
सुअ- वि. (श्रुत) सुना हुआ शास्त्र; २-१७४ ।
सुहलं वि. (शुक्लम्) सफेद वर्ण वाला; श्वेत; २-१०६ ।
सुउरिसो पु. (सुपुरुषः) अच्छा पुरुष, सज्जन; १-८; १७७
सुओ वि. (श्रुतः) सुना हुआ, आकर्णित; १-२०९ ।
सुकडं न. (सुकृतम्) पुण्य, उपकार; अच्छी तरह से निर्मित; १-२०६ ।
सुकुमालो वि. (सुकुमारः) अति कोमल, सुन्दर, कुमार अवस्था वाला; १-१७१ ।
सुकुसुमं न. (सुकुसुमम्) सुन्दर फूल; १-१७७ ।
सुक्क वि. (शुक्ल) शुक्ल पक्ष; २-१०६ ।
सुक्कं न. (शुल्कम्) चुंगी, मूल्य आदि; २-११
सुक्कं वि. (शुष्कम्) सूखा हुआ; २-५ ।
सुक्किलं वि. (शुक्लम्) सफेद वर्ण वाला श्वेत; २-१०६
सुक्खं वि. (शुष्कम्) सूखा हुआ; २-५ ।
सुगओ वि. (सुगतः) अच्छी गति वाला; १-१७७ ।
सुगन्धत्तणं न. (सौगन्ध्यत्वम्) अच्छा गन्धपना; १-१६०
सुंगं न. (शुल्कम्) चुंगी, मूल्य आदि २-११ ।
सुज्जो पु. (सूर्यः) सूरज, रवि, आक का पेड़, दैत्य-विशेष; २-६४ ।
सुणओ पु. (शुनकः) कुत्ता; १-५२ ।
सुण्डो पु. (शौण्डः) दारू-शराब पीने वाला; १-१६०
सुण्हं वि. (सूक्ष्मम्) अति छोटा; १-११८ ।
सुण्हा स्त्री. (सास्ना) गौ का गल-कम्बल; गाय का चमड़ा विशेष; १-७५ ।
सुण्हा स्त्री (स्नुषा) पुत्र-वधू; १-२६१ ।
सुतारं वि. (सुतारम्) अत्यन्त निर्मल; अत्युच्च आवाज वाला; १-१७७ ।
सुत्ती स्त्री. (शुक्तिः) सीप, घोंघा; २-१३८, २११
सुत्तो वि. (सुप्तः) सोया हुआ; २-७७ ।
सुदंसणो वि. (सुदर्शनः) जिसका दर्शन सुन्दर हो वह; २-१०५ ।
सुदरिसणो वि. (सुदर्शनः) जिसका दर्शन सुन्दर हो वह; २-१०५ ।
सुद्धं वि. (शुद्धम्) पवित्र, निर्दोष; १-२६० ।
सुद्धोअणी पु. (शौद्धोदनिः) बुद्ध देव, गौतम; १-१६० ।
सुन्दरि स्त्री. (सुन्दरि) उत्तम स्त्री; ३-१९६ ।
सुन्दरिअं न. (सौन्दर्यम्) सुन्दरता; १-१६०; २-१०७
सुन्देरं न. " " १-५७, १६०, २-६३ ९३ ।
सुपहायं न. (सुप्रभातम्) अच्छा प्रातःकाल २-२०४ ।
सुपुरिसा पु. (सुपुरुषाः) अच्छे पुरुष, सज्जन; २-१८४
सुप्पइ अक. (स्वपिति) वह सोता है; २-१७९ ।
सुब्बं न. (शुल्बम्) तांबा नामक धातु विशेष, रस्सी; २-७९ ।
सुमणं न. (सुमनस्) अच्छा मन; १-३२ ।
सुमिणो आर्ष. पु. (स्वप्नः) स्वप्न, सपना; १-४६ ।
सुम्हा पु. (सुह्माः) देश-विशेष; २-७४ ।
सुरट्ठा पु. (सुराष्ट्राः) अच्छे देश; २-३४ ।
सुरवहू स्त्री. (सुरवधूः) देवता की वधू; १-९७ ।
सुरहि पु. स. (सुरभि) सुगन्ध; १-१५५ ।
सुरा स्त्री. (सुरा) मदिरा, शराब दारू; १-१०२ ।

सुवर्णं न. (सुवर्णम्) २-१११।
सुवइ अक. (स्वपिति) वह सोता है; १-६४।
सुवण्णो पु. (सुपर्णः) गरुड़-पक्षी; १-२६।
सुवण्णिओ वि. (सौवर्णिकः) स्वर्णमय, सोने का बना हुआ; १-१६०।
सुवे वि. (स्वे) सम गोत्री; अपने स्व जाति के; २-११४।
सुवे अ. (श्वः) आने वाला कल; २-११४।
सुसा स्त्री. (स्नुषा) पुत्र-वधू; १-२६१।
सुसाणं न. (श्मशानम्) मशाण, मरघट; २-८६।
सुहओ वि. पु. (सुभगः) अच्छे भाग्य वाला; १-११३, १९२।
सुहओ वि. (सुखदः) सुख को देने वाला; १-१७७।
सुहकरो वि. (सुखकरः) सुख को करने वाला; १-१७७
सुहदो वि. (सुखदः) सुख को देने वाला; १-१७७।
सुहेण न. (सुखेन) सुख से; १-२३१।
सुहमं वि. (सूक्ष्मम्) छोटा; २-१०१।
सुहयरो वि. (सुखकरः) सुख को करने वाला; १-१७७
सुहुमं आर्ष वि. (सूक्ष्मम्) अत्यन्त छोटा, बारीक; १-११८; २-११३।
सुहेण न. (सुखेन) सुख से; १-२३१।
सू—
पसूणं न. (प्रसून) फूल, पुष्प; १-१६६
पसूणं न. (प्रसूनम्) फूल, पुष्प; १-१८१
सूरो पु. (सूरः) सूर्य, रवि; २-६४। (सूर्यः) सूर्य, रवि; २-६४, २०७।
सूरिओ पु. (सूर्यः) सूरज, रवि; २-२०७।
सूरिसो पु. (सुपुरुषः) अच्छा पुरुष, सज्जन; १-८
सूसासो वि. (सोच्छ्वासः) ऊर्ध्वश्वास वाला; १-१५७
सूहवो वि. (सुभगः) अच्छे भाग्य वाला; १-११३, १९२
से (तस्य) उसका; २-१८८।
सेज्जा स्त्री. (शय्या) बिछौना; १-५७; २-२४
सेन्दूरं न. (सिन्दूरम्) सिन्दूर, रक्त वर्ण का चूर्ण विशेष; १-८५।
सेन्नं न. (सैन्यम्) सेना, लश्कर, फौज; १-१५०।
सेफो पु. (श्लेष्मा) कफ, श्लेष्मा; २-५५।
सेभालिआ स्त्री. (शेफालिका) लता-विशेष; १-२३६।
सेयं न. (श्रेयस्) कल्याणकारी; १-३२।
सेरं वि. (स्मेरम्) खिलने के स्वभाव वाला, विकस्वर; २-७८।
सेला पु. (शैलाः) पर्वतों का समूह; १-४८।
सेवा सेव्वा स्त्री. (सेवा) सेवा, आराधना, चाकरी; २-९९
सेसो वि. (शेषः) बाकी, अवशिष्ट; शेष; १-२६०।
सेसस्स वि. (शेषस्य) बाकी रहे हुए का; २-१८२।
सेहालिआ स्त्री. (शेफालिका) लता-विशेष; १-२३६।
सो सर्व. (सः) वह; १-१७, १७७, २-९९, १८०।
सोअमल्लं न. (सौकुमार्यम्) सुकुमारता, अति कोमलता; १-१०७; २-६८।
सोऊआण सं. कृ. (श्रुत्वा) सुन करके; २-१४६।
सोच्चा " " " " २-१५।
सोण्डीरं न. (शौण्डीर्यम्) पराक्रम, शूरता, गर्व; २-६३
सोत्तं न. (स्रोतस्) प्रवाह, झरना; छिद्र; २-९८।
सोमालो वि. (सुकुमारः) अति कोमल, सुन्दर, कुमार अवस्था वाला; १-१७१, २५४।
सोरिअं न. (शौर्यम्) शूरता, पराक्रम; २-१०७।
सोवइ अक. (स्वपिति) वह सोता है; १-६४।
सोहइ अक. (शोभते) वह शोभा पाता है; १-१८७
सोहिल्लो पु. वि. (शोभावान्) शोभायुक्त; २-१५९।
सौअरिअं न. (सौन्दर्यम्) सुन्दरता; १-१।
स्खल्-(धातु) (खिसकने। अर्थ में—
खलिअ वि. (स्खलित) जिसने त्रुटि की हो वह; नीचे खिसका हुआ; १-४।
खलिओ वि. (स्खलितः) जिसने त्रुटि की हो वह; २-७७।
खलिअं वि. (स्खलितम्) खिसका हुआ; २-८९
स्तम्भ्-(धातु) चकित होना, स्तम्भ समान होना।
थम्भिज्जइ, ठम्भिज्जइ, भावे प्रयोग अक. (स्तम्भ्यते) उससे हक्का-बक्का हुआ जाता है; २-९
थम्भिज्जइ, ठम्भिज्जइ, भावे प्रयोग अक. (स्तम्भ्यते) उससे स्तम्भ समान हुआ जाता है; २-९।
स्त्या—
संखायं सं. वि. (संस्त्यानम्) सान्द्र, निबिड़, प्रतिध्वनि, आलस्य; १-७४।

स्था-(धातु) ठहरने अर्थ में—

चिट्ठइ अक. (तिष्ठति) वह ठहरता है; १-१९९; १-३६ ।

ठाइ अक (तिष्ठति) वह ठहरता है; १-१९९

ठविओ ठाविओ, वि. (स्थापितः) जिसकी स्थापना की गई हो वह; १-६७ ।

पइट्ठिअं परिट्ठिअं वि. (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठा-प्राप्त को; १-३८ ।

परिट्ठविओ परिट्ठाविओ वि. (प्रतिस्थापितः) जिसके स्थान पर अथवा जिसके विरुद्ध में स्थापना की गई हो वह; १-६७ ।

परिट्ठविअं वि. (परिस्थापितम्) विशेष रूप में जिसकी स्थापना की गई हो वह, अथवा उसको; १-१२९

संठविओ संठाविओ वि. (संस्थापितः) व्यवस्थित रूप में जिसकी स्थापना की गई हो वह; १-६७ ।

स्मर् (धातु)

विम्हरिमो सक. (विस्मरामः) हम भूलते हैं; २-१९३ ।

स्वप्

सोवइ, सुवइ, अक. (स्वपिति) वह सोता है, सोती है १-६४;

सुप्पइ, अक. (स्वपिति) सोती है; २-१७९ ।

सुत्तो वि. (सुप्तः) सोया हुआ; २-७७ ।

पसुत्तो, पासुत्तो वि. (प्रसुप्तः) (विशेष ढंग से) सोया हुआ; १-४४ ।

(ह)

ह (हा) अ. (पाद-पूर्ति-अर्थे) पाद-पूर्ति के अर्थ में, संबोधन अर्थ में काम आने वाला अव्यय; १-६७

हंसो पु. (हंसः) पक्षी-विशेष; हंस; २-१८२ ।

हंहो अ. (हं, भोः, हंहो !) संबोधन, तिरस्कार; गर्व, प्रश्न आदि अर्थक अव्यय; २-२१७ ।

हणुमन्तो पु. (हनुमान्) अञ्जना सुन्दरी का पुत्र, हनुमान १-१२१; २-१५९ ।

हणुमा पु. (हनुमान) हनुमान, अञ्जना सुन्दरी का पुत्र; २-१५९ ।

हत्थुल्ला पु. (हस्तौ) दो हाथ; २-१६४ ।

हत्थो पु. (हस्तः) हाथ; २-४५, ९० ।

हत्था पु. (हस्तौ) दो हाथ; २-१६४ ।

हद्धी अ. (हा ! धिक्) खेद अनुताप, धिक्कार अर्थक अव्यय; २-१९२ ।

हण-(धातु) हनन अर्थ में—

हयं वि. (हतम्) मारा हुआ, नष्ट हुआ; १-२०९; २-१०४ ।

निहओ वि. (निहतः) विशेष रूप से मारा हुआ; १-१८० ।

हन्द अ. (गृहणार्थे) 'ग्रहण करो-लेओ' के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला अव्यय; २-१८१ ।

हन्दि अ. (विषादादिषु) विषाद, खेद, विकल्प, पश्चाताप, निश्चय, सत्य, ग्रहण-(लेओ) आदि अर्थक अव्यय; २-१८०, १८१ ।

हं सर्व. (अहम्) मैं; १-४० ।

हयासो वि. (हताशः) जिसकी आशा नष्ट हो गई हो वह, निराश; १-२०९ ।

हयासस्स वि. (हताशस्य) हताश की, निराश की; २-१९५ ।

हरइ सक. (हरति) वह हरण करता है; नष्ट करता है; १-१५५ ।

हरन्ति सक. (हरन्ति) वे हरण करते हैं; आकर्षित करते हैं; २-२०४ ।

हिअं वि. (हृतम्) हरण किया हुआ; चुराया हुआ; १-१२८ ।

ओहरइ सक. (अवहरति) वह अपहरण करता है; १७२ ।

अवहडं वि. (अपहृतम्) चुराया हुआ; अपहरण किया हुआ; १-२०६ ।

आहडं वि. (आहृतम्) अपहरण करके, चुरा करके लाया हुआ; १-२०६ ।

वाहित्तं वि. (व्याहृतम्) कहा हुआ; १-१२८

वाहिओ, वाहित्तो वि. (व्याहृतः) उक्त, कथित; २-९९ ।

संहरइ सक. (संहरति) वह हरण करता है, चुराता है; १-३० ।

हर पुं (हर) महादेव, शंकर; १-१८३ ।

हरस्स पुं. (हरस्य) हर की, महादेव की, शंकर की; १-१५८ ।

हरए पुं. (ह्रदे) बड़े जलाशय में; २-१२०।

हरक्खन्दा, हरखन्दा पुं. (हरस्कन्दौ) महादेव और कार्तिकेय; २-९७।

हरडई स्त्री. (हरीतकी) हरड़ नामक औषधि विशेष; १-९९, २०६।

हरं न. (गृहम्) घर, मकान; १-१३४, १३५।

हरिअन्दो पु. (हरिश्चन्द्रः) हरिश्चन्द्र नामक राजा; २-८७

हरिआलो पु. (हरितालः) हरताल, वस्तु-विशेष; २-१२१

हरिसो पु. (हर्षः) सुख, आनन्द, प्रमोद, खुशी; २-१०५

हरे अ. (अरे!) तिरस्कार, निन्दा, संभाषण, रति कलह अर्थक अव्यय; २-२०२।

हरो पु. (हरः) महादेव, शंकर, शिव; १-५१।

हलद्दा हलद्दी स्त्री. (हरिद्रा) हल्दी, औषधि-विशेष; १-८८

हला अ. (हला) सखी को आमन्त्रण करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला अव्यय; २-१९५।

हलिआरो पु. (हरितालः); वस्तु विशेष; २-१२१।

हलिओ पु. (हालिकः) हल जोतने वाला; १-६७।

हलिद्दो पु. (हारिद्रः) वृक्ष-विशेष; १-२५४।

हलिद्दा स्त्री. (हरिद्रा) औषधि-विशेष, हल्दी; १-८८।

हलिद्दी स्त्री. (हरिद्रा) औषधि-विशेष, हल्दी; १-८८,२५४

हलुअं वि. (लघुकम्) छोटा, हल्का; २-१२२।

हले अ. (सखी-आमन्त्रणे) हे सखि! सखी के सम्बोधनार्थक अव्यय; २-१९५।

हल्लफल देशज (?) २-१७४।

हस् (धातु) हँसना।

हसइ अक. (हसति) वह हँसता है; २-१९८।

ऊहसिअं, ओहसिअं, उवहसिअं वि. न. (उपहसितम्) हँसी किया हुआ, हँसाया हुआ; १-१७३।

हसिरो वि. (हसनशीलः) हास्य कर्ता, हँसने की आदत वाला; २-१४५।

हा अ. (हा) विषाद-खेद अर्थक अव्यय; १-६७; २-१७८, १९२; २१७।

हा (धातु) हीनता अर्थक

हीणो वि. (हीनः) न्यून रहित, हल्की श्रेणी का; १-१०३।

हीणं वि. (हीनम्) न्यून, रहित, हल्की श्रेणी का; २-१०४।

हूणो वि. (हीनः) न्यून रहित, हल्की श्रेणी का; १-१०३

पहीणो वि. (प्रहीण) नष्ट हुआ; १-१०३।

विहीणो, विहूणो, वि. (विहीनः) रहित; १-१०३।

हालिओ पु. (हालिकः) हल जोतने वाला; १-६७।

हाहा अ. (हाहा) विलाप, हाहाकार, शोकध्वनि अर्थक अव्यय; २-२१७।

हिअअं न. (हृदयम्) अन्तः करण, हृदय; मन; १-१२८

हिअयं न. (हृदयम्) अन्तः करण, हृदय, मन; १-२६९; २-२०४।

हिअय न. (हृदय) हृदय, २-२०१।

हिअयए न. (हृदयके) हृदय में; २-१६४।

हिअए न. (हृदये) हृदय में, अन्तः करण में, मन में; १-१९९।

(खर) हिअओ वि. (खर-हृदयः) कठोर हृदय वाला, निर्दय; २-१८६।

हिअअस्स वि. (हृदयस्य) हृदय वाले का; १-२६९

हिअं वि. (हृतम्) हरण किया हुआ, चुराया हुआ; १-१२८।

हिअअं न. (हृदयम्) हृदय; १-१२८; २-२०४।

हित्थं वि. (त्रस्तम्) त्रस्त, भय-भीत डरा हुआ; २-१३६।

हिर अ. (किल) संभावना निश्चय, पाद-पूर्ति अर्थक अव्यय; २-१८६।

हिरिओ वि. (ह्रीतः) लज्जित; २-१०४।

हिरी स्त्री. (ह्रीः) लज्जा; शरम; २-१०४।

ही अ. (आश्चर्यार्थे निपातः) आश्चर्य आदि अर्थक अव्यय; २-२१७।

हीरो पु. (हरः) महादेव, शंकर; १-५१।

हु अ. (खलु) निश्चय, तर्क, वितर्क, संशय, संभावना, विस्मय आदि अर्थक अव्यय; २-१९८

हुअ विधि. अक. (भव, भवतात्) तू हो। २-१८०।

हुअं वि. (हुतम्) होमा हुआ, हवन किया हुआ; २-९९

हुत्तं. प्रत्यय. (कृत्वस् अर्थक) (अमुक) बार, दफा अर्थक प्रत्यय; २-१५८।

हुं अ. (दान-पृच्छा-निवारणे निपातः) दान, पूछना, निवारण करना अर्थक अव्यय; २-१९७।

हूअं वि. (हुतम्) होमा हुआ, हवन किया हुआ; २-९९

हूणो वि. (हीनः) न्यून, अपूर्ण; १-१०३।

हे अ. (निपात विशेषः) सम्बोधन, आह्वान, ईर्ष्या आदि अर्थक अव्यय; २-२१७ ।

हेट्ठं अ. (अधस्) नीचे; २-१४१ ।

हेट्ठिल्लं वि. (अधस्तनम्) नीचे का; २-१६३ ।

हो अ. (हो) विस्मय, आश्चर्य, संबोधन, आमन्त्रण अर्थक अव्यय; २-२१७ ।

होइ अक. (भवति) वह होता है; १-९; २-२०६ ।

होही अ. (भविष्यति) होगी; २-१८० ।

शुद्धि-पत्र

[ज्ञातव्यः—(१) प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रुफ-संशोधन में काफी ध्यान रखने पर भी दृष्टि-दोष-वशात् एवं भ्रम-वशात् यदि कोई अशुद्धि प्रतीत हो तो कृपालु पाठकगण उसे सुधार कर पढ़ने की कृपा करें। शब्दों की सिद्धि और साधनिका में प्रत्येक स्थान पर अनेकानेक सूत्रों का संख्या-क्रम प्रदान करने की आवश्यकता पड़ी है अतः हजारों शब्दों की सिद्धि में हजारों बार सूत्र-क्रम-संख्या का निर्देशन करना पड़ा है; ऐसी स्थिति में सूत्र-क्रम-संख्या में कहीं कहीं पर विपरीतता तथा असंबद्धता प्रतीत हो तो विज्ञ-पाठक उसे सुधार कर पढ़ने का परम अनुग्रह करें।

(२) अनेक स्थानों पर छापते समय में दबाव के कारण से मात्राएं टूट गई है; बैठ गई हैं अतः उन्हें यथा-रीति से समझ पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

(३) विभिन्न वाक्यों में 'है" के स्थान पर "हैं" ही छप गया है; इसलिये इसका भी ध्यान रक्खें।

(४) "रेफ्" रूप "र्" भी कहीं कहीं पर टूट गया है, बैठ गया है; अतः इसका संबंध भी यथोचित रीति से संयोजित कर लें। यही बात "अनुस्वार" के लिये भी जानना।

(५) अनेक शब्दों में टाइप की घिसावट के कारण से भी अक्षर अपने आप में पूरी तरह से व्यक्त नहीं हो सके हैं; ऐसी स्थिति में विचार-शील पाठक उनके संबंध का अनुशीलन करके उनको पूर्ण रूप में संशोधित करने की महती कृपा करें। कहीं कहीं पर "ब" के स्थान पर "व" और "व" के स्थान पर "ब" छप गया है।

(६) दृष्टि में आई हुई कुछ अशुद्धियों का स्थूल संशोधन यहाँ पर प्रदान किया जा रहा है; तदनुसार सुधार कर अध्ययन करने की कृपा करें; यही मुख्यतः विनंति है।

(७) अनेक स्थानों पर "हलन्त अक्षरों" के स्थान पर पूर्ण रूप से अकारान्त अक्षर मुद्रित हो गये हैं; अतः संबंधानुसार उन्हें "हलन्त अक्षर" ही समझें।

(८) नीचे शुद्धि-पत्र में "पंक्ति-संख्या" से तात्पर्य पाठ्य-पंक्तियों से गणना करके तदनुसार "उचित" संख्या का निर्धारण करें। बॉर्डर से ऊपर की बाह्य पंक्ति को संख्या रूप से नहीं गिनें। इति निवेदक—संपादक।]

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या	अशुद्धांश	शुद्धांश
२	७; ११; १३	समानान्तर	समानानन्तर
१०	२५	इन्द-रुहिर लित्तो	दणु-इन्द-रुहिर-लित्तो
११	१४	रिवरः	नव वारिधरः
६१	१३	३४	३५
६५	८,१०,	तः	र्तः
७१	४	विश्रम्मः	विश्रम्भः
७८	१५	ईषष्	ईषत्
८८	४	२-१२	२-११२

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या	अशुद्धांश	शुद्धांश
९४	९	द्विव्व	द्विव्व
१११	६	अम्पि आवसणे	अम्पिआवसणे
११६	६	घ	भ
११६	७	व	पृ
१४२	२३	प्रही	प्रहीन
१५७	९	(छूट गया)	सरिवण्णो
१६०	८	किलित्त	किलिस
१८८	११	भविस	भवति
१९०	१६	ऊहूसिर्भ	ऊंहूसिर्व
१९२	१२	स्त्वस्	सत्वर
१९३	१	संयुक्तम्या	संयुक्तस्या
१९३	२२	पण्णो	वण्णो
१९३	२८	व्यत्ययव	व्यत्ययवत्
२११	३	कंबमा	पंविमा
२२३	९	मावति	भवति
२२३	१२	मशी	मशो
२३४	५	रूपान्त	रूपान्तर
२३९	६	प्रकृत	प्राकृत
२३९	१९	प्रगणित	प्रमाणित
२४९	२	ति	भवति
२५०	१८	हो	ही
२५३	१४	आरमाकन्	आरमाकम्
२५५	९	अणया	अणयो
२५५	२४	स्वर-सहित	स्वर-रहित
२५८	२२	फलिहा	फलिहो
२६६	४	अवयवा	अवयवो
२६९	५	यष्ठिः	यष्ठिः
२६९	९	णु	वेणु
२७३	४	मर:	भेर:
२९१	२२	कृत	प्राकृत
२९१	२८	मामावली	नामवाली
२९१	२९	टोकावली	टीकावाली
२९१	२९	रूप	रूप
२९२	११	श्रृंगारिक-ढंग	श्रृंगार-युक्त-ढंग
२९२	१५	राज्य-भ्रष्टता	राज्य-भ्रष्ट हो जाने
२९५	१२	पोक्खरिणा	पोक्खरिणी
३०२	२४	दूसरों की	दूसरों को नहीं

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या	अशुद्धांश	शुद्धांश
३११	१८	भवित	भवति
३१७	१	भरिका	भारिका
३२८	४	संयुक्तस्य	संयुक्तस्य
३३३	६	गड्डहा	गड्डहो
३३४	१८	मुद्द	मुद्द
३३६	१३	२–४	२–४२
३४४	११	सर्व्वं	सर्व्वं
३४७	१५	ह्रस्व	ह्रस्व
३५०	१८	ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्य
३५२	७	ऐ	ए
३५६	२१	कर्षापणे	कार्षापणे
३५६	२८	"आ"	"अ"
३६१	२१	"प्प"	"प्प"
३६५	६	सजो	सज्जो
३६५	१२	पूर्वस्य	पूर्वस्य
३६९	१४	सुर्व्वं	सुर्व्वं
३७५	१६	रूप है	हुवे संस्कृत रूप है
३८७	१	वस्य	वस्य
३९२	१२	स्थित	स्थिति
३९५	६	मण्डरको	मण्डुकको
३९५	११	निश्चत	निश्चित
४०५	२०	व्यवथित	व्यवस्थित
४१२	१५	संयुक्तस्यात्	संयुक्तस्य यात्
४२०	१८	स्थित	स्थिति
४२१	२०	वण	वर्ण
४२३	१८	१-१२३	२-१२३
४२७	२१	त्वचा	चिचा
४३१	२७	पाकको	पाइक्को
४३५	२	जैहेट्ठ	जैसे, हेट्ठ
४३९	१०	साउभाण	सोउभाण
४३९	१२, १३, १५, १९	भूत कृदन्त	संबंध भूत कृदन्त
४५९		४५७ पृष्ठांक के क्रम में भूल है,	विषय नहीं छूटा है। पृष्ट क्रमांक भूल अंत तक है।
४६०	४	इत्येता डितो	इत्येतौ डितो
४६७	२४	प्राति	प्राप्ति
४७२	८	घोष-अल्प-प्राण	घोष-अल्प-प्राण
४८३	८, १	ब	ब

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या	अशुद्धांश	शुद्धांश
४८४	११	वगे	वर्गे
४८४	१३	कृतः	पवि प्राकृत
४८४	२१	त्वम्	त्वम्
४८४	२५	शयम	शयन
४८४	२६	भूमो पि	भूयोऽपि
४८६	१०	ो	फिर
४८६	१२	नायिका	नायिका
४९१	५	चित्र	पइ चेअ चित्र
४९१	६	यच्च	च्च य
४९१	६	सच्च	स च्च
५००	१	ओ	ओ
५१२	२४	अपूर्व	अपूर्ण
५१३	२७	किया	क्रिया
५१७	१४	विषय	विषयक
५१७	१३	प्रथत	प्रदत्त
५२१	१२	आर्षित	आकर्षित
५३४	१३	इसकी	इनकी
५३४	१	के	मे